दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा निदेशालय

DIRECTORATE OF DISTANCE & ONLINE EDUCATION

जम्मू विश्वविद्यालय

UNIVERSITY OF JAMMU

जम्मू

JAMMU

पाठ्य सामग्री
STUDY MATERIAL

एम.ए.हिन्दी
M.A. HINDI
SESSION - 2024 ONWARDS

हिन्दी साहित्य का इतिहास — पाठ्यक्रम संख्या HIN -202

Semester - II — **Course Code. HIN-202**

इकाई संख्या-एक से चार — आलेख संख्या-(1- 24)

Unit I to IV — **Lesson No. (1 to 24)**

Prof. ANJU SHARMA
Course Co-ordinator

---

http:/www.distanceeducationju.in

इस पाठ्य सामग्री का रचना स्वत्व/ प्रकाशनाधिकार दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा निदेशालय, जम्मू विश्वविद्यालय जम्मू के पास सुरक्षित है।

Printed and Published on behalf of the Directorate of Distance & Online Education, University of Jammu, Jammu by the Director, DD&OE, University of Jammu, Jammu

COURSE CONTRIBUTORS :

- **Prof. Anju Sharma**
  Professor,
  Directorate of Distance Education,
  University of Jammu.
  (Lesson Nos. 20, 21, 22, 23)

- **Dr. Meeta Sharma**
  Associate Professor,
  Department of Hindi,
  University of Rajasthan.
  (Lesson Nos. 8, 9, 10)

- **Dr. Sunil Kumar**
  Assistant Professor,
  Department of Hindi,
  Guru Nanak Dev University, Amritsar.
  (Lesson Nos. 6, 7)

- **Dr. O.P.N. Dwivedi**
  Retd. Associate Professor,
  Department of Hindi,
  University of Jammu, Jammu.
  (Lesson Nos. 2, 11, 12, 13, 14)

- **Prof. Vinod Taneja**
  Retd. Professor,
  Department of Hindi,
  GNDU, Amritsar.
  (Lesson Nos. 15-19)

- **Dr. Parshotam Kumar**
  Assistant Professor,
  Department of Hindi,
  University of Jammu.
  (Lesson No. 4, 5)

- **Dr. Bhagwati Devi**
  Lecturer in Hindi,
  PSPS Govt. College of
  Gandhi Nagar, Jammu
  (Lesson No. 1, 3, 24)

Content Editing, Review & Proof reading :

- **Prof. ANJU SHARMA**
  Co-ordinator PG Hindi, DD&OE

© Directorate of Distance & Online Education, University of Jammu, Jammu 2023

- All rights reserved. No part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from the DD&OE, University of Jammu.
- The Script writer shall be responsible for the lesson/script submitted to the DD&OE and any plagiarism shall be his/her entire responsibility.

Printed at : Educational Stores, Ghaziabad (U.P.) 2024 / Qty. 200

Syllabus of Master Degree Programme in Hindi Under Non CBCS

Semester–2nd

Course Code : HIN-202 *Title :* **Hindi Sahitya Ka Itihas : Adhunik Kaal**

Credits : 6 **Maximum Mark : 100**

Duration of Examination : 3 Hrs. **(a) Internal = 20**

(b) External = 80

Syllabus for the Examination to be held in 2022, 2023 & 2024 May

इकाई–एक

1. आधुनिक काल की पृष्ठभूमि
2. नवजागरण एवं समाज सुधार
3. आधुनिक काल से पूर्व गद्य की स्थिति
4. गद्य के प्रारम्भिक उन्नायक

इकाई–दो

5. भारतेन्दु युगीन काव्य : प्रवृत्तियाँ एवं प्रमुख कवि
6. द्विवेदी युगीन काव्य और उसकी प्रवृत्तियाँ एवं प्रमुख कवि
7. 19वीं शताब्दी के प्रमुख गद्यकार

इकाई–तीन

8. छायावाद
9. प्रगतिवाद : प्रवृत्तियाँ एवं प्रमुख कवि
10. प्रयोगवाद : प्रवृत्तियाँ एवं प्रमुख कवि
11. नई कविता
12. नवगीत
13. अकविता
14. विचार कविता

इकाई–चार

15. हिन्दी कहानी : उद्‌भव और विकास
16. हिन्दी उपन्यास : उद्‌भव और विकास
17. हिन्दी नाटक : उद्‌भव और विकास
18. हिन्दी निबन्ध : उद्‌भव और विकास
19. हिन्दी आलोचना : उद्‌भव और विकास

20. रेखाचित्र : उद्‌भव और विकास
21. संस्मरण : उद्‌भव और विकास
22. जीवनी : उद्‌भव और विकास
23. आत्मकथा : उद्‌भव और विकास
24. यात्रा साहित्य : उद्‌भव और विकास

प्रश्न पत्र का प्रारूप

कोर्स कोड HIN-202 के प्रश्नपत्र का प्रारूप इस प्रकार होगा

मुख्य परीक्षा (External Exam) **अंक = 80 समय = तीन घण्टा**

(क) शत–प्रतिशत विकल्प के साथ चार दीर्घ उत्तरापेक्षी प्रश्न।	10×4=40
(ख) शत–प्रतिशत विकल्प के साथ चार लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न।	6×4=24
(ग) शत–प्रतिशत विकल्प के साथ चार अति लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न।	3×4=12
(घ) चार वस्तुनिष्ठ विकल्परहित प्रश्न पूछे जायेंगे।	1×4=4

विषय–सूची

आलेख संख्या	आलेख	पृष्ठ संख्या
1.	आधुनिक काल की पृष्ठभूमि	5
2.	नवजागरण एवं समाज सुधार	14
3.	आधुनिक काल से पूर्व गद्य की स्थिति	20
4.	गद्य के प्रारम्भिक उन्नायक	31
5.	19वीं शताब्दी के प्रमुख गद्यकार	36
6.	भारतेन्दु युगीन काव्य : प्रवृत्तियाँ एवं प्रमुख कवि	41
7.	द्विवेदी युगीन काव्य और उसकी प्रवृत्तियाँ एवं प्रमुख कवि	54
8.	छायावाद	68
9.	प्रगतिवाद : प्रवृत्तियाँ एवं प्रमुख कवि	84
10.	प्रयोगवाद : प्रवृत्तियाँ एवं प्रमुख कवि	102
11.	नई कविता	120
12.	नवगीत	138
13.	अकविता	155
14.	विचार कविता	167
15.	गद्य विधाएँ : हिन्दी निबन्ध	176
16.	हिन्दी उपन्यास : उद्‌भव और विकास	188
17.	हिन्दी नाटक : उद्‌भव और विकास	201
18.	हिन्दी कहानी : उद्‌भव और विकास	214
19.	हिन्दी आलोचना : उद्‌भव और विकास	233

विषय–सूची

आलेख संख्या	आलेख	पृष्ठ संख्या
20.	जीवनी : उद्‌भव और विकास	248
21.	आत्मकथा : उद्‌भव और विकास	259
22.	रेखाचित्र : उद्‌भव और विकास	270
23.	संस्मरण : उद्‌भव और विकास	280
24.	यात्रा साहित्य : उद्‌भव और विकास	291

आधुनिक काल की पृष्ठभूमि

1.0 रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना

1.4 सामाजिक तथा धार्मिक कारण

1.5 आधुनिक शिक्षा प्रणाली

1.6 भारत में प्रेस का विकास

1.7 भारतीय पुनर्जागरण

1.8 निष्कर्ष

1.9 कठिन शब्द

1.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.11 पठनीय पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

- आधुनिक काल एवं पुनर्जागरण अर्न्तसम्बन्ध को समझना।
- आधुनिक काल की पृष्ठभूमि को सविस्तार समझना।
- आधुनिक काल की सामाजिक आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों को समझना।

1.2 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल नई सोच और नये दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है, उसके लिए तत्कालीन विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियाँ तो उत्तरदायी थी हीं, साथ ही उन परिस्थितियों के रूप ग्रहण के लिए वह अंग्रेजी सत्ता भी जिम्मेदार थी, जिसने वास्तव में हमें प्रत्यक्षतः तथा परोक्षतः पुनर्जागरण के लिए उत्तेजित किया। अतः इस ऐतिहासिक घटनाक्रम को जाने बिना हमारे लिए न तो आधुनिक काल के प्रारम्भ की तत्कालीन परिस्थितियों का स्वरूप स्पष्ट हो सकता और न ही उन परिस्थितियों से प्रभावित साहित्य का केंन्द्रीय दृष्टिकोण । इसीलिए पहले हम इस युग की पूर्वपीठिका के रूप में अंग्रेजी सत्ता से जुड़ी हुई कुछ महत्त्वपूर्ण घटना की चर्चा करेंगे, तत्पश्चात् उन घटनाओं के प्रभाव तथा उनकी प्रतिक्रिया में विकसित होने वाले विभिन्न परिस्थितिजन्य आन्दोलनों, दर्शनों की बात करेंगे, जिन्होंने हमारे आलोच्य काल की विभिन्न परिस्थितियों के निर्माण में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी और जिनसे प्रेरित होकर हमारे साहित्यकारों ने साहित्य के क्षेत्र में आधुनिकता का आह्वान किया।

1.3 भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना

अंग्रेजों ने सन् 1600 में 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के नाम से भारत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किये तथा धीरे–धीरे इस क्षेत्र में अपने अन्य प्रतिद्वंद्वियों – डच, पुर्तगाली तथा फ्रांसीसियों को भगा कर इस क्षेत्र में अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया। व्यापारिक क्षेत्र में एकाधिकार के गर्व ने अंग्रेजों में भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में हस्तक्षेप की महत्त्वाकांक्षा को भी हवा दी। फलस्वरूप 1757 ई० में उन्होंने प्लासी के युद्ध में बंगाल के नवाब को तथा 1764 ई० में बक्सर के युद्ध में मुगल सम्राट, बंगाल के नवाब और अवध के नवाब– तीनों को पराजित करके भारत में अपने शासन की नींव रखी। राबर्ट क्लाइव को बंगाल का पहला गवर्नर नियुक्त किया गया, जिसने भारत में अंग्रेजी सत्ता की नींव को मजबूत बनाने के लिए अनेक प्रकार के सुधार किये। उसके बाद बार्न हेस्टिरज तथा कार्नवालिस ने अपने शासनकाल में क्लाइव की उदार नीतियों का ही विस्तार करते हुए और भी सुधार किये भले ही उक्त अंग्रेज गवर्नरों ने सुधारवादी नीतियों को अपनाया था, परन्तु सामान्य जनता में यह विश्वास दृढ़ हो जा रहा था कि अंग्रेज ही सुधार कर रहे हैं उसके पीछे उनका अपना स्वार्थ ही कार्य कर रहा है। इसीलिए प्रजा में अंग्रेजों के प्रति नफरत तथा विद्रोह की भावना भी साथ–साथ ही पनप रही थी। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विश्व मंच पर दो अन्य ऐसी घटनाएं घटित हुई, जिनका प्रभाव समूचे विश्व के साथ–साथ भारत में भी दिखलायी दिया। इनमें पहली घटना थी–फ्रांस की राज्य क्रान्ति (1789), जिसने सामंतवादी प्रथा के विनाश तथा प्रजातन्त्र की स्थापना के माध्यम से विश्व स्तर पर स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व के आदर्श का संदेश प्रेषित किया, जो भविष्य में होने वाले सभी जन–आन्दोलनों का मूल मंत्र बना। इसी प्रकार दूसरी घटना भी नेपोलियन बोनापार्ट (1769–1821) की विश्व विजय की महत्त्वाकांक्षा उसकी इस विस्तारवादी नीति से जहाँ एक ओर सम्पूर्ण योरोप क्षतिग्रस्त हुआ वहीं परोक्षतः समूचे योरोप के साथ–साथ भारत जैसे अनेक देशों में भी राष्ट्रीयता एवं राष्ट्र–धर्म की भावना का विकास हुआ। यहाँ पर लोगों के मन में राष्ट्रीय–प्रेम की सुप्त भावना जाग्रत हुई। इस प्रकार 18वीं शताब्दी के अन्त तक जहाँ एक ओर अंग्रेजों ने भारत में अपने शासन की सीमाएँ बढ़ा ली थीं तथा अपने शासन की लम्बी आयु के लिए सुधार भी कर रहे थे, वहीं दूसरी और भारतीय जनता में उनके प्रति उन सभी विरोधी तत्त्वों का जन्म भी हो चुका था जिनसे आगे चलकर 1857 में देशव्यापी विद्रोह ने जन्म लिया। इसमें फ्रांस की क्रान्ति तथा नेपोलियन की विस्तारवादी नीतियों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। विश्व के इतिहास में 19वीं शताब्दी "Centuary of Reforms" के नाम से अंकित है। इस शताब्दी में समूचे विश्व में मनुष्य जीवन को सुखद, समृद्ध तथा सुगम बनाने के लिए समाज में सभी स्तरों पर अनेक प्रयास किये गये भारतीय

इतिहास में भी वस्तुतः यही वह परिवर्तन काल है, जहाँ से मध्यकालीन बोध का प्रभाव छँटता है और आधुनिक सोच का प्रभाव बढ़ने लगता है। यहीं से मध्यकालीन पारलौकिक दृष्टिकोण के बदले इहलौकिक दृष्टिकोण का विकास होता है, जिसके फलस्वरूप एक तो ईश्वर अपने ब्रह्मलोक को त्यागकर इहलोक में सामान्य मनुष्य के रूप में प्रवेश पाता है अर्थात् मध्ययुग का ईश्वर–चिन्तन इस युग में मनुष्य–चिन्तन में परिवर्तित हो जाता है तथा दूसरे व्यष्टि हित के बदले समष्टि हित का चिन्तन पल्लवित होता है। यही वह मुख्य दृष्टिकोण है जो समूचे आधुनिककालीन साहित्य में किसी न किसी रूप में व्याप्त है। अस्तु, 19वीं शताब्दी के प्रथम चरण में अंग्रेज तो देश भर में अपना राज्य विस्तार करने में जुटे ही हुए थे, परन्तु उधर इंग्लैंड की तीन मुख्य घटनाओं ने भी भारतीय जनमानस पर अपना परोक्ष प्रभाव डाला। उनमें से पहली थी ईसाई मत के विश्व स्तर पर प्रचार–प्रसार का आन्दोलन ऐसा नहीं है कि इससे पूर्व ईसाई मिशनरी इस कार्य में नहीं जुटे हुए ये निस्संदेह वे अपना कार्य कर रहे थे परन्तु ईसाई धर्मावलम्बियों के उक्त आन्दोलन ने प्रचार की प्रक्रिया को और भी तेज कर दिया। उसी के परिणामस्वरूप भारत में भी ईसाई मिशनरी इंगलैंड से प्रोत्साहन पाकर और भी उत्साह से इस कार्य में जुट गये जिसकी प्रतिक्रिया भी हमारे धार्मिक क्षेत्र में उतनी ही त्वरा से हुई। दूसरी घटना थी औद्योगिक क्रान्ति। इंग्लैंड के औद्योगीकरण के पश्चात् जब वहाँ कच्चे माल की पूर्ति तथा तैयार माल की बिक्री की समस्या आई, तब इस कार्य के लिए उन्हें भारत सबसे उपयुक्त देश दिखलायी दिया। फलस्वरूप यहाँ से कच्चा माल सस्ते में जाने लगा और तैयार माल महंगे भाव में लोगों तक पहुंचने लगा, जिसकी प्रतिक्रिया में आगे चलकर 'स्वदेशी 'आन्दोलन' के नाम से विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार पर बल दिया गया। तीसरी घटना थी इंगलैंड में 'उपयोगितावादी आन्दोलन' का पनपना। इस आन्दोलन के नेताओं की मांग थी कि किसी भी कीमत पर लोगों की भलाई के लिए कार्य करना चाहिए। उनकी मांग थी कि सरकार को कानून बनाकर मानव कल्याण का प्रयास करना चाहिए। इस आन्दोलन का शुभ प्रभाव यह हुआ कि इधर भारत में तत्कालीन गवर्नर जनरल विलियम बैंटिक ने अनेक प्रकार के कानून बना कर भारतीय सामाजिक जीवन में सुधार लाने का प्रयास किया। उनमें से 1829 में उस द्वारा बनाया गया सती–प्रथा की समाप्ति का कानून उस युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है। इसी प्रकार उसने लोगों को ठगने वालों के विरुद्ध कड़ा निर्णय लेकर जनता को उनसे मुक्ति दिलायी तथा कन्या की हत्या और मनुष्य बलि को भी बन्द करवाया। ऐसा नहीं है कि यह सब कुछ विलियम बैंटिक नेल स्वयं ही कर दिया था। वस्तुतः उन दिनों इंगलैंड के उक्त उपयोगितावादी आन्दोलन के प्रभावस्वरूप समूचे विश्व में सुधारवादी आन्दोलन चले। भारत में भी राजा राममोहन राय जैसे राष्ट्रीय नेताओं ने इससे प्रभाव ग्रहण करके सुधारों के लिए सरकार पर जोर देना शुरू कर दिया था। विलियम बैंटिक के बाद लार्ड डलहौजी वह दूसरे महत्त्वपूर्ण गवर्नर जनरल हुए जिन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण सुधार किये। उन द्वारा किये गये सुधारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे भारत में रेल (1853), डाक व तार (1854)– सेवा का प्रारम्भ, उन्हीं के प्रयासों से भारत में पहली बार इन तीनों सेवाओं की योजना बनायी गयी तथा इन्हें क्रियान्वित रूप दिया गया। इनसे जहाँ उन्हें प्रशासन चलाने में सुविधा हुई, वहीं भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों के लिए भी यह सेवाएँ वरदान सिद्ध हुई। उल्लेखनीय है कि उक्त समस्त सुधारों के बावजूद भी अंग्रेजों का भारतीय लोगों के प्रति व्यवहार कोई बहुत अच्छा नहीं था। सरकारी नौकरियों में रंग–भेद के आधार पर व्यवहार किया जाता था। भारतीय लोगों को शिक्षित होने के बावजूद उच्च पदों से वंचित रखा जाता था। न्याय करते समय भी रंग–भेद आड़े आता था अनेक भारतीय शासक, जिनका अंग्रेजों ने राज्य छीन लिया था, अंग्रेजों से नफरत करते थे। इन सबके साथ–साथ देश के कट्टरपंथी लोग भी अंग्रेजों से नाराज थे उन्हें विश्वास हो चुका था कि अंग्रेज पश्चिमी शिक्षा पद्धति के नाम पर उनकी संस्कृति को समाप्त करने का प्रयास कर रहे हैं। इस प्रकार 1857 ई० तक भारत में अंग्रेजों ने जब अपने प्रशासन के सौ वर्ष पूरे किये तब तक उन द्वारा किये गये बहुत से सुधारों के बावजूद उनके विरुद्ध बहुत से ऐसे राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक कारण भी एकत्रित हो चुके थे, जिन्होंने भारतीय जनता को उनके विरुद्ध

संगठित होकर कार्यवाही के लिए विवश कर दिया था। अंग्रेजी शासन के इन सौ वर्षों के सन्दर्भ में डॉ० जार० सी० मजूमदार ने बहुत सुंदर शब्दों में टिप्पणी की है। उनके अनुसार, ''भारत में अंग्रेजी सत्ता की पहली शताब्दी ने वह मंच तैयार किया जिस पर उस दुखान्त नाटक के कुछ हिस्सों का अभ्यास भी किया जाता रहा जिसे उनकी सत्ता की सौवीं वर्षगांठ के अवसर पर खून और आँसुओं के बीच खेला जाता था।'' यहाँ पर हमारे लिए 1857 के महान् विद्रोह के कुछ महत्वपूर्ण कारणों पर भी एक दृष्टि डाल लेनी उचित रहेगी, क्योंकि इस विद्रोह के अवसर पर जिस प्रकार भारतीय लोगों ने अपनी भावनाओं का प्रदर्शन किया उसे देखते हुए इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास में इस वर्ष को परिवर्तन का वर्ष स्वीकार किया है।

1857 के विद्रोह के राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक कारण–1757 तथा 1764 के प्लासी और बक्सर के युद्धों के बाद अंग्रेजों का उत्साह इतना बढ़ गया कि उन्होंने उसके बाद युद्ध या कूटनीति जिस तरह भी संभव हुआ अपने राज्य का विस्तार करने की महत्त्वाकांक्षा पाल ली। परिणामस्वरूप उन्होंने अवध, हैदराबाद, मैसूर, कर्नाटक, नागपुर, भोपाल, इन्दौर, ग्वालियर, जयपुर, जोधपुर, सिन्ध तक अपना राज्य–विस्तार कर लिया। उनकी इस अन्यायपूर्ण साम्राज्यवादी नीति के विरुद्ध अनेक देशी राजाओं तथा जनता में नफरत की भावना बढ़ने लगी। इसमें डलहौजी की लैप्स नीति ने आग में घी का काम किया। इस नीति के अनुसार निःसंतान राजाओं से बच्चा गोद लेने का अधिकार छीन लिया गया तथा ऐसे राजाओं की मृत्यु के बाद उनके राज्य को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाया जाने लगा। इस प्रकार अंग्रेजों ने अनेक रियासतें हथिया लीं। इसी नीति के आधार पर अंग्रेजों ने पेशवा बाजी राव (दूसरे) के दत्तक पुत्र नाना साहिब की पेंशन बन्द कर दी, जिससे नाना साहिब भी अंग्रेजों के विरुद्ध हो गए। इसी प्रकार अंग्रेजों द्वारा अवध राज्य को बलात् अपने अधिकार में लेना, मुगल सम्राट का निरादर तथा असंख्य बेकार किये गये सैनिकों का रोष कुछ अन्य ऐसे कारण थे जिन्होंने 1857 के विद्रोह को जन्म देने में विशेष भूमिका निभायी। इसी क्रम में अंग्रेजों द्वारा भारतीय लोगों से दुर्व्यवहार, भारतीय लोगों को ऊँचे पदों पर नियुक्त न करना तथा उनकी दोषपूर्ण न्याय प्रणाली ने भी लोगों को उकसाया।

1.4 सामाजिक तथा धार्मिक कारण

सामाजिक तथा धार्मिक कारणों के अन्तर्गत अंग्रेजों की रंग–भेद की नीति, भारतीय जनता के सामाजिक कृत्यों में अनाधिकार हस्तक्षेप, ईसाई मत का प्रचार आदि कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण कारण थे, जिन्होंने विद्रोह की भावना को खूब हवा दी। बैंटिक तथा डलहौजी द्वारा बनाये गये सती–प्रथा, कन्या– हत्या, विधवा–विवाह, मनुष्य–बलि सम्बन्धी कानून कट्टरपंथी हिन्दुओं के गले से नीचे न उत्तर सके। उन्हें लगा कि अंग्रेजों ने ऐसा करके उनकी संस्कृति को चोट पहुँचाई है। फलतः ये लोग भी उनके विरुद्ध हो गये। अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार भी उनके लिए सहनीय नहीं था। इतना ही नहीं अंग्रेजी प्रशासकों द्वारा किये गये अनेक सुधार भी उनके विरुद्ध विद्रोह उत्पन्न करने में सहायक बने। रेल, डाक तार–सेवा ने देश के एक प्रान्त के लोगों को दूसरे प्रान्त के लोगों के निकट कर दिया। परिणामस्वरूप उनमें वैचारिक विनिमय के साथ–साथ अंग्रेजों की अन्यायपूर्ण तथा अत्याचारपूर्ण घटनाओं की सूचना का भी आदान–प्रदान होने लगा। जिससे सामान्य जनता में विद्रोह के लिए उपयुक्त मानसिकता की जमीन तैयार हुई। देश की आर्थिक स्थिति भी इस विद्रोह का मुख्य कारण बनी, क्योंकि देश का बहुत–सा धन व्यापार के नाम पर विदेश जा रहा था तथा यहाँ के लोगों की आर्थिक हालत कमजोर होती जा रही थी। अन्ततः इन समस्त कारणों को तत्कालीन घटनाओं ने विद्रोह में परिवर्तित कर दिया। भले ही यह विद्रोह अंग्रेजों द्वारा असफल बना दिया गया, परन्तु इस विद्रोह ने देश के लोगों की उन भावनाओं को अवश्य व्यक्त कर दिया, जो अंग्रेजों के प्रति नफरत और क्रोध का रूप धारण कर रही थीं। दूसरे, इस के माध्यम से देश के कोने–कोने तक लोगों की आजादी की इच्छा का संदेश प्रसारित हुआ, जिससे राष्ट्रीय स्तर पर स्वतन्त्रता आन्दोलन की भावना ने और भी तीव्रता से जन्म लिया तथा आगे चल कर इण्डियन नेशनल

कांग्रेस तथा अन्य क्रान्तिकारी संगठनों का जन्म हुआ। तीसरे, इसके द्वारा भारतीय लोगों के समक्ष उनकी वह खामियाँ भी उभर कर आई जिनके कारण उनकी विद्रोह की आवाज दबा दी गई थी। परिणामस्वरूप इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना के पश्चात् उन्होंने स्वयं को सामाजिक, धार्मिक क्षेत्रों में भी नये दृष्टिकोण व नये विचारों से सम्पन्न करने का प्रण लिया, जिसमें निस्संदेह नई शिक्षा प्रणाली बहुत सार्थक सिद्ध हुई। इस नई शिक्षा प्रणाली को यद्यपि अंग्रेजों ने अपनी जरूरत के लिए विकसित किया था, परन्तु अन्ततः यह भारतीय लोगों में नई सोच व नये दृष्टिकोण के विकास में सहायक सिद्ध हुई जिससे प्रभावित होकर भारतीय समाज में विभिन्न स्तरों पर अनेक नये आन्दोलनों का जन्म हुआ।

1.5 आधुनिक शिक्षा प्रणाली

जिस समय अंग्रेजों ने 1757 में भारत का राजनीतिक मंच संभाला, उस समय तक हमारी शिक्षा नीति पुराने ढर्रे पर ही चल रही थी। उसका क्षेत्र अधिकतर धर्म–शिक्षा, व्याकरण, काव्यशास्त्र, आयुर्विज्ञान आदि तक ही सीमित था। शिक्षा का माध्यम मुख्यतः संस्कृत तथा फारसी भाषाएँ ही थीं। मुसलमान अपने मदरसों में मुख्यतः परम्परागत ध ार्मिक शिक्षा देते थे। ऐसे में जब अंग्रेजों ने प्रशासन का कार्यभार सँभाला तो उन्हें सबसे पहले तो जनता तथा शासनाधि ाकारियों के साथ विचार–विनिमय की समस्या का सामना करना पड़ा। फलतः उनके पास दो ही रास्ते थे––एक या तो वे यहाँ की भाषाएं सीखते या दूसरे वे अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाकर यहाँ की जनता को अंग्रेजी सिखाते। परन्तु यहाँ के लोगों की शिक्षा के क्षेत्र में वस्तुस्थिति यह थी कि वे अंग्रेजी तो दूर भारतीय भाषाओं का भी पूरा ज्ञान नहीं रखते थे। अधिकांश जनता के लिए शिक्षा का कोई महत्त्व नहीं था। स्त्री की स्थिति तो इस क्षेत्र में और भी दयनीय थी। उसे शिक्षा प्राप्ति के अधिकार ही नहीं थे। अतः भारत की बहुसंख्यक जनता अनपढ़ तथा वैचारिक दृष्टि से पिछड़ी हुई थी। इसीलिए अंग्रेजों ने यहाँ की भाषाओं की शिक्षा को जारी रखते हुए साथ–साथ अंग्रेजी शिक्षा देना उचित समझा। हाँ, उसमें कानून, विज्ञान आदि के नये विषय भी जोड़ दिये ताकि लोगों को प्रशासनिक कार्यों में भी कुशल बनाया जा सके। इसीलिए 1722 ई० में वार्न हेस्टिंग्स ने कलकत्ता में एक मदरसा खोला, जहाँ फारसी के माध्यम से भाषा व्याकरण के साथ–साथ कानून, गणित आदि विषय भी पढ़ाये जाने लगे। 1785 में सर विलियम जोन्स ने ऐतिहासिक शोध को प्रोत्साहन देने के लिए 'बंगाल ऐशियाटिक सोसायटी' की स्थापना की। 1791 में डंकन ने बनारस संस्कृत कॉलेज की स्थापना की जिसका उद्देश्य हिन्दुओं को कानून, साहित्य तथा धर्म की शिक्षा देकर योरोपियन जजों के सहायक तैयार करने का था अंग्रेजी प्रशासन के साथ–साथ उस समय पश्चिमी शिक्षा को प्रचलित करने का कार्य ईसाई मिशनरियों तथा कुछ भारतीय सुधारकों ने भी किया। भारतीय लोगों के लिए बाईबल का 26 स्थानीय भाषाओं में अनुवाद करवाया तथा पश्चिमी शिक्षा व ईसाई धर्म का प्रचार किया। इस प्रकार उक्त ईसाई मिशनरियों ने परोक्षतः भारतीय भाषाओं में गद्य के विकास में अपना सहयोग दिया। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अर्थात् 1801 में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की गई, जहाँ पर देश की भाषाओं में पाठ्य पुस्तकें, कोश ग्रन्थ तथा व्याकरण आदि तैयार करवाये गये, जिससे गद्य को और भी प्रोत्साहन मिला। 1811 में भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड मिण्टो ने भारतीय लोगों को विज्ञान तथा साहित्य का ज्ञान देने सम्बन्धी अनेक सुझाव दिये, जिसके फलस्वरूप 1813 ई० में एक वार्टर द्वारा इस कार्य के लिये एक लाख रुपये की अनुदान राशि का भी प्रावध ान किया गया। इसका लाभ यह हुआ कि 1813–34 के बीच देश के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की गई, जहाँ अंग्रेजी के साथ–साथ पश्चिमी शिक्षा भी दी जाने लगी।

1.6 भारत में प्रेस का विकास

भारतीय जनमानस में आधुनिक विचारधारा के निर्माण में बहुत सा कार्य मुद्रण प्रणाली तथा अखवारों ने भी किया निस्संदेह यह भी अंग्रेजों की ही देन थी। ऐसा नहीं है कि अंग्रेजों से पूर्व भारत में मुद्रण–व्यवस्था या अखबार

नहीं थे। सन् 1557 में पुर्तगाली भारत में मुद्रण प्रणाली को ले आये थे और इसी प्रकार मुगलों के शासन काल में हाथ से लिखे हुए अखबार भी प्रचलित थे परन्तु यह दोनों ही सुविधाएँ बहुत संकीर्ण उद्देश्य के लिए प्रयोग में लाई जाती थीं। पुर्तगालियों ने तो प्रेस द्वारा केवल ईसाई धर्म के प्रचारार्थ ही साहित्य छापा जिससे सामान्य जनता प्रेस के लाभ से अनभिज्ञ ही रही। इसी तरह मुगलकाल के अखबार भी मुगल बादशाह तथा जमींदार लोग अपने व्यक्तिगत प्रयोग के लिए लिखवाते थे अतः सही मायनों में भारत में प्रेस के संस्थापक के रूप में 'हिक्की' नामक अंग्रेज को ही यह श्रेय दिया जाता है जिसने पहली बार 'बंगाल गजट' के नाम से एक साप्ताहिक अखबार निकालना शुरू किया। फिर इससे प्रेरित होकर 'कलकत्ता गजट तथा 'इण्डियन वर्ल्ड' नामक अखबार भी छपने लगे। यह तीनों अखबार अंग्रेजी में छपते थे तथा सम्पादक भी अंग्रेज ही थे। धीरे–धीरे भारत के बड़े शहरों बम्बई, मद्रास आदि में भी छापेखाने स्थापित हुए तथा वहाँ से 'बॉम्बे हैरल्ड', 'बॉम्बे कोरियर', 'मद्रास कोरियर', 'इण्डियन हैरल्ड तथा 'बीकली मद्रास गजट आदि अंग्रेजी अखबार छपने लगे। बीच–बीच में गवर्नर–जनरलों की व्यक्तिगत नीतियों के अनुरूप कभी प्रेस पर अंकुश लगते रहे तो कभी उसे स्वतन्त्रता की छूट मिलती रही। इस दृष्टि से वैल्जली, मिण्टो, एडमण्ज़ तथा एमहर्स्ट प्रेस के प्रति जहाँ अपनी दमनकारी नीतियों के लिए आलोचना के पात्र हैं, वहीं लार्ड हेस्टिंग्स, विलियम बैंटिक तथा चार्ल्स मेटकाफ प्रेस की स्वतंत्रता की हिमायत करने के कारण भारतीय इतिहास में विशेष आदर के पात्र हैं। इनमें से लार्ड हेस्टिंग्स के समय में उनकी उदारवादी नीति का सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि राजा राममोहन राय ने राष्ट्रवादी प्रेस की स्थापना की। उन्होंने 1821 में बंगला भाषा में 'संवाद कौमुदी' तथा 1822 में फारसी भाषा में भीरत–उल–अखबार' प्रारम्भ किये। यह भारत के पहले अखबार थे, जिनमें राष्ट्रवादी तथा लोकतांत्रिक प्रगतिशील विचार प्रस्तुत किये गये। इन अखबारों में मुख्यतः सामाजिक सुधारों का प्रचार किया गया तथा धार्मिक व दार्शनिक समस्याओं पर आलोचनात्मक बहस की गई। लगभग इसी समय बम्बई में फरदून जी मुर्जवान ने 'बाम्बे समाचार' नामक गुजराती अखबार चलाया, जो काफी चर्चित रहा। हिन्दी का पहला अखबार 'उदंत मार्तंड' भी इन्हीं दिनों (1826) पं० जुगल किशोर ने कानपुर से निकाला। आगे चलकर विलियम बैटिक के समय में उनकी उदारवादी नीति के फलस्वरूप 1830 ई० में राजा राममोहन राय, द्वारका नाथ टैगोर तथा प्रसन्ना कुमार टैगोर के प्रयासों से बंगला में 'बंगदूत' नामक अखबार शुरू हुआ। इस प्रकार भले ही प्रेस की स्वतंत्रता पर समय–समय पर प्रशासकों की नीतियाँ बदलती रहीं, परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि इस प्रेस ने ही समूचे भारत के लोगों को एक सूत्र में पिरोया तथा उनमें नये युग के प्रति चेतना जाग्रत की। इसका प्रमाण इसी से मिलता है कि 1870 तक भारत में अखबारों की कुल संख्या 644 तक पहुँच चुकी थी, जिनमें से 400 भारतीय भाषाओं में निकाले जा रहे थे।

1.7 भारतीय पुनर्जागरण

आधुनिक काल की पूर्व पीठिका के रूप में भारत में अंग्रेजी सत्ता की स्थापना तथा उसकी प्रतिक्रिया में भारतीय समाज में जन–चेतना की प्रक्रिया की उपर्युक्त लम्बी भूमिका में एक बात निश्चित रूप से स्वीकार की जा सकती है कि 1757 से लेकर 1857 तक की एक शताब्दी की कालावधि में पूरे भारत का राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिवेश निरन्तर संक्रमण के दौर से गुजर रहा था। राजनीति में जहाँ अंग्रेजों का शक्ति–विस्तार भारतीय राजाओं और यहाँ की जनता में रोष का कारण बन रहा था, वहीं पश्चात्य शिक्षा–पद्धति नये विचार और नये दृष्टिकोण के विकास का आकार बन रही थी तथा तीसरी ओर ईसाई मिशनरियों द्वारा ईसाई मत का प्रचार भारत के धार्मिक जागरण का कारण बनता जा रहा था और इन सबसे प्रेरित होकर भारतीय संस्कृति का पुनरुत्थान युग आधुनिकता को ओढ़ने के लिए तत्पर हो गया था निस्संदेह इस एक शताब्दी में पाश्चात्य शिक्षा–पद्धति, प्रेस, रेल, डाक, तार आदि की सुविधाएँ इतनी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई कि उन्होंने भारतीय जनता को एक सूत्र में पिरोने, परस्पर विचार–विनिमय

करने तथा एक–दूसरे से प्रेरित प्रभावित होने के अनन्त मार्ग प्रशस्त कर दिये। छुआ–छूत, बाल–विवाह, सती–प्रथा, पर्दा प्रथा, विधवा–विवाह–निषेध वैवाहिक नियमों की कठोरता, वेश्यावृत्ति, स्त्री–दमन, पण्डों–पुरोहितों का आडम्बर तथा अनन्त अन्य विश्वासों की सूची शामिल की जा सकती है भारतीय समाज में प्रगतिशील चिन्तकों के लिए आँख की किरकिरी बनने लगे थे और इसीलिए वे विभिन्न आंदोलनों के रूप में इन्हें दूर करने के लिए लालायित होने लगे। राजा राममोहन राय को इस दिशा में नवयुग का अग्रदूत माना जाता है। उन्होंने ईसाई मत के प्रचार की प्रतिक्रिया में ब्रह्म समाज की स्थापना (1828 ई०) द्वारा हिन्दी समाज के पुनरुत्थान का प्रथम प्रयास किया। ईसाई धर्म को लेकर उनकी प्रतिक्रिया का ढंग बिलकुल नवीन था। उन्होंने उस कर्म का विरोध करने के बदले हिन्दू धर्म के नव–संस्कार का प्रयास किया तथा उसकी जितनी भी आडम्बरपूर्ण परम्पराएँ थीं, उनका विरोध किया। ब्रह्मसमाज का उद्देश्य मूर्तिपूजा का विरोध, जातिभेद आदि कुरीतियों का निवारण, सती–प्रथा का विरोध तथा एकेश्वरवाद की स्थापना था। राजा राममोहन राय के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हिन्दू समाज में प्रचलित सत्ती–प्रथा के विरुद्ध 1829 में अंग्रेज सरकार ने कानून पास कर दिया। उन्होंने बहु–विवाह प्रथा का भी खण्डन किया तथा विधवा–विवाह को उचित ठहराया। शिक्षा के क्षेत्र में राजा राममोहन राय ने निःसंकोच भाव से अंग्रेजी शिक्षा–पद्धति का समर्थन किया। राजनीतिक क्षेत्र में उन्होंने इंग्लैंड की सरकार को भारत के राज्य–प्रबन्ध में सुधार के लिये बार–बार अपील की तथा जाति, रंग, धर्म आदि के भेद–भाव का विरोध किया। इसीलिए इतिहास में उन्हें आधुनिक काल में भारतीय 'राजनीति का पिता' माना जाता है।

19वीं शताब्दी के समाजिक–धार्मिक आंदोलनों में आर्य समाज की स्थापना (1875 ई०) सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है। ब्रह्म समाज का पूर्वी भारत में जन्म हुआ था जबकि आर्य समाज में पश्चिमी भारत (बम्बई) में जन्म लिया। दो वर्ष उपरान्त 1877 ई० में लाहौर में भी इसकी स्थापना की गई जो बाद में इसका मुख्य केन्द्र बन गया। इस संस्था के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दू धर्म की दुर्दशा देखकर पाखण्ड के विरोध में इसकी स्थापना की थी इसीलिए इस संस्था ने सामाजिक–धार्मिक क्षेत्र में अपने अनेक क्रांतिकारी विचार प्रस्तुत किये, जिनमें वेदान्त के अद्वैतवादी विचारों की पुनर्स्थापना का प्रयास किया गया, एकेश्वरवाद पर बल देकर मूर्तिपूजा का विरोध किया गया, अवतारवाद का खण्डन किया गया, पुनर्जन्म में विश्वास व्यक्त किया गया, बाल–विवाह को अनुचित ठहराया गया, विशेष परिस्थितियों में विधवा–विवाह को शास्त्र सम्मत बतलाया गया, समाज में ऊँच–नीच के भेद को आर्यधर्म के विरुद्ध घोषित किया गया, स्त्री–शिक्षा पर बल दिया गया तथा मरणोपरान्त श्राद्ध कर्म को निरर्थक बताया गया उन दिनों इस्लाम के प्रभाव से हिन्दू धर्म अधिक संकीर्ण हो गया था। अतः जहाँ एक ओर हिन्दू धर्म में विधर्मी का प्रवेश वर्जित था, वहीं दूसरी ओर सामाजिक मर्यादाओं का अतिक्रमण करने वाले हिन्दू को विधर्मी कहकर जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था, जो निराश होकर दूसरे धर्म को अपना लेता था। स्वामी दयानन्द ने स्थिति की गम्भीरता को समझते हुए शुद्धिकरण संस्कार को महत्त्व दिया तथा 'अछूतोद्धार आंदोलन' चलाया। आर्य समाज ने शिक्षा के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। देश में अनेक स्कूल तथा कॉलेज खोले गये। कन्याओं के लिए भी अलग से विद्यालयों का विकास किया गया। गुरुकुलों की स्थापना की गई।

19वीं शताब्दी के सुधारवादी आंदोलनों की श्रृंखला में 'थियोसोफिकल सोसायटी' की स्थापना का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। यद्यपि इसकी स्थापना न्यूयार्क के रूसी महिला ब्लावस्की तथा कर्नल आलकार ने 1875 ई० में की थी, परन्तु भारत में भी इन्होंने मद्रास के निकट आड्यार से 1886 ई० में इस संस्था का केन्द्र खोला भारत में इस आंदोलन को सफल बनाने का श्रेय श्रीमती एनीबेसंट को है, जो जन्म से अंग्रेज किन्तु स्वेच्छा से भारतीय थीं थियोसोफिकल सोसायटी का उद्देश्य समस्त धर्मों की मूलभूत एकता, आध्यात्मिक जीवन को महत्त्व देना तथा

विश्वबन्धुत्व का विकास करना था। इस प्रकार इस संस्था का मूल दर्शन भारतीय धार्मिक परम्परा पर आधारित था। इस आंदोलन ने हिन्दू धर्म की प्राचीन रूढ़ियों, विश्वासों और कर्मकाण्डों का समर्थन किया। श्रीमती बेसंट ने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए वाराणसी में 'सेंट्रल हिन्दू स्कूल' की भी स्थापना की जो बाद में कॉलेज और अन्त में हिन्दू विश्वविद्यालय में परिवर्तित हुआ। इसी आंदोलन के कारण भारत में औद्योगिक प्रदर्शनियों का संगठन हुआ, स्वदेशी के प्रचार, अछूतोद्धार, मध्य निषेध तथा नारी–शिक्षा योजना को बल मिला।

1.8 निष्कर्ष

इस प्रकार हिन्दी का आधुनिक साहित्य, जिसके केन्द्र में आज निस्संदेह मनुष्य ही एकमात्र चिन्तन बिन्दु है, अपने परिवेश के प्रति भी पूर्णतः जागरूक है। समय–समय पर बदलती हुई परिस्थितियों में मनुष्य जीवन के बदले हुए रूपों को पकड़ने में वह अत्यधिक सजग रहा है। सच तो यह है कि वह परिवेश और मनुष्य के बीच के सम्बंध ा को बखूबी समझने लगा है। इसीलिए वह एक और यदि परिवेशगत अवमूल्यन पर चोट करता है तो दूसरी ओर उस परिवेश के सन्दर्भ में मनुष्य–चिन्ता से व्याकुल भी दिखलायी देता है। इसे हम आगे साहित्यिक रचनाओं तथा उनकी प्रवृत्तियों की चर्चा करते हुए सहज ही अनुभव करेंगे।

1.9 कठिन शब्द

आधुनिक, पुनर्जागरण, पृष्ठभूमि, श्रृंखला, महत्त्वाकांक्षा, औद्योगीकरण, शोध, समीचीन, शताब्दी, क्रान्तिकारी।

1.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 आधुनिक काल की पृष्ठभूमि पर सविस्तार प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न 2 आधुनिक काल की परिस्थितियों पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न 3 आधुनिक काल को पुर्नजागरण कहना समीचीन है, सिद्ध करें।

_____

_____

_____

_____

1.11 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहासः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
2. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहासः डॉ. रामकुमार वर्मा।
3. साहित्यिक निबन्ध : गणपतिचन्द्र गुप्त।
4. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकासः रामस्वरूप चतुर्वेदी।
5. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहासः बच्चन सिंह।

.....

नवजागरण एवं समाज सुधार

2.0 रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 नवोत्थान

2.3.1 रामकृष्ण मिशन

2.3.2 आर्य समाज

2.3.3 थियोसोफिकल सोसाइटी

2.4.4 प्रार्थना समाज

2.4 सारांश

2.5 कठिन शब्द

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.7 पठनीय पुस्तकें

2.1 उद्देश्य

- प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप
- भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के कारण ईसाई धर्म का प्रचार–प्रसार होने लगा, जान पायेंगे।
- भारत में आधुनिकीकरण का आरम्भ किस समय हुआ, जान सकेंगे।
- भारतीय सभ्यता का यही जागरण भारत का नवोत्थान था, जान पायेंगे।

2.2 प्रस्तावना

भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के कारण ईसाई धर्म का प्रचार–प्रसार होने लगा साथ में अर्थनीति में कुछ बुनियादी परिवर्तन आए। इसके फलस्वरूप धर्म, समाज, आचार–विचार की जड़ता को एक धक्का लगा। ईसाई धर्म की प्रगति के कारण हिन्दुओं और मुसलमानों की धर्म–संस्कृति की सुरक्षा का प्रश्न भी उठ खड़ा हुआ। ऐसी स्थिति में धार्मिक सामाजिक परिष्कार की ओर लोगों का उन्मुख होना स्वाभाविक हो गया। भारतीय धर्म और संस्कृति के संबंध में अंग्रेज प्रशासकों और ईसाई मिशनरियों के आक्रमणकारी रूख के कारण धर्म सुधारकों को धारदार मार्ग से गुजरना आवश्यक हो गया। एक ओर उन्हें विदेशियों के समक्ष अपनी धर्म–संस्कृति की वकालत करनी पड़ी और दूसरी ओर देशवासियों के सामने धर्म का नया अर्थापन करना पड़ा। इस प्रकार हर बात को तर्क–संगत बनाने की दिशा में जो पहल की गई वह बहुत फलदायक सिद्ध हुई। इस संक्रान्तिकाल में धर्म का पल्ला पकड़ना बहुत जरुरी था, क्योंकि धर्म अनिवार्यतः समाज सुधार के साथ जुड़ा हुआ था। अतः समस्या का रूप बदल गया और जो अपने आप में पूर्ण समझा जाता था, उसकी जाँच अब सामाजिकता की कसौटी पर की जाने लगी।

2.3 नवोत्थान

भारत में जो आधुनिकीकरण आरम्भ हुआ था वह पुराने धार्मिक संस्कारों, रीति–नीतियों, संघटनों के मेल में नहीं था। नए यथार्थ और पुराने संस्कारों के बीच नए सामंजस्य की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। इस सामंजस्य के साथ ही नए भारतीय समाज के निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ होती है। भारतीय सभ्यता का यही जागरण भारत का नवोत्थान था। भारतीय नवोत्थान का एक प्रधान लक्षण अतीत की गहराईयों का अनुसन्धान था। जिसने भारतीय जनता में स्वाधीनता की चेतना विकसित की। इसमें नवोत्थान के उन्नायक चिन्तकों और समाज सुधारकों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारतीय पुनजार्गरण के मूल में व्यक्ति–स्वातंत्र्य का विशेष महत्त्व है। इस नवोत्थानपरक चेतना का सम्बन्ध मध्यकालीन लोकजागरण चेतना से अवश्य रहा है। मध्यकाल में नए परिवेश के फलस्वरूप जाति प्रथा, छुआछूत आदि के विरोध में भक्ति आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था।

मुसलमानों के प्रतिष्ठित हो जाने पर इस आन्दोलन के माध्यम से सामंजस्य का प्रयास दिखाई पड़ा किन्तु नए युग में नए प्रकार के सामंजस्य की जरूरत पड़ी। मध्यकाल का सामंजस्य भावनामूलक था। अब भावना से काम नहीं चल सकता था। अब भावना के स्थान पर तर्क, विवेक और बुद्धि से काम लेना अनिवार्य हो गया था।

भारतीय नवोत्थान का नेतृत्व राजा राममोहन राय ने किया। 1828 ई. में इन्होंने ब्रह्ममाज की स्थापना की। राजा राममोहन राय संस्कृत और अंग्रेजी भाषा और साहित्य के विद्वान थे। साथ ही अरबी, फारसी, फ्रेंच, लैटिन, ग्रीक भाषाओं के भी ज्ञाता थे। इन्होंने युवा कार्यकर्ताओं और सांस्कृतिक कार्यकर्त्ताओं को रुढ़िवादी मूर्तिवादी एवं अंधविश्वासपूर्ण हिन्दू धर्म के विरुद्ध संगठित किया। इन्होंने धर्मशास्त्रों और पुराणों के तर्क जुटाते हुए एकेश्वरवाद के मत का महत्व स्थापित किया। अंधश्रद्धा और परंपरावादिता को उन्होंने खतरनाक बताया। जाति प्रथा को अमानवीय और राष्ट्रीयता विरोधी कहा। उनकी विचारधारा में तर्क की प्रधानता थी – जो लाक, हयूम और रूसो के मेल में थी। इन्होंने सती प्रथा तथा बाल–विवाह जैसी सामाजिक रूढ़ियों पर भी प्रहार किया साथ ही विधवा विवाह और स्त्री–पुरूष के समानाधिकार का भी समर्थन किया।

उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार–प्रसार का महत्व समझा। राजा राममोहन राय ऐसे पहले सुधारवादी नेता थे जो भारतीय जनता को दुनिया के ज्ञान–विज्ञान से जोड़कर जड़ मुक्त करना चाहते थे। 1825 ई0 में वेदांत कॉलेज

की स्थापना की जिसमें भारतीय तथा पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा दी जाती थी। 1817 ई0 में कलकत्ता में अंग्रेजी स्कूल की स्थापना की। 1820 ई में उन्होंने 'संवाद कौमुदी' नामक पत्रिका प्रकाशित की जिसकी अन्तर्वस्तु पूरी तरह से नवोत्थान मूलक थी। धर्म और समाज सुधारपरक मुद्दों के साथ–साथ वे भारतीय जनता की मुक्ति से जुड़े आर्थिक और राजनीतिक प्रश्नों के प्रति भी जागरूक थे। उन्होंने जमींदारी प्रथा की किसान विरोधी कारवाईयों की निन्दा की। कंपनी सरकार के आर्थिक एकाधिकार का भी विरोध किया। केशवचन्द्र सेन, महर्षि देवेन्द्रनाथ, रानाडे आदि समाज चिंतकों ने राजा राममोहन राय के सुधारवादी कार्यक्रमों को आगे बढ़ाया। अंग्रेज परस्त बौद्धिकों का एक बड़ा तबका था जिसे भारतीय समाज भ्रष्ट और पतनोन्मुख दिखाई देता था। राजा राममोहन राय सरीखे चिंतकों ने भारतीय संस्कृति की उस प्राणवत्ता का पुर्नाविष्कार किया जिससे स्वाधीनता आन्दोलन को बल मिला।

2.3. रामकृष्ण मिशन :– नवोत्थान चेतना की महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में रामकृष्ण परमहंस दिखाई देते हैं। उन्होंने मनुष्य में ईश्वर को देखा और उसकी सेवा को ईश्वर को पाने का सबसे आसान रास्ता बताया। स्वामी विवेकानन्द उनके योग्य शिष्य थे। विवेकानन्द ने उन्हें बाहर से भक्त और भीतर से ज्ञानी कहा है। रामकृष्ण परमहंस के देहावसान के बाद विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। ये मूलतः कर्म की संस्कृति पर जोर देने वाले युवा सन्यासी थे। यद्यपि उनका मुख्य प्रयोजन रामकृष्ण परमंहस के उपदेशों का प्रचार करना था फिर भी सामाजिक कार्यों में उनकी गहरी रूचि थी। मानवीय समता के विश्वासी होने के कारण उन्होंने जाति, सम्प्रदाय, छुआछूत आदि का विरोध किया। गरीबों के प्रति उनकी सहानुभूति प्रगाढ़ थी। आध्यात्मिक स्तर पर मनुष्य–मनुष्य की समता, एकता, बंधुत्व और स्वतंत्रता की ओर भी उन्होंने हमारा ध्यान आकृष्ट किया। सन् 1893 ई० में स्वामी जी शिकागों में विश्व धर्म महासम्मेलन में सम्मिलित हुए। इस सम्मेलन में स्वामीजी ने जिस ज्ञान, उदारता, विवेक का परिचय दिया उससे वहाँ के लोग उनके भक्त हो गए। उनका विश्वास था कि भारत के आध्यात्मिक विचारों और आदर्शों का प्रचार यदि पश्चिम के उन्नत देशों में किया जाए तो इससे वहाँ के लोग अवश्य प्रभावित होंगे। विवेकानन्द ने हीनता की भावना से ग्रस्त देश को यह अनुभव कराया कि इस देश की संस्कृति अब भी अपनी श्रेष्ठता में अद्वितीय है। इस देश का आध्यात्मिक चिन्तन असमानान्तर है।

2.3.2आर्य समाज :– स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सन् 1875 ई0 में आर्य समाज की स्थापना की। स्वामी दयानन्द असाधारण व्यक्ति थे। वे संस्कृत के चोटी के विद्वान, और अत्यन्त मेधावी थे। उनका व्यक्तित्व अतिशय दृढ़ और असमझौतावादी था। उनके विचारों में कहीं भी अस्पष्टता और रहस्यवादिता नहीं मिलेगी। बंगाल की तरह उत्तर भारत में भी नवोन्मेष की ऐसी लहर अपेक्षित थी। वे हिन्दू धर्म का मानवीय और गतिशील पुनर्निर्माण चाहते थे। उन्होंने आर्य समाज के लिए वेदों को आधार माना। वे वेदों को शाश्वत और अपौरुषेय मानते थे। उन्होंने अंधविश्वास, जाति–भेद और मूर्तिपूजा आदि का विरोध किया। वे ईश्वर और मनुष्य के बीच पुरोहित वर्चस्व की आलोचना कर रहे थे। छुआछूत पर भी इस आन्दोलन ने प्रबल प्रहार किए। अपने हिन्दूवादी दृष्टिकोण के बावजूद आर्यसमाज ने राष्ट्रीय विचारधारा को आगे बढ़ाने में आश्चर्यजनक योगदान दिया। कुछ समय तक ब्रिटिश सरकार इसे दबाने के लिए भरपूर चेष्टा करती रही। 'दी टाइम्स' की ओर से 1907 के बाद होने वाले राष्ट्रीय आन्दोलनों की जाँच करने के लिए एक प्रतिनिधि ा आया था। उसने आर्यसमाज को ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध सबसे अधिक खतरनाक तत्व बतलाया। वैदिक धर्म के व्याख्याता होने के बावजूद वे पाश्चात्य शिक्षा के समर्थक थे। समाज की भौतिक उन्नति के लिए वे पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा आवश्यक समझते थे। 1886 ई0 में दयानन्द एंग्लो–वैदिक कालेज की स्थापना की। इनके अनुयायियों ने स्वामी दयानन्द की प्रेरणा से डी. ए. वी. स्कूल कॉलेजों की स्थापना की। उत्तर भारत के आचार–विचार, रहन–सहन, साहित्य–संस्कृति पर आर्य समाज का गहरा प्रभाव पड़ा।

23.3 थियोसोफिकल सोसाइटी :– थियोसोफिकल सोसाइटी का नाम विदेशी है और यह संस्था भी विदेशों में जमी थी। किन्तु इस संस्था की एक सभामंत्री श्रीमती एनी बेसेंट ने हिन्दुत्व के नवोत्थान एवं भारतीय राष्ट्रीयता विकास के लिए इतना कुछ किया कि इसकी सेवा भुलाई नहीं जा सकती। इसकी स्थापना 1875 ई0 में एच.पी. ब्लावस्की और कर्नल आलकार ने की। बाद में ऐनी बेसंट संस्था से जुड़ी और भारत आई। बेसेंट ने समस्त देश का दौरा किया और हिन्दू धर्म के आध्यात्मिक पक्ष में ओजस्वी भाषण दिए। हिन्दू धर्म को वे विश्व के धर्मों में सबसे प्राचीन ही नहीं, सबसे श्रेष्ठ भी मानती थी। एनी बेसेंट ने भारत की राजनीति में भी भाग लिया। तिलक जी के द्वारा चलाए हुए होम रूल आन्दोलन का पक्ष उन्होंने बड़े ही जोर से लिया। थियोसोफिकल में उन्होंने अपने आदर्शों को मूर्त रूप देने के लिए शिक्षण संस्थाएँ भी खोलीं, बनारस का सेंट्रल हिन्दू कालेज इस तरह का कालेज था। इस आन्दोलन के कारण उदारता और समन्वयवादी दृष्टि का विकास हुआ। थियोसोफिस्ट लोगों की संख्या तो नगण्य रही, किन्तु उनका साथ देने वाले लोग बहुधा ऊँचे विचारक, चिन्तक और साहित्यकार थे।

2.34 प्रार्थना समाज :– सन् 1867 में केशवचन्द्र सेन के प्रभाव से प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। इसके प्रमुख उन्नायक महादेव गोविन्द रानाडे थे। वे उन्नीसवीं शताब्दी के चोटी के बुद्धिजीवि, विधिवेता और मेधावी व्यक्ति थे। वे चालीस वर्षों तक सामाजिक रुढ़ियों और अंधविश्वासों के विरुद्ध संघर्ष करते रहे। वे जाति–पाँति के विरूद्ध और अन्तर्जातीय विवाह के पक्षधर थे। स्त्री शिक्षा पर उन्होंने बराबर बल दिया, धार्मिक और सामाजिक समस्याओं पर तर्कपूर्ण ढंग से विचार किया। मध्यकालीन मराठा संतों के प्रति उनकी गहरी आस्था थी। वे ईश्वर को सार्वभौम और स्रष्टा मानते थे। वे अतीत मोह को भविष्योन्मुखता में बाधक समझते थे। वे संकीर्ण विचारधारा को कभी प्राश्रय नहीं देते थे। वे प्रगति एवं विकास के विश्वासी थे।

भारतीय मुसलमानों में पुनरूत्थान की चेतना के सूत्र तो राजा राममोहन राय जैसे एकेश्वरवादी चिन्तकों में थे किन्तु वे उनसे सीधे संबद्ध नहीं हुए। भारत में राजभक्त मुसलमानों के नेता सर सैयद अहमद खाँ हुए। वे पश्चिमी शिक्षा और चिंतन के आलोक में अपने समाज के धार्मिक, सामाजिक अन्तर्विरोधों को समझ रहे थे। इस्लाम को उन्होंने आधुनिक ज्ञान से जोड़ना चाहा तथा शिक्षा को इसका सबसे बेहतर माध्यम माना।

सन् 1875 में उनके द्वारा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। इस विश्वविद्यालय को वे धार्मिक एकता के केन्द्र के रूप में विकसित करना चाहते थे। वे पर्दे के विरोधी और स्त्री–शिक्षा के जबर्दस्त समर्थक थे। स्त्री शिक्षा में कुरान की बाधा नहीं मानते थे। मुसलमानों की उन्नति के उन्हें दो उपाय दिखाई पड़े। एक तो यह कि मुस्लिम जनता में अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी शासन के प्रति जो विरोध का भाव है, वह बिल्कुल दूर कर दिया जाए। दूसरा, अंग्रेजी शासन के मन में मुसलमानों पर जगी हुई शंका निर्मूल कर दी जाए। उनके व्यक्तित्व में भारतीय का असली रंग बना था। वे मुस्लिम समाज को प्रगतिशील राष्ट्र की धारा से जोड़ना चाहते थे। हिन्दु समाज में जागरण आने लगा था किन्तु अभी भी दलित समाज शोषण की चक्की में पिस रहा था। शोषण से दलित समाज को बाहर निकालने का कार्य महात्मा ज्योति बा फुले ने किया। उन्होंने महसूस किया कि अस्पृश्यता, जाति व्यवस्था, उच्च वर्गीय हिन्दुओं द्वारा किया जाने वाला भेदभाव शूद्र लोगों को आगे नहीं बढ़ने दे रहा। इसलिए उन्होंने दलितों और शूद्र जातियों को संगठित एवं शिक्षित करने का दृढ़ संकल्प लिया। उन्होंने 1848 ई० में पूना में शूद्रों और निम्न जाति की स्त्रियों के लिए देश का पहला दलित स्कूल खोला। 1851 ई० को क्रमशः दूसरा व तीसरा दलित स्कूल खोला गया। महात्मा फुले ने 23 सितंबर 1873 ई० को पूना में 'सत्य शोधक समाज' की स्थापना की। सन् 1876 में महात्मा फुले पूना नगरपालिका के सदस्य बने तथा सन् 1882 में गठित 'हंटर शिक्षा आयोग' को दलितों में व्यापक शिक्षा का प्रचार–प्रसार के लिए स्मृति पत्र देने वाले वे पहले भारतीय थे।

इन समाज चिंतकों के अतिरिक्त ईसाई मिशनरियों द्वारा खोले गए छापेखानों, स्कूलों–संस्थाओं का भी नवोत्थान में अपना विशेष योगदान रहा है।

सन् 1800 ई0 में कलकत्ते में ही फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई। प्रारम्भ में अवश्य इसका जोर ब्रिटिश परस्त बौद्धिकों के उत्पादन पर था किन्तु कालान्तर में अपने प्रकाशन और शिक्षण संबंधी कार्यकलापों के द्वारा यह साहित्य, संस्कृति और दर्शन के अध्ययन और चिन्तन के आधार बने।

2.4 सारांश

भारत यूरोप के साथ आने वाले धर्म से नहीं डरा, बल्कि अधिक भय उसे यूरोप के विज्ञान को देखकर हुआ था। उसकी बुद्धिवादिता, साहस और कर्मठता से हुआ अतएव, भारत में नवोत्थान का जो आन्दोलन उठा उसका लक्ष्य अपने धर्म, अपनी परम्परा और अपने विश्वासों का त्याग नहीं, प्रत्युत यूरोप की विशिष्टता के साथ उसका सामंजस्य बिठाना था। परम्परावादी और धर्म सुधारक दोनों ही अतीत के गौरव को जागृत करने में सफल हुए। इन्होंने विस्मृति के गर्भ में विलीन भारतीय साहित्य, कला, ज्ञान–विज्ञान, दर्शन, वास्तुकला आदि का पुर्नोद्धार किया। इसके फलस्वरूप संसार में भारत का गौरव बढ़ा, राष्ट्रीयता का प्रचार और सामाजिक सुधार हुआ। भारतीयों को आत्म सम्मान का बोध हुआ और बराबरी के स्तर पर पश्चिम का सामना करने तथा स्वतंत्रता की माँग करने का आत्मविश्वास प्राप्त हुआ।

2.4 कठिन शब्द

1 कर्मठता 2 बुद्धिवादिता 3 अन्तर्विरोध 4 पुर्नोद्धार 5 परम्परा

6 विशिष्टता 7 जागृत 8 अनुयायी 9 आध्यात्मिक 0.विशिष्टता

2.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न – नवोत्थान के उन्नायक चिन्तकों एवं समाज सुधारकों पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – रामकृष्ण मिशन पर लेख लिखिए।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – समाज में आर्य समाज की क्या भूमिका रही है ? प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – थियोसोफिकल सोसाइटी पर लेख लिखिए।

_____

_____

_____

_____

2.6 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेन्द्र
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामसजन पाण्डे
4. आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ – नामवर सिंह
5. आधुनिक हिन्दी साहित्य – विकास के विविध आयाम – पुष्पपाल सिंह
6. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका – लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
7. हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी – नंद दुलारे बाजपेयी
8. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. बच्चन सिंह

.....

आधुनिक काल से पूर्व गद्य की स्थिति

3.0 रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी गद्य की स्थिति

3.3.1 राजस्थानी गद्य

3.3.2 मैथिली गद्य

3.3.3 ब्रज–भाषा–गद्य

3.3.3.1 मौलिक ग्रन्थ

3.3.3.2 टीका साहित्य

3.3.3.3 अनूदित ग्रन्थ

3.4 खडी बोली

3.5 कठिन शब्द

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.7 पठनीय पुस्तकें

3.1 उद्देश्य

– आधुनिक काल से पूर्व गद्य की स्थिति को समझना।

– आधुनिक काल से पूर्व गद्य की स्थिति समझते हुए भाषा का परिचय प्राप्त करना।

– गद्य के उद्देश्य को समझना।

3.2 प्रस्तावना

आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी में गद्य साहित्य इतनी न्यून मात्रा तथा अविकसित दशा में मिलता है कि वह प्रायः नगण्य सा समझा जाता है। पूर्ववर्ती गुणों में हिन्दी गद्य के अविकसित रहने का क्या कारण है, इस प्रश्न पर विचार तो अनेक विद्वानों ने किया है, किन्तु कोई सन्तोषजनक समाधान अभी तक उपलब्ध नहीं हो पाया। कुछ विद्वान् मानते हैं कि प्रत्येक भाषा के साहित्य का आरम्भ ही पद्य से होता है, अतः हिन्दी में भी ऐसा होना स्वाभाविक है। कुछ विचारकों के मतानुसार संस्कृत में पद्य का ही महत्व था तथा परवर्ती भारतीय भाषाओं ने भी संस्कृत के इसी आदर्श का पालन किया, अतः हिन्दी में भी गद्य का विकास नहीं हो सका। हमारे विचार से ये दोनों ही धारणाएँ भ्रामक हैं। यह कोई सर्वमान्य सिद्धान्त नहीं है कि प्रत्येक साहित्य का आरम्भ पद्य से ही हो। यदि थोड़ी देर के लिये इसे स्वीकार भी कर लिया जाय, तो इसके अनुसार हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक काल में भी गद्य का अभाव रहना चाहिए था, मध्यकाल पर यह लागू नहीं होता । इसी प्रकार यह मानना भी ठीक नहीं है कि संस्कृत में 'काव्य' संज्ञा का प्रयोग गद्य और पद्य दोनों के लिए होता था तथा गद्य को न केवल काव्य का उत्कृष्ट रूप माना जाता था, अपितु इसी को कवियों की कसौटी भी समझा जाता था। दूसरे, संस्कृत में अनेक रूपों–नाटक, कथा, आख्यायिका आदि की अत्यन्त समृद्ध एवं सुविकसित परम्परा थी । अतः हिन्दी के प्रारम्भिक युगों में गद्य का विकास न होने के पीछे 'संस्कृत के आदर्शों का पालन करना नहीं, अपितु उन्हें त्याग देना ही कारण है। वस्तुतः हिन्दी से पूर्व अपभ्रंश में ही संस्कृत की गद्य परम्परा बहिष्कृत एवं लुप्त हो चुकी थी। जिन काव्य रूपों– कथा, आख्यायिका, चरित आदि में संस्कृत के साहित्यकारों ने गद्य का प्रयोग किया था, उन्हीं में अपभ्रंश के कवियों द्वारा पद्य प्रयुक्त हुआ है।

यहाँ प्रश्न है कि संस्कृत की गद्य परम्परा परवर्ती भाषाओं में विकसित क्यों न हो पायी ? इसके उत्तर में हमारा निवेदन है कि जब किसी युग विशेष में जीवन का दृष्टिकोण बौद्धिकतापरक यथार्थवादी, वस्तुवादी एवं व्यावहारिक अधिक होता हैं, तो उसमें गद्य को अधिक प्रोत्साहन मिलता है, जबकि इसके विपरीत जीवन में भावुकता, तर्कशून्यता, आध्यात्मिकता एवं काल्पनिकता की प्रतिष्ठा होने पर उसमें अभिव्यक्ति पद्य का माध्यम अपनाती है। ईसा की सातवीं–आठवीं शती से लेकर अठारहवीं शती तक के समय को भारतीय इतिहास की दृष्टि से मध्यकालीन युग कहा जाता है, जिसमें धीरे–धीरे बौद्धिकता, तार्किकता, यथार्थवादिता आदि के स्थान पर क्रमशः भावुकता, अन्ध–विश्वास, काल्पनिकता की प्रतिष्ठा हो गई। अतः ऐसी स्थिति में साहित्यकारों का भी पद्य की ओर उन्मुख हो जाना स्वाभाविक ही था। आगे चलकर जब पुनः मुद्रण–यंत्र के प्रचलन, शिक्षण संस्थाओं की स्थापना, धार्मिक सामाजिक एवं बौद्धिक आन्दोलनों के उत्थान तथा पत्र–पत्रिकाओं के प्रचार के कारण जीवन में ज्यों–ज्यों बौद्धिकता, ज्ञान, तर्क एवं चिन्तन की प्रतिष्ठा हुई, त्यों–त्यों गद्य साहित्य का भी विकास होता गया। उन्नीसवीं शताब्दी के पश्चात् तो हिन्दी में गद्य साहित्य की इतनी उन्नति हुई कि कुछ इतिहासकार हिन्दी– साहित्य के आधुनिक काल को 'गद्य–काव्य तक की संज्ञा देते हैं। अस्तु हमारे विचार से आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी गद्य के अभाव का सबसे बड़ा कारण विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के कारण हमारे जीवन में बौद्धिकता के स्थान पर रागात्मकता, दार्शनिकता के स्थान पर भक्ति भावना एवं यथार्थवादिता के स्थान पर काल्पनिकता की प्रतिष्ठा हो जाना ही है; अन्य कारण गौण हैं।

3.3 आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी गद्य की स्थिति

जैसा कि पीछे कहा गया है, आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी गद्य प्रायः अविकसित रहा, किन्तु इसका यह भी तात्पर्य नहीं है कि उसका सर्वथा अभाव रहा है। वस्तुतः ऐसा नहीं है। पूर्ववर्ती युग के हिन्दी गद्य को भाषा की दृष्टि से मुख्यतः चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

(1) राजस्थानी गद्य

(2) मैथिली गद्य

(3) ब्रज भाषा का गद्य और

(4) खड़ी बोली का गद्य।

इनका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है–

3.3.1 राजस्थानी गद्य– राजस्थानी की प्राचीनतम उपलब्ध गद्य–रचनाएँ 10 वीं शताब्दी की हैं, जिनमें रोड़ा कवि की रचना राउलवेल (चम्पू) भी है। यह एक शिलांकित कृति है। यह गद्य–पद्य मिश्रित चंपूकाव्य की प्राचीनतम हिन्दी कृति है। इसकी रचना 'राउल' नायिका के नख–शिख वर्णन के प्रसंग में हुई है। आरम्भ में 'राउल' के सौन्दर्य का वर्णन पद्य में किया गया है और फिर गद्य का प्रयोग किया गया है। इसकी भाषा में हिन्दी की सात बोलियों के शब्द मिलते हैं, जिनमें राजस्थानी प्रधान है। कवि ने गद्य में भी आलंकारिक भाषा का कितनी सफलता से प्रयोग किया है, इसका एक उदहारण निम्नलिखित है– 'एहु गौड़ तुहुं एकु को पनु अउर वर ...को... तइं या बालइ। जगुणु मालवीय देसुहि आवुतु आम्बदेउ जाउं (जानूं) आपणा हथिआरहु भूलइ।' 'आराधना' (1273 ई०), 'अतिचार' (1283 ई०) 'बालशिक्षा टीका (1279 ई०), नवकार व्याख्यान टीका' (1301 ई०), 'सर्वतीर्थ नमस्कार स्तवन (1302 ई०), 'अतिचार' (इस शीर्षक की दूसरी रचना, 1312 ई०), उल्लेखनीय हैं। इनकी भाषा की प्राचीनता के कारण इन्हें अपभ्रंश की रचनाएँ मान लेने की भी भ्रान्ति हुई है। इधर डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के निर्देशन में लिखित शोध–प्रबन्ध में हरिमोहन श्रीवास्तव ने भी इन्हें हिन्दी गद्य साहित्य में ही स्थान दिया है।

भक्तिकालीन गद्य रचनाओं में उल्लेखनीय हैं– 'तत्व–विचार प्रकरण' (14 वीं शती), ', शडावश्यक बालावबोध' (1354 ई०), 'पृथ्वीचन्द्र चरित्र' (1421 ई०), एवं 'धनपाल कथा' (15 वीं शती), 'पोगच्छ गुर्वावली' (1425 ई०), 'अचलदास खीची री वचनिका' (1428 ई० गद्य–पद्य), उल्लेखनीय हैं; जिनका रचना–काल चौदहवीं शती माना गया है। 'तत्व– विचार' में जैन धर्म के सिद्धान्तों का निरूपण हुआ है।

'धनपाल कथा' में 'तिलक मंजरी' के रचयिता प्रसिद्ध जैन कवि धनपाल के जीवन की एक कथा प्रस्तुत की गई। इसकी भाषा–शैली का नमूना द्रष्टव्य है–' उज्जयनी नाम नगरी। तहिंठे भोजदेव राजा। तीयहिं तणइ पंचम सयह पंडित माहि मुख्यु धनपाल नामि पंडितु। तोयहिं तणइ धरि अन्यदा कदाचित साधु विरहण निमित्तु पइठ़ा...।'

'षडावश्यक बालावबोध' में जो तरुणप्रभ सूरि–कृत अनूदित व्याख्यात्मक ग्रंथ है, जैन धर्म संबंधी शिक्षात्मक कथाएं हैं। 'तपोगच्छ गुर्वावली' में तपोगच्छीय जैन आचार्यों की नामावली और उनका वर्णन है। इसका गद्य यत्रतत्र अलंकृत और सानुप्रास है।

इसी प्रकार पन्द्रहवीं शती की एक अन्य रचना 'पृथ्वी चन्द्र चरित' का भी विवरण श्री अमरचन्द नाइटा ने 'राजस्थान भारती' के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इस रचना का दूसरा नाम 'वागविलास' भी है इसकी रचना माणिक्य चन्द्रसूरि ने 1421 ई० में की थी। इसकी शैली अलंकारपूर्ण है।

राजस्थानी गद्य साहित्य की एक सुदृढ़ परम्परा ऐतिहासिक एवं काल्पनिक गद्य कथाओं के रूप में मिलती है। इन कथाओं के तीन प्रकार माने जाते हैं– (1) वचनिका (2) ख्यात (3) बात। वचनिका में प्रायः ऐतिहासिक घटनाएँ ली जाती हैं तथा इसकी शैली की एक विशेषता यह है कि इसमें गद्य का प्रयोग तुकान्त रूप में होता है। ख्यात में भी किसी घटना का वर्णन है, किन्तु इसमें तुकान्त का नियम नहीं होता। बात में प्रायः काल्पनिक रोचक वृत्तांत प्रस्तुत किये जाते हैं। तीनों प्रकार की रचनाएँ राजस्थानी में बहुत बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं, जिनमें शिव दास द्वारा रचित 'अचलदास खीची री वचनिका' (1425 ई०) खिरिया जगा रचित 'वचनिका राठौर रतनसिंह जी री (1658 ई०). नयनसिंह–रचित 'मुहणौत नैण सी री ख्यात' (1665 ई०) आदि विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं। इनमें अपने आश्रयदाता नरेशों के पराक्रम का वर्णन आलंकारिक शैली में हुआ है। इसके अतिरिक्त राजस्थानी में बात साहित्य (वार्ता या कहानी) का भी एक विशाल भंडार है, जो अभी तक अप्रकाशित है।

उल्लिखित रचनाओं के अतिरिक्त भक्तिकाल की अन्य राजस्थानी रचनाएं हैं: 'आदिनाथ 'चरित्र', 'कालिकाचार्यकथा' (रचनाकार अज्ञात), 'श्रावकव्रतादि अतिचार (रचनाकार अज्ञात), 'वस्तुपाल तेजपाल रास' (हीरानंद सूरि–कृत गद्य–पद्यमय रचना), 'सिद्धांतसारोद्वार' (कमलमयंककृत खंडन–मंडनात्मक रचना, जिसमें मूर्तिपूजा का समर्थन है), सोमप्रभ सूरि–कृत 'औक्तिक', मेरुसुंदरोपाध्याय–रचित 'प्रश्नोत्तर ग्रंथ', किसी अज्ञात नाम लेखक का 'सम्यक्त्व के दस भेद', 'कल्याण मंदिर स्तोत्र' की अवचूरि, 'दशवैकालिक सूत्र' की अवचूरि (ये दोनों व्याख्यात्मक हैं), 'गणितसार' 1392 ई०, राजकीर्ति मिश्र की संस्कृत रचना का श्रीधर–कृत अनुवाद; मापों, बाटों और सिक्कों की चर्चा, 'मुग्धावबोध मौक्तिक टीका (1393 ई०, एक संस्कृत–व्याकरण की टीका), 'कोकशास्त्र बालावबोध' कोकशास्त्रविषयक रचना की टीका', 'गणितपंचविंशतिका बालावबोध' (शंभूदास मंत्री), 'उक्तिसंग्रह भाष्य' (तिलक पंडित, व्याकरण) ।

मारवाड़ी की भक्तिकालीन स्वतंत्र (मौलिक) गद्यमय और गद्य–पद्यमय रचनाओं में वंशावली, पट्टावली, गुर्वावली और पीढ़ियावली नामक रचनाएं भी उल्लेखनीय हैं। ये रचनाएं इतिहास के अनेक सूत्र प्रस्तुत करती हैं। सोलहवीं शती की 'राठोड़ां री वंशावली' प्रसिद्ध है। जैन गुर्वावलियां और जैन पट्टावलियां भी प्राप्त हैं। ख्यातों की अपेक्षा वंशावलियां, पट्टावलियां और पीढ़ियावलियां, प्राचीनतर हैं। वंशावलियों में राजाओं राज्य–लाभ और जन्म–मरण के संवतों का निर्देश तथा महत्त्वपूर्ण घटनाओं की चर्चा है।

रीतिकालीन राजस्थानी–गद्य इस समय के ब्रजभाषा– गद्य से भी अधिक समृद्ध है। 'वातों', 'वार्ता' शीर्षक कथात्मक रचनाओं और ख्यातों के अतिरिक्त इस समय के राजस्थानी (मारवाड़ी)–गद्य की प्रमुख विधाएं हैं– 'वचनिका (गद्य–पद्य में कथा और वर्णन), वर्णन, दवावैत (कथा और वर्णन), सलोका पत्र, वंशावली, पट्टावली, विगत । पिछले चार प्रायः अललित और ख्यात है समान इतिहासविषयक हैं। शेष विधाएं ललित हैं और उनमें (वातों, वार्ताओं को छोड़कर) शुद्ध गद्य के साथ सानुप्रास (तुकमम) गद्य भी प्रचुरतः प्रयुक्त है। कुछ वातों और वर्ताओं में भी तुकमय गद्य का दर्शन होता है। इस समय के अमौलिक ख्या– अनुवाद–रूप–करी में बालावबोध, टीका, टिप्पण और 'भाषा' प्रमुख हैं। इनके विषय – इतिहास, धर्म, अध्यात्म कोकशास्त्र, शकुन, सामुद्रिक, ज्योतिष, वैद्यक, यंत्र, तंत्र, नीति, गणित।

राजस्थानी का वात–साहित्य प्रसिद्ध है। यह आधुनिक कहानी के निकट की कथात्मक विद्या है। गद्यात्मक बातों के साथ पद्यमय और गद्य–पद्यमय वातें भी प्राप्त होती प्रसिद्ध 'वाते' हैं' रतना हमीर से वात', 'राव अमरसिंह से बात', 'सिद्धराज जयसिंह द दे री वाते, 'राव रिणमल री बात','राजा भोज खापरा चोर री बात', 'बीरबल से वात'।

राजस्थानी गद्य रचनाओं की भाषा के सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने की है कि उसमें विभिन्न रचनाओं में काल–भेद एवं स्थान–भेद के अनुसार विभिन्न प्रकार की भाषाएँ प्रयुक्त हुई हैं, विषय–वस्तु की दृष्टि से राजस्थानी गद्य साहित्य का क्षेत्र पर्याप्त व्यापक है। उसमें धर्म, राजनीति, लोकवार्ता आदि अनेक विषयों का समावेश हुआ है।

3.3.2 मैथिली गद्य – राजस्थानी की भाँति, मैथिली भाषा में भी गद्य साहित्य की दीर्घ परम्परा उपलब्ध होती है। इसका प्राचीनतम उपलब्ध गद्य ग्रन्थ ज्योतिरीश्वर ठाकुर कृत 'वर्ण रत्नाकर' है, जिसका रचना–काल 1324 ई० माना जाता है। मैथिली हिंदी में रचित गद्य की यह पुस्तक डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी और पंड़ित बबुआ मिश्र के संपादन में बंगाल एशियाटिक सोसाइटी से प्रकाशित हो चुकी है। यह सात अध्यायों में विभक्त है, जिन्हें क्रमशः 'नगर–वर्णन', 'नायक–वर्णन 'आस्थान वर्णन', 'ऋतु वर्णन', 'प्रयानक वर्णन', 'भट्टादि वर्णन', और 'कला वर्णन' नाम दिया गया है। यह वस्तुतः भारतीय काव्य–शास्त्र, कला–शास्त्र एवं ज्ञान–विज्ञान का कोश है, जिसमें विभिन्न विषयों का वर्णन काव्य शास्त्रीय दृष्टि से किया गया है। इसकी भाषा में कवित्व, आलंकारिकता तथा शब्दों की तत्समता की प्रवृत्तियां मिलती हैं। इसकी शैली का एक नमूना है– 'निशाक नाइकाक शंखवलय अइसन आकाश, दीक्षित कमंडल अइसन, तारकाक, सार्थवाह अइसन, श्रृंगार समुद्र कल्लोल अइसन, कुमुद वनक प्राण अइसन, पश्चिमाचलक तिलक अइसन, अन्धकारक मुक्ति क्षेत्र अइसन, कन्दर्प नरेन्द्रक यश अइसन ।'

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि इसमें लेखक ने जहाँ व्याकरण का ढाँचा तत्कालीन लोक–भाषा से लिया है, वहाँ उसने विभिन्न संज्ञाओं एवं विशेषणों के रूप में संस्कृत के तत्सम शब्दों को अपनाया है। संस्कृत के तत्सम पदों के प्रयोग की प्रवृत्ति अपभ्रंश से परे हटने के लक्ष्य की सूचक है। आगे चलकर आधुनिक भाषाओं में भी अपभ्रंश के तद्भव रूपों के स्थान पर संस्कृत के तत्सम पद ही अधिक प्रयुक्त हुए हैं, अतः इस दृष्टि से भी 'वर्ण– रत्नाकर' आधुनिक भाषाओं के नवोत्थान की प्रवृत्ति का सूचक है।

आगे चलकर प्रसिद्ध गीतिकार विद्यापति ठाकुर (1360–1448 ई.) ने अपनी दो गद्य रचनाओं 'कीर्तिलता' एवं 'कीर्ति पताका' द्वारा ज्योतिरीश्वर की गद्य परम्परा को आगे बढ़ाया 'कीर्तिलता गद्य–पद्य मिश्रित ऐतिहासिक काव्य है, जिसमें कवि ने अपने – आश्रयदाता कीर्तिसिंह के युद्ध की एक घटना का विवरण आकर्षक शैली में प्रस्तुत किया है। पूरी रचना चार पल्लवों में विभक्त है, तथा कथा का आरम्भ गणेश, शिव, सरस्वती की वंदना, दुर्जन–सज्जन चर्चा, आत्म दैन्य के प्रदर्शन आदि के अनन्तर भृंगी–भृंग के संवाद में होता है। गद्य और पद्य का प्रयोग साथ– साथ हुआ है तथा पद्य–भाग में दोहा, छपद, गीतिका आदि छन्द प्रयुक्त हुए हैं।

विद्यापति की दूसरी रचना 'कीर्ति पताका' खंडित एवं अशुद्ध रूप में उपलब्ध है। इसमें महाराजा शिवसिंह की वीरता का आख्यान करते हुए युद्ध की घटना वर्णित की गई है उसकी शैली का एक नमूना इस प्रकार है। 'राअन्हि करे परसे नासंचरे राउतन्हि करे अस्त्र व्यापारे हुल्तारहि राउला कुलित हरिण यूथ न्याय परकट पपट वानस्ति रनरहि अपाच्छोसव्वपाति साहे पतिगाहि..... ।' वस्तुतः इसकी शैली 'कीर्तिलता' से बहुत भिन्न तथा दोषपूर्ण होती है; अतः इसके वर्तमान रूप की प्रामाणिकता संदिग्ध है।

विद्यापति के अनन्तर मैथिली गद्य की कोई महत्वपूर्ण साहित्यिक रचना उपलब्ध नहीं होती। मिथिला, नेपाल एवं आसाम में रचित नाटकों में अवश्य मैथिली गद्य का प्रयोग मिलता है। विशेषतः आसाम के शंकर देव (1449–1559), माधव देव (1449– 1558) गोपाल देव, रामचरण ठाकुर प्रभृति ने अपने नाटकों में संवादों के रूप में प्रायः गद्य का ही प्रयोग किया। यहाँ उदहारण प्रस्तुत है। हा! हा! हमारा स्वामी परम सुकुमार नवीन वयस। बज्राधिक कठिन महेशक धनु, इहात गुण दिते स्वामी जानो नहि पारय हा! हा! पिता की दारुण कर्म्म कयालि।'

इन नाटकों में प्रयुक्त गद्य में भी पूर्वोक्त रचनाओं की ही भाँति संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। मैथिली प्रदेश दीर्घकाल तक संस्कृत के अध्ययन का केन्द्र रहा है, संभवतः इसी से मैथिली गद्य में तत्सम शब्दों के प्रयोग की बहुलता है। इसके अतिरिक्त अलंकृति एवं विद्वत्ता–प्रदर्शन के निमित्त भी संस्कृत शब्दावली का

प्रयोग सम्भव है। पर इससे गद्य की अभिव्यंजना शक्ति एवं कलात्मकता में अभिवृद्धि हुई है, अतः मैथिली गद्यकारों की यह प्रवृत्ति प्रशंसनीय है।

3.3.3 ब्रज–भाषा–गद्य– ब्रजभाषा के गद्य साहित्य को मुख्यतः तीन वर्गों में विभक्तः किया जा सकता है (क) मौलिक ग्रन्थ (ख) टीकाओं के रूप में लिखित रचनाएँ और (ग) अनूदित ग्रन्थ इन तीनों वर्गों का परिचय निम्नलिखित है।

3.3.3.1 मौलिक ग्रन्थ– ब्रजभाषा–गद्य–परंपरा में सर्वप्रथम गोरखपंथी ग्रंथों का उल्लेख किया जाता है। परंतु गोरखपंथ के संबद्ध 'गोरखसार', 'शिष्टपुराण', 'गोरक्षोपनिषद', 'महादेवगोरषगुष्टि' आदि ग्रंथ जिस रूप में प्राप्त हैं, गोरखनाथरचित अथवा तेरहवीं–चौदहवीं शती के नहीं हैं, बल्कि काफी परवर्ती हैं। इन गोरख रचनाओं की सत्रहवीं शती से पूर्व की प्रतियां प्राप्त नहीं हैं। प्राप्त प्रतियों की भाषा में प्राचीन शब्द के साथ परवर्ती मध्यकालीन भाषा–प्रवृत्तियां (अर्वाचीन रूप और प्रयोग) पर्याप्त हैं।' अतः इसे गोरखकृत अथवा तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी का मानना कठिन है। गोरखनाथ के नाम से प्रसिद्ध रचनाओं में कुछ उनके संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद और कुछ उनके अनुयायियों द्वारा उनके सिद्धांतों के अनुसार निर्मित प्रतीत होती हैं।

ब्रज भाषा गद्य के विकास में सर्वाधिक योग देने का श्रेय पुष्टि सम्प्रदाय के भक्त– लेखकों को है, जिन्होंने अपने सम्प्रदाय के विभिन्न व्यक्तियों को लेकर विपुल गद्य साहित्य की सृष्टि की। पुष्टि सम्प्रदाय के विभिन्न आचार्यो एवं भक्तों द्वारा प्रस्तुत गद्य साहित्य की एक सूची मात्र यहाँ प्रस्तुत है–

(1) गोस्वामी विट्ठलनाथ (1515–1595 ई०) द्वारा रचित ग्रन्थ–श्रृंगार रस– 'मंडन', 'यमुनाष्टक', 'नवरत्न सटीक' आदि।

(2) चतुर्भुजदास द्वारा रचित 'शटऋतु वार्ता' ।

(3) गोकुलनाथ (1551 –1640 ई.) द्वारा रचित 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता'' 'श्री गोसाईनी और दामोदरदास जी का संवाद, 'श्री गुसाईजी की 'वनयात्रा', 'नित्यं सेवा प्रकार', 'चौरासी बैठक चरित्र', 'अट्ठाइस बैठक चरित्र', 'उत्सव भावना', 'रहस्य भावना', 'चरण–चिन्ह भावना', 'भावना', 'भाव– सिन्धु' 'भावना वचनामृत' आदि।

(4) गोस्वामी हरिराय (1590–1663 ई.) द्वारा रचित ग्रन्थ श्री आचार्य महाप्रभु की द्वादस 'निज वार्ता', श्री आचार्य महाप्रभु के सेवक 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'गोसाईं जी के स्वरूप के चिन्तन का भाव, 'कृष्णावतार स्वरूप, 'सातों स्वरूपों की भावना', 'भाव बरसोत्सव', 'द्वादस निकुंज की भावना', 'सात स्वरूप की भावना', 'छप्पन भोग की भावना' आदि।

(5) गोविन्ददास ब्राह्मण कृत 'वार्ता' ।

(6) ब्रज भूषण (17वीं शती) कृत ग्रंथ 'नित्य–विनोद', 'नीति–विनोद', 'श्री तथा गुसाईं जी का चरित्र', 'श्री द्वारिकानायधीश' की प्राकट्य वार्ता आदि

(7) द्वारिकेश जी भावना वाले (19वीं शती) 'श्री नाथ जी आदि सात स्वरूपन की भावना' 'धनुमणि भावना', 'उत्सुक भावना', 'भाव भावना', 'भाव संग्रह' आदि।

(8) इस समय की प्रमुख ब्रजभाषा–गद्य रचनाएं हैं: ध्रुवदास कृत 'सिद्धांतविचार' (1595 ई० के आसपास की राधावल्लभ संप्रदाय की सिद्धांत–प्रतिपादक रचना), नाभादास कृत 'आष्टयाम' (1603), बैकुंठमणि शुक्ल कृत 'वैसाख महातम', 'अगहन महातम', (1623 ई० के आसपास की धार्मिक कथात्मक रचनाएं), गो. श्री विट्ठलनाथ और श्री

गोकुलनाथ के शिष्यों द्वारा लिखित 'वचनामृत', किसी अज्ञातनाम रचनाकार की 'सिंगार सुतुक' (पौराणिक कथात्मक रचना), 'शालिहोत्र' (रचनाकार अज्ञात, अश्वचिकित्साविषयक पुस्तक, 'नकुल पांडव' के नाम से प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथ के आधार पर राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा में लिखित)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायियों ने शताधिक गद्य रचनाएँ प्रस्तुत की हैं, जिनका विस्तृत विवरण देना यहाँ सम्भव नहीं। एक तो प्रारम्भिक रचनाओं में से अनेक के मूल लेखक कोई और हैं तथा वे प्रचारित किसी अन्य के नाम पर हैं। यथा, 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' तथा 'दो सौ वैष्णवन की वार्ता' को लिया जा सकता है, ये दोनों गोकुलनाथ जी के द्वारा रचित बताई जाती हैं, किन्तु दोनों की भाषा शैली में इतना अन्तर है कि उन्हें एक ही व्यक्ति द्वारा रचित नहीं माना जा सकता है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने अकाट्य तर्कों के आधार पर सिद्ध किया है कि 'दो सौ वैष्णवन की वार्ता' गोकुलनाथ द्वारा रचित नहीं हो सकती। उनके विचार से यह किसी परवर्ती व्यक्ति द्वारा सत्रहवीं शती या उसके बाद की रचित है। ऐसी स्थिति में इनके रचयिता एवं रचना काल दोनों संदिग्ध हो जाते हैं। किन्तु यह बात गोस्वामी विट्ठलनाथ एवं गोकुलनाथ की ही कुछ रचनाओं पर लागू होती है, परवर्ती रचनाओं पर नहीं। दूसरे इन रचनाओं में अपने सम्प्रदाय के आचार्यों एवं भक्तों का गुणगान करना, उसके सिद्धान्तों एवं विधि–विधानों पर प्रकाश डालना तथा भक्ति–भावना को पुष्ट करना ही रचयिताओं का लक्ष्य है, अतः इनमें साहित्यिकता या कलात्मकता के दर्शन नहीं होते। तीसरे, इनमें कथावाचकों की–सी शैली, 'जो 'सो' की आवृत्ति आदि के कारण भाषा का शैथिल्य आ गया है। फिर भी इनमें क्रमशः गद्यशैली का विकास अवश्य दृष्टिगोचर होता है। इस दृष्टि से विभिन्न शताब्दियों की रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है, यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत है–

(अ) 'जो गोपी जन के चरण विषै सेवक की दासी करि जो इनके प्रेमामृत में डूबि के इनके मंद हास्य ने जीते है। अमृत समूह ता करि निकुंज विषै शृंगार रस श्रेष्ठ रचना कीनी सो पूर्ण होत भई।'

–विट्ठलनाथ (16वीं शती) 'शृंगार रस मंडन',

(आ) 'बहुर श्री आचार्य जी महाप्रभुन ने श्री ठाकुरजी के पास भट्ट भाग्यो जो मेरे आगे दामोदर दास की देह न छूटे और श्री आचार्य जी महाप्रभु दामादोर दास सो कछु गोपा न रखते और श्री आचार्य जी महाप्रभु श्री भागवत अहर्निस देखत कथा कहते .....।' –गोकुलनाथ (17वीं शती) 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता',

(इ) 'तुलसीदास श्री गोकुल में आये तब भी गुसाई जी तो कहै सीताजी सहित श्री रामचन्द्र जी के दर्शन होय यह कृपा करो । तब ही रघुनाथ जी को ब्याह भयो हतो। सौ जानकी जी बहूजी पास ठाढ़े होत। तब आप आज्ञा दिये जो तुलसीदास को दर्शन दऊ।' –श्री द्वारिकेश भावना वाले (19वी शती)

वल्लभ–सम्प्रदाय के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों के कुछ भक्तों ने भी कतिपय गद्य या गद्य–पद्य मिश्रित रचनाएँ प्रस्तुत की है, जिनमें नाभादास (17वीं शती) का अध्याय', ललित किशोरी' और 'ललित मोहिनी' की 'श्री स्वामीजी महाराज की वचनिका', 'यशवन्तसिंह' की 'सिद्धान्त बोध' आदि उल्लेखनीय है 'अष्टयाम' में रामचन्द्रजी की दिनचर्या वर्णित है। इसकी भाषा पर्याप्त प्रवाहपूर्ण है जैसे–' तब श्री महाराज कुमार प्रथम वसिष्ठ महाराज के चरण छुई प्रनाम करते भए। फिर ऊपर वृद्धि समाज तिनको प्रनाम करते भए।'' ललित किशोरी और ललित मोहिनी (19वीं शती) निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इनके ग्रन्थ की शैली का एक नमूना द्रष्टव्य है। –'वस्तु को दृष्टान्त मलयागिरि को समस्त बने वाको पवन सो चंदन ह्वै जाय। वाको कछू इच्छा नाही। बाँस और अरंड सुगन्ध न होय।' महाराजा 'यशवन्तसिंह' ने अपने 'सिद्धान्त बोध' में ब्रह्म–ज्ञान पर विचार किया है।

वस्तुतः विभिन्न धर्म–सम्प्रदायों द्वारा प्रस्तुत इस गद्य–साहित्य का महत्व या तो तत्कालीन मनःस्थितियों एवं

परिस्थितियों के अध्ययन की दृष्टि से है या भाषा के नमूनों की दृष्टि से विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से इनका महत्व नगण्य है।

कुछ लेखकों ने काव्य–शास्त्र, छन्द–शास्त्र तथा अन्य शास्त्रीय विषयों पर विचार करने के उद्देश्य से भी ब्रजभाषा गद्यात्मक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। इनमें ये उल्लेखनीय है– बनारसीदास (17वीं शती) की 'बनारसी विलास' सुखदेव सिंह मिश्र (18वीं शती) का 'पिंगल ग्रंथ' बेनी कवि (1735 ई०) का टिकैतराय प्रकाश', प्रियादास 'सेवक–चरित्र (1779 ई०) लल्लूलाल कृत 'राजनीति' (1709 ई०) और 'माधो विलास' (1917), बख्शी सुमनसिंह का 'पिंगल काव्य–भूषण' (1922 ई०) आदि बनारसी जैन कवि के रूप में भी ख्यात हैं। इन्होंने 'बनारसी–विलास' में अलंकारों का विवेचन किया है। इनका एक–गद्य–ग्रन्थ और उपलब्ध है–'वचनिका की अनुमति' इसकी शैली विवेचनात्मक एवं गम्भीर है।

ब्रज भाषा–गद्य के अन्य मौलिक ग्रन्थों में व्यास का 'षकुन–विचार', वैश्णवदास का 'भक्त माल प्रसंग', मीनराज प्रधान का 'हरतालिका कथा', कवि महेष का 'हम्मीर रासो' आदि उल्लेखनीय हैं। ये सभी 18 वीं शती में रचित हैं तथा इनमें से अनेक गद्य–पद्य मिश्रित हैं।

3.3.3.2 टीका साहित्य – विभिन्न साहित्यिक, धार्मिक तथा अन्य प्रकार के ग्रन्थों की टीकाओं के रूप में लिखित गद्य–रचनाएँ ब्रज भाषा में बड़ी भारी संख्या में मिलती हैं। इनमें से प्रमुख रचनाओं की यहाँ नामावली मात्र प्रस्तुत की जाती है–– (1) 'शिक्षा ग्रन्थ की टीका', टीकाकार श्री गोपेश्वर (17 वीं शताब्दी ई.) । (2) 'हित चौरासी की टीका', प्रेमदास कृत। (3) 'भुवन दीपिका' सटीक; लेखक अज्ञात; 1694 ई०। (4) 'रस–रहस्य' सटीक; कुलपति मिश्र (17 वीं शती)। (5) भागवत की टीका; कृष्णदेव माथुर; 17वीं शती (6) 'बिहारी सतसई टीका; राधाकृष्ण चौब; 17वीं शती (7) 'भाषामृत'; भगवानदास 17वीं7–18 वीं शती) (8) 'कवि–प्रिया तिलक' और 'बिहारी सतसई' की टीका 'अमर–चन्द्रिका', सूरति मिश्र (18वीं शती (9) 'अलंकार रत्नाकर'; दलपतिराय तथा वंशीधर (10) 'हित चौरासी' तथा 'भक्तमाल' की टीकाएँ; प्रियदास (11) बिहारी सतसई' की टीका'; रघुनाथ।

टीकाकारों का लक्ष्य मूल विषय की व्याख्या करना मात्र था, किन्तु इसमें उन्हें प्रायः सफलता नहीं मिली है। अधिकांश की शैली अस्पष्ट, प्रवाह शून्य एवं शिथिल है।

3.3.3.3 अनूदित ग्रन्थ ब्रज भाषा गद्य में संस्कृत तथा अन्य भाषाओं से अनूदित ग्रन्थ भी बहुत बड़ी संख्या में उपलब्ध होते हैं। इनमें से प्रमुख ग्रन्थों का उल्लेख यहाँ अनुवादक एवं अनुवाद काल के सहित किया जाता है– (1) 'नासकेतु पुराण' नन्ददास, 1700 ई० (2) 'मार्कण्डेय पुराण', दामोदर दास 1658 ई० (3) भाषामृत (श्रीमद्भगवद् गीता का अनुवाद); भगवानदास, 1700 ई० (4) श्रीमद्भगवद् गीता का अनुवाद; आनन्द राय, 1705 ई० (5) 'बैताल पचीसी; सूरति मिश्र 1711 ई० (6) बीस उपनिषद् भाष्यों के अनुवाद; अनुवादक, अज्ञात 1720 ई० (7) 'हितोपदेश', देवीचन्द, 1740 ई० (8) 'दर्शनी निर्णय' (वेदान्त सम्बन्धी दर्शन) मनोहरदास निरंजनी 1756 ई०, (9) 'सिद्ध–सिद्धान्त–पद्धति; अनुवादक अज्ञात, 19वीं शती। इनके अतिरिक्त वैद्यक शास्त्र के तथा अन्य शास्त्रीय ग्रन्थों के भी कुछ अनुवाद मिलते हैं, जैसे– 'मानव– निदान' (चन्दसेन मिश्र 1912 ई०) 'ग्रन्थ संजीवन' (आलम, 17वीं शती), वैद्यक ग्रन्थ की भाषा' (अंतराम, 1757 ई०) आदि ।

इन अनुवाद ग्रंथों की भाषा–शैली पूर्वोक्त टीकाओं की अपेक्षा अधिक सशक्त एवं प्रवाहपूर्ण है; यथा– अहो विप्रनदि राजा जन्मेजय नामकेतु पुराण ही कृतारथ है जैसे कोई प्राणी एकाग्रचित्त दे करि सुरमें पढ़े जो पारगामी होय, जैसे राजा जन्मेजय पार होत भयो और सहस्र गऊ दिये के फल होय' ('नासकेतु पुराण' नंददास कृत)।

अस्तु, बज–भाषा में गद्य साहित्य की मात्रा पर्याप्त है तथा उसका विषय–क्षेत्र भी विविध है, किन्तु साहित्यिकता एवं कलात्मकता की दृष्टि से वह उच्च कोटि का नहीं है। उसकी रचना धार्मिक, दार्शनिक एवं शास्त्रीय ग्रन्थों के विचारों को समझने समझाने की दृष्टि से ही हुई है, लालित्य की प्रेरणा उसके मूल में प्रायः दृष्टिगोचर नहीं होती।

3.4 खडी बोली

रीतिकाल से पूर्व की खड़ीबोली – गद्य रचनाओं को (उत्तर की खड़ी बोली की और दक्खिनी की रचनाओं को) साहित्यिक (ललित) और असाहित्यिक (अललित) के भेद से दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। ललित गद्य' शीर्षक से कथा–कहानी के रूप में और अन्योक्ति–कथा के रूप में प्राप्त होता है। अललित गद्य धर्म, दर्शन, पौराणिक भूगोल और शकुन–इन विषयों पर उपलब्ध होता है। उत्तर भारत में खड़ीबोली में निर्मित गद्य–रचनाएं सत्रहवीं शताब्दी से प्रामाणिक रूप में प्राप्त होती है। गंग कवि द्वारा रचित बतायी जाने वाली 'चंद छंद बरनन की महिमा' की प्रामाणिकता संदिग्ध है। 'योगाभ्यास मुद्राटिप्पण', जिसे काशी नागरीप्रचारिणी सभा के खोज विभाग ने सिद्ध कुमरिपा (कुमुटीपा) – कृत प्राचीन खड़ीबोली–रचना घोषित किया है, परवर्ती रचना है। मूल संस्कृत की रचना सिद्ध कुमरिया द्वारा रचित प्राचीन रचना है, उसका टिप्पण बहुत परवर्ती है। इस टिप्पण में खड़ीबोली के शब्द न्यून हैं। 1623 ई० में जटमल द्वारा रचित 'गोरा बादल की कथा' को इस संदर्भ में सर्वप्रथम उल्लेख–योग्य रचना माना जा सकता है। यह गद्य और पद्य दोनों रूपों में मिलती है। बाबू श्यामसुंदरदास ने हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों के 1901 ई० के खोज–विवरण में एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता में सुरक्षित गद्य में लिखित प्रति का उल्लेख किया है, किंतु राजस्थान में इसकी जितनी हस्तलिखित प्रतियां मिली हैं, वे सभी पद्य में हैं। विद्वानों का अनुमान है कि गद्य–कृति पद्य रचना का रूपांतर है। मिश्रबंधुओं ने इसकी गद्यशैली में खड़ीबोली का प्राधान्य माना है तथा आचार्य शुक्ल के अनुसार इसकी भाषा 'राजस्थानीपन लिये खड़ीबोली' है।

रीतिकाल से पूर्व की चार अन्य महत्वपूर्ण रचनाएं हैं 'कुतुबषत' (प्रति 1613 ई०), 'भोगलु 'पुरान' (प्रति 1705 ई०), 'गेणेस गोसठ' (प्रति 1658 ई०), 'पोथी सधुषंडु' (1640 ई० के पूर्व)। प्रथम तीन रचनाएं जिस रूप में उपलब्ध है, सत्रहवीं शताब्दी से पूर्व की प्रतीत होती हैं। परंतु इनके समय के संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। 'नववोली छंद', 'नवभाषा', 'सकुनावली', 'महादेव गोरखगुष्टि', 'गोरक्षशतम टिप्पण'– इन पांच रचनाओं में भी (प्रथम दो में अन्य भाषाओं के साथ, शेष में अन्य भाषाओं से प्रभावित) खड़ीबोली का प्रयोग हुआ है। ये रचनाएं, और पीछे उल्लिखित 'भोगल पुरान' तथा 'गेणेस गोसठ' साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। धार्मिक, आध्यात्मिक चिंतन और भाषा के अध्ययन की दृष्टि से ही इनका कुछ महत्त्व माना जा सकता है। इन रचनाओं में खड़ीबोली का प्रयोग ब्रजभाषा और राजस्थानी अथवा पूर्वी हिंदी या पंजाबी के मिश्रण के साथ हुआ है। इनमें 'नबोली छंद', 'नवभाषा', 'सकुनावली'– इन तीन के संबंध में निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि ये रीतिकाल से पूर्व की हैं।

उल्लिखित रचनाओं में 'कुतुबषत' ('कुतुबुद्दीन से वात'– कथानात्मक वर्णनात्मक रचन) 'भोगलु पुरान' (भूगोल पुराण) तथा 'पोथी सचुपंड' (नानक की जीवनी और व्याख्या) में खड़ी बोली–शैली के शब्दरूप अपेक्षाकृत अधिक हैं। तत्कालीन जनभाषा के रूप की दृष्टि से 'कुतुबषत' अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें प्रयुक्त खड़ीबोली राजस्थानी तथा ब्रजभाषा से प्रभावित है।

रीतिकाल का खड़ीबोली– गद्य प्रायः मिश्रित भाषा में है। ब्रजभाषा के संपर्क से मुक्त शुद्ध खड़ीबोली– गद्य उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व नहीं मिलता। इस समय की अनेक रचनाओं पर ब्रजभाषा के साथ पूर्वी हिंदी, राजस्थानी अथवा पंजाबी का प्रभाव है। इस काल में भी ललित गद्य की अपेक्षा अललित गद्य (धर्म, दर्शन, चिकित्सा, ज्योतिष, इतिहास, भूगोल, सामुद्रिक, गणित आदि विषयों पर लिखित शुष्क गद्य) का ही प्राधान्य रहा। उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व की ब्रजभाषा, फारसी, पंजाबी आदि से प्रभावित खड़ीबोली– गद्य की महत्त्वपूर्ण मौलिक रचनाएं हैं– ''एकादशी–महिमा', 'सीधा रास्ता', 'फर्सनामा' (पोथी सलोनी की),', 'सकुनावली', 'हक़ीकत', 'नरसिंहदास गौड़ की दवावैत', 'जिनसुखसूरि मजलस' 'लखपत दवावैत', 'मंडोवर का वर्णन', 'विश्वातीतविलास नाटक', 'सुरासुर निर्णय' (मुंशी सदासुखराय) आदि।'

इनके अतिरिक्त अन्य उल्लेख योग्य रचनाएं हैं–'पोथी हरि जी' (सिक्ख गुरु हरि जी की पुस्तक), 'जनमसाध कबीर भगति जी की' (कबीर की जीवनी और उनकी वाणी की व्याख्या), 'विवेकसार' (अडुनशाह–कृत), 'जनम साषी गुरु नानक जी दी' (पैडा मोषाकृत), 'अशवार डेवड़ी का (राजा रणजीतसिंह के दरबार की गुप्त सूचनाएं) आदि। खड़ीबोली के विशिष्ट गद्यकार हैं– टोडरमल जैन, द्वीपचंद जैन, शाहजी महाराज, हरिजी, दयाल अनेमी, रामप्रसाद निरंजनी, दौलतराम जैन, टेकचंद जैन और मुंशी सदासुखराय निसार आदि।

रीतिकाल में निर्मित खड़ीबोली– गद्य अधिकांशतः टीकानुवादों के ही रूप में प्राप्त है। अठारहवीं शताब्दी के प्रमुख अनूदित ग्रंथ हैं 'भाषा उपनिषद्' (1719 ई०), रामप्रसाद निरंजनी; 'भाषा योगवासिष्ठ'' (1741 ई०), पंड़ित दौलतराम; पद्मपुराण का भाषा अनुवाद (1766 ई०), 'आदिपुराण वचनिका', 'मल्लीनाथ चरित्र वचनिका', 'सुदृष्टि तरंगिणी वचनिका' और 'हितोपदेश वचनिका'। 'योगवाशिष्ठ' में प्रयुक्त गद्य आचार्य शुक्ल के अनुसार सर्वाधिक परिमार्जित है। आचार्य शुक्ल ने रामप्रसाद निरंजनी को ही प्रथम प्रौढ़ गद्य लेखक माना है।

ब्रजभाषा–मिश्रित खड़ीबोली में अनेक टिप्पण टीकाएं भी प्राप्त हैं। इस प्रकार के प्राप्त टिप्पण हैं। 'गोरक्षशतम् टिप्पण' (इस पर पूर्वी हिंदी का भी प्रभाव है) तथा 'योगाभ्यास मुद्रा टिप्पण' (संस्कृतपरक भाषा)। सत्रहवीं शताब्दी– उत्तरार्ध और अठारहवीं शताब्दी की टीकाओं में उल्लेखनीय हैं–'प्रवचनसार टीका', 'पंचास्तिकाय टीका' (पांडेय हेमराज), 'विषापहरस्तोत्र टीका (अखयराज)', 'भर्तृहरि वैराग्यशतक टीका' (जिनसमुद्र सूरि) 'भाषामृत गीता टीका' (भगवानदास), 'अष्टावक्र गीता भाषा' (दयाल अनेमी), 'गीताभाषा' (दवाल अनेगी), 'जपु टीका' (आनंदघन) आदि। इन टीकाओं में प्रयुक्त भाषा ब्रजभाषा और यत्र–तत्र पंजाबी से प्रभावित है।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में फोर्ट विलियम कॉलेज में खड़ीबोली– गद्य में अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का निर्माण हुआ। इस कॉलेज से संबद्ध व्यक्तियों द्वारा लिखित ग्रंथ हैं 'नासिकेतोपाख्यान', 'रामचरित्र', 'प्रेमसागर', 'लालचंद्रिका टीका', 'भाषा क्रायदा', 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पच्चीसी', 'भक्तमाल टीका' और 'हातिमताई' का अनुवाद 'यजुर्वेद' तथा 'कठोपनिषद्' की नचिकेत–कथा पर आधृत सदल मिश्र कृत 'नासिकेतोपाख्यान' में पूर्वी प्रयोगों, ब्रजभाषा–रूपों, पंडिताऊपन और अनेक स्थलों पर असंतुलित शिथिल वाक्यों के होने पर भी खड़ीबोली– गद्य का पर्याप्त स्वच्छ सुष्ठु रूप है। 'रामचरित्र' भी सदल मिश्र की रचना है। यह 'अध्यात्मरामायण' का रूपांतर है। भाषा स्थिति इसमें 'नासिकेतोपाख्यान' के सम्मान है। शैली में त्वरा सरलता और स्पष्टता है।

3.5 कठिन शब्द

सन्तोषजनक, आख्यायिका, शिलांकित, तुकान्त, वंशावलियां, पट्टावलियां, निमित्त, शताधिक, शैथिल्य, एकाग्रचित्त

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 आधुनिक काल से पूर्व गद्य की स्थिति का विवेचन करें।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न 2 आदिकालीन हिन्दी गद्य पर विचार करें।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न 3 रीतिकालीन गद्य पर टिपण्णी करें।

_____

_____

_____

_____

3.7 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
2. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डॉ. रामकुमार वर्मा।
3. साहित्यिक निबन्ध : गणपतिचन्द्र गुप्त।
4. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास : रामस्वरूप चतुर्वेदी।
5. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास : बच्चन सिंह।

.....

गद्य के प्रारम्भिक उन्नायक

4.0 रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 गद्य के प्रारम्भिक उन्नायक

4.3.1 सदासुखलाल नियाज

4.3.2 इंशा अल्ला खाँ

4.3.3 लल्लू लाल

4.3.4 सदल मिश्र

4.3.5 राजा शिवप्रसाद

4.3.6 राजा लक्ष्मण सिंह

4.4 सारांश

4.5 कठिन शब्द

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.7 पठनीय पुस्तकें

4.1 उद्देश्य

– प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप जानेंगे
– गद्य के प्रारम्भिक उन्नायक ।
– गद्य के क्षेत्र में किन–किन उन्नायकों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

4.2 प्रस्तावना

दिल्ली पर मुसलमानों का शासन स्थापित हो जाने पर फारसी भाषा राजकार्य में व्यवहृत होती रही। हिन्दुओं की एक बहुत बड़ी संख्या मुसलमानी राजकार्य में नौकरी करती थी। इस सम्पर्क से दोनों जातियों के पारस्परिक विचार विनिमय की भाषा 'खड़ी बोली' बनी रही। इसके पश्चात् अंग्रेजी शासन की स्थापना के साथ शासक वर्ग को देश की किसी ऐसी भाषा को सीखने की आवश्यकता महसूस हुई जिसे देश के बहुत से निवासी बोलते हों। सौभाग्यवश हिन्दी खड़ी बोली देश की एक ऐसी भाषा थी जो कि शासक वर्ग एवं ईसाई धर्म प्रचारकों की आवश्यकता पूर्ति के लिए समर्थ थी। यह आश्चर्य की बात है कि हिन्दी खड़ी बोली गद्य साहित्य की भाषा न होते हुए भी आगामी साहित्य का माध्यम बन सकी।

4.3 गद्य के प्रारम्भिक उन्नायक

खड़ी बोली गद्य की सर्वप्रथम उल्लेखनीय रचना अकबर के दरबारी कवि गंग की 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' है। इसमें ब्रज मिश्रित खड़ी बोली का व्यवहार किया गया है। इस रचना का समय लगभग सन् 1570 ई० है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने पटियाला दरबार के कथावाचक रामप्रसाद निरंजनी के 'भाषा योग वशिष्ट' नामक ग्रन्थ की सूचना दी है। जिसकी भाषा को वह परिमार्जित खड़ी बोली कहते हैं। सन् 1761 में पं. दौलतराम ने रविषोणाश्रार्य कृत 'जैन पदम पुराण' का भाषानुवाद किया जोकि काफी त्रुटिपूर्ण है। दौलतराम बरूवा मध्यप्रदेश के रहने वाले थे। इनकी भाषा में प्रान्तीयता का पुट तो यत्र–तत्र देखा जा सकता है। 1830–40 के बीच किसी अज्ञात राजस्थानी लेखक की पुस्तक 'मंडोवर' उपलब्ध होती है जिसमें उर्दू, फारसी तथा राजस्थानी के शब्दों की बहुलता है। इस समय तक खड़ी बोली गद्य की किसी निश्चित शैली का निर्माण नहीं हो पाया था।

इसके उपरान्त खड़ी बोली गद्य के विकास की परन्परा में मुंशी सदासुखलाल नियाज, इंशा अल्ला खां, लल्लूलाल और सदल मिश्र का नाम आता है । सन् 1800 ई० में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना हुई। फोर्ट विलियम कालेज के हिन्दी उर्दू अध्यापक जान गिल क्राइस्ट ने हिन्दी और उर्दू में गद्य पुस्तकों को तैयार करने की व्यवस्था की। लल्लू लाल और सदल मिश्र की नियुक्ति फोर्ट विलियम कॉलेज में हुई। इसके अतिरिक्त सदासुखलाल नियाज और इंशा अल्ला खां ने स्वतन्त्र रूप से खड़ी बोली के कतिपय गद्य ग्रन्थों का निर्माण किया।

4.3.1. सदासुखलाल नियाज (1796–1824) : यह दिल्ली के निवासी थे । ये कंपनी की नौकरी किया करते थे । ये उर्दू और फारसी में शायरी भी किया करते थे और इन्ही भाषाओं में अनेक पुस्तकें भी लिखीं। 65 वर्ष की अवस्था में नौकरी छोड़कर प्रयाग में जाकर भगवदभजन करने लगे । मुंशी जी ने गद्य लेखन न तो किसी अंग्रेज़ अधिकारी की प्रेरणा से और न किसी दिए हुए नमूने पर लिखा । विष्णु पुराण से उपदेशात्मक प्रसंग लेकर एक पुस्तक का निमार्ण किया और हिन्दी में श्रीमद्भागवत का 'सुखसागर' के नाम से स्वतंत्र अनुवाद किया । इसमें भाषा का परिमार्जित रूप है केवल यत्र–तत्र पंडिताऊ प्रयोग मिलते हैं । उसका थोड़ा सा अंश नीचे उदधृत किया जाता है । 'इससे जाना गया कि संस्कार का भी प्रमाण नहीं, आरोपित उपाधि है । जो क्रिया उत्तम हुई तो सौ वर्ष से चांडाल से ब्राह्मण हुए और क्रिया भ्रष्ट हुई तो वह तुरंत ही ब्राह्मण से चांडाल होता है ।' स्थान स्थान पर शुद्ध संस्कृत शब्दों का प्रयोग करके उन्होंने उसके भावी साहित्यिक रूप का पूर्ण आभास दिया है।

4.3.2. इंशा अल्ला खाँ (1712–1775) : उर्दू के बहुत प्रसिद्ध शायर थे । इन्होंने फोर्ट विलियम कॉलेज के बाहर रहकर स्वतन्त्र रूप से हिन्दी गद्य की सेवा की । इन्होंने 'उदयभान चरित' या 'रानी केतकी की कहानी' की रचना की । ये मुर्शिदाबाद के रहने वाले थे । इंशाअल्ला खाँ के पिता मीर माशाअल्ला खाँ काश्मीर से दिल्ली आये थे और मुगल दरबार में हकीम हो गए । मुगल साम्राज्य के क्षीण होने पर मुर्शिदाबाद चले गए । इंशा का जन्म यहीं हुआ । इंशा लड़कपन से ही कविता करते थे । 'रानी केतकी की कहानी' हिन्दी गद्य की पहली मौलिक रचना कही जा सकती है । प्रारम्भिक लेखकों में खाँ साहब की भाषा सबसे चुटीली, मुहावरेदार है । इनका उद्देश्य ऐसी भाषा लिखना था जिसमें हिन्दी छुट और किसी बोली का पुट न हो और साथ ही जिसमें से हिन्दवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो, उस समय संस्कृत मिली हिन्दी को भाखा कहते थे । इंशा ने 'भाखापन' और 'मुअल्लापन' दोनों को दूर रखने का प्रयत्न किया, किन्तु फारसी के ढंग का वाक्य–विन्यास कहीं–कहीं विशेषतः बड़े वाक्यों में आ ही गया है अर्थात् इंशा ऐसी भाषा लिखना चाहते थे जो उस समय हिन्दू–मुसलमान दोनों की बोलचाल की भाषा थी ।

4.3.3. लल्लूलाल : 1800 ई. में इनकी नियुक्ति कॉलेज में भाखा मुंशी के पद पर हुई। ये आगरा के रहने वाले थे। कॉलेज में नियुक्ति के पश्चात् इन्होंने भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर 'प्रेमसागर' पुस्तक की रचना की। जो भागवत के दशम स्कन्ध का अनुवाद है। प्रेमसागर एक ऐसा ग्रंथ है जिसे खड़ीबोली गद्य की रचना माना जा सकता है। इसकी भाषा के लिए ग्रियसर्न ने लिखा था कि यह भाषा लिखकर लल्लूलाल जी एक ऐसी भाषा का आविष्कार कर रहे थे, जिसका पहले कोई अस्तित्व नहीं था परन्तु प्रेमसागर का गद्य ब्रजभाषा से इतना प्रभावित है कि उसका आगे विकास नहीं हो सका। इनकी ठेठ हिन्दी में उर्दू के शब्द भी आ गये हैं।

इसके अतिरिक्त इन्होंने बैताल–पच्चीसी, सिंहासन बतीसी, शकुंतला नाटक, माधव विलास, माधोनल, राजनीति आदि की रचना की । इनके नाम पर छोटी बड़ी 14 रचनाओं का उल्लेख मिलता है । इन ग्रन्थों में इन्होंने अपेक्षाकृत हिन्दुस्तानी भाषा का प्रयोग किया है । बिहारी सतसई पर इन्होंने 'लाल चन्द्रिका' नाम की टीका लिखी है। हिन्दी गद्य के विकास के सन्दर्भ में लल्लू लाल के 'प्रेम सागर' की विशेष चर्चा होती है । इसकी रचना का उद्देश्य हिन्दवी (खड़ीबोली) से परिचित करना था । उन्होंने इसमें यामिनी भाषा को छोड़ने का प्रयास किया है यद्यपि यामनी भाषा ने उन्हें पूर्णतः नहीं छोड़ा है ।

4.3.4. सदल मिश्र :– कॉलेज से सम्बन्धित हिन्दी पण्डितों में सदल मिश्र का स्थान भी महत्वपूर्ण है । ये बिहार के निवासी थे । इन्होंने चन्द्रावती या नासिकेतोपाख्यान ग्रंथ खड़ी बोली में लिखा । इनकी भाषा लल्लूलाल की अपेक्षा अधिक साफ सुथरी और व्यवहारोपयोगी है । इनकी भाषा में पूर्वी बोली के शब्दों का यत्र–तत्र प्रयोग मिलता है । इसकी गद्य शैली उर्दू और ब्रजभाषा के प्रभाव से मुक्त एक ऐसी शैली है जिसमें बोलचाल की भाषा की अपेक्षा साहित्यिक भाषा का रूप प्रस्फुटित होता हुआ दिखाई देता है । शुक्ल जी ने भी इसी गद्य शैली और भाषा को व्यावहारिक माना है । आगे चलकर साहित्य में जो भाषा गृहित हुई उसका गठन बहुत कुछ सदल मिश्र की भाषा के आदर्श पर हुआ ।

हिन्दी गद्य के प्रथम चार उन्नायकों में वस्तुतः मुंशी सदासुख लाल और पंडित सदल मिश्र ही हिन्दी गद्य के ऐसे दो प्रथम लेखक थे जिन्होंने उस गद्य शैली का पहला रूप विकसित किया था जिसका परवर्ती गद्य लेखकों द्वारा अनुकरण और विकास किया गया ।

इसी समय ईसाई धर्म प्रचारक इसाई धर्म के प्रचार में लगे हुए थे । इन्होंने सदासुखलाल और लल्लूलाल की विशुद्ध भाषा को ही आदर्श माना । इसके अतिरिक्त आर्यसमाज का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 1874 ई में 'सत्यप्रकाश' द्वारा अपने विचारों को हिन्दी गद्य में प्रस्तुत किया ।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सन् 1816 ई० में राजा राम मोहन राय द्वारा लिखे गए एक पैंफलेट का उल्लेख किया है । इस प्रकार हिन्दी गद्य के स्वरूप निर्धारण में हिन्दी पत्रकारिता की विशेष भूमिका रही है।

भारतेन्दु के आगमन के पूर्व हिन्दी गद्य के विकास में उपर्युक्त सभी शक्तियाँ कार्य करती रही किन्तु भाषा विषयक नीति–निर्धारण एवं उसके स्वरूप पर स्थायी प्रभाव डालने में जिन शक्तियों का अधिक हाथ रहा, उनमें राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द और राजा लक्ष्मणसिंह प्रमुख हैं ।

4.3.5 राजा शिवप्रसाद (1823–1896) :– शिवप्रसाद ने हिन्दी के उद्धार कार्य में महत्वपूर्ण योग दिया । जहाँ तक लिपि का प्रश्न है वह देवनागरी पसन्द करते थे। इनकी भाषा में उर्दू का काफी पुट था । ये हिन्दी में उर्दू प्रधान गद्य लिखने के हिमायती थे । शिक्षा विभाग में इन्सपेक्टर थे । इससे पूर्व वह उर्दू प्रधान शैली के समर्थक और प्रचारक बन चुके थे । उस समय सरकारी नीति में हिन्दी का विरोध चल रहा था इसलिए ये भी उर्दू को मुल्क की मुख्य भाषा मानने लगे थे । राजा साहब हिन्दी को गँवारूपन से भरी भाषा समझते थे और इसे दूर करने के लिए उर्दू का मिश्रण आवश्यक मानते थे । इसके पूर्व काशी से 'बनारस अखबार' निकालते थे। इन्होनें स्कूलों में हिन्दी पाठ्य पुस्तकों का अभाव देखकर स्वयं भी पुस्तकें लिखी और सहयोगियों द्वारा भी पुस्तकें लिखवाई । आलसियो का कीड़ा, राजा भोज का सपना, भूगोल हस्तामलक, इतिहास तिमिर नाशक, गुटका आदि इनकी रचनाएं हैं ।

4.3.6 राजा लक्ष्मणसिँह :– ये समझौतावादी नीति के कट्टर विरोधी थे। इनकी धारणा थी कि उर्दू के शब्दों के प्रयोग के बिना सुन्दर गद्य लिखा जा सकता है। ये हिन्दी में संस्कृत के तत्सम शब्दों के पक्षपाती थे। इन्होंने रस संवलित सरल और सुबोध भाषा के प्रचार के लिए आगरा से 'प्रजाहितैषी' नाम का एक पत्र निकाला और कालिदास के रघुवंश, अभिज्ञान शकुन्तलम और मेघदूत का हिन्दी में अनुवाद किया । राजा लक्ष्मण सिंह ब्रजभाषा के केन्द्र आगरा के निवासी थे, इसलिए उनकी रचनाओं में ब्रजभाषा और उसके काव्य का हल्का सा प्रभाव रहना स्वाभाविक था । उनकी कोई मौलिक रचना नहीं मिलती किन्तु इनके अनुवादों में मौलिक रचना का सा सौन्दर्य और शक्ति है ।

4.4 सारांश

खड़ी बोली हिन्दी गद्य की यह भूमिका हिन्दी के लिए महत्वपूर्ण थी। इसका अधिक विकसित, सहज और स्वाधीन रूप हमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके युग के अन्य गद्य रचयिताओं में मिलता है ।

4.5 कठिन शब्द

1 कट्टर 2 मौलिक 3 महत्वपूर्ण 4 विकसित 5 परिमार्जित

6 सुबोध 7 विनिमय 8 पारस्परिक 9 समझौता 10 संवलित

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न – गद्य के प्रारम्भिक उन्नायकों का परिचय दीजिए।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – उर्दू के अतिरिक्त हिन्दी गद्य में इंशाअल्ला खां का विशेष योगदान रहा है स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – राजा शिव प्रसाद और राज लक्ष्मण सिंह ने हिन्दी गद्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया है स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

_____

4.7 पठनीय पुस्तकें

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ० नगेन्द्र

2 हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

3 हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामसजन पाण्डे

4 आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ – नामवर सिंह

5. आधुनिक हिन्दी साहित्य – विकास के विविध आयाम – पुष्पपाल सिंह

6. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका – लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

7. हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी – नंद दुलारे बाजपेयी

8. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ० बच्चन सिंह

.....

19वीं शताब्दी के प्रमुख गद्यकार

5.0 रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 19वीं शताब्दी के प्रमुख गद्यकार

5.2.1 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

5.2.2 प्रतापनारायण मिश्र

5.2.3 पं लालकृष्ण भट्ट

5.2.4 बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'

5.2.5 ठाकुर जगमोहन सिंह

5.2.6 लाला श्रीनिवासदास

5.2.7 अम्बिकादत्त व्यास

5.2.8 राधाकृष्ण दास

5.3 सारांश

5.4 कठिन शब्द

5.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.6 पठनीय पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना

भाषा विकास की सामान्य प्रक्रिया यह रही है कि बोलचाल में उसका रूप गद्य का रहता है और जब वह साहित्य में प्रवेश करती है तो पद्य का रूप धारण कर लेती है । कालान्तर में जब उसका यह पद्य रूप

पर्याप्त विकसित, परिमार्जित हो जाता है तब वह गद्य का रूप धारण कर साहित्य में आगे बढ़ने लगती है । खड़ी बोली में परिमार्जित गद्य का रूप पहले मिलता है फिर पद्य का । आधुनिकता के साथ ही हिन्दी गद्य का आरम्भ होता है । गद्य का विकास दो तरह से हुआ, एक भाषा की सहज प्रक्रिया द्वारा तथा दूसरा हिन्दी साहित्य और जन–सम्पर्क माध्यमों की जरूरतों को ध्यान में रखकर किए गए प्रयत्नों के द्वारा । एक ओर लेखक चतुष्टय अर्थात इंशाअल्ला खाँ, सदासुखलाल, लल्लूलाल तथा सदल मिश्र की रचनाओं ने रचना विकास की अन्तर्धारा प्रवाहित की तथा इसी कड़ी में एक महत्वपूर्ण प्रयास जन संचार माध्यमों उदन्त मार्तण्ड, बंगदूत, बनारस अखबार आदि के मनीषियों का है । गद्य के विकास के लिए जो प्रयास गद्य उन्नायकों ने किया उसका सहज विकास भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के आविर्भाव के बाद भारतेन्दु युग में हुआ ।

5.2 19वीं शताब्दी के प्रमुख गद्यकार

5.2.1 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र :– भारतेन्दु का प्रभाव भाषा और साहित्य दोनों पर गहरा पड़ा । उन्होंने जिस प्रकार गद्य की भाषा को परिमार्जित करके उसे बहुत ही चलता, मधुर और स्वच्छ रूप दिया । उसी प्रकार हिन्दी साहित्य को भी नये मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया । इनके भाषा संस्कार की महत्ता को सब लोगों ने मुक्तकंठ से स्वीकार किया और वे वर्तमान हिन्दी गद्य के प्रवर्तक माने जाते हैं ।

भारतेन्दु ने सन् 1868 में 'कविवचन सुधा' तथा सन् 1873 में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' के प्रकाशन से एक आन्दोलन सा खड़ा कर दिया । हिन्दी गद्य का परिष्कृत रूप इन्हीं पत्रिकाओं में प्रकट हुआ । भारतेन्दु के जीवन का एकमात्र लक्ष्य अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को निशेष कर हिन्दी भाषा और साहित्य को उन्नत, समृद्ध और बहुमुखी बनाना था । उसे नवीन राष्ट्रीय चेतना से सम्पृक्त करना था । अपनी इसी एकान्त साहित्य निष्ठा के कारण वे अपने समय में हिन्दी क्षेत्र की सम्पूर्ण साहित्यिक गतिविधियों के केन्द्र और प्रेरक बन गए थे।

भारतेन्दु के सामने हिन्दी गद्य की दो विधाएं काफी महत्व की थी । एक नाटक दूसरा निबन्ध । भारतेन्दु के पहले हिन्दी में न तो नाटक लिखे जाते थे और न ही अपना कोई रंगमंच था । इन्होंने हिन्दी साहित्य को उन्नत करने के लिए कई नाटकों की रचना की फिर उसे जन–जन तक पहुँचाने और जनजागरण के लिए मंचित भी किया । इस प्रकार भारतेन्दु को हिन्दी नाटकों के साथ–साथ रंगमंच का भी जन्मदाता माना जाता है ।

निबन्ध के क्षेत्र में भारतेन्दु ने ही सबसे पहले कदम बढ़ाया था । इनके पूर्व हिन्दी निबन्ध के नाम पर कुछ धार्मिक उपदेश, प्रवचन, सिद्धांत परिचय तो मिल जाता है पर साहित्यिक निबन्ध नहीं मिलता । भारतेन्दु के निबन्धों में उनकी प्रगतिशील मान्यताएँ, व्यंग्य विनोद, उदारता, सजीवता आदि के दर्शन होते हैं । नाटक के सर्वजनहिताय वाली प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर उन्होंने अपने विचारों को प्रकट करने के लिए नाट्योपयुक्त भाषा का प्रयोग किया, परन्तु निबन्ध के विशिष्ट पाठकों, रचनाकारों के मार्ग दर्शन आदि को ध्यान में रखकर गुरू गंभीरता का भी परिचय दिया । इन दोनों गद्य विधाओं में उन्होंने सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक मुद्दों को प्रमुखता थी ।

भारतेन्दु ने मौलिक तथा अनुदित कुल 17 नाटकों की रचना की । मौलिक नाटकों में 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, 'चन्द्रावली,' 'भारत–दुर्दशा,' 'नीलदेवी,' 'अंधेर नगरी,' 'प्रेम जोगिनी,' 'सती प्रताप' आदि हैं । इन्होंने

हिन्दी नाटकों को साहित्यिक ऊँचाई देने के लिए संस्कृत, प्राकृत, बंगला से अनुवाद भी किए 'विधा सुन्दर,' 'पाखंड विडम्बना,' 'धनंजय विजय,' 'मुद्राराक्षस,' 'भारत जननी' आदि अनुदित नाटक हैं। इनके नाटकों, निबन्धों की भाषा में तत्सम शब्दों की जगह तद्भव शब्दों का प्रयोग तथा मुहावरों और लोकोक्तियों में सर्वजन ग्राह्य रमण रूप देखने को मिलता है। इन्होंने अपने नाटकों को यथार्थवाद से जोड़ा। हिन्दी में प्रहसन लिखने का सूत्रपात भी किया।

5.2.2 प्रतापनारायण मिश्र : प्रतापनारायण मिश्र की गणना इस युग के श्रेष्ठ निबन्धकार, नाटककार और पत्रकार के रूप में होती है। इन्होंने हिन्दी गद्य को उन्मुक्त और व्यंग्य–विनोदपूर्ण स्वभाव दिया। इनकी प्रकृति ही विनोदशील थी। इन्होंने भौं, पेट, नाक आदि से लेकर प्रताप चरित्र, दान, जुआ जैसे विषयों पर निबन्ध लिखे साथ ही नास्तिक, शिवमूर्ति, ईश्वर की मुक्ति जैसे गम्भीर विषयों पर भी निबन्ध लिखे। इसके अतिरिक्त लोकोक्तियों को भी अपने निबन्ध लेखन का विषय बनाया । इनके निबन्ध व्यक्ति निष्ठ शैली के सुन्दर उदाहरण हैं। यही सहज उमंग की धारा संगीत शकुन्तल, कलिकोतुक रूपक, कुआरी–खुआरी आदि नाटकों में मिलती है। युग चेतना की अभिव्यक्ति इन्होंने अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छन्द ढंग से की है । इनके व्यंग्य की तलखी तिलमिला देने वाली होती है। इन्होंने 'ब्राह्मण' नामक मासिक–पत्रिका का कई वर्षों तक सम्पादन किया। इनकी भाषा स्वच्छ, बोलचाल की चपलता और भावभंगी से ओतप्रोत रही है। कहावतों, मुहावरों आदि का खूब प्रयोग करते हैं। इनकी भाषा ग्राम्य सहजता से युक्त थी। 38 वर्ष की आयु में इनका निधन हो गया।

5.2.3 पं. बालकृष्ण भट्ट (1844–1914) : भट्ट जी भारतेन्दु युग के महत्वपूर्ण गद्यकार हैं । आर्थिक अभाव के रहते हुए भी अपने मासिक पत्र 'हिन्दी प्रदीप' को एकाकी रूप में लगभग 33 वर्षों तक निकालते रहे । इन्होंने साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि विभिन्न विषयों पर अत्यन्त रोचक निबन्ध लिखे । इनके निबन्धों में विचारों की मौलिकता, विषय की व्यापकता और शैली की रोचकता आदि गुण मिलते हैं। इन्होंने विषय रूप में सहज और मामूली बातों को आधार बनाया जैसे नाक, कान, भौं आदि । निबन्धों के अतिरिक्त भट्ट जी ने कई छोटे–मोटे नाटक भी लिखे हैं जो क्रमशः 'हिन्दी प्रदीप' में छपे हैं । इनके मौलिक नाटकों में 'दमयन्ती स्वयम्वर', 'वेणुसंहार', 'कलिराज की सभा', 'बाल विवाह' आदि प्रमुख हैं । सामाजिक पृष्ठभूमि को आधार बनाकर इन्होंने 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान' नामक दो उपन्यासों की रचना की। भाषा पर भट्ट जी का असाधारण अधिकार था । विषय के अनुरूप भाषा का प्रयोग उनकी सामर्थ्य का द्योतक है । उनके निबन्धों के प्रतिपादन का ढंग भी इतना सरल है कि पढ़ने में कथा – सा आनन्द आता है । उर्दू के शब्दों का प्रयोग करने में इन्हें किसी प्रकार का संकोच नहीं है । भट्ट जी संस्कृत के प्रकांड पण्डित थे । निबन्धों के बीच में संस्कृत के श्लोक उद्धृत कर अपने विचारों को शास्त्र तथा पुराने विद्वानों के विचारों के मेल में रख कर अच्छी तरह से पुष्टि करते जाते हैं । मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग के कारण निबन्धों में व्यंग्य और वक्र व्यंजना का सुन्दर परिपाक हुआ है। हास्य को भी बहुत अधिक महत्व दिया है।

5.2.4 बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' (1855–1923) :– भारतेन्दु मण्डल के तीसरे महत्वपूर्ण रचनाकार 'प्रेमघन' हैं। इन्होंने 'आनन्द कादम्बिनी' पत्रिका के माध्यम से हिन्दी और हिन्दुस्तान की जैसी सेवा की वह आज भी स्मरणीय है। इसके अलावा 'नागरी' पत्रिका का सम्पादन भी किया । इन पत्रिकाओं में अनेक प्रकार के विनोदपूर्ण प्रहसन निरन्तर प्रकाशित होते रहते थे । इनके निबन्धों की शैली उपर्युक्त लेखकों से भिन्न थी, जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की बहुलता के साथ कहीं–कहीं बोलचाल के चुभते हुए शब्द भी आ जाते थे । ये कलाकार की भाँति भाषा को गढ़ा करते थे । इनके निबन्धों की शैली भाव प्रधान है । इनकी शैली सबसे

विलक्षण थी । ये गद्य रचना को एक कला के रूप में ग्रहण करने वाले, कलम की कारीगरी समझने वाले लेखक थे । भाषा शैली में अनुप्राण–प्रियता और तुकबन्दी का मोह लक्षित होता है । इन्होंने देश की राजनीतिक और सामाजिक जीवन की दुर्व्यवस्थाओं को अपने प्रहसनों में बखूबी चित्रित किया है । 'भारत सौभाग्य' और 'प्रयाग रामागमन' इनके उल्लेखनीय नाटक हैं । इन्होंने 'आनन्द कादम्बिनी' के माध्यम से हिन्दी आलोचना की दिशा तय करने में भी योगदान दिया ।

5.2.5 ठाकुर जगमोहन सिंह भी इस युग के यशस्वी रचनाकार हैं । इन्होंने गद्य और पद्य दोनों धाराओं को पुष्ट किया । ये संस्कृत साहित्य और अंग्रेजी के अच्छे जानकार तथा हिन्दी के एक प्रेमपथिक कवि और माधुर्यपूर्ण गद्य लेखक थे । इनका लिखा 'श्यामा स्वप्न' नामक उपन्यास काव्यगुणों से परिपूर्ण एक सुन्दर उपन्यास है। इनकी गद्य रचनाओं में आलंकारिक चमत्कार तथा तत्सम शब्दों के आधिक्य ने खड़ी बोली की शिथिल परम्परा को समर्थ किया ।

5.2.6 लाला श्रीनिवासदास हिन्दी के आरम्भिक उपन्यासकारों में प्रसिद्ध हैं । इनका लिखा उपन्यास 'परीक्षा गुरु' हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है । आधुनिक अर्थों में यही पहला उपन्यास है जिसमें सामाजिक जीवन को चित्रित करने का प्रयास मिलता है । इनकी गद्य की भाषा में दिल्ली का माधुर्य दृष्टिगत होता है । इन्होनें कई नाटक भी लिखे । इनके प्रमुख नाटकों में 'प्रहलाद चरित्र', 'रणधीर प्रेममोहिनी' और संयोगिता स्वयंवर आदि हैं । इनके लिखे नाटक अपने समय में काफी चर्चा और वाद–विवाद के विषय रहे थे । इनका 'रणधीर और प्रेममोहिनी' नाटक उस समय अधिक चर्चा में रहा । यह नाटक अंग्रेजी नाटकों के ढंग पर लिखा गया है । इसमें प्रस्तावना नहीं रखी गई है और यह दुखांत है ।

5.2.7 अम्बिकादत्त व्यास :– संस्कृत के प्रतिभाशाली विद्वान, और ब्रजभाषा के सिद्धकवि थे । इन्होंने 'भारत सौभाग्य' और 'गो संकट' जैसे नाटकों में तत्कालीन परिस्थितियों को अभिव्यक्त किया है । इसके अतिरिक्त 'ललित नाटिका' और 'मन की उमंग' नामक नाटिकाएँ भी उन्होंने लिखी हैं ।

5.2.8 राधाकृष्ण दास :– भारतेन्दु के सृजनशील व्यक्तित्व से सर्वाधिक प्रभावित रचनाकारों में बाबू राधाकृष्ण दास जी भी थे । इन्होंनें भारतेन्दु का अधूरा नाटक 'सती प्रताप' पूरा किया था। इन्होंनें पहले 'दुखिनी बाला' नामक एक छोटा सा रूपक लिखा था। उनका सबसे उत्कृष्ट और बड़ा नाटक 'महाराणा प्रताप' है जो संवत् 1954 में समाप्त हुआ । यह नाटक बहुत ही लोकप्रिय रहा और इसका अभिनय कई बार कई जगह हुआ। नाटकों के अतिरिक्त इन्होंने 'निस्सहाय हिन्दू' नामक एक लघु उपन्यास भी लिखा । इनकी गद्य रचनाओं की भाषा सरल और सहज है । जिसमें ब्रजभाषा तथा पूर्वी प्रयोग का रंग भी दृष्टिगोचर होता है ।

5.3 सारांश

इस प्रकार देखा जा सकता है कि आरम्भिक हिन्दी गद्य स्वाधीनता की चेतना के अनुरूप आत्मनिर्भर और सुसंगठित होने की दिशा में बढ़ रहा था । भारतेन्दु युग के सभी गद्य लेखक हिन्दी की परम्परागत मूल प्रवृति को पहचानते थे । भारतेन्दु और उनके समकालीन लेखकों में व्यंग्य की वह धार थी जो आगे चलकर यथार्थवादी रचनाशीलता का आधार बनी । निबन्ध, समालोचना के अतिरिक्त यात्रा वृतान्त जैसे गद्य रूप भी मिलने लगे थे । विषय में व्यापकता आने लगी थी और अंग्रेजी व्यवस्था के अन्तर्विरोध की पहचान भी मिल रही थी ।

5.4 कठिन शब्द

1 सृजनशील 2 व्यक्तित्व 3 सर्वाधिक 4 सुसंगठित 5 समालोचना
6 यथार्थवादी 7 अभिव्यक्ति 8 उन्मुक्त 9 परिमार्जित 10 प्रस्फुटित

5.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न – 19वीं शताबदी के प्रमुख गद्यकारों का परिचय दीजिए।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – 19वीं शती के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और प्रताप नारायण मिश्र का परिचय दीजिए।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – बालकृष्ण भट्ट भारतेन्दु युग के महत्वपूर्ण गद्यकार हैं – स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

_____

5.6 पठनीय पुस्तकें

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ० नगेन्द्र
2 हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
3 हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामसजन पाण्डे
4 आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ – नामवर सिंह
5. आधुनिक हिन्दी साहित्य – विकास के विविध आयाम – पुष्पपाल सिंह
6. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका – लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
7. हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी – नंद दुलारे बाजपेयी
8. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ० बच्चन सिंह

भारतेन्दु युगीन काव्य और उसकी प्रवृत्तियाँ एवं प्रमुख कवि

6.0 रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रवृतियाँ

6.3 भारतेन्दु युगीन : प्रवृतियाँ

6.3.1 प्रमुख कवि

6.3.2 सामान्य प्रवृतियाँ

6.4 सारांश

6.5 कठिन शब्द

6.6 संभावित प्रश्न

6.7 पठनीय पुस्तकें

6.1 उद्देश्य

– इस आलेख के अध्ययनोपरांत आप जानेंगे
– भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक युग के प्रवर्तक हैं।
– इनमें आने से हिन्दी काव्य में एक नये युग का आरम्भ हुआ है।
– भारतेन्दु के अतिरिक्त इस युग के अन्य कवियों को जानेंगे।
– भारतेन्दु युग की प्रवृतियों को जानेंगे।

6.2 प्रस्तावना

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक युग के प्रवर्तक हैं। उनके आगमन से हिन्दी काव्य में एक नया युग आरम्भ होता है। इस युग को साहित्यिक पुनरूथान, राष्ट्रीय चेतनापरक और आदर्शवादी युग कहा गया है। इस

युग में रीतिकालीन शृंगार–प्रधान काव्य के स्थान पर राष्ट्रीय–चेतना, समाज–सुधार एवं जनहित प्रधान काव्य का आरम्भ हुआ। इस युग का काव्य विलासिता की अपेक्षा युगीन जीवन के विभिन्न पक्षों से जुड़ा है। इस युग में कवि ने प्राचीनता से नाता तोड़कर नवीन–चेतना को व्यक्त करने का प्रयास किया है। इसलिए भारतेन्दु युग को आधुनिक काल का प्रवेश द्वार कहते हैं।

6.3 भारतेन्दु युगीन काव्य और उसकी प्रवृत्तियाँ एवं प्रमुख कवि

वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध भारतीय इतिहास में एक नवीन अध्याय का श्रीगणेश करता है। इस कालखण्ड में नवचेतना के उदय से जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन हुआ। शिक्षित जनता की बदली हुई मनोवृत्ति ने साहित्यिक गतिविधियों को बहुत दूर तक प्रभावित किया। फलतः इस युग में रचे गये साहित्य में पूर्ववर्ती रीतिकालीन काव्य की पुरानी प्रवृत्तियों को अपदस्थ कर नये आयामों को प्रशस्त करने की चेष्टाएं परिलक्षित हुईं। नये–पुराने के सम्मिश्रण में से अपेक्षित वस्तुओं को ग्रहण और अनपेक्षित वस्तुओं को त्यागकर हिन्दी साहित्य को नवीन चेतना से अनुप्राणित करने का प्रयास सर्वप्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कविताओं में दृष्टिगोचर हुआ। भारतेन्दु जी बहुमुखी प्रतिभा के रचनाकार थे। उन्होंने गद्य–पद्य में समान रूप से लिखा। हिन्दी कविता को नये–नये विषयों में प्रवृत्त करने और गद्य की नवीन विधाओं के विकास में उनका अभूतपूर्व योगदान था। इसीलिए हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस कालखण्ड को भारतेन्दु युग की संज्ञा से अभिहित किया गया है।

6.3.1 प्रमुख कवि

आलोच्य युग में यों तो शताधिक कवियों ने विविध प्रवृत्तियों के अंतर्गत काव्य–रचना की है, किंतु उनमें भारतेंदु हरिश्चंद्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' प्रतापनारायण मिश्र, जगमोहन सिंह, अंबिकादत्त व्यास और राधाकृष्णदास ही प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त श्रीधर पाठक (1859–1928), बालमुकुंद गुप्त (1865–1907) और हरिऔध (1865–1945) की कविताओं का प्रकाशन भी इस युग में आरंभ हो गया था, किंतु इनके कृतित्व का बहुल अंश परवर्ती युग में ही सामने आया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र – कविवर हरिश्चंद्र (1850–1885) इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमीचंद की वंश–परंपरा में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता बाबू गोपालचंद्र 'गिरिधरदास' भी अपने समय के प्रसिद्ध कवि थे। हरिश्चंद्र ने बाल्यावस्था में ही काव्य–रचना आरंभ कर दी थी और अल्पायु में कवित्व प्रतिभा और सर्वतोमुखी रचना–क्षमता का ऐसा परिचय दिया था कि उस समय के पत्रकारों तथा साहित्यकारों ने 1880 ई. में उन्हें 'भारतेंदु' की उपाधि से सम्मानित किया था। कवि होने के साथ ही भारतेंदु पत्रकार भी थे। 'कविवचनसुधा' और 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' उनके संपादन में प्रकाशित होने वाली प्रसिद्ध पत्रिकाएं थीं। नाटक, निबंध आदि की रचना द्वारा उन्होंने खड़ी बोली की गद्य–शैली के निर्धारण में भी महत्त्वपूर्ण योग दिया था। उनकी कविताएं विविध–विषय विभूषित हैं। भक्ति, शृंगारिकता, देशप्रेम, सामाजिक परिवेश और प्रकृति के विभिन्न संदर्भों को ले कर उन्होंने विपुल परिमाण में काव्य–रचना की, जो कहीं सरसता और लालित्य में अद्वितीय है और अन्यत्र स्थूल वर्णनात्मकता की परिधि को लांघने में असमर्थ हैं। उनकी काव्य–कृतियों की संख्या सत्तर है, जिनमें 'प्रेम–मालिका', 'प्रेम–सरोवर', 'गीत–गोविंदानंद', 'वर्षा–विनोद', 'विनय–प्रेम–पचासा', 'प्रेम फुलवारी', 'वेणु–गीति' आदि विशेषतः उल्लेख योग्य हैं। वैसे 'भारतेंदु–ग्रंथावली' के प्रथम भाग में

उनकी सभी छोटी–बड़ी काव्य रचनाएं एक जिल्द में उपलब्ध हैं। उनकी प्रमुख विशेषता यह है कि अपनी अनेक रचनाओं में जहां वे प्राचीन काव्य–प्रवृत्तियों के अनुवर्ती रहे, वहीं नवीन काव्यधारा के प्रवर्तन का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है। राजभक्त होते हुए भी वे देशभक्त थे, दास्य भाव की भक्ति के साथ ही उन्होंने माधुर्य भाव की भक्ति भी की है, नायक–नायिका के सौंदर्य वर्णन में ही न रम कर उन्होंने उनके लिए नवीन कर्तव्य क्षेत्रों का भी निर्देश किया है। और इतिवृत्तात्मक काव्यशैली के साथ ही उनमें हास्य–व्यंग्य का पैनापन भी विद्यमान है। अभिव्यंजना–क्षेत्र में भी उन्होंने ऐसी ही परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली प्रवृत्तियों को अपनाया है, जो उनकी प्रयोगधर्मी मनोवृत्ति का प्रमाण है। 'हिंदी भाषा' में प्रबल हिंदीवादी के रूप में सामने आने पर भी उन्होंने उर्दू–शैली में कविताएं लिखी हैं और काव्य–रचना के लिए ब्रजभाषा को ही उपयुक्त मानने पर भी वे खड़ी बोली में 'दशरथविलाप' तथा 'फूलों का गुच्छा' कविताएं लिखते दिखायी देते हैं। काव्यरूपों की विविधता उनकी अनन्य विशेषता है। छंदोबद्ध कविताओं के साथ ही उन्होंने गेय पद–शैली में भी विदग्धता का परिचय दिया है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कविता के क्षेत्र में वे नवयुग के अग्रदूत थे। अपनी ओजस्विता, सरलता, भावमर्मज्ञता और प्रभविष्णुता से उनका काव्य इतना प्राणवान है कि उस युग का शायद ही कोई कवि उनसे अप्रभावित रहा हो।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रमेघन' – भारतेंदु–मंडल के कवियों में प्रेमघन (1855–1923) का प्रमुख स्थान है। उनका जन्म उत्तरप्रदेश के ज़िला मिज़ार्पुर के एक संपन्न ब्राह्मण कुल में हुआ था। भारतेंदु की भांति उन्होंने भी पद्य और गद्य दोनों में विपुल साहित्य–रचना की है। साप्ताहिक 'नगरी–नीरद' और मासिक 'आनंदकादंबिनी' के संपादन द्वारा उन्होंने तत्कालीन पत्रकारिता को भी नयी दिशा दी थी। 'अब्र' नाम से उन्होंने उर्दू में कुछ कविताएं लिखी हैं। 'जीर्ण जनपद', 'आनंद अरुणोदय', 'हार्दिक हर्षादर्श', 'मयंक–महिमा', 'अलौकिक लीला', 'वर्षा बिंदु' आदि उनकी प्रसिद्ध काव्यकृतियां हैं, जो अन्य रचनाओं के साथ 'प्रेमघन–सर्वस्व' के प्रथम भाग में संकलित हैं। भारतेंदु के काव्य में प्राप्त होने वाली सभी प्रवृत्तियां प्रेमघन की रचनाओं में भी समुपलब्ध हैं। 'लालित्य–लहरी' के वंदना संबंधी दोहों और 'बृजचंद–पंचक' में उनकी भक्ति–भावना व्यक्त हुई है, तो उनकी शृंगारिक कविताएं भी रसिकता–संपन्न हैं। उनका मुख्य क्षेत्र जातीयता, समाजदशा और देशप्रेम की अभिव्यक्ति है। यद्यपि उन्होंने राजभक्ति संबंधी कविताओं की भी रचना की है, तथापि राष्ट्रीय भावना की नयी लहर से उनकी अविच्छिन संबंध था। देश की दुरवस्था के कारणों और देशोन्नति के उपायों का जितना वर्णन उन्होंने किया है, उतना भारतेंदु की कविताओं में भी नहीं मिलता।

प्रेमघन ने मुख्तः ब्रजभाषा में काव्य रचना की है, किंतु खड़ी बोली के लिए उनके काव्य में विरक्ति नहीं थी। वे कविता में भावगति के कायल थे। न तो उन्हें भाषा के शुद्ध प्रयोग की चिंता थी और न वे यतिभंग से विचलित होते थे। छंदोबद्ध रचनाओं के अतिरिक्त उन्होंने लोकसंगीत की कजली और लावनी शैलियों में भी सरस कविताएं लिखी हैं।

प्रतापनारायण मिश्र – ब्राह्मण–संपादक प्रतापनारायण मिश्र (1856–1894) का जन्म बैजेगांव, ज़िला उन्नाव में हुआ था। पिता के कानपुर चले जाने के कारण उनकी शिक्षा–दीक्षा वहीं हुई। ज्योतिष का पैतृक व्यवसाय न अपना कर वे साहित्य–रचना की ओर प्रवृत्त हुए। कविता, निबंध और नाटक उनके मुख्य रचना क्षेत्र हैं। कानपुर के रंगमंच और वहां की साहित्यिक संस्था 'रसिक–समाज' से उनका निकट का संबंध था। 'प्रेमपुष्पावली', 'मन की लहर', 'लोकोक्ति शतक', 'तृप्यन्ताम्' और 'शृंगार–विलास' उनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं। 'प्रताप–लहरी' उनकी प्रतिनिधि कविताओं का संकलन है। भारतेंदु की भांति उन्होंने भी विभिन्न विषयों को लेकर

काव्य–रचना की है, किंतु भक्ति और प्रेम की तुलना में समसामयिक देश–दशा और राजनीतिक चेतना का वर्णन उन्होंने अधिक मनोयोग से किया है।

हास्य–व्यंग्यात्मक कविताओं के क्षेत्र में प्रतापनारायण मिश्र का अग्रणी स्थान है। प्रेमघन की भांति उन्होंने भी लावनी–शैली में अनेक कविताएं लिखी हैं। वे भावुक कवि थे और अभिव्यंजना–पक्ष में उनका बल व्यावहारिकता पर अधिक था। काव्य–रचना के लिए उन्होंने मुख्यतः ब्रजभाषा को ही अपनाया है, खड़ीबोली से उन्हें उतना लगाव नहीं था।

जगन्मोहन सिंह – ठाकुर जगन्मोहन सिंह (1857–1899) मध्यप्रदेश की विजय राघवगढ़ रियासत के राजकुमार थे। उन्होंने काशी में संस्कृत और अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की। वहां रहते हुए उनका भारतेंदु हरिश्चंद्र से संपर्क हुआ, किंतु भारतेंदु की रचनाशैली की उन पर वैसी छाप नहीं मिलती, जैसी प्रेमघन और प्रतापनारायण मिश्र के कृतित्व में लक्षित होती है। शृंगार वर्णन और प्रकृति–सौंदर्य की अवधारणा उनकी मुख्य काव्य–प्रवृत्तियां हैं, जिन्हें उनकी काव्य–कृतियों–प्रेमसंपत्तिलता (1885), श्यामालता (1885), श्यामा–सरोजिनी (1886) और देवयानी (1886) – में सर्वत्र पाया जा सकता है। 'श्यामास्वपन' शीर्षक उपन्यास में भी उन्होंने प्रसंगवश कुछ कविताओं का समावेश किया है. उनके द्वारा अनूदित 'ऋतुसंहार' और 'मेघदूत' भी ब्रजभाषा की सरस कृतियां हैं। जगन्मोहन सिंह में काव्य–रचना की स्वाभाविक प्रतिभा थी और वे भावुक मनोवृत्ति के कवि थे। कल्पना–लालित्य, भावुकता, चित्रशैली और सरस–मधुर ब्रजभाषा उनकी रचनाओं की अन्यतम विशेषताएं हैं। अलंकारों का स्वाभाविक नियोजन भी उनमें भारतेंदुयुगीन कवियों में सबसे अधिक दृष्टिगत होता है।

अंबिकादत्त व्यास – कविवर दुर्गादत्त व्यास के पुत्र अंबिकादत्त व्यास (1858–1900) काशी–निवासी सुकवि थे। वे संस्कृत और हिंदी के अच्छे विद्वान थे और दोनों भाषाओं में साहित्य–रचना करते थे। 'पीयूष–प्रवाह' के संपादक के रूप में भी उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। उनकी काव्य कृतियों में 'पावस पचासा' (1886), 'सुकवि–सतसई' (1887) और 'हो हो होरी' (1891) उल्लेखनीय हैं। इनकी रचना ललित ब्रजभाषा में हुई है। उन्होंने खड़ीबोली में 'कंस–वध' (अपूर्ण) शीर्षक प्रबंधकाव्य की रचना भी आरंभ की थी, किंतु इसके केवल तीन सर्ग ही लिखे जा सके। 'बिहारी–विहार' उनकी एक अन्य प्रसिद्ध रचना है, जिसमें महाकवि बिहारी के दोहों का कुंडलिया छंद में भाव विस्तार किया गया है। उनके द्वारा लिखित समस्यापूर्तियां भी उपलब्ध होती हैं। अपने नाटकों (भारत–सौभाग्य गोसकंट नाटक) में भी उन्होंने कुछ गेय पदों का समावेश किया है। व्यास जी की प्राचीन भारतीय संस्कृति में गहन आस्था थी, जिसे प्रत्यक्ष रूप में व्यक्त करने के अतिरिक्त उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता की कमियों पर व्यंग्य भी किये हैं। उन्होंने सरल और कोमलकांत पदावली के प्रयोग को वरीयता दी है।

राधाकृष्णदास – भारतेंदु हरिश्चंद्र के फुफेरे भाई राधाकृष्णदास (1865–1907) बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। कविता के अतिरिक्त उन्होंने नाटक, उपन्यास और आलोचना के क्षेत्रों में भी उल्लेखनीय साहित्य–रचना की है। उनकी कविताओं में भक्ति शृंगार और समकालीन सामाजिक राजनीतिक चेतना को विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। 'भारत–बारहमासा' और 'देश–दशा' समसामयिक भारत के विषय में उनकी प्रसिद्ध कविताएं हैं। कुछ कविताओं में प्रसंगवश प्रकृति के सुंदर चित्र भी उकेरे गये हैं। राधाकृष्ण प्रेम के निरूपण में भक्तिकाल और रीतिकाल की वर्णन–परंपराओं का उन पर समान प्रभाव पड़ा है।

राधाकृष्णदास की कुछ कविताएं 'राधाकृष्ण–ग्रंथावली' में संकलित हैं। अंबिकादत्त व्यास की परंपरा में उन्होंने भी रहीम के दोहों पर कुंडलियां रची हैं। ब्रजभाषा की कविताओं में मधुरता और खड़ीबोली की रचनाओं में प्रासादिकता की ओर उनकी सहज प्रवृत्ति रही है।

अन्य कवि – भारतेंदु युग में समसामयिक सामाजिक–राजनीतिक परिवेश के प्रति जिस जागरूकता का उदय हुआ था, उसका निर्वाह उस काल के गौण कवियों में नहीं मिलता। उनकी रचनाओं में भक्तिभावना और शृंगार वर्णन की प्रमुखता रही है। इस संदर्भ में सर्वप्रथम नवनीत चतुर्वेदी (1868–1919) का नाम आता है। इनकी प्रसिद्ध कृति 'कुब्जा–पचीसी' रीतिपद्धति की सरस रचना है। इनके शिष्यों में जगन्नाथदास 'रत्नाकार' ने आगे चल कर विशेष ख्याति प्राप्त की। गोविंद गिल्लाभाई–कृत 'शृंगार–सरोजनी' 'पावस–पयोनिधि', 'राधामुख–षोडसी' और 'षड्ऋतु' भी भक्ति और प्रेमवर्णन संबंधी रचनाएं हैं, जिनमें राधा–कृष्ण के संदर्भ में प्रेम, सौंदर्य और भक्ति का भावन किया गया है। दिवाकर भट्ट–कृत 'नखशिख' (1884) और 'नवोढारत्न' (1888) भी रीतिपद्धति की रचनाएं हैं। रामकृष्ण वर्मा 'बलवीर'–कृत 'बलबीर–पचासा', सूर्यपुराधीश राजेश्वरी प्रसाद सिंह 'प्यारे'–कृत 'प्यारे–प्रमोद', गुलाब सिंह की 'प्रेम–सतसई' और राव कृष्णदेव शरण सिंह 'गोप' का 'प्रेम–सन्देशा' भी शृंगार रस की कृतियां हैं। इनके अनेक छंदों में नायक–नायिका की मनोदशाओं का सरस चित्रण हुआ है। शृंगारपरंपरा के कवियों में बेनी द्विज, हनुमान, ब्रजचंद्र बल्लभीय और नकछेदी त्रिपाठी का उल्लेख भी आवश्यक है। शृंगारेतर विषयों पर स्फुट छंदरचना भी प्रायः इन सभी कवियों ने की है। इस संदर्भ में राधाचरण गोस्वामी के 'नव भक्तमाल', गोविंद गिल्लाभाई–कृत 'नीति–विनोद' और दुर्गादत्त व्यास के 'अधमोद्धार शतक' (रचना 1872) का उल्लेख अपेक्षित है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ये कवि अभी भक्तिकाल और रीतिकाल के परिवेश में ही जी रहे थे, वैसा ही भाव–विन्यास और उसी ढंग की अभिव्यंजनशैली। कभी समस्यापूर्तियों में और कभी दो–चार स्फुट छंदों में नवीन विषयों को ग्रहण करने पर भी ये ब्रजभाषा के परंपरागत काव्यवृत्त से ही संतुष्ट रहे। सत्य तो यह है कि विषय और भाषा के संबंध में इस कोटि के कवियों के पूर्वाग्रह का ही परिणाम यह हुआ कि कालांतर में काव्यक्षेत्र में ब्रजभाषा का स्थान खड़ी बोली ने ले लिया।

6.3.2 सामान्य प्रवृत्तियाँ

भारतेन्दुयुगीन कवियों ने अपने कर्तव्य का भलीभाँति निर्वाह करने हेतु जनता के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक पहलुओं का उद्घाटन अपनी कविता में किया। भाव, भाषा, छन्द आदि सभी दृष्टियों से परिष्कार की प्रवृत्ति इस काल के साहित्यकारों में विद्यमान थी। आधुनिक भावबोध के परिणामस्वरूप भारतेन्दुयुगीन हिन्दी काव्य में जिन नवीन प्रवृत्तियों का समावेश हुआ है। उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

1. **राष्ट्रीयता अथवा देशभक्ति :** भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने रीतिकालीन काव्य परम्परा से हटकर आधुनिक हिन्दी कविता को जिन नवीन प्रवृत्तियों की ओर मोड़ा, उनमें राष्ट्रीयता अथवा देशभक्ति का स्वर सर्वप्रमुख और सर्वोच्च था। देशभक्ति की जिस भावना का विकास आगे चलकर मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' के माध्यम से हुआ। उसका प्रारम्भिक रूप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रताप नारायण मिश्र, प्रेमघन और राधाकृष्णदास आदि की कविताओं में परिलक्षित होता है। इन कवियों ने देश के उत्कर्ष के लिए उत्तरदायी परिस्थितियों पर प्रकाश डालकर जनमानस में राष्ट्रीय भावना जगाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। भारतेन्दु की 'विजयिनी विजय वैजयन्ती', राधाचरण गोस्वामी की कविता 'हमारो उत्तम भारत देश', प्रेमघन की 'आनन्द

अरूणोदय', 'धन्य भूमि भारत सब रतननि को उपजावनि' प्रतापनारायण मिश्र की 'महापर्व' और 'नयासंवत्', राधाकृष्णदास कृत 'भारत बारहमासा' और 'विनय' शीर्षक कवितायें देशभक्ति की प्रेरणा से युक्त हैं। इनमें ऐतिहासिक महापुरूषों एवं महत्वपूर्ण सांस्कृतिक स्थलों की भावपूर्ण एवं मर्मस्पर्शी प्रशस्तियों के माध्यम से भारत के गौरवपूर्ण अतीत की ओर भारतीय जनता का ध्यान आकृष्ट कर उनमें स्वाभिमान और आत्मगौरव की भावना को जाग्रत करने का श्लाघ्य प्रयत्न किया गया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

कहाँ परिक्षित कहाँ जनमेजय कहाँ विक्रम कहाँ भोज।

नन्दवंश कहाँ चन्द्रगुप्त कहाँ हाय कहाँ वह ओज।।

– राधाकृष्णदास (विजयिनीविलाप)

अंग्रेज़ों की शोषण नीति, भारत की आर्थिक दुरावस्था तथा किसान मज़दूरों की दीन–हीन दशा के यथार्थ चित्रों में तत्कालीन कवियों की देशभक्ति भावना का स्वर मुखरित हुआ है–

भीतर–भीतर सब रस चूसै, हंसि–हंसि के तन–मन धन मूसै।

जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि साजन नहिं अंग्रेज।।

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।

पै धन विदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।

–भारतेन्दु (भारत दुर्दशा)

x x x

जिनके कारण सब कुछ पावैं जिसका बोया सब जन खायँ।

हाय हाय उनके बालक नित भूखों के मारै चिल्लायँ।

–बालमुकुन्द गुप्त (जातीय गीत)

महारानी विक्टोरिया की प्रशस्ति तथा उनके निधनोपरान्त व्यक्त की जाने वाली हार्दिक शोक–संवेदनाओं से पूर्ण भारतेन्दुयुगीन कविताओं–'जयति राज राजेश्वरी', 'हाय दया की मूर्ति हाय विक्टोरिया माता' आदि को देखकर कुछ लोग तत्कालीन कवियों की राष्ट्रीय भावनाओं पर संदेह कर बैठते हैं। इस सम्बन्ध में ज्ञातव्य है कि 1885 से पूर्व कम्पनी के शासन में भारतीय जनता पर जो अन्याय और अत्याचार किये जाते थे, उनकी तुलना में विक्टोरिया की अपेक्षाकृत उदार शासन–व्यवस्था ने भारतीय जनता में सुख–शान्ति का प्रसार किया था। फलतः महारानी विक्टोरिया के प्रति कवियों के ये उद्‌गार तत्कालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में सर्वथा उचित प्रतीत होते हैं। इन्हें राष्ट्रीयता विरोधी अथवा चाटुकारिता से युक्त मानना उचित न होगा। प्रेमघन की 'हार्दिक हर्षादर्श' शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियों से यह तथ्य अपने आप स्पष्ट हो जायेगा –

लेकर राज कम्पनी के कर सो निज हाथन।

किये सनाथ भोली भारत की प्रजा अनाथन।

2. सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति : भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने सामाजिक कुरीतियों, अन्धविश्वासों तथा पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण की कटु आलोचना कर भारतीय समाज में स्वस्थ और प्रगतिशील परम्पराओं की पुनः स्थापना पर बल दिया। स्त्रियों की अशिक्षा, विधवाओं की दुर्दशा, छुआछूत और जाति–पाँति तथा भेदभाव की समस्या ने विशेष रूप से इन कवियों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'भारत दुर्दशा' में छुआछूत की घृणित परम्परा की ओर इन शब्दों में संकेत किया –

'बहुत हमने फैलाये धर्म, बढ़ाया छुआछूत का कर्म'।

कवियों ने भारत दुर्दशा का चित्रण इन पंक्तियों में किया–

रोबहु सब मिलि आबहु भारत आई।

हा–हा भारत दुर्दशा न देखि जाई।।

– भारतेंदु हरिश्चन्द्र

इसी प्रकार–

मैं हाय–हाय दै धाय पुकारौं रोई।

भारत की डूबी नाव उबारौ कोई।।

प्रतापनारायण मिश्र ने विधवाओं की दयनीय दशा का हृदय विदारक चित्र प्रस्तुत किया–

'कौन करेजो नहिं कसकत सुनि विपति बाल विधवान की'।

'प्रेमघन' ने पश्चिमी सभ्यता में रंगे हिन्दू नाम से लज्जित होने वाले भारतीय नवयुवकों की खुले आम निन्दा की –

पढ़ि विद्या परदेश की बुद्धि विदेश पाय।

चाल–चलन परदेश की गई इन्हें अति भाय।।

3. भक्ति भावना : भारतेन्दु युगीन काव्य में नवीन सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार यद्यपि नये–नये विषयों का ही प्राधान्य रहा, किन्तु कविता के पुराने विषयों का भी पूरी तरह निषेध नहीं किया जा सका। स्वयं भारतेन्दु तथा उनके अन्य सहयोगियों ने ईश्वरभक्ति विषयक अनेक सरस रचनाएँ प्रस्तुत कीं। भक्तिपरक रचनाओं में भारतेंदु कृत 'भक्ति सर्वस्व', 'कार्तिक स्नान', अंबिकादत्त व्यास रचित 'कंस वध', प्रेमघन कृत 'सूर्य स्तोत्र', राधाचरण गोस्वामी कृत 'नवभक्तमाल' आदि प्रमुख हैं। इन रचनाओं में कहीं तो निर्गुणोपासक संतों की–सी विरक्ति भावना

देखने को मिलती है और कहीं वैष्णव भक्तों की तन्मयता है। ऐसी कविताओं में भारत को उसकी दुरावस्था से मुक्त करने के लिए ईश्वर से प्रार्थनाएँ की गई हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

ब्रज के लता पता मोहिं कीजै।

गोपी पद पंकज पावन की रज जामै सि भीजै।

–भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

X X X

उधारौ दीन बन्धु महाराज।

जैसे हैं तैसे तुमरे ही नहीं और सौं काज।।

–भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

पं. प्रताप नारायण मिश्र और राधाकृष्णदास के काव्य में निर्गुण भक्त कवियों के समान–सी सरसता पाई जाती है–

जो विषया संतन तजी ताहि मूढ़ लपटात।

जो नर डारत वमन करि स्वान स्वाद सौं खात।।

– राधाकृष्णदास

4. शृंगारिकता – भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने रीतिकालीन कवियों का अनुसरण करते हुए प्रेम और सौन्दर्य की भावना से युक्त शृंगार प्रधान रचनाएँ भी प्रस्तुत की। भारतेन्दु की 'प्रेमसरोवर', 'प्रेममाधुरी', 'प्रेमफुलवारी', प्रेमघन की 'युगलमंगल–स्तोत्र', 'वर्षाबिन्दु', अम्बिकादत्त व्यास की 'पावस पचासा' जगमोहन सिंह की 'प्रेमसंगीतलता' आदि इस प्रकार की रचनाएँ हैं। इस युग की कुछ कविताओं में घनानन्द की–सी सरसता और भावुकता पाई जाती है। वयसन्धि को प्राप्त नायिका का सुन्दर चित्र दृष्टव्य है–

सिुसताई अजौं न गई तन तें,

तऊ जीवन जोति बटोरैं लगीं।

सुनि कै चरचा हरिश्चन्द्र की कानन,

कूक दै भौंह मरोरैं लगीं।।

– भारतेन्दु

इन कवियों ने वियोग शृंगार का भी सुन्दर चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। ठाकुर जगमोहन सिंह ने अपनी रचना 'प्रेम सम्पत्ति लता' में नायिका के विरह का निरूपण किया है। जगमोहन सिंह की निम्नलिखित

पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

अब यो डर आवत है सजनी, मिलि जाऊँ गरे लगि के छतियाँ।

मन की करी भाँति अनेकन और मिलि कीजिय री रस की बतियाँ।।

5. प्रकृति–चित्रण – भारतेन्दु युग के कुछ कवियों ने स्वतंत्र रूप से प्रकृति का सौन्दर्याकन करने की चेष्टा की है। किन्तु, रीतिकालीन कवियों के प्रभावस्वरूप वे परम्परा निर्वाह की प्रवृत्ति से मुक्त नहीं हो सके हैं। भारतेन्दु ने 'सत्य हरिश्चन्द' और 'चन्द्रवाली' में क्रमशः गंगा और यमुना की स्वतंत्र छवि का अंकन करने का प्रयास किया है, किन्तु अलंकार–भार से दब जाने के कारण इन कविताओं में सहजता की अपेक्षा कृत्रिमता अधिक आ गयी है। इसी प्रकार भारतेन्दु कृत 'बसंतहोली', अम्बिकादत्त व्यास कृत 'पावस पचासा', प्रेमघन कृत 'मयंकमहिमा' और प्रतापनारायण मिश्र कृत 'प्रेमपुष्पांजलि' शीर्षक कविताओं में प्रकृति को आलंबन–रूप में स्वीकार करने पर भी शृंगारी भावनाओं की प्रधानता रही है। भारतेंदु का गंगा–यमुना वर्णन उल्लेखनीय है–

नव उज्ज्वल जलधार हार–हीरक–सी सोहती,

बिच बिच छहरति बंद मध्य मुक्तामणि पोहती।।

– भारतेन्दु

इसी प्रकार –

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाय।

झुके कूल सौं जल परसन हित मनहुं सुहाय।।

– भारतेन्दु

6. हास्य–व्यंग्य – भारतेन्दु युग में पत्र–पत्रिकाओं के प्रचार–प्रसार से हिन्दी काव्य को जनमानस के अत्यधिक निकट जाने में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। भारतेंदु जी ने अपने नाटकों एवं एकांकियों में व्यंग्योक्तियों के माध्यम से तत्कालीन परिस्थितियों का सुन्दर चित्रण किया है। 'अन्धेर नगरी' में चूरन वाला कहता है–

चूरन साहब लोग जो खाता।

सारा 'हिन्द' हजम कर जाता।।

नए जमाने की मुकरी में कवि ने सामयिक बुराइयों पर व्यंग्य किए हैं। मद्यपान के सम्बन्ध में उनकी व्यंग्योक्ति देखिए–

मुह जब लागे तब नहिं छूटै,

जाति मान धन सब कुछ लूटै।

पागल करि मोहि करै खराब,

क्यों सखि साजन नहीं सराब।।

प्रतापनारायण मिश्र की कविताएं हर गंगा, बुढ़ापा, उर्दू का स्यापा, हास्य–व्यंग्य की दृष्टि से बहुत प्रसिद्ध हुई।

कविता को सामान्य पाठकों की दृष्टि से आकर्षक और उपयोगी बनाने के लिए साहित्यकारों को उसमें रोचकता का समावेश करना पड़ा। हास्य–व्यंग्य इसी रोचकता का एक महत्त्वपूर्ण अंग बनकर काव्य में समाविष्ट हुआ। पश्चिमी सभ्यता, विदेशी शासन, समाजिक अन्धविश्वासों पर किये गये चुभते व्यंग्यों को सुनकर बरबस हँसी आ जाती है। भारतेन्दु कृत 'नये जमाने की मुकरी' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

मुँह जब लागै तब नहिं छूटै, जाति मान धन सब कुछ लूटै।

पागल करि मोहिं करै खराब, क्यों सखि साजन नहीं शराब।

7. समस्या पूर्ति – भारतेन्दु युग में कवियों की प्रतिभा और रचना–कौशल को परखने के लिए कवि गोष्ठियों और कवि समाजों में कठिन–से–कठिन विषयों पर समस्याओं की पूर्ति करायी जाती थी। काशी में भारतेन्दु द्वारा स्थापित 'कविता वर्द्धिनी सभा', कानपुर का 'रसिक समाज' आदि की ओर से आयोजित की जाने वाली कवि गोष्ठियों में समस्यापूर्ति को प्रतियोगिता के रूप में प्रोत्साहन दिया जाता था। इन समस्यापूर्तियों में पुराने कवि निःसंकोच रूप से भाग लेते थे और नये कवियों का उत्साहवर्द्धन होता था। कानपुर के 'रसिक समाज' में प्रतापनारायण मिश्र द्वारा की गयी समस्यापूर्ति कितनी हृदयस्पर्शी बन पड़ी है –

बन बैठि है मान की मूरति सी,

मुख खोलत बोलै न नाहीं न हां।।

तुम ही मनुहारि कै हारि परे,

सखियान की कौन चलाई तहां।।

वरषा है प्रतापजू' धीर धरौ,

अबलौ मन कौं समझायौ जहां।

वह ब्यारि तबै बदलैगी कछू,

पपीहा जब पूछि है पीव कहां।।

समस्या पूर्ति के माध्यम से उक्ति वैचित्र्य, अलंकरण एवं कल्पना का मनोहारी प्रयोग करने की रीतिकालीन प्रवृत्ति को काव्य में पर्याप्त प्रश्रय मिला। समस्यापूर्ति से सम्बन्धित इस काल के कुछ प्रमुख काव्य

संग्रह हैं– अम्बिकादत्त व्यास कृत 'समस्या पूर्ति सर्वस्व', द्विजगंग कृत 'समस्या प्रकाश' और गोविन्द गिल्ला भाई कृत 'समस्यापूर्ति प्रदीप'।

8. अभिव्यक्तिगत प्रवृत्तियाँ – भारतेन्दु युग में मुक्तक काव्य की प्रधानता रही। सामयिक विषयों पर उपदेशपरक फुटकर पद्य लिखे गए जिनमें भाव की गहनता एवं कला का उत्कर्ष दिखाई नहीं पड़ता। कुछ रचनाएं तो तुकबंदियां मात्र प्रतीत होती हैं। भारतेन्दु युग में हिन्दी काव्य के भीतर नये–नये विषयों का समावेश किया गया, किन्तु अभिव्यक्ति के क्षेत्र में कोई युगान्तरकारी परिवर्तन परिलक्षित नहीं हुआ। गद्य के क्षेत्र में खड़ी बोली को स्वीकार कर लिया गया पर पद्य में ब्रजभाषा बनी रह गयी। भारतेंदु ने हिन्दी भाषा को लोकप्रिय बनाने का भरसक प्रयास किया। वे कहते हैं –

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।

बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।।

इस युग के अन्तिम खेमे के कुछ कवियों – श्रीधर पाठक, बालमुकुन्द गुप्त ने काव्य के क्षेत्र में खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया, किन्तु उनके प्रयासों को व्यापक सफलता आगे चलकर द्विवेदी युग में प्राप्त हुई। शैली और काव्य रूप के क्षेत्र में भी इस युग के कवियों ने रीतिकालीन परम्परा का अनुसरण किया। दोहा, रोला, घनाक्षरी और सवैया उनके प्रिय छंद रहे। कुछ कवियों ने लोकप्रचलित छंदों – कजली, लावनी आदि का प्रयोग किया। शब्द–चमत्कार और अलंकार प्रियता का अवशेष इस युग के कवियों में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। समग्रतः इस युग के कवियों का ध्यान अभिव्यक्ति की नूतन दिशाओं की ओर न होकर नये–नये विषयों की ओर ही अधिक रहा। अभिव्यक्तिगत नूतनता आगे चलकर द्विवेदी युगीन कवियों की रचनाओं में देखने को मिली।

6.4 सारांश

भारतेन्दु युग के कवियों ने कविता को रीतिकालीन परिवेश से निकालकर सामयिक समस्याओं से जोड़ दिया। विदेशी शासकों के अत्याचारों का वर्णन भी उन्होंने किया, भले ही वह दबी जबान से किया गया है। भारतेन्दु के रूप में एक सबल साहित्यकार हिन्दी को प्राप्त हुआ। वे सच्चे अर्थों में आधुनिक काल के जनक कहे जा सकते हैं। राष्ट्र और समाज को उद्‌बोधन देते हुए उन्होंने 'कवि कर्तव्य' का बखूबी पालन किया, जिसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं।

6.5 कठिन शब्द

1 प्रयास 2 खेमे 3 नूतनता 4 सबल 5 परिलक्षित 6 युगान्तकारी

7 उत्साहवर्द्धन 8 निषेध 9 दुर्दशा 10 चाटुकारिता

6.6 संभावित प्रश्न

1. आधुनिक काल की सांस्कृतिक परिस्थिति पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

2. आधुनिक काल के प्रमुख कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कवित्व का परिचय दीजिए।

_____

_____

_____

_____

3. भारतेन्दुयुगीन काव्य में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

4. भारतेन्दुयुगीन काव्य में हास्य एवं व्यंग्य–प्रवृत्ति पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

5. भारतेन्दुयुगीन काव्य का संक्षेप में मूल्यांकन कीजिए।

_____

_____

_____

_____

6. भारतेन्दु मंडल के बारे में आप क्या जानते हैं?

_____

_____

_____

_____

6.7 पठनीय पुस्तकें

- हिन्दी साहित्य का इतिहास– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
- हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास– डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त
- हिन्दी साहित्य का इतिहास– डॉ. नगेन्द्र
- हिन्दी साहित्य – डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
- हिन्दी साहित्य का इतिहास– डॉ. रामसजन पाण्डेय (संपा.)

.....

द्विवेदी युगीन काव्य और उसकी प्रवृत्तियाँ एवं प्रमुख कवि

7.0 रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 द्विवेदी युगीन काव्य और उसकी प्रवृत्तियाँ

– 7.3.1 प्रमुख कवि

– 7.3.2 प्रमुख प्रवृत्तियाँ

7.4 सारांश

7.5 कठिन शब्द

7.6 संभावित प्रश्न

7.7 पठनीय पुस्तकें

7.1 उद्देश्य

– प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप जानेंगे–
– द्विवेदी युगीन काव्य पूर्णरूप से पल्लवित होकर कैसे सामने आया।
– द्विवेदी युगीन काव्य की प्रवृत्तियों भी जानेंगे।
– द्विवेदी युगीन प्रमुख कवियों के बारे में जानेंगे।

7.2 प्रस्तावना

भारतेन्दु युग यदि आधुनिक काल का प्रवेश द्वार है तो द्विवेदी युग उसका विस्तृत प्रांगण। जहां उन प्रवृत्तियों को विकसित एवं पल्लवित होने का अवसर प्राप्त हुआ जो भारतेन्दु युग में प्रारम्भ हुई थीं। विशेषतः भारतीय जनमानस में स्वदेशानुराग एवं नवजागरण के जो बीज भारतेन्दु युग में अंकुरित हुए थे, वे द्विवेदी युग में पूर्ण पल्लवित होकर सामने आ गए। इस युग में खड़ी बोली को काव्य की भाषा बनाना एक महान् सफलता

थी । इस महान् कार्य में सबसे अधिक योगदान महावीरप्रसाद द्विवेदी का था। उन्होंने अपने अनथक प्रयासों से खड़ी बोली को काव्य–भाषा के रूप में प्रतिष्ठापित किया। महावीरप्रसाद ही इस युग की साहित्यिक चेतना के सूत्रधार थे।

7.3 द्विवेदी युगीन काव्य, प्रवृत्तियाँ एवं प्रमुख कवि

7.3.1 द्विवेदी युग : प्रमुख कवि

नाथूराम शर्मा शंकर – पंडित नाथूराम शर्मा (1859–1932) का जन्म हरदुआगंज, ज़िला अलीगढ़ में हुआ था। ये हिंदी, उर्दू, फ़ारसी तथा संस्कृत भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। आरंभ से ही शंकर जी बड़े साहित्यानुरागी थे। तेरह वर्ष की छोटी आयु में ही इन्होंने अपने एक साथी पर एक दोहा रचा था। कानपुर में ये भारतेंदु–मंडल के प्रसिद्ध कवि प्रतापनारायण मिश्र के संपर्क में आये तथा 'ब्राह्मण' में इनकी कविताएं छपने लगीं। बाद में इन्होंने आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित 'सरस्वती' के मुख्य कवियों में स्थान पाया। प्रारंभ में ये ब्रजभाषा के कवि थे, किंतु शीघ्र ही खड़ीबोली की ओर झुक गये थे। ये उर्दू में भी अच्छी कविता लिखते थे। शंकर जी पर आर्य–समाज तथा तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलनों का गहरा प्रभाव पड़ा। देशप्रेम, स्वदेशी–प्रयोग, समाज–सुधार, हिंदी–अनुराग तथा विधवाओं और अछूतों का दारुण दुःख इनके काव्य के प्रमुख विषय हैं। सामाजिक कुरीतियों, आडंबरों, अंधविश्वासों, बाल–विवाह आदि पर इन्होंने बड़े तीखे व्यंग्य किये हैं। रीतिकालीन पद्धति पर इन्होंने कुछ श्रृंगारमयी रचनाएं भी की हैं। राजा रवि वर्मा के चित्रों के आधार पर भी शंकर जी ने सुंदर कविताएं लिखीं। छंदः शास्त्र के ये बड़े मर्मज्ञ विद्वान थे। इनके काव्य में सभी प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है। ये समस्यापूर्ति में बड़ी कुशल थे। तत्कालीन कवि–समाजों और सम्मेलनों में इनकी धूम थी तथा ये 'कविता–कामिनी–कांत', 'भारतेंदु–प्रज्ञेंदु', 'साहित्य सुधाकर' आदि उपाधियों से विभूषित किये गये। 'अनुरागरत्न', 'शंकर–सरोज', 'गर्भरंडा–रहस्य' तथा 'शंकर–सर्वस्व' (1951) इनके प्रमुख काव्यग्रंथ हैं। ये प्रायः अतिशयोक्तिपूर्ण कविता लिखते थे। इनकी अतिशयोक्तियां आकाश–पाताल को एक कर देने वाली हैं।

श्रीधर पाठक (1859–1928)– इनका जन्म आगरा ज़िले के जोंधरी गांव में हुआ था। हिंदी के अतिरिक्त अंग्रेज़ी और संस्कृत का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। आजीविका के लिए पाठक जी ने सरकारी नौकरी की। नौकरी के प्रसंग में ही इन्हें काश्मीर और नैनीताल भी जाना पड़ा, जहां इन्हें प्रकृति के निरीक्षण का अच्छा अवसर मिला। इन्होंने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में अच्छी कविता की है। इनकी ब्रजभाषा सहज और निराडंबर है। परंपरागत रूढ़ शब्दावली का प्रयोग इन्होंने प्रायः नहीं किया है। खड़ीबोली के तो ये प्रथम समर्थ कवि भी कहे जा सकते हैं। यद्यपि इनकी खड़ीबोली में कहीं–कहीं ब्रजभाषा के क्रियापद भी प्रयुक्त हैं, किंतु यह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है कि महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा 'सरस्वती' का संपादन संभालने से पूर्व ही इन्होंने खड़ीबोली में कविता लिख कर अपनी स्वच्छंद वृत्ति का परिचय दिया। देशप्रेम, समाजसुधार तथा प्रकृति चित्रण इनकी कविता के मुख्य विषय हैं। इन्होंने बड़े मनोयोग से देश का गौरव–गान किया है, किंतु देशभक्ति के साथ इनमें भारतेंदु कालीन कवियों के समान राजभक्ति भी मिलती है। एक ओर इन्होंने 'भारतोत्थान', 'भारतप्रशंसा' आदि देशभक्तिपूर्ण कविताएं लिखी हैं, तो दूसरी ओर 'जॉर्ज–वंदना' जैसी कविताओं में राजभक्ति का भी प्रदर्शन किया है। समाजसुधार की ओर भी इनकी दृष्टि बराबर रही है। 'बालविधवा' में इन्होंने विधवाओं की व्यथा का

कारुणिक चित्रण किया है। परंतु इनको सर्वाधिक सफलता प्रकृति चित्रण में प्राप्त हुई है। तत्कालीन कवियों में इन्होंने सबसे अधिक मात्रा में प्रकृति–वर्णन किया है। परिमाण की दृष्टि से ही नहीं, गुण की दृष्टि से भी वह सर्वश्रेष्ठ है। इन्होंने रूढ़ि का परित्याग कर प्रकृति का स्वतंत्र रूप में मनोहारी चित्रण किया है। मातृभाषा की उन्नति की भी ये कामना करते थे।

पाठक जी कुशल अनुवादक भी थे – कालिदास–कृत 'ऋतुसंहार' और गोल्डस्मिथ–कृत 'हरमिट', 'डेजटेंड विलेज' तथा 'द ट्रैवेलर' का ये बहुत पहले ही 'एकांतवासी योगी' 'ऊजड़ ग्राम' और 'श्रांत पथिक' शीर्षक से काव्यानुवाद कर चुके थे। इनकी मौलिक कृतियों में 'वनाष्टक', 'काश्मीर–सुषमा' (1904), 'देहरादून' (1915) और 'भारतगीत' (1928) विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

महावीर प्रसाद द्विवेदी – महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864–1938) का जन्म जिला रायबरेली के दौलतपुर नामक ग्राम में हुआ था। गांव की पाठशाला में प्रारंभिक शिक्षा पाने के पश्चात् ये अंग्रेज़ी पढ़ने के लिए रायबरेली के स्कूल में भर्ती हुए, बाद में रनजीतपुरवा (ज़िला उन्नाव) फतेहपुर तथा उन्नाव के स्कूलों में दाखिल हुए। वहां से अपने पिता के पास बंबई चले गये। बंबई में इन्होंने संस्कृत, गुजराती, मराठी और अंग्रेज़ी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। मिडिल कक्षाओं में इन्होंने वैकल्पिक विषय के रूप में फ़ारसी पढ़ी तथा इन्हें बंगला का भी अच्छा अभ्यास था। आजीविका के लिए द्विवेदी जी ने रेलवे की नौकरी की, किंतु उच्चाधिकारी से कुछ कहा–सुनी हो जाने के कारण इन्होंने त्यागपत्र दे दिया। साहित्य–साधना तो द्विवेदी जी नौकरी के दिनों में भी कर रहे थे, किंतु नौकरी छोड़ने के बाद तो ये पूर्णतया हिंदी भाषा और साहित्य की सेवा में जुट गये। सन् 1903 में ये 'सरस्वती' के संपादक बने और 1920 तक बड़े परिश्रम और लगन से यह कार्य करते रहे। 'सरस्वती' के संपादक के रूप में इन्होंने हिंदी भाषा और साहित्य के उत्थान के लिए जो कार्य किया, वह चिरस्मरणीय रहेगा। इनके प्रोत्साहन और मार्गदर्शन के परिमाणस्वरूप कवियों और लेखकों की एक पीढ़ी का निर्माण हुआ। खड़ीबोली को परिष्कार तथा स्थिरता प्रदान करने वालों में ये अग्रगण्य हैं। ये कवि, आलोचक, निबंधकार, अनुवादक तथा संपादकाचार्य थे। इनके लिखे हुए मौलिक और अनूदित गद्य–पद्य ग्रंथों की संख्या लगभग 80 है। मौलिक काव्यरचना की ओर इनकी विशेष प्रवृत्ति नहीं थी, इनकी अनूदित काव्य–कृतियां अधिक सरस हैं। गद्य–लेखन एवं संपादन के क्षेत्र में इन्हें विशेष सफलता मिली। 'कान्यमंजूषा', 'सुमन' (1923), 'कान्यकुब्ज अबला–विलाप' (मौलिक पद्य), 'गंगालहरी', 'ऋतु तंरगिणी', 'कुमारसंभवसार' (अनूदित) आदि द्विवेदी जी की उल्लेखनीय रचनाएं हैं। इनकी कविता सहज, सरल और प्रायः उपदेशपूर्ण होती थी। इन्होंने अपनी कविता में दो प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है–एक तो तत्सम प्रधान समस्त भाषा का तथा दूसरे, प्रचलित शब्दावली–युक्त सरल भाषा का।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' – 'हरिऔध' जी (1865–1947) द्विवेदी–युग के प्रख्यात कवि होने के साथ–साथ उपन्यासकार, आलोचक एवं इतिहासकार भी थे। पुरातन संस्कृति का पुनरुद्धार, देश के वर्तमान युवक का उचित मार्गदर्शन तथा कविता में उपदेशात्मक वृत्ति को इन्होंने आरंभ से ही अपना ध्येय रखा। इनका जन्म निज़ामाबाद, ज़िला आज़मगढ़ में हुआ था। इन्होंने उर्दू, फ़ारसी एवं संस्कृत का ज्ञान घर पर ही प्राप्त किया। सर्वप्रथम ये निज़ामाबाद के मिडिल स्कूल में अध्यापक हुए, उसके पश्चात् कानूनगो। इन्होंने सन् 1923 में सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण किया और शेष जीवन साहित्यसेवा में समर्पित कर दिया। कुछ समय तक इन्होंने काशी विश्वविद्यालय में अवैतनिक प्राध्यापक के रूप में भी कार्य किया। इनके काव्यग्रंथों में 'प्रियप्रवास'

(1914), 'पद्यप्रसून' (1925), 'चुभते चौपदे', 'चोखे चौपदे' (1932), 'बोलचाल', 'रसकलस' तथा 'वैदेही–वनवास' (1940) प्रसिद्ध हैं। इनमें से 'प्रियप्रवास' खड़ीबोली में लिखा गया प्रथम महाकाव्य है। इसमें राधा और कृष्ण को सामान्य नायक–नायिका के स्तर से ऊपर उठा कर विश्वसेवी तथा विस्वप्रेमी के रूप में चित्रित करने में 'हरिऔध' ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। महाकाव्यत्व की दृष्टि से भी यह एक सफल ग्रंथ है। इनकी दूसरी उल्लेख्य रचना है 'रसकलस'। यह एक रीतिग्रंथ है, जिसमें रस–स्वरूप और रस–प्रकारों का सूक्ष्म विवेचन है। नायिकाभेद–वर्णन और ऋतु वर्णन के अंतर्गत इन्होंने कुछ मौलिक स्थापनाएं भी की हैं। इनके द्वारा नवनिर्धारित नायिकाओं में पति–प्रेमिका, परिवार–प्रेमिका, लोक–सेविका आदि प्रमुख हैं। द्विवेदी–युगोत्तरकाल में रचित 'वैदेही–वनवास' भी एक श्रेष्ठ महाकाव्य है। यद्यपि कथानक के अपेक्षाकृत संक्षिप्त होने के कारण इसमें राम का शक्ति, सौंदर्य और शील–समन्वित चरित्र नहीं उभर सका है, फिर भी इसका महत्त्व अक्षुण्ण है। अपनी करुण सरलता में यह काव्य अद्वितीय है।

'हरिऔध' जी ने ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों में रचनाएं की हैं। ब्रजभाषा में 'रसकलस' की रचना हुई है, तो 'प्रियप्रवास' तथा 'वैदेही–वनवास' की खड़ीबोली में। इनके काव्य में एक ओर सरल और प्रांजल हिंदी का निरलंकार सौंदर्य है, तो दूसरी ओर संस्कृत की आलंकारिक समस्त पदावली की छटा भी विद्यमान है। एक एक स्थान पर मुहावरों और बोलचाल के शब्दों की झड़ी लगी हुई है,तो दूसरी जगह उन्हें तिलांजलि दे दी गयी है। कहीं वर्णनात्मक शैली का अजस्र प्रवाह है, तो कहीं चित्रात्मक शैली का चमत्कार। इन्होंने द्विवेदीयुगीन भाषा की कर्कशता में सरसता का संचार किया है। वास्तव में खड़ीबोली को काव्योपयुक्त बनाने वालों में ये अग्रगण्य हैं। इन्होंने दोहा, कवित्त, सवैया आदि के साथ ही संस्कृत के वर्णवृत्तों में काव्यरचना की है और इनको सभी में समान रूप से सफलता मिली है। छंदों और भावों के अनुरूप भाषा का प्रयोग करने की इनमें अद्‌भुत सामर्थ्य है। इनकी अपूर्व साहित्य–सेवा के कारण ही हिंदी–संसार इन्हें 'कवि सम्राट' के रूप में स्मरण करता है। दो बार हिंदी–साहित्य सम्मेलन का सभापति बना कर हिंदी जगत ने इनका यथोचित सम्मान किया। नागरीप्रचारिणी सभा, आरा ने अभिनंदनग्रंथ प्रदान कर इनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की थी। 'प्रियप्रवास' पर इन्हें हिंदी का सर्वोत्तम पुरस्कार 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' प्रदान किया गया था। इनकी काव्यशैली बड़ी मार्मिक और भावपूर्ण है।

'प्रियप्रवास' में ही कहीं–कहीं उन्होंने संस्कृतनिष्ठ भाषा का भी प्रयोग किया है। इसी प्रकार 'चुभते–चौपदे', 'चोखे चौपदे' और 'बोलचाल' मुहावरेदार भाषा में रचित सफल काव्य–कृतियां हैं।

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' – राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' (1868–1915) का जन्म जबलपुर में हुआ था। वहीं पर बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त कर इन्होंने कुछ दिन वकालत की और फिर कानपुर चले आये। वकालत के अतिरिक्त ये सार्वजनिक कार्यों में भी सोत्साह भाग लेते थे। ये संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे तथा वेदांत में इनकी विशेष रुचि थी। व्यावसायिक और सामाजिक कार्यकलाप में अत्यंत व्यस्त रहते हुए भी ये साहित्य के अध्ययन और प्रणयन में दत्तचित्त रहे। इनकी कविता बड़ी सरस एवं भावपूर्ण है। ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों पर इनका समानिधकार था। इन्होंने शृंगारादि परंपरागत विषयों पर ब्रजभाषा में तथा देशभक्ति आदि नवीन विषयों पर खड़ीबोली में काव्यरचना की है। प्रकृति–सौंदर्य की ओर भी इनका ध्यान गया था। इनके प्रकृति चित्र बड़े सरल और स्वाभाविक हैं। 'धाराधरधावन' (1902) शीर्षक से इन्होंने कालिदास के 'मेघदूत' का अत्यंत सरल पद्यबद्ध अनुवाद किया है। 'स्वदेशी कुंडल' (1910) में इनकी देशभक्तिपूर्ण 52 कुंडलियां संगृहीत हैं। 'मृत्युंजय' (1904), 'राम–रावण–विरोध' (1906) तथा 'बसंत–वियोग' (1912)।

रामचरित उपाध्याय – रामचरित उपाध्याय (1872–1938) गाजीपुर के रहने वाले थे। इनकी आरंभिक शिक्षा संस्कृत में हुई। बाद में इन्होंने ब्रजभाषा और खड़ीबोली पर भी अच्छा अधिकार प्राप्त किया। पहले ये प्राचीन विषयों पर ही कविताएं लिखते थे, किंतु आचार्य द्विवेदी के संपर्क में आने पर इन्होंने खड़ीबोली तथा नूतन विषयों को अपनाया। 'राष्ट्रभारती', 'देवदूत', 'देवसभा', 'विचित्र विवाह' आदि कृतियों के अतिरिक्त उपाध्याय जी ने 'रामचरितचिंतामणि' नामक प्रबंधकाव्य की भी रचना की है। कवित्व अथवा रामभक्ति की दृष्टि से विशेष महत्त्व की रचना न होने पर भी इसके रावण–अंगद–संवाद प्रभृति कतिपय स्थल बड़े मार्मिक बन पड़े हैं। उपाध्याय जी द्विवेदी युग के प्रमुख सूक्तिकार हैं। नीतिविषयक इनके पद्य 'सूक्ति–मुक्तावली' में संगृहीत है, जो इनके व्यापक अनुभव एवं लोकव्यवहारज्ञान के परिचायक हैं।

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' – कविवर 'सनेही' (1883–1972) का जन्म उन्नाव जिले के हड़हा ग्राम में हुआ था। ये उर्दू के भी अधिकारी विद्वान थे और हिंदी के साथ–साथ उर्दू में भी अच्छी कविता करते थे। हिंदी में इन्होंने प्राचीन और नवीन दोनों शैलियों की कविता लिखी है। खड़ीबोली में कवित्त और सवैया छंदों का प्रयोग करने में ये बड़े माहिर थे। उर्दू–बहरों का भी इन्होंने कुशल प्रयोग किया है। शृंगार आदि परंपरागत विषयों पर जहां ये 'सनेही' उपनाम से लिखते थे, वहां राष्ट्रीय भावनाओं की कविता को इन्होंने 'त्रिशूल' उपनाम से लिखा है। तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलनों के लिए इन्होंने अनेक प्रणय गीत और बलिदान गीत लिखे। पराधीन देश की दुर्दशा, आर्थिक विषमता, अस्पृश्यता आदि विषयों पर भी इन्होंने बड़ी मार्मिक एवं प्रभावी कविताओं का प्रणयन किया। ये कवि–सम्मेलनों में उत्साहपूर्वक भाग लेते थे तथा 'सुकवि' नामक काव्य पत्रिका के संपादक भी थे। 'कृषक–क्रंदन', 'प्रेम–पचीसी', 'राष्ट्रीय–वीणा', 'त्रिशूल–तरंग', 'करुण–कांदबिनी' आदि इनकी मुख्य काव्यरचनाएं हैं। इनकी रचनाओं में अपूर्व वाग्वैदग्ध्य, शब्द चमत्कार, उक्ति का अनूठापन तथा ऊहात्मकता मिलती है।

मैथिलीशरण गुप्त – मैथिलीशरण गुप्त (1886–1964) का जन्म चिरगांव (झांसी) में हुआ था। ये द्विवेदी–काल के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि थे। गुप्त जी की आरंभिक रचनाएं कलकत्ता से निकलने वाले 'वैश्योपकारक' में प्रकाशित होती थीं। बाद में इनका परिचय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से हुआ और इनकी कविताएं 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगीं। द्विवेदी जी के आदेश और उपदेश तथा स्नेहमय प्रोत्साहन के परिमाणस्वरूप इनकी काव्यकला में निखार आया। इनकी प्रथम पुस्तक 'रंग में भंग' का प्रकाशन सन् 1909 में हुआ, किंतु इनकी ख्याति का मूलाधार 'भारत–भारती' ने हिंदी भाषियों में जाति और देश के प्रति गर्व और गौरव की भावनाएं प्रबुद्ध कीं और तभी से ये राष्ट्रकवि के रूप में विख्यात हुए।

मैथिलीशरण गुप्त प्रसिद्ध रामभक्त कवि थे। इसके साथ ही इन्होंने भारतीय जीवन को समग्रता में समझने और प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया है। 'मानस' के पश्चात हिंदी में रामकाव्य का दूसरा स्तंभ मैथिलीशरण–कृत 'साकेत' ही है। वास्तव में आधुनिक युग में प्रबंधकाव्य की विलोपमान परंपरा के संरक्षक गुप्त जी ही है। इन्होंने दो महाकाव्यों और उन्नीस खंडकाव्यों का प्रणयन किया है। परंतु इस विपुलता में पिष्टपेषण नहीं है, वरन आधारभूत पृष्ठभूमि का समयोचित विस्तार है। इनका चरित्र चित्रण कौशल भी उत्कृष्ट प्रबंधकला का प्रमाण है। गुप्त जी ने 'तिलोत्तमा', 'चंद्रहास' और 'अनघ' नामक तीन नाटक, प्रायः सभी प्रकार के प्रगीत और मुक्तक भी लिखे हैं। किंतु नाटकों, प्रगीतों और मुक्तकों में ये वैसी भाव–सृष्टि नहीं कर पाये, जैसी कि प्रबंधकाव्यों में। वस्तुतः ये मूलतः प्रबंधकार थे, अन्य साहित्यरूपों में इनकी प्रतिभा को उचित विकास नहीं मिला। खड़ीबोली के स्वरूप–निर्धारण और विकास में इनका अन्यतम योगदान है। वास्तव में उसे काव्योपयुक्त रूप

प्रदान करने वालों में ये अग्रगण्य थे। यहां तक कि इनकी आरंभिक रचना 'जयद्रथवध' में भी खड़ीबोली का सरस–मधुर और प्रांजल रूप मिलता है। भारतीय संस्कृति के ये अनन्य प्रस्तोता थे। किंतु अंधानुकरण की प्रवृत्ति इनमें नहीं थी–कालांतर में आ जाने वाली विकृतियों से इनके साहित्य का सांस्कृतिक पृष्ठाधार एकदम मुक्त है। दूसरे, अपनी सांस्कृतिक परंपराओं में आस्था रखने पर भी इन्होंने युगधर्म की कभी उपेक्षा नहीं की। भारतीय संस्कृति के प्रवक्ता होने के साथ–साथ ये नवीन भारत के राष्ट्रीय कवि भी थे। इनकी प्रायः सभी रचनाएं राष्ट्रीयता से ओतप्रोत हैं। उत्तर भारत में राष्ट्रीयता के प्रचार और प्रसार में 'भारत–भारती' के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। इनकी परवर्ती रचनाएं भी असंदिग्ध रूप से राष्ट्रभावना से परिपूर्ण हैं। गुप्त जी के प्रमुख काव्यग्रंथ हैं–जयद्रथ–वध (1910), भारत–भारती (1912), पंचवटी (1925), झंकार (1929), साकेत (1931), यशोधरा (1932), द्वापर (1936), जयभारत (1952), विष्णुप्रिया (1957) आदि। 'प्लासी का युद्ध', 'मेघनादवध', 'वृत्र–संहार' आदि इनके द्वारा अनूदित काव्य हैं।

रामनरेश त्रिपाठी – रामनरेश त्रिपाठी (1889–1962) का जन्म जिला जौनपुर के अंतर्गत कोइरीपुर ग्राम में हुआ था। इन्होंने प्रारंभिक शिक्षा गांव की पाठशाला में ही पायी। अंग्रेजी पढ़ने के लिए ये जौनपुर के एक स्कूल में भर्ती हुए, किंतु अध्ययन का क्रम नवीं कक्षा से आगे नहीं चल सका। कविता के प्रति इनकी लड़कपन से ही रुचि थी। गांव की पाठशाला के प्रधानाचार्य ब्रजभाषा में कविता लिखते थे। ये भी समस्यापूर्तियां करने लगे। 'सरस्वती' पत्रिका के प्रभावस्वरूप ये खड़ीबोली की ओर उन्मुख हुए। त्रिपाठी जी के चार काव्यग्रंथ प्रकाशित हुए हैं–'मिलन' (1917), 'पथिक' (1920), 'मानसी' (1927) और 'स्वप्न' (1929)। इनमें से 'मानसी' इनकी फुटकर कविताओं का संग्रह है, जो मुख्यतः देशभक्ति, प्रकृति चित्रण और नीति निरूपण से संबद्ध है। 'मिलन', 'पथिक' तथा 'स्वप्न' काल्पनिक कथाश्रित प्रेमाख्यानक खंडकाव्य हैं। तीनों में व्यक्तिगत सुख और स्वार्थ को त्याग कर देश के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने की प्रेरणा दी गयी है। इन प्रबंधकाव्यों में यथास्थान प्रकृति के भी मनोरम चित्र मिलते हैं। कवि होने के साथ–सात त्रिपाठी जी सहृदय संपादक भी थे। 'कविता–कौमुदी' के आठ भागों में इन्होंने बड़ी योग्यता से हिंदी, उर्दू, बंगला एवं संस्कृत की कविताओं का संकलन और संपादन किया है। लोकगीतों का संग्रह भी इन्होंने बड़ी लगन और परिश्रम से किया तथा इस कार्य के निमित्त इन्हें पर्याप्त पर्यटन करना पड़ा।

सैयद अमीर अली 'मीर' – (1873–1937) का जन्म सागर (मध्यप्रदेश) में हुआ था। शैशव में ही पिता की मृत्यु हो जाने के कारण ये अपने चाचा के पास जिला सागर के देवरी ग्राम में रहे। साहित्य के क्षेत्र में इनका प्रवेश समस्यापूर्ति के माध्यम से हुआ। इनके कारण देवरी में 'मीर–मण्डल' कवि–समाज की स्थापना हुई। ये बड़े हिंदी–प्रेमी थे और उसे राष्ट्रभाषा बनाने के समर्थक थे। 'रामचरितमानस' के प्रति इनका विशेष अनुराग था। इनकी भाषा परिमार्जित खड़ी बोली है। ईश्वरभक्ति और देशप्रेम इनकी कविता के मुख्य विषय हैं। 'उलाहना–पंचक' और 'अन्योक्तिशतक' इनकी मुख्य काव्यकृतियां हैं।

कामताप्रसाद गुरु (1875–1947) का जन्म भी सागर (मध्यप्रदेश) में हुआ था। ये कई भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। इनकी कविता सरल और भावपूर्ण है। 'भौसासुर–वध' और 'विनय पचासा' इनके ब्रजभाषा में लिखे हुए पद्य ग्रंथ है। 'पद्य पुष्पावली' नाम से इनकी खड़ीबोली कविताओं का संग्रह प्रकाशित हुआ है। इनकी 'शिवाजी' और 'दासी रानी' शीर्षक कविताओं ने अच्छी प्रसिद्धि पायी। किंतु, इनकी ख्याति का विशेष कारण इनका व्याकरणग्रंथ है, जिसे आज भी हिंदी का आदर्श और प्रामाणिक व्याकरणग्रंथ स्वीकार किया जाता है।

गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' (1881–1961) का जन्म झालरामाटन (जयपुर) में हुआ था। इनकी अधिकांश शिक्षा काशी में हुई। 'सरस्वती' तथा अन्य पत्र–पत्रिकाओं में इनकी कविताएं बराबर छपती रहती थीं। इनकी कविताओं का मुख्य विषय स्वदेश–प्रेम था। ये हिंदी के अतिरिक्त संस्कृत के भी कवि थे। संस्कृत और बंगला से इन्होंने हिंदी में पद्यानुवाद भी किया है। इनकी मुख्य मौलिक काव्यरचना 'मातृ–वंदना' है।

रूपनारायण पांडेय (1884–1959) का जन्म लखनऊ में हुआ था। 'नागरी–प्रचारक', 'इंदु', 'माधुरी' आदि कई पत्रिकाओं का इन्होंने सफलतापूर्वक संपादन किया। आरंभ में ये ब्रजभाषा में कविता करते थे, किंतु द्विवेदी जी के प्रभाव से खड़ीबोली में काव्य–रचना करने लगे। इनका काव्य बड़ा सरस और भावुकतापूर्ण है। पशु पक्षियों तक इनकी सहानुभूति का प्रसार है। इन्होंने संस्कृत तथा बंगला–काव्यों के हिंदी में सरस अनुवाद भी किये हैं। 'पराग' (1924) तथा 'वन–वैभव' इनकी मौलिक कविताओं के संकलन हैं।

लोचनप्रसाद पांडेय – द्विवेदीयुगीन कवियों में **लोचनप्रसाद पांडेय** (1886–1959) को विशेष ख्याति प्राप्त है। इनका जन्म मध्यप्रदेश के बिलासपुर जिले के बालपुर गांव में हुआ था। हिंदी, उड़िया, अंग्रेजी एवं संस्कृत भाषाओं के ये अच्छे ज्ञाता थे। इन्होंने प्रबंध तथा मुक्तक दोनों प्रकार की रचनाएं लिखी हैं। नीति–उपदेश तथा चरित्रोत्थान इनकी कविता का प्रमुख विषय है। 'प्रवासी', 'मेवाड़गाथा', 'महानदी' तथा 'पद्य–पुष्पांजलि' इनकी मुख्य काव्य रचनाएं हैं। अपनी साहित्य–सेवाओं के कारण पांडेय जी को 'काव्य–विनोद' तथा 'साहित्यवाचस्पति' की उपाधियां प्राप्त हुईं।

ठाकुर गोपालशरण सिंह (1891–1960) नयी गढ़ी (रीवा राज्य) में उत्पन्न हुए थे। खड़ीबोली को परिमार्जित करने और उसे माधुर्यपूर्ण बनाने वालों में इनका नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने खड़ीबोली में ब्रजभाषा के समान सरस, मधुर कवित्त–सवैयों की रचना की है। इनकी कविता में जीवन की विविध दशाओं के भावपूर्ण चित्र मिलते हैं। 'माधवी', 'मानवी', 'संचिता' तता 'ज्योतिष्मती' इनकी प्रमुख काव्य–कृतियां हैं।

लोचनप्रसाद पांडेय के अनुज **मुकुटधर पांडेय** (जन्म 1895–1984) भी सुकवि थे। ये प्रकृति के उपासक थे। इनके काव्य में भावत्मकता, आंतरिक संवेदना और रहस्यात्मक अनुभूति के दर्शन होते हैं। ये द्विवेदी–युग के सर्वश्रेष्ठ प्रगीतकार माने जाते हैं। वस्तुतः इनके काव्य में छायावाद का पूर्वाभास मिलता है। 'पूजाफूल' तथा 'कानून–कुसुम' इनके प्रकाशित काव्य–संकलन हैं।

अन्य कवि – द्विवेदी–युग की काव्यसमृद्धि में कुछ अन्य कवियों का योगदान भी उल्लेखनीय है। कालक्रमानुसार इनमें प्रमुख हैं–बालमुकुंद गुप्त, भगवानदीन, अमीर अली 'मीर', कामताप्रसाद गुरु, गिरिधर शर्मा 'नवरत्न', रूपनारायण पांडेय, लोचनप्रसाद पांडेय, गोपालशरण सिंह और मुकुटधर पांडेय। यहां इनकी काव्यकला का संक्षिप्त विवेचन अभीष्ट है। **बालमुकुंद गुप्त** (1865–1907) का जन्म हरियाणा प्रदेश के रोहतक ज़िले के ग्राम गुड़ियाना में हुआ था। ये भारतेंदु युग और द्विवेदी युग को जोड़ने वाली कड़ी हैं। ये अच्छे कवि, अनुवादक और अपने समय के बहुत कुशल संपादक थे। इनकी कविताएं 'स्फुट कविता' (1905) में संकलित है और परिमाण में थोड़ी होने पर भी बड़ी प्रभावी हैं। राष्ट्रीयता और हिंदी–प्रेम इनकी कविताओं के मुख्य विषय हैं। ये बड़े ज़िंदादिल तथा विनोदशील व्यक्ति थे। तत्कालीन लेखकों से प्रायः इनकी नोंक–झोंक चलती रहती थी। लाला भगवानदीन (1866–1930) ने खड़ीबोली और ब्रजभाषा दोनों में सफलातपूर्वक काव्य रचना की है। ये काव्यशास्त्र के पंडित और मध्यकालीन काव्य के मर्मज्ञ थे। इनका जन्म फतेहपुर जिले के बरबर ग्राम में हुआ

था। ये हिंदी, उर्दू और फारसी के अच्छे ज्ञाता थे तथा 'दीन' उपनाम से कविता करते थे। उर्दू–बह्रों के प्रयोग में ये बड़े निपुण थे। इनकी ब्रजभाषा की कविताएं तो चिराचरित विषयों पर परंपरागत शैली में लिखी गयी हैं, किंतु खड़ी बोली में इन्होंने बड़ी ओजस्वी भाषा में वीरों के चरित्र लिखे हैं। 'वीर क्षत्राणी', 'वीर बालक' तथा 'वीर पंचरत्न' इसी प्रकार की रचनाएं हैं। 'नवीन बीन' इनका एक अन्य कविता–संग्रह है।

उपर्युक्त काव्य– निर्माताओं के अतिरिक्त और भी अनेक महानुभावों ने द्विवेदी युग में हिंदी काव्य की श्रीवृद्धि की है, जिनमें से लोकमणि, सत्यशरण रतूड़ी, मन्नन द्विवेदी पदुमलाल पुन्नलाल बख्शी, शिवकुमार त्रिपाठी, पार्वतीदेवी, तोषकुमारी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सियारामशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, प्रसाद, पंत तथा निराला ने भी इसी युग में कविता लिखना प्रारंभ कर दिया था, किंतु इनकी काव्यकला का वास्तविक विकास आगे चल कर ही हुआ।

7.3.2 प्रमुख प्रवृत्तियाँ – द्विवेदी युगीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं–

1. देश–भक्ति की कविता– इस युग के प्रत्येक कवि ने देश–भक्ति के सम्बन्ध में लिखा। भारतेन्दु युग की कविता देश–प्रेम, भाषा, वेश और भोजन तक सीमित थी, अब इस युग में उसकी परिधि बढ़ गई है। इस युग की कविता में राष्ट्रीय भावना जातीयता पर आधरित थी। इस समय राष्ट्रीय जागरण एक प्रकार से हिन्दू जागरण था। इस जागरण में इतिहास और परम्परा का अवलम्बन प्रधान था। वास्तव में इस काल के कवियों ने इतिहास के गौरव और महत्वपूर्ण परम्पराओं की काव्य–रचना की। उदाहरण के लिए, मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत', 'भारत–भारती', अयोध्यासिंह उपाध्याय का 'प्रिय–प्रवास', सत्यनारायण 'कविरत्न' का 'भ्रमर गीत' आदि में देश–भक्ति का स्वर सुना जा सकता है। इन कवियों ने तत्कालीन समाज की दयनीय अवस्था पर करुणा व्यक्त की है और अतीत को याद करते हुए वर्तमान समाज को जगाने का प्रयास किया है। इस युग के कवियों में देशभक्ति कूट–कूटकर भरी हुई है। मैथिलीशरण गुप्त ने स्पष्ट कहा है–

जिसको निज गौरव, न निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं है, पशु निरा है और मृतक समान है।।

देशभक्ति की भावनाओं को जगाते हुए कवि कहता है–

हम कौन थे क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी।
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।।

कवि शंकर की 'बलिदान गान' शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

देशभक्त वीरों मरने से नेक नहीं डरना होगा।
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।।

2. सुधारवादी दृष्टिकोण– द्विवेदी–युगीन कविता सुधारवादी भावनाओं से परिपूर्ण है। इस युग के कवियों ने अनेक कुरीतियों का वर्णन करके सुधारवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। इन कविताओं में बाल–विवाह, विधवाओं की दयनीय दशा, शिक्षा–प्रसार आदि भावनाओं को अभिव्यक्ति मिली है। अनेक कवियों ने किसान, मज़दूर, दलित व त्रस्त–जन

के दुःख दर्द को भी व्यक्त किया है जैसे–

भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बन्धन में।

सिन्धु पार वह बिलख रही है व्याकुल मन में।।

मात्र मनोरंजन की भावना से दूर हटकर कविता में उचित उपदेशात्मकता का समावेश करने पर बल दिया गया–

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।

उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।।

–मैथिलीशरण गुप्त

वासनात्मक प्रेम के स्थान पर प्रेम के उस स्वर्गीय रूप की झाँकी प्रस्तुत की गयी जो ईश्वर का प्रतिरूप है और इसीलिए हृदय को आलोकित करने वाला है।

गन्ध विहिन फूल हैं जैसे चन्द्र चन्द्रिका हीन।

यों ही फीका है मनुष्य का जीवन प्रेम विहीन।।

प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम अशंक अशोक।

ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम है प्रेम हृदय आलोक।।

–रामनरेश त्रिपाठी

3. सामाजिक चेतना– आधुनिक–युगीन काव्य में समाज–सुधार प्रमुख स्वर रहा है। इस युग में हर कवि ने समाज में व्याप्त बुराइयों पर अपनी लेखनी चलाई है। इसका प्रतिबिम्ब इस युग के काव्य में साफ दिखाई देता है। यहाँ समाज–सुधार पर बराबर रचनाएं हुई। श्रीधर पाठक ने विधवाओं के पुनर्विवाह का समर्थन किया। नाथूराम शंकर शर्मा ने बाल–विवाह पर व्यंग्य किए। दहेज–प्रथा की आलोचना की गई । मैथिलीशरण गुप्त ने अस्पृश्यता को समाप्त करने की वकालत की और समाज के पिछड़े वर्गों तथा किसानों के प्रति सहानुभूति प्रकट की। इस प्रकार देश–प्रेम की भावना तथा सामाजिक सुधार की प्रवृत्ति इस काल के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ है। इसलिए इस काल को पुनरूथान अथवा पुनर्जागरण काल की संज्ञा भी दी जाती है। ठाकुर गोपाल शरण सिंह 'नेपाली' के शब्दों में–

जग की सेवा करना ही, बस है सब स्वरों का सार।

विश्व प्रेम के बन्धन में ही, मुझको मिला मुक्ति का द्वार।।

'पंचवटी' में अछूतोद्धार की भावना व्यक्त करते हुए कवि कहता है–

इन्हें समाज नीच कहता है, पर हैं ये भी तो प्राणी।

इनमें भी मन और भाव हैं, किंतु नहीं है वैसी वाणी।।

इस काल के कवियों ने अपने युग की भावनाओं को आत्मसात् करके अपने काव्य में प्रकट किया है। इन कवियों ने समाज–सुधार, स्वदेश–प्रेम, त्याग, वीरता आदि युगीन भावनाओं को अपने काव्य में प्रकट किया है। इस काल की कविता में उस युग की सामाजिक चेतना को सहज रूप से देखा जा सकता है। इस सन्दर्भ में मैथिलीशरण गुप्त की पंक्तियाँ देखते ही बनती हैं–

एक–एक सौ–सौ कंसों को ललकारो।

मातृ–भूमि के ऊपर धन जीवन सब वारो।।

गुप्त जी ने 'साकेत' में राम के मुँह से स्पष्ट कहलवाया है–

मैं आर्यों का आदर्श बताने आया।

जन सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।।

सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया।

इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।।

4. प्रकृति–चित्रण– इस युग में प्रकृति का चित्रण तथ्यपूर्ण शैली में हुआ है। कवियों ने प्रकृति का अनेक रूपों में वर्णन किया है। श्रीधर पाठक ने कश्मीर की सुषमा का मनोरम वर्णन किया है–

प्रकृति जहाँ एकांत बैठि, निज रूप सँवारति।

पल–पल पलटति वेष, छनिक, छवि छिन्न–छिन्न धरंति।।

गुप्त जी लिखते हैं–

चारू चन्द्र की चंचल किरणें, खेल रही हैं जल–थल में।

स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है, अवनि और अंबर तल में।।

5. देश के अतीत गौरव व संस्कृति का वर्णन– इस युग के कवियों ने देश के अतीत के गौरव का पौराणिक और ऐतिहासिक सन्दर्भों द्वारा वर्णन किया है। हरिऔध, नाथूराम शंकर ने अपनी कविताओं में अतीत के गौरव का चित्र प्रस्तुत किया है। गुप्त जी ने अपने काव्य में भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल रूप स्पष्ट किया है।

सामान्य जनता में राष्ट्र के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिये भारत के गौरवपूर्ण अतीत और उसकी

प्राकृतिक छटा की भावपूर्ण छवियाँ अंकित की गयी हैं। गुप्त जी ने 'भारत–भारती' में भारत की श्रेष्ठता की घोषणा निम्नलिखित शब्दों में की है–

भूलोक का गौरव प्रकृति का पुण्य लीलास्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है।
उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन ? भारतवर्ष है।

6. अनुवाद की प्रवृत्ति– इस युग के कवियों में अन्य भाषाओं के काव्य का हिन्दी में अनुवाद करने की प्रवृत्ति भी दिखलाई पड़ती है। अनेक ग्रन्थों का हिन्दी–काव्य में अनुवाद किया गया है। गुप्त ने माइकल सूदन के 'मेघनाथ वध' तथा 'विरहिणी ब्रजांगना' का अनुवाद किया । इस प्रकार श्रीधर पाठक ने गोल्ड स्मिथ के 'हरमिट' का अनुवाद 'एकांतवासी योगी' के नाम से किया। एक अन्य रचना 'ट्रेवलर' नामक कविता का 'श्रांत पथिक' के नाम से अनुवाद किया।

7. इतिवृत्तात्मकता– इतिवृत्तात्मकता इस युग की अन्य प्रमुख विशेषता है। इतिवृत्त का अर्थ है वृतान्त या वर्णन। इस युग के कवियों ने आदर्शों को प्रतिष्ठापित करने तथा नैतिकता के प्रचार के लिए इसी पद्धति को अपनाया। वास्तव में यह वर्णन–प्रधान शैली है। द्विवेदी युग में प्रबन्ध रचना की प्रवृत्ति है। खण्डकाव्य एवं महाकाव्य अधिक लिखे गए, मुक्तक रचना की प्रवृत्ति कम है। प्रिय प्रवास एवं साकेत इस युग के प्रमुख महाकाव्य हैं। 1907 में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित एक कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में इतिवृत्तात्मक शैली का स्वरूप स्पष्ट हो जाएगा–

विद्या तथा बुद्धिनिधि प्रधान, न ग्रंथ होते यदि विद्यमान।

तो जानते क्योंकर आज मित्र, स्वपूर्वजों के हम सच्चरित्र।

हे ग्रंथ! द्रव्यादि न एक लेते, तो भी सुशिक्षा तुम नित्य देते।

8. अभिव्यक्ति पक्ष– इस युग के कवियों ने प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों प्रकार की रचनाएं की हैं, किन्तु प्रबन्ध–क्षेत्र में उन्हें अधिक सफलता मिली है। 'प्रिय प्रवास', वैदेही वनवास, 'साकेत' तथा 'रामचरित चिंतामणि' इस युग के महत्त्वपूर्ण प्रबन्ध–काव्य हैं। उनके अतिरिक्त 'जयद्रथ वध', 'पंचवटी', 'पथिक', स्वप्न' आदि खण्ड–काव्य भी लिखे गए। गीत और मुक्त–काव्य भी रचे गए, किन्तु सफलता प्रबन्ध–काव्यों को ही मिली है।

भाषा की दृष्टि से द्विवेदी युग सुधारवादी युग माना जाता है। अब ब्रज भाषा का स्थान खड़ी बोली ने ले लिया है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भाषा सुधार का कार्य किया तथा खड़ी बोली को स्वतन्त्र, व्याकरण–सम्मत और परिमार्जित किया। उधर मैथिलीशरण गुप्त ने खड़ी बोली की खड़खड़ाहट को दूर करके इसे साहित्यिक भाषा बनाया। छन्द तथा अलंकार के क्षेत्र में भी काफी परिवर्तन हुआ । रोला, छप्पय, सार, हरिगीतिका, लावनी, सरसी, उपेद्रवज्रा, इन्द्रवज्रा आदि छन्दों का खूब प्रयोग हुआ है। अलंकार की दृष्टि से भी यह काव्य अत्यन्त

समृद्ध माना जाता है। शब्दालंकारों के साथ–साथ अर्थालंकारों का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है। भाषा का एक नमूना देखिए–

यदि कोई पीड़ित होता है, उसे देख सब घर रोता है।

देश दशा पर प्यारे भाई–आई कितनी बार रुलाई।

7.4 सारांश

हिन्दी कविता को प्राचीन रूढ़िबद्धता से पृथक करने में इस युग के कवियों का विशेष योगदान है। काव्य भाषा के रूप में खड़ी बोली हिन्दी को प्रतिष्ठित किया गया तथा गद्य क्षेत्र में भाषा का परिष्कार कर उसे व्याकरण सम्मत बनाया गया। हिन्दी कविता को शृंगारिकता से राष्ट्रीयता, जड़ता से प्रगति और रूढ़िवादिता से स्वच्छन्दता की ओर ले जाने में इन कवियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

7.5 कठिन शब्द

1.रूढ़िबद्वता, 2. पौराणिक, 3.इतिवृत्तात्मकता, 4. नैतिकता, 5.प्रतिबिम्ब

6. तथ्य 7.मूल्यांकन, 8,उज्जवल, 9.पल्लवित, 10.प्रांगण

7.6 संभावित प्रश्न :

1. आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का साहित्यिक परिचय दीजिए।

_____

_____

_____

_____

2. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के कवित्व पर टिप्पणी कीजिए।

_____

_____

_____

_____

3. इतिवृत्तात्मकता पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

4. द्विवेदी युगीन कविता के अभिव्यक्ति पक्ष पर विचार कीजिए।

_____

_____

_____

_____

5. द्विवेदी युगीन कविता का मूल्यांकन कीजिए।

_____

_____

_____

_____

6. माखनलाल चतुर्वेदी के कवित्व का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

_____

_____

_____

_____

7. द्विवेदीयुगीन कवि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के कवित्व पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

8. द्विवेदी युगीन प्रवृतियों को स्पष्ट करें।

_____

_____

_____

_____

7.7 पठनीय पुस्तकें

1. नामवर सिंह – छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1990
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी – ग्रंथावली, भाग–3, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1981
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
4. रामस्वरूप चतुर्वेदी – हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1993
5. डॉ. नगेन्द्र (सं.) – हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली 1982
6. डॉ. जयकिशन प्रसाद – हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
7. डॉ. नामवर सिंह – आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, राजकमल प्रकाशन – नई दिल्ली,

.....

छायावाद

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 छायावाद का स्वरूप और परिभाषा

8.3 छायावाद की पृष्ठभूमि

8.4 प्रमुख छायावादी कवि

8.5 छायावाद की प्रवृत्तियाँ

8.5.1 संवेदनागत पक्ष

8.5.2 शिल्पगत पक्ष

8.6 छायावाद की उपलब्धियाँ

8.7 सारांश

8.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.9 संदर्भ ग्रन्थ

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप – छायावाद के स्वरूप और नामकरण सम्बन्धी विभिन्न संदर्भों को जान सकेगें।

- छायावाद के आगमन की पृष्ठभूमि से परिचित हो सकेंगें।
- प्रमुख छायावादी कवियों और उनकी रचनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेगें।

- छायावादी कविता की संवेदना और शिल्पगत पक्षों का विश्लेषण कर सकेंगें।
- आधुनिक हिन्दी कविता में छायावाद के महत्व को रेखांकित कर सकेगें।

8.1 प्रस्तावना :–

सामान्यतः आधुनिक युग के हिन्दी काव्यों को भारतेंदु युग, द्विवेदीयुग, छायावादी युग, प्रगतिवादी युग, प्रयोगवादी युग, नई कविता और समकालीन कविता में विभाजित किया जाता है।

गणपति चन्द्रगुप्त ने 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' नामक पुस्तक में प्रत्येक युग की पूर्वापर स्थिति, चेतना और नयी परम्पराओं के प्रवर्तन के अनुसार आधुनिक हिन्दी कविता का विभाजन इस प्रकार है

स्वतन्त्रता पूर्व युग	स्वातन्त्र्योतर युग
1. आदर्शमूलक चेतना – (क) आदर्शवादी मुक्तक–गीति परम्परा : (भारतेन्दु–मण्डल का काव्य) (ख) आदर्शवादी प्रबन्ध परम्परा : (द्विवेदी–मण्डल का काव्य)	नव सांस्कृतिक काव्य–परम्परा
2. स्वच्छन्दतामूलक चेतना – स्वच्छन्दतावादी काव्य–परम्परा (छायावादी काव्य–परम्परा)	नव स्वच्छन्दतावादी परम्परा/नवगीत परम्परा
3. यथार्थमूलक चेतना – समाजपरक यथार्थवादी काव्य–परम्परा (प्रगतिवादी काव्य–परम्परा)	प्रगतिशील काव्य–परम्परा
4. व्यक्तिपरक यथार्थवादी काव्य–परम्परा (प्रयोगवादी काव्य–परम्परा)	नयी कविता तथा उससे प्रेरित अन्य काव्यान्दोलन व काव्य–परम्पराएं

सन् 1960 के बाद विभिन्न काव्य–परम्पराओं की प्रेरणा या उनकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप अनेक काव्य–आन्दोलनों – अकविता, सहजकविता, विचार कविता, समकालीन कविता आदि – का भी प्रवर्तन हुआ।

जैसा की उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि स्वच्छन्दता मूलक चेतना के फलस्वरूप छायावादी काव्य सामने आया। द्विवेदी के काव्य में धीरे–धीरे इतिवृत्तात्मकता, आदर्शवादित उपदेशात्मकता आदि काव्य से इतर मूल्य हावी होने लगे थे, पाठक की रसानुभूति में बाधा बन रहे थे परिणामतः इसकी प्रतिक्रियास्वरूप बाह्य बंधनों से मुक्त होने की इच्छा, स्वच्छन्द मन से कविता लिखने की इच्छा उत्पन्न हुई और 'छायावाद' काव्य अस्तित्व में आया। छायावादी काव्य में संवेदना और शिल्प दोनों स्तरों पर अमिट छाप छोड़ी। छायावादी चतुष्टय नाम से प्रसिद्ध प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा ने अपने सृजन से हिन्दी आधुनिक कविता को समृद्ध किया। छायावाद का संबंध जहाँ चित्रण की विशेष शैली से जोड़ा जाता है, वहीं 'रहस्यवाद' अज्ञात की जिज्ञासा या कौतूहल से संबद्ध है और 'स्वच्छंदतावाद' सघन रिश्ता रूढ़ियों से मुक्ति से जुड़ता है।

8.2 छायावाद का स्वरूप और परिभाषा (वादों की कविता – छायावाद)

सामान्यतः सन् 1918 से 1938 तक काव्य की प्रमुख धारा को छायावाद कहा गया है। यह नामकरण किसके द्वारा और किस आधार पर किया गया इस सम्बन्ध में सर्वसम्मति से कहना कुछ कठिन है।

हिन्दी की कुछ पत्र–पत्रिकाओं – 'श्री शारदा' और 'सरस्वती' – में क्रमशः 1920 और 1921 में मुकुटधर पांडेय और श्री सुशीलकुमार द्वारा दो लेख 'हिन्दी में **छायावाद**' शीर्षक से प्रकाशित हुए थे, अतः कहा जा सकता है कि इस नाम का प्रयोग सन 1920 या उससे पूर्व से होने लग गया था। संभव है कि श्री मुकुटधर पांडेय ने ही इसका सर्वप्रथम आविष्कार किया हो।

स्वयं छायावादी कवियों ने इस विशेषण को बड़े प्रेम से स्वीकार किया है; एक और **श्री जयशंकर प्रसाद** लिखते हैं – ''छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति व अभिव्यक्ति की भंगिमा पर निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक–विधान तथा उपचार–वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ हैं।'' दूसरी ओर **महादेवी जी** भी प्रसाद के स्वर में स्वर मिलाती हुई कहती हैं – ''स्वच्छन्द छंद में चित्रित उन मानव अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त लगता है।'' **डॉ. रामकुमार वर्मा** ने भी शुक्ल जी की भाँति छायावाद को रहस्यवाद का अभिन्न रूप स्वीकार करते हुए लिखा है – ''परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा में, यही छायावाद है।''

छायावाद की परिभाषा

छायावाद को कई विद्वानों ने परिभाषित करने का प्रयत्न किया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रहस्यवाद के अर्थ में और काव्यशैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में छायावाद शब्द का प्रयोग किया।

डॉ. नगेन्द्र ने छायावाद को एक ओर ''स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह'' माना है तो दूसरी ओर वे स्वीकार करते हैं – ''छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव–पद्धति है; जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है।''

गंगा प्रसाद पाण्डेय : ''किसी वस्तु में एक अज्ञात, सप्राण छाया की झाँकी पाना अथवा आरोप करना छायावाद है।''

पं. नंददुलारे वाजपेयी : ''मानव तथा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भाव ही छायावाद है। रहस्यवाद और छायावाद में अंतर है। छायावाद व्यक्त सौंदर्य सृष्टि से सम्बन्ध रखता है और रहस्यवाद समष्टि सौंदर्य दृष्टि है।''

''छायावाद की मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है।''

डॉ. रामविलास शर्मा : ''छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं रहा वरन् थोथी नैतिकता, रूढ़िवाद और सामन्ती साम्राज्यवादी बंधनों के प्रति विद्रोह रहा है।''

द्विवेदीकालीन अति उपदेशवाद से, मर्यादाओं से, रूढ़ियों से भी इस काव्य ने विद्रोह किया था। इस कारण इस परिभाषा में भी कुछ सीमा तक तथ्य है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से छायावाद के स्वरूप और उसकी अनेक विशेषताओं का पता चलता है वस्तुतः छायावाद एक काव्य आन्दोलन है जिसे सीधे–सादे शब्दों में मर्यादित नहीं किया जा सकता। यह एक विशेष प्रकार की काव्य कृति है। एक विशेष प्रकार की मानसिक चेतना है जिसमें व्यक्ति अन्तर्मुखी होकर अन्तर्जगत को, भावात्मकता को, कल्पना को, सौंदर्य को, नूतनता को, मानवीयता को और प्रेम वेदना को महत्व देने लगता है। वस्तुतः ''छायावाद'' की व्याख्या इतनी कठिन नहीं, जितनी कठिनता समीक्षकों ने उसे स्व–स्व–मत–प्रतिपादनार्थ प्रदान करने का कष्ट उठाया है। कवियों को जब स्थूल जगत् के चित्रण से निराशा होने लगी तथा उनकी प्रेम और सौन्दर्य की भावनाओं को अपनी अभिव्यक्ति का क्षेत्र बाहर न मिला, तो वे आन्तरिक क्षेत्र में अपनी अभिव्यक्ति ढूँढने लगीं, तो काव्य की नई भाव–धारा ''छायावाद'' कहलाई।

8.3 छायावाद की पृष्ठभूमि

छायावादी काव्य पर अपने युग की विभिन्न परिस्थितियों का प्रभाव परिलक्षित होता है। राजनीतिक दृष्टि से प्रथम महायुद्ध के अनन्तर भारतीय स्वातंत्र्य–आन्दोलन ने एक नयी करवट ली। युग में गाँधी जी के नेतृत्व में सत्य, अहिंसा एवं असहयोग की सूक्ष्म शक्ति का प्रयोग होने लगा। छायावादी कवि तत्कालीन राजनीतिक आन्दोलनों के प्रति उदासीन से थे, किन्तु इस उदासीनता का कारण उनका 'वैयक्तिकता' में लीन हो जाना है, राजनीतिक निराशा नहीं।

धर्म और दर्शन के क्षेत्र में इस युग में रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द गाँधी, टैगोर तथा अरविन्द जैसे महान व्यक्तियों का आविर्भाव हुआ है, जिनके प्रभाव से स्थूल एवं संकुचित हिन्दुत्व के स्थान पर व्यापक विश्व–धर्म की प्रतिष्ठा हुई। हमारे प्राचीन अद्वैतवाद व सर्वात्मवाद के दर्शन ने भी छायावाद को कम प्रभावित नहीं किया। कवयित्री **महादेवी** का तो यहाँ तक विश्वास है कि ''छायावाद का कवि, धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है। बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखण्डता का भावन किया, हृदय की भाव–भूमि पर उसने प्रकृति में बिखरी सौन्दर्य–सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति की और दोनों के साथ स्वानुभूत सुख–दुखों को मिलाकर एक ऐसी काव्य–सृष्टि उपस्थित कर दी जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद, छायावाद आदि अनेक नामों का भार संभाल सकी।'' पाश्चात्य साहित्य ने भी हमारे छायावादी काव्य को कम प्रभावित नहीं किया।

अंग्रेजी साहित्य की रोमांटिक कविता उन्हें अधिक सच्ची लगी। इसी काल में बंगला में रवीन्द्र काव्य की धूम मची थी। रवीन्द्र की कविता मुक्त और स्वच्छंद मन की, मानवतावादी स्वर की तथा आध्यात्मिकता का पुट लेकर आयी थी। तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ इतनी प्रतिकूल

थीं कि व्यक्ति निराश और उदास हो चुका था। ऐसे समय कल्पना का महल बनाकर वह उसमें खो जाना चाह रहा था।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि छायावाद के उदय में द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता, अंग्रेजी का रोमांटिक काव्य, रवीन्द्र की कविता, मानवतावादी व आध्यात्मिक दृष्टि, अद्वैत दर्शन, नवजागरण आदि की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

8.4 छायावाद के प्रमुख कवि :–

1. जयशंकर प्रसाद

''चित्राधार, कानन कुसुम, झरना, आंसू, लहर, प्रेम पथिक, करुणालय, महाराणा का महत्व'' आदि प्रसाद कृत काव्यसंग्रह हैं। प्रसाद कवि होने के साथ ही एक गंभीर विचारक और दार्शनिक थे। उनके दार्शनिक व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति **'कामायनी'** में हुई है। बुद्धि और श्रद्धा के माध्यम से 'मनु' के व्यक्तित्व की व्याख्या इसमें की गई है। छायावाद की सभी विशेषतायें प्रसाद–काव्य में मिलेंगी। एक ओर यहाँ प्रकृति और नारी के प्रति उदार और ममतामय दृष्टिकोण है। प्रेम की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति भी है और सूक्ष्म सौंदर्य बोध भी। 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से' जैसी प्रखर राष्ट्रीय स्वर की कविताएँ भी यहाँ है।

इनकी रचनाओं में इतिहास और संस्कृति की अभिव्यक्ति अधिक हुई है।

2. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

'निराला' इनका साहित्यिक नाम है और इस नाम को सभी दृष्टियों से वे सार्थक करते हैं। विषय, शिल्प, भाषा और व्यक्तित्व इन सबमें वे 'निराला' ही रहे। चार प्रमुख छायावादी कवियों में निराला सबसे अधिक विद्रोही व्यक्तित्व लेकर आये। अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तनों के ये सृष्टा रहे। 1923 से 1958 इन पैंतीस वर्षों तक ये काव्य सृजन करते रहे। इनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ इस प्रकार हैं – **अनामिका** (1923), **परिमल** (1930), **गीतिका** (1936), **तुलसीदास** (1938), **कुकुरमुत्ता** (1942), **अणिमा** (1943), **बेला** (1943), **अपरा** (1946), **नये पत्ते** (1946), **अर्चना** (1950), **आराधना** (1953), और **गीतगुंज** (1958)। 'कुकुरमुत्ता' उनकी परिवर्तित काव्य दृष्टि को स्पष्ट करता है। 1946 के 'नये पत्ते' में परिवर्तन की तीसरी दिशा स्पष्ट होती है। इस प्रकार निराला का काव्य–व्यक्तित्व छायावाद से लेकर प्रयोगवाद के कवियों तक को प्रेरित और प्रभावित करता रहा है।

काव्य क्षेत्र में निराला का सबसे बड़ा योगदान 'मुक्त छन्द' की स्थापना का है। परम्पराबद्ध छन्दों के बंधनों को तोड़कर इन्होंने मुक्तछन्द से सरस रचनायें लिखीं। 'शास्त्रीय संगीत' के वे जानकार थे। इसी कारण उनके काव्य में काव्य और संगीत का अद्‌भुत समन्वय हुआ है।

3. महादेवी वर्मा

मीरा की तरह महादेवी भी 'वेदना' और पीड़ा की कवयित्री हैं। इनके काव्य में वेदना अपनी

संपूर्ण गरिमा और गहराई को लेकर प्रकट हुई है। 1924 से 1942 तक इनका रचना काल फैला हुआ है। इनके कुल पाँच काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं – **नीहार** (1930), **रश्मि** (1932), **नीरजा** (1934), **सांध्य गीत** (1936), **दीपशिखा** (1940)। 'यामा' में प्रथम चार संग्रहों के गीत एकत्र किये गये हैं।

छायावाद की एक प्रवृत्ति 'रहस्यवाद' की अधिक अभिव्यक्ति इनमें हुई है। इनके रहस्यवाद की अपनी विशिष्टता है। उस परम सत्ता के प्रति इनमें जिज्ञासा है; मिलन के लिए प्रयत्न भी है। परंतु वे पूर्ण मिलन नहीं चाहती। विरह को ही स्वीकार करके जीना चाहती हैं। 'मिलन का मत नाम ले मैं, विरह में चूर हूँ'। यह वेदना लौकिक वेदना से भिन्न आध्यात्मिक ही है। प्रकृति के माध्यम से ही यह वेदना साकार हो उठी है। गीतिशैली ही इनकी प्रधान शैली रही है। गीति काव्य के सारे लक्षण संक्षिप्तता, वैयक्तिकता, तीव्र भावात्मकता, संगीतात्मकता–इनके गीतों में मिलते हैं। इसी कारण शुक्लजी ने लिखा – ''गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी को हुई वैसी और किसी को नहीं।'' उनकी प्रेमानुभूति की तीव्रता को स्वीकार किया है।

4. सुमित्रानन्दन पन्त

पंत मूलतः सौंदर्य और प्रकृति के कवि रहे हैं। अन्य छायावादी कवियों की तुलना में पंत का काव्य–व्यक्तित्व विकासमान रहा है। छायावादी काव्य की पूर्ण प्रतिष्ठा करने का श्रेय भी इन्हें रहा है। छायावादी, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी काव्य प्रवृत्तियाँ इनके काव्य में देखी जा सकती हैं। **उच्छ्वास** (1920), **ग्रंथि** (1920), **वीणा** (1927), **पल्लव** (1928), **गुंजन** (1932) इनके छायावादी काव्य संग्रह हैं। 1936 में युगांत लिखकर उन्होंने छायावादी युग के अन्त की सूचना दी।1928 में प्रकाशित 'पल्लव' की भूमिका को छायावाद का घोषणा पत्र (मेनिफेस्टो) माना गया है। द्विवेदी कालीन कविता के प्रति अपनी नाराज़गी व्यक्त करते हुए पन्त जी ने छायावादी विशिष्ट काव्यधारा को स्थापित करने का प्रयत्न इस भूमिका में किया हैं, क्योंकि छायावादी सौंदर्य चेतना के मुख्य आधार हैं; प्रकृति और नारी। प्रकृति और नारी सौंदर्य का जो सूक्ष्म अंकन पंत ने किया है, वह विशिष्ट है। इनके काव्य में रहस्यवादी काव्य का स्वर भी मिलता है। उनकी सौंदर्य प्रिय दृष्टि प्रकृति के कण–कण में सौंदर्य को खोजती रही। 'प्रकृति का मानवीय' यह पंत काव्य की सबसे प्रधान विशेषता है। छायावादी काव्य को अधिक सरस, सूक्ष्म सौंदर्य बोध से युक्त, प्रकृति एवं सौंदर्य से मंडित करने का श्रेय पंत जी को है।

8.5 छायावाद की प्रवृत्तियाँ :

संवेदनागत पक्ष

1. **आत्माभिव्यक्ति :** यह प्रवृत्ति छायावादी कवियों में सर्वाधिक मात्रा में है। यह काव्य ही 'स्व' की चेतना का काव्य है। प्रसाद, महादेवी, निराला, पंत का काव्य उदाहरण स्वरूप है। वैयक्तिकता के कारण ही ये कवि अन्तर्मुखी हो जाते हैं। इन चारों कवियों में वैयक्तिकता

के सूचक शब्द ढेरों की संख्या में मिलेंगे। मस्तक, आँसू, स्मृति, यादें, वेदना, अकेलापन आदि इसी प्रकार के शब्द हैं। लहर, झरना, आँसू (प्रसाद), पल्लव, वीणा, ग्रंथि (पंत) गीतिका (निराला) दीपशिखा, यामा (महादेवी) की रचनाएँ इस वैयक्तिकता की वृत्ति के प्रमाण हैं। यह आत्माभिव्यक्ति धीरे–धीरे विशालता और उदात्तता की ओर मुड़ने लगती है।

व्यक्ति (कवि) के निज की सुख दुःखमयी अनुभूतियों की अभिव्यंजना हुई। प्रसाद जी ने **काव्य को संकल्पात्मक अनुभूति** माना है और छायावाद के उद्‌भव का कारण स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति को स्वीकार किया है। 'निराला', महादेवी वर्मा और बच्चन की रचनाओं में अपने हर्ष और विषाद की गहरी छाप है। 'प्रसाद' जी 'कामायनी' के 'श्रद्धासर्ग में मनु के माध्यम से कहते हैं कि –

क्या कहूँ ? क्या कहूँ मैं उद्‌भ्रान्त
विवर में नील गगन के आज
वायु की भटकी एक तरंग
शून्यता का उजाड़ा–सा राज

2. **सौंदर्य बोध :** छायावादी कवियों ने वस्तु के सूक्ष्म सौंदर्य की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया। इस सौंदर्य दर्शन में उनकी वैयक्तिक दृष्टि प्रधान थी ही। सौंदर्य चित्रण का अर्थ ही अब तक हमने स्त्री सौंदर्य से किया था। परंतु इन कवियों ने बाह्य जीवन में व्याप्त अनेक छोटी–मोटी वस्तुओं का, एक नया कलात्मक, सौंदर्यमूलक परिचय करा दिया है। इन कवियों ने सौंदर्य को उदात्ता, भव्यता और दिव्यता प्रदान की है। पंत की दृष्टि में मानव सृष्टि का सबसे सुन्दर प्राणी है :

सुंदर हैं विहग सुमन सुंदर
मानव तुम सबसे सुंदरतम!

कामायनी में श्रद्धा के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं :

नील परिधान बीच सुकुमार
खिल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघवन बीच गुलाबी रंग।
घिर रहे थे घुँघराले बाल
अंस अवलम्बित मुख के पास।

नील–घन–शावक से सुकुमार

सुधा भरने को विधु के पास।

3. **प्रकृति चित्रण :** प्रकृति चित्रण छायावाद की अन्यतम प्रवृत्ति है। छायावादी कवियों ने वीर, भक्ति, श्रृंगार, नीति, राष्ट्रीयता और सामाजिकता की सीमा को लांघकर स्वच्छन्द प्रेम और प्रकृति चित्रण को काव्य विषय के रूप में स्वीकार किया। इन कवियों ने प्रकृति के माध्यम से ही अपनी अनुभूतियों को व्यक्त किया है। प्रकृति उनके लिए साध्य भी है और साधन भी।

प्रसाद की कामायनी में हिमालय का वर्णन, निराला की बादल राग, संध्या सुन्दरी, जुही की कली आदि कविताएँ। पंत की 'नौका–विहार' तथा 'चान्दनी' शीर्षक कविता, 'चिदम्बरा' में संग्रहित पन्त की कविताएँ प्रकृति के आलम्बन रूप हैं। प्रकृति का मानवीकरण छायावाद की सबसे प्रधान विशेषता है। प्रकृति के सूक्ष्म सौंदर्य के कारण ये कवि उनमें रहस्यमयी शक्ति का अनुभव करने लगते हैं। प्रकृति मात्र प्रकृति नहीं अज्ञात सत्ता का संकेत देने वाली हो जाती है।

पंत के काव्य की मूल उद्‌गम स्थली प्रकृति ही रही है तभी तो वह लिखते हैं :

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले! तेरे बाल–जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन।

'संध्या सुंदरी' का मानवीकरण कवि निराला ने अत्यन्त काव्यात्मक और कलात्मक ढंग से किया है –

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या सुंदरी परी–सी
धीरे, धीरे, धीरे।

4. **मानवतावादी स्वर :** मानवतावादी स्वर की अभिव्यक्ति इस काव्य की ही नहीं सम्पूर्ण युग की विशेषता है । धर्म, राष्ट्र आदि के बंधनों को त्याग कर मनुष्य मात्र के कल्याण की बात इस समय के श्रेष्ठ चिंतक कर रहे थे। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर 'विश्वभारती' की बात कह चुके थे । युग की इस चिन्ता के साथ छायावादी कवि अनुभूति के स्तर पर जुड़ गये हैं। 'आनंद' की प्राप्ति यह मनुष्य मात्र ध्येय बन जाता है। पन्त और निराला में दीन–दलितों के प्रति करुणा और सहानुभूति व्यक्त हुई है। प्रसाद जी ने अपनी कृति कामायनी में मानव कल्याण की भावना से लिखा है –

औरों को हँसते देखो मनु

हँसों और सुख पाओ।

अपने सुख को विस्तृत कर लो

जग को सुखी बनाओ।

5. **रहस्यवादी स्वर :** रहस्यवाद की तीनों स्थितियाँ अज्ञात के प्रति जिज्ञासा, मिलन के लिए प्रयत्न तथा अद्वैतावस्था यहाँ प्रकट हुई है। 'झरना' तथा 'लहर' (प्रसाद) में संग्रहित रचनाओं में इस सत्ता के प्रति जिज्ञासा व्यक्त हुई है। निराला की 'परिमल', 'अपरा' तथा 'गीतिका' की रचनाओं में रहस्यवादी गीत है। महादेवी की 'दीपशिखा', 'यामा' तथा पंत के 'पल्लव' में इस प्रकार की रचनाएं हैं। प्रसाद तथा महादेवी उस अज्ञात के प्रति माधुर्य भाव से अपनी अनुभूतियाँ व्यक्त करती हैं। महादेवी वर्मा की कविता में रहस्यवाद की नाना स्थितियाँ अभिव्यक्त हुई हैं।

उदाहरण स्वरूप –

क्या पूजा क्या अर्चन रे ?

उस असीम का सुंदर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे!

मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे!

6. **जिज्ञासा और कल्पना**

छायावादी कवि की जिज्ञासा का संबंध विह्वलता से है। नामवर सिंह कहते हैं, हर चीज के प्रति अथक 'जिज्ञासा' और 'कुतूहल' छायावाद का मंगलाचरण है और यही वह रचनात्मक शक्ति है जिसके द्वारा कवि, दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक अपने–अपने क्षेत्र में कोई नयी चीज दे जाता है। छायावाद में इस नयी शक्ति का उन्मेष था। इसलिए उसने हिन्दी साहित्य को कुछ नया दिया। द्विवेदी युग में अथवा रीतिकाल में इसकी कमी थी। सुबह के समय चिड़ियों का चहकना तो पहले भी लोगों ने देखा था। पेड़–पौधों का झूमना भी लोगों ने देखा था। लेकिन छायावादी कवियों के देखने की मुद्रा अलग थी –

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि, तूने कैसे पहचाना?

– सुमित्रानंदन पंत

या

तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है ? – महादेवी वर्मा

जिज्ञासा की तीव्रता जिज्ञासु के मन में एक दूसरी शक्ति को जन्म देती है, जिसके द्वारा मन उस वस्तु के अंतस्थल में प्रवेश करता है। इस शक्ति का नाम है – कल्पना। निराला की दृष्टि में कविता 'कल्पना के कानन की रानी' है। प्रसाद कहते हैं –

'हे कल्पना सुखदान

तुम मनुज जीवन प्रान

तुम विशद व्योम समान।'

छायावादी कवियों ने कल्पना प्रवणता की इसी भूमिका पर अपनी वेदना को अभिव्यक्ति दी है। महादेवी जी बचपन से ही अधिक कल्पना प्रवण रही इसलिए उनके जीवन में वेदना बड़े ही सहज रूप से अवतरित हुई। अपनी इस कल्पनाशील प्रवृत्ति का कवयित्री ने 'यामा की भूमिका' में बड़ा कवित्वपूर्ण और मर्मस्पर्शी वर्णन किया है – 'मेरा प्रत्यक्ष ज्ञान मेरी कल्पना के पीछे सदा ही हाथ बाँधकर चलता रहा है, इसी से जब रात–दिन होने का प्राकृतिक कारण मुझे ज्ञात न था तथा सन्ध्या से रात तक बदलने वाले आकाश के रंगों में मुझे परियों का दर्शन होने लगा था, जब मेघों के बनने का क्रम मेरे लिए अज्ञेय था तभी उनके वाष्प तन में दिखाई देने वाली आकृतियों का मैं नामकरण कर चुकी थी और जब मुझे तारों का हमारी पृथ्वी से बड़ा या उसके समान होना बता दिया गया था तब मैं रात को अपने आँगन में 'आओ, प्यारे तारे आओ, मेरे आँगन में बिछ जाओ' गा–गाकर उन महान् लागों को नीचे बुलाने में नहीं हिचकिचाती थी।'' 'नीहार' की प्रथम कविता ''निशा को धो देता राकेश, चाँदनी में जब अलकें खोल'' में कवयित्री ने कल्पना–प्रवणता की भूमिका का अपनी वेदनानुभूति की अभिव्यक्ति की है –

निशा को धो देता राकेश,

चाँदनी में जब अलकें खोल

कली से कहता था मधुमास

बता दो मधु मदिरा का मोल।

सुनाने जीवन का संगीत

तभी तुम आये थे इस पार

भूलती थी मैं सीखे राग

छिटकते थे कर बारम्बार।।

7. **प्रेमानुभूति :** स्वच्छन्द प्रेम की अभिव्यक्ति इस काव्य की नूतन प्रवृत्ति है। इस प्रेम में 'मानसिकता', 'सूक्ष्मता' और 'अलौकिकता' अधिक है। इनका प्रेम वर्णन अधिकतर अशरीरी है। वैयक्तिक प्रेम भाव को ये उदात्त रूप देते गये हैं। प्रसाद का 'आँसू' इसका प्रमाण है।

जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' में मनु के जीवन में प्रेम की दस्तक बहुत सुंदर रूप में अभिव्यक्त है –

श्रुतियों में चुपके चुपके से
कोई मधु धारा घोल रहा,
इस नीरवता के परदे में
जैसे कोई कुछ बोल रहा।
है स्पर्श मलय के झिलमिल सा
संज्ञा को और सुलाता है,
पुलकित हो आँखें बंद किए
तंद्रा को पास बुलाता है।
उठती है किरनों के ऊपर
कोमल किसलय के छाजन सी
स्वर का मधु निःस्वन रंध्रों में
जैसे कुछ दूर बजे बंशी।
था व्यक्ति सोचता आलस में।
चेतना सजग रहती दुहरी,
कानों के कान खोल करके
सुनती थी कोई ध्वनि गहरी।

इस 'प्रेम' को निराला की कविताएँ अलग अंदाज में पहचानती हैं। वैसे तो अनेक कविताओं में उन्होंने प्रेम का परोक्ष चित्रण किया, लेकिन उन्होंने 1932 ई. में 'प्रेम के प्रति' एक कविता लिखी। इस कविता में वे प्रेम के स्वरूप पर टिप्पणी करते हैं :–

'प्रेम सदा ही तुम असूत्र हो
उर–उर के हीरों के हार,

गूँथे हुए प्राणियों को भी

गूँथे न कभी सदा ही सार।'

आगे निराला ने 'प्रेयसी' में प्रेम का आदर्श स्थापित करते हुए लिखा है –

दोनों हम भिन्न वर्ण,

भिन्न जाति भिन्न रूप,

भिन्न धर्म भाव, पर

केवल अपनाव से, प्राणों से एक थे।

प्रेम के क्षेत्र में छायावादी कवि किसी प्रकार की रूढ़ि, मर्यादा या नियमबद्धता को स्वीकार नहीं करते।

8. **नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण :** छायावाद ने नारी की ओर देखने के दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन कर दिया। रीतिकालीन भोगवादी दृष्टि अथवा द्विवेदीकालीन आदर्शवादी दृष्टि के स्थान पर इन्होंने नारी को एक स्वतन्त्र व्यक्ति चेतना के रूप में देखा। उसके मातृत्व रूप को उभारा। नारी अपने व्यक्तित्व की सभी विशेषताओं को लेकर (बालिका, बहन, प्रेयसी, पत्नी) यहाँ प्रकट हुई है।

9. **जागरण का स्वर**

जागरण का संदेश सम्प्रसारित करना छायावादी काव्य का मूल मन्तव्य है। 'प्रसाद जी' की 'हमारा प्यारा देश' तथा 'अरूण यह मधुमय देश हमारा' में यह स्वर सुनाई देता है। निराला की कविता में जागरण का स्वर राष्ट्रीयता के भाव के रूप में व्यक्त हुआ है। यह भावना कहीं वन्दना के रूप में है, तो कहीं वे राम, तुलसीदास और शिवजी की पीठिका में स्वयं उपस्थित होकर राष्ट्रीय भाव को वाणी देते हैं। मातृवन्दना कविता में वे लिखते हैं –

भारित जय विजय करे

कनक शस्य कमल धरे

तथा

क्लेद मुक्त अपना तन दूँगा

मुक्त करूँगा तुझे अटल।

'जागो फिर एक बार' कविता में निराला ने भारत की सांस्कृतिक गरिमा और राष्ट्र जागृति की भावना को एक साथ व्यक्त किया है।

10. दार्शनिक चिन्तन

प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी के काव्य में दर्शन के कई रूप दिखायी पड़ते हैं। प्रसाद ने आनन्दवाद की प्रतिष्ठा की है। उन्होंने इस सिद्धान्त को शैवागमों से प्रभावित होकर ग्रहण किया है। इसी नाते उन्होंने कामायनी का साध्य'–आनन्द स्वीकार किया है

समरस थे जड़ या चेतन

सुंदर साकार बना था

चेतनता एक विलसती

आनन्द अखण्ड घना था।

पन्त जी ने भी उपनिषदों, अरविन्द, महात्मा गाँधी, विवेकानन्द आदि से प्रभाव ग्रहण करके काव्य–प्रणयन किया है। दुःखवाद और करुणा बौद्ध दर्शन का मूल स्वर हैं। छायावादी कवियों ने किसी न किसी रूप में बौद्धों के इस दर्शन से प्रभावित होकर साहित्य रचा है। निराला की कविता 'तुम और मैं' में भी अद्वैत दर्शन का ऐसा ही रूप आकारित हुआ है।

शिल्पगत पक्ष

1. **भाषा और शब्द विन्यास :** छायावादी कवियों का शब्दभण्डार संस्कृत की तत्सम शब्दावली, बंगला, अंग्रेजी, उर्दू–फारसी, देशज आदि शब्दों से सम्पन्न–समृद्ध है। छायावादी कवियों के शब्दविन्यास पर उर्दू–फारसी का भी व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है। अगर, बगल, नजर, बन्दों, आराम, फिरदौस, मीनार, मकबरे, खबर, बहार, नायाब चीज, मर्दानगी, जानदार, निशानी आदि अनेक शब्दों का सहज प्रयोग देखा जा सकता है।

   छायावादी कवियों ने भारतीय तथा अभारतीय भाषाओं से और स्वयं अपने द्वारा निर्मित शब्दों से अपने काव्य को सम्पन्न, समृद्ध, कलात्मक और काव्यात्मक बनाया है।

2. **छायावादी शैली :** छायावादी शैली की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैं –

   (1) मुक्तक गीति शैली

   (2) प्रतीकात्मकता,

(3) प्राचीन, एवं नवीन अलंकारों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग, जैसे उपमा, उपमान, उत्प्रेक्षा, रूपक, दृष्टांत, उदाहरण, मानवीकरण, विरोधाभास, विशेषण–विपर्यय आदि विविध अलंकारों का प्रयोग

(4) मात्रिक छंदों का सविस्तार प्रयोग

(5) कोमल–कांत संस्कृतमय शब्दावली।

गीति शैली के सभी प्रमुख तत्त्व – वैयक्तिकता, भावात्मकता, संगीतात्मकता, संक्षिप्तता, कोमलता आदि – इनके काव्य में उपलब्ध होते हैं। प्रतीकों के द्वारा इन्होंने अपनी अभिव्यक्ति की मार्मिकता में अभिवृद्धि की है, जैसे – 'यह पतझड़ मधुवन भी हो, शूलों का दर्शन भी हो, कलियों का चुम्बन भी हो।' यहाँ पतझड़, मधुवन, शूल, कलियाँ आदि जीवन के विभिन्न रूपों व अंगों के प्रतीक हैं। मूर्त को अमूर्त रूप में तथा अमूर्त को मूर्त रूप में चित्रित करने के लिए अनेक नवीन उपमानों का प्रयोग किया है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिक वक्रता, उपचार वक्रता के दर्शन छायावादी काव्य में विशेषरूप से होते हैं। महाकवि निराला अपने मुक्तछंद विधान के लिए छायावादी कविता में ही नहीं वरन समस्त हिन्दी साहित्य में जाने जाते हैं।

8.6 छायावाद की उपलब्धि

छायावाद कविता अपनी संवेदना और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से अत्यन्त प्रशंसनीय रही। इस काल में प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा ने अपने काव्य सृजन से कविता का एक मनोरम इतिहास लिखा। छायावादी कविता का महत्व सौंदर्य की सूक्ष्म सत्ता को स्थापित करने, नारी के उदात्त मानवीय रूप को चित्रित करने, सांस्कृतिक पुनर्जागरण की स्थापना और स्वतंत्रता आन्दोलन को स्वर प्रदान करने और काव्य शैली की दृष्टि से गीतात्मकता, मुक्त छंद का व्यवहार करने में निहित है। जयशंकर प्रसाद कृत महाकाव्य **कामायनी** सार्वदेशिक और सार्वकालिक रचना है।

8.7 सारांश

आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास में छायावादी काव्य धारा की पृष्ठभूमि, नामकरण, विविध प्रवृत्तियों और उसकी उपलब्धियों से आप भलीभाँति परिचित हुए। छायावाद के उदय में द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता, अंग्रेजी का रोमांटिक काव्य, रवीन्द्र की कविता, मानवतावादी व आध्यात्मिक दृष्टि, अद्वैत दर्शन, नवजागरण आदि में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा और सुमित्रानंदन पंत जैसे रचनाकारों के प्रभावी सृजन से बना यह युग (1918 – 1936) अपनी भावविद्धता, वैचारिक गहनता और शिल्पसिद्धता से आधुनिक हिन्दी कविता को एक नई गति और दिशा–दृष्टि प्रदान करता है।

8.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. छायावाद की परिभाषा और स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

_____

2. प्रमुख छायावादी कवियों और रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

_____

_____

_____

_____

3. छायावाद की प्रवृत्तियों का सोदाहरण विश्लेषण कीजिए।

_____

_____

_____

_____

4. छायावाद की काव्यशैली की विशेषताएँ लिखिए।

_____

_____

_____

_____

5. महादेवी वर्मा का छायावाद के विकास में योगदान स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

_____

8.9 संदर्भ ग्रंथ

1. नामवर सिंह – छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी – ग्रंथावली, भाग–3, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
4. रामस्वरूप चतुर्वेदी – हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद
5. डॉ. नगेन्द्र (सं.) – हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
6. डॉ. जयकिशन प्रसाद – हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
7. डॉ. नामवर सिंह – आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, राजकमल प्रकाशन – नई दिल्ली,

.....

प्रगतिवाद

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 प्रगतिवाद का स्वरूप और परिभाषा

9.3 युग की पृष्ठभूमि

9.4 प्रमुख प्रगतिवादी कवि

9.5 प्रगतिवाद की प्रवृत्तियाँ

9.5.1 संवेदनागत पक्ष

9.5.2 शिल्पगत पक्ष

9.6 उपलब्धियां और सीमाएं

9.7 सारांश

9.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.9 संदर्भ ग्रन्थ

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप

* प्रगतिवाद के स्वरूप उसकी पृष्ठभूमि को जान सकेंगे।
* प्रमुख प्रगतिवादी कवियों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

* प्रगतिवाद की प्रवृत्तियों का विश्लेषण कर सकेंगे।

* प्रगतिवाद की महत्ता और उसकी सीमाओं को समझ सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना :–

यह सत्य है कि छायावादियों का स्वप्न सत्य के ताप से झुलसने लगा और धीरे–धीरे भीतर–ही–भीतर जनमानस में एक सुगबुगाहट हुई। जीवन चेतना ने करवट ली। एक नया मानवतावाद जन्मा, जीवन यथार्थ की ठोस धरती पर आ खड़ा हुआ और इसे अभिव्यक्ति देने वाला काव्य प्रगतिवाद कहलाया। प्रगतिवाद ने वर्ग–भेद की खाई को पाटने का काम तो किया ही, मनुष्य को सामाजिक और राजनैतिक भूमिका भी प्रदान की। भारतेन्दु, द्विवेदी, छायावाद के बाद आधुनिक हिन्दी कविता का चतुर्थ उत्थान काल प्रगतिवाद है। प्रगतिवादी काव्य का प्रारम्भ कब से माना जाए यह एक गम्भीर समस्या है। हमें छायावादी काव्य धारा में एक विशेष प्रकार की कविताओं का स्वर सुनाई देता है। यह प्रवृत्ति सन् 1936 के लगभग देखने को मिलती है। छायावादी कवियों ने ही पहले–पहले सूक्ष्म सौंदर्यवादी दृष्टि को छोड़कर सामाजिक यथार्थवाद की प्रवृत्ति अपनायी और इस प्रकार कल्पना के नील गगन से ठोस पृथ्वी पर उतरने का प्रयास किया। इस दिशा में पन्त पहले कवि हैं।

प्रगतिवादी काव्यधारा का उद्देश्य साहित्य में यथार्थवाद की स्थापना करना था। अतीत का महिमागान और भविष्य की आदर्शमयी कल्पना दोनों इस काव्यधारा के उद्देश्य प्राप्ति में बाधक थे। इसलिए इसमें प्रत्यक्ष यथार्थ सामाजिक समानता पर विशेष बल दिया। दर्शन में जो द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद एवं विकासवाद है राजनीति में जो साम्यवाद है वही साहित्य में प्रगतिवाद है।

9.2 प्रगतिवाद का स्वरूप और विकास :–

प्रगतिवाद हिन्दी साहित्य की परम्परा का स्वाभाविक विकास है जो ह्रासोन्मुखी छायावाद युग के साहित्य से ही जन्मा है फिर भी अपनी मूलभूत प्रेरणा में उससे एकदम भिन्न है। यों तो साहित्य की अखण्ड परम्परा है और वह निश्चय ही प्रगतिशील भी है किन्तु हिन्दी में जो साहित्य प्रगतिशील साहित्य के नाम से जाना जाता है वह निश्चय ही छायावाद के बाद का व्यापक सामाजिक चेतना वाला साहित्य है जिसमें मार्क्सीय सामाजिक यथार्थवाद को विशेष महत्व दिया गया है। इसकी इसी विशेषता को लक्ष्य करके बहुत से सुधी लोग इसे मार्क्स की देन विदेशी साहित्य का अनुकरण अथवा 'प्रोग्रेसिव लिटरेचर' का अनुकरण मानते हैं और इसे सर्वथा अभारतीय और विदेशी विचारधारा घोषित करते हैं। तत्कालीन विषम सामाजिक परिस्थिति और ह्रासोन्मुखी छायावादी साहित्यिक परिस्थिति में प्रगतिवाद का प्रादुर्भाव होना उस युग की एक स्वाभाविक आवश्यकता थी और इसलिए यह हिन्दी साहित्य की परम्परा का ही विकास है।

प्रगतिवाद मार्क्सवाद का हिन्दी रूपान्तरण न होकर हिन्दी साहित्य में सामाजिक मानववाद की प्रतिष्ठा है, जो तत्कालीन युग में इस देश की आवश्यकता थी और जिसका स्वाभाविक विकास समझने में हमें राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास और तत्कालीन युग को बनाने वाली परिस्थितियों का ज्ञान सहायक होगा।

डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में यह युग की माँग को पूरा करने वाला साहित्य है। इसकी शक्ति इस बात में है कि वह समाज के वास्तविक जीवन के निकट है। जो साहित्य जनता का पक्ष लेगा वह जरूर शक्तिशाली होगा और अजेय गति से आगे बढ़ता जाएगा। लेखक के लिए मूल समस्या यह है कि हम अपने साहित्य की जातीय विशेषताओं की रक्षा करते हुए किस तरह उन्हें विकसित करें कि हमारी जनता की चेतना निखरे और वह आज के दुखों और अभावों की दुनिया से निकल कर सुख और स्वाधीनता के प्रकाश में साँस ले सकें। यही कार्य प्रगतिशील साहित्य ने किया है। वस्तुतः प्रगतिवाद ऐसी जीवन दृष्टि बनकर आया जिससे कविता, उपन्यास, आलोचना आदि सभी क्षेत्रों में नवीन चेतना के दर्शन हुए।

प्रगतिवाद का प्रारम्भ छायावादी कवियों ने ही किया यह इसकी आवश्यकता एवं स्वाभाविक विकास के सत्य को पूर्णतया प्रमाणित कर देता है। प्रगतिशील यथार्थवाद के लिए मुक्त छन्द अत्यन्त उपयुक्त सिद्ध हुआ। पन्त जी ने 'युगान्त' में छायावाद का अन्त करते हुए 'युगवाणी' में जनवादी विचारधारा को अपनाया। दूसरे छायावादी कवि निराला नई भाषा, भाव और शैली को लेकर आए। इन्होंने निम्न वर्ग को अपनी कविता का साध्य बनाया और उनकी दीन स्थिति के निर्माताओं पर कटु व्यंग्य किए। **'भिक्षुक', 'कुकुरमुत्ता', 'गर्म पकौड़ी', 'डिप्टी साहब आए', 'कुत्ता भौंकने लगा'** आदि व्यंग्यों में निराला ने पूँजीवाद की भर्त्सना की। किन्तु इन सभी कविताओं में कवि का अहं झलकता है, सामाजिक दर्शन नहीं। जब प्रगतिवाद साहित्यिक परम्परा के विकास की ही एक सीढ़ी है, तो पूर्ववर्ती व्यक्तिवादी विचारों की छाया स्वाभाविक ही है। यह था आरम्भिक प्रगतिवाद जो छायावादी कवियों के काव्य में अवतरित हुआ।

धीरे–धीरे प्रगतिवाद ने अपनी व्यक्तिवादी, आदर्शवादी प्रवृत्तियों को छोड़कर स्वस्थ सामाजिक दर्शन को अपनाया। भवानीप्रसाद मिश्र, चन्द्रकुँवर वर्त्वाल, भैरवप्रसाद गुप्त, डॉ. शिवमंगलसिंह सुमन, डॉ. मलखानसिंह सिसौदिया, त्रिलोचन, अमृतराय, राजेन्द्र यादव, डॉ. महेन्द्र भटनागर प्रभृति कवियों ने इस स्वस्थ प्रगतिवादी (जनवादी) विचारधारा को अपनी कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। ये कवि अधिकांशतः मध्य वर्ग से निकल कर आए है।

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' की प्रथम कृति 'रेणुका' (1935), भगवती चरण वर्मा की 'मधुकण'(1932), नरेन्द शर्मा की 'शूल–फूल'(1933), बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के 'विप्लव–गायन' (1933), जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द के 'जीवन–संगीत', आरती प्रसाद सिंह की 'कलापी' में संगृहीत कविता 'रक्तपर्व' (1934), गोपाल सिंह 'नेपाली' की 'उमंग' (1934) आदि कविताओं में भी प्रगति–चेतना के स्वर सुनाई पड़ते हैं। वर्ग–वैषम्य का चित्रण करते हुए शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई है तो कहीं वर्तमान व्यवस्था को बदल देने के लिए क्रान्ति का आह्वान किया है तो कहीं स्पष्ट रूप में 'साम्यवाद' की प्रशंसा एवं पूँजीवाद की भर्त्सना की गई है। किन्तु इनसे इतना तो भली–भाँति प्रमाणित होता है कि हिन्दी में प्रगतिशील संघ की विधिवत् स्थापना से पूर्व ही प्रगतिवाद के आगमन की ध्वनि या अनुगूँज स्पष्ट रूप में सुनाई पड़ने लग गई थी तथा उसके लिए अपेक्षित पृष्ठभूमि तैयार हो गयी थी। ऐसी स्थिति में उसे एकाएक आयातित या आरोपित वाद मानना उचित नहीं होगा।

9.3 युग की पृष्ठभूमि

सामान्यतः 1936 से 1945 के मध्य जो काव्य प्रवृत्ति विकसित हुई उसे 'प्रगतिवादी' काव्य कहा गया है। यह प्रवृत्ति एक आन्दोलन के रूप में विकसित हुई। सामाजिक यथार्थवाद और वर्गगत समानता के लिए विद्रोह और आन्दोलन का स्वर सामने आया। इस काव्यधारा को आरम्भ से ही एक निश्चित काव्य दृष्टि मिली है। साम्यवादियों अर्थशास्त्रियों और राजनीतिज्ञों के सिद्धान्तों व उनकी दृष्टि का काव्य–सृजन पर प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

इस काव्यधारा की पृष्ठभूमि में मार्क्स का दर्शन महत्वपूर्ण है। 1917 में रूस में क्रान्ति हो गयी। इस क्रान्ति ने साम्राज्यवाद को खत्म कर दिया और वहाँ सर्वहारा वर्ग के हाथों में सत्ता आ गई। मार्क्स का दर्शन इस क्रान्ति के मूल में था। धर्म, अंधश्रद्धा, अलौकिकता आदि सभी पारलौकिक शक्तियों और अंधविश्वासों का खंडन करके मार्क्स ने मनुष्य मात्र को महत्व दिया। पूंजीवादी व्यवस्था में मनुष्य पूर्णतः गुलाम हो जाता है; उसका अस्तित्व मशीन के एक पुर्जे की तरह हो जाता है। समाज के दो वर्गों में खाई बढ़ जाती है; इसीलिए ऐसी समाज व्यवस्था का विरोध करके उसने वर्गहीन समाज व्यवस्था का आग्रह किया। इस नयी साम्यवादी व्यवस्था के लिए मार्क्स ने 'श्रमिकों की एकता' और 'क्रान्ति का आह्वान' ये दो नारे दिये। जहाँ मनुष्य–मनुष्य में धर्म, जाति, भाषा अथवा अन्य किसी भी कारण से अन्तर न किया जाता हो, जहाँ मनुष्य का शोषण न किया जाता हो – ऐसी व्यवस्था तो दुनिया के कलाकारों का स्वप्न ही है। इसी कारण इस रूसी व्यवस्था तथा मार्क्सवादी विचारधारा की ओर कवि, कलाकार तथा आलोचक आकृष्ट हो गये। 1917 से 1935 तक रूस की जो प्रगति हुई, उससे ये कलाकर और भी प्रभावित हो गये और इस प्रकार की 'समाज व्यवस्था' का आह्वान वे अपने साहित्य के माध्यम से करने लगे।

सर्वप्रथम इ.एम. फोस्टर ने लंदन में प्रगतिशील लेखकों की बैठक सन् 1935 में ली। इस बैठक में दो भारतीय लेखक सज्जाद जहीर और मुलकराज आनंद उपस्थित थे। साहित्य की इस नयी दृष्टि को स्वीकार करने का आग्रह इस बैठक में किया गया। इससे प्रेरित होकर सन् 1936 में भारत में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की बैठक लखनऊ में प्रेमचंद की अध्यक्षता में हुई। इस प्रकार सन् 1936 से यह विचारधारा साहित्य में प्रवेश करती है। सन् 1937 में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की अध्यक्षता में इसकी दूसरी बैठक कोलकत्ता में हुई।

उपर्युक्त परिस्थितियों के साथ–साथ यह भी सत्य है कि छायावादी काव्य की अति सांकेतिकता, आदर्शवादिता, प्रकृति चित्रण की अधिकता, कल्पनातिशयता की प्रवृत्ति से यह काव्यधारा जन–सामान्य से दूर हो रही थी और जब प्रगतिवाद एक सामाजिक दर्शन लेकर आया, एक नई समाज व्यवस्था का स्वरूप सामने आया तो उस ओर कवि मुड़ गए। वस्तुतः छायावादी कवियों जैसे पंत, निराला ने ही सर्वप्रथम सामाजिक यथार्थवादी विचारधारा को अपनी रचनाओं में व्यक्त किया। 1936 के बाद निराला की रचनाओं में वैयक्तिक स्वर की अपेक्षा सामाजिक यथार्थवादी स्वर अधिक गूंजने लगा। वस्तुतः इस नवीन दृष्टि के कारण साहित्य के नए आन्दोलन की शुरूआत हुई और उसे काव्य में प्रगतिवाद संज्ञा से आमंत्रित किया गया।

9.4 प्रमुख प्रगतिवादी कवि

1. रामेश्वर करूण :

सर्वप्रथम प्रगतिवादी कवि रामेश्वर करूण माने जाते हैं जिनकी 'करूण सतसई' सन् 1934 में ही प्रकाशित हो गई थी। यद्यपि यह रचना ब्रज भाषा में है परन्तु इसमें वर्ग–वैषम्य, आर्थिक विषमता, पूँजीपतियों के शोषण, शोषित वर्ग की दीनता, वर्तमान व्यवस्था के प्रति असन्तोष एवं विद्रोह आदि विषयों का निरूपण सशक्त रूप में किया गया है।

जब लौं 'श्रम' अरू उपज को, होत न साम्य–विभाग।

बुझै बुझाये किमि कहों, यह अशान्ति की आग।

हौवे न भयो हौवे है नहीं, साम्यवाद सम आन।

जग की व्याधि अगाध को सोचो सही निदान।।

सामाजिक विषमता, आर्थिक शोषण, शोषित वर्ग की करुण दशा, शोषक वर्ग के अत्याचारों, धर्म और ईश्वर के ठेकेदारों की करतूतों आदि का चित्रण करते हुए साम्यवाद की स्थापना के लिए हिंसात्मक चिन्गारी वर्तमान क्रान्ति का अभीष्ट है। कवि ने राष्ट्रीय नेताओं के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हुए भी महात्मा गाँधी के अहिंसात्मक आन्दोलन की व्यर्थता घोषित करते हुए उन्हें स्पष्ट शब्दों में चुनौती दी है –

''कितनी शताब्दियाँ लेगा, यह पुण्य प्रयोग तुम्हारा

क्या दूर विषमता होगी, यों सत्य–अहिंसा द्वारा?

मक्कार धनाधीशों को ट्रस्टी बतलाकर तुमने

जनता पर जादू डाला, अध्यात्म सुधा कर तुमने।''

– ''है भारत भाग्य विधाता''

2. केदारनाथ अग्रवाल :

कविता में **'नींद के बाद'** (1947), **'युग की गंगा'** (1947), **'लोक और आलोक'** (1957), **'फूल नही रंग बोलते हैं'** (1965), **'आग का आइना'** (1970), **'पंख और पतवार'** (1979), **'हे मेरी तुम'** (1981), **'और मार प्यार की थापें'** (1981) आदि उल्लेखनीय काव्य संग्रह हैं।

इनकी कविताओं में जीवन की विषमताओं व असंगतियों के प्रति घृणा एवं विद्रोह शहरी जीवन के वैभव से दूर हटकर ग्रामीण जीवन की वास्तविकताओं के चित्रण की ओर अग्रसर होता है। वर्तमान जीवन की कुरूपता को, वर्तमान व्यवस्था के प्रति असन्तोष और द्रोह की भावना को, साम्यवाद के प्रति अपनी दृढ़ आस्था व्यक्त करते हुए क्रान्ति का आह्वान भी अभिव्यक्त हुआ है।

3. नागार्जुन :

नागार्जुन की कविताएँ **'युग धारा'** (1953), **'सतरंगी पंखों वाली'** (1956), **'प्यासी पथराई आँखें', 'तालाब की मछलियाँ', 'तुमने कहा था'** (1980), **'खिचड़ी विप्लव देखा हमने'** (1980), **'हजार–हजार बाहों वाली'** (1981) आदि में संग्रहीत है। उन्होंने हृदय की सच्ची टीस, वेदना एवं सहानुभूति से प्रेरित होकर काव्य–रचना की है।

जैसे –

क्योंकि हमको स्वयं भी तो तुच्छता का भेद है मालूम

कि हम पर सीधे पड़ी है गरीबी की मार।

नागार्जुन ने मार्क्सवाद की लहर में बहकर अपने देश की स्वस्थ एवं महान परम्पराओं की उपेक्षा नहीं की है। समसामयिक परिस्थितियों और समस्याओं पर स्पष्ट रूप में अपने विचार व्यक्त करने की दृष्टि से नागार्जुन बहुत सशक्त हैं। श्री विशम्भर 'मानव' ने इस सम्बन्ध में ठीक कहा है, ''हरिश्चन्द्र–युग के कुछ साहित्यिकों को छोड़कर पिछले पचास वर्षों में नागार्जुन जैसा तीखी और सीधी चोट करने वाला व्यंग्यकार हमारे साहित्य में नहीं हुआ।'' उदाहरण स्वरूप –

आज़ादी की कलियाँ फूटीं, पाँच साल में होंगे फूल,

पाँच साल में फल निकलेंगे, रहे पंत जी झूला झूल,

पाँच साल कम खाओ भैया, गम खाओ दस–पन्द्रह साल,

अपने ही हाथों से झोंको यों अपनी आँखों में धूल,

आज़ादी की कलियाँ फूटीं, पाँच साल में होंगे फूल।

पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा होने वाली मन्द और शिथिल प्रगति पर कवि ने यहाँ अच्छा व्यंग्य किया है। वस्तुतः भावनाओं की सच्चाई एवं अनुभूति की गहराई इनके काव्य में देखने को मिलती है।

4. शिवमंगलसिंह 'सुमन'

इनके काव्य संग्रहों में **'हिल्लोल' 'जीवन के गान' 'प्रलय–सृजन' 'पर आँखे नहीं भरीं' 'विन्ध्यहिमाचल' 'मिट्टी की बरात'** आदि उल्लेखनीय है।

संघर्ष और क्रान्ति की भावना

प्रगतिवादी विचारों को अपनाना और उन्हें प्लेटफार्मी शैली में प्रस्तुत कर देना प्रगतिवाद के प्रचार में तो सहायक सिद्ध हो सकता है किन्तु उसमें काव्यात्मकता का अस्तित्व तो तभी स्वीकार किया जा सकता है जबकि विचारों को अनुभूति में परिणित करते हुए कलात्मक रूप

में प्रस्तुत किया गया हो। 'सुमन' जी में यह विशेषता भली–भाँति परिलक्षित होती है। उदाहरण के रूप में –

विस्तृत पथ है मेरे आगे उस पर ही मुझको चलना है,

चिर शोषित असहायों के संग, अत्याचारों को दलना है।

5. डॉ. रांगेय राघव :

डॉ. रांगेय राघव मूलतः उपन्यासकार थे, किन्तु काव्य–क्षेत्र में भी उन्होंने योग दिया है। उनके काव्य–ग्रंथ इस प्रकार हैं – **'अजेय खण्डहर'** (1944), **'पिघलते पत्थर'** (1946), **'राह के दीपक', 'मेधावी'** (1947), **'पांचाली'** (1955) आदि। 'अजेय खण्डहर' में तीन शीर्षकों – 'झंकार', 'ललकार' और 'हुंकार' के अन्तर्गत स्तालिनग्राद के युद्ध के अनेक सजीव एवं यथार्थ चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। 'पिघलते पत्थर' मुक्तक रचना है जिसमें एक ओर साम्राज्यवाद, फासिज्म एवं पूँजीवाद के विरोधी विचार व्यक्त हुए हैं तो दूसरी ओर राष्ट्रीयता, समाजवाद एवं मानवतावाद से सम्बन्धित भावनाएं व्यंजित हैं। 'राह के दीपक' में सन्ध्या, दीपक, पावस, चाँदनी आदि विषयों के माध्यम से युग की विषमताओं को अंकित करने का सफल प्रयास किया गया है।

'मेधावी' और 'पांचाली' आख्यानक रचनाएँ हैं। पहली रचना चिन्तन–प्रधान है जिसमें कवि के कथनानुसार दर्शन, भूगोल, इतिहास, काव्य, समाज–शास्त्र सब का समावेश है। 'पाँचाली' में द्रौपदी के चरित्र को नये दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते हुए नारी, राष्ट्र, वर्ण–व्यवस्था, राज्य–तन्त्र, प्रेम, कर्तव्य, अहिंसा, राजनीति सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं पर पुनर्विचार किया गया है।

6. त्रिलोचन शास्त्री :

शास्त्री की कविताओं में प्रकृति, प्रेम एवं समाजवाद – तीनों की अभिव्यक्ति हुई है। उनके काव्य संग्रह 'धरती' में प्रकृति का वर्णन प्रमुखतः हुआ है। जैसे –

सघन पीली गर्मियों में और

हरियाली सलोनी, झूलती सरसों।

चल रही हवा, धीरे–धीरे सीरी–सीरी

उड़ रहे गगन में, झीने–झीने, कजरारे चंचल बादल।

पर त्रिलोचन जहाँ मार्क्सवाद के सिद्धान्तों की चर्चा करते हुए उसका गुणगान करने लगते हैं वहाँ उनकी कविता गद्य में परिणत हो जाती है।

7. **'शील'**

इनका वास्तविक नाम मन्नूलाल शर्मा है। इनकी कविताएं **'अंगड़ाई'** (1944), **'एक पग'** (1946), **'उदय–पथ'** (1953), और **'लावा और फूल'** (1967) इनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं।

प्रगतिवादी मूल्यों के आधार विषय निरूपण किया है।

यथा –

तूफानों की तरह मचल कर चलना है तो चल,

अंगारों की तरह दहक कर जलना है तो जल।

इसी प्रकार कवि ने नया संसार बसाने का संदेश भी दिया है –

देश हमारा धरती अपनी, हम धरती के लाल,

नया संसार बसायेंगे, नया इन्सान बनायेंगे।

8. **डॉ. महेन्द्र भटनागर :**

इनके अनेक काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं। जिनमें **'तारों के गीत'** (1949), **'टूटती शृंखलाएं'** (1949), **'बदलता युग'** (1953), **'अभियान'** (1954), **'अन्तराल'** (1954), **'विहान'** (1956), **'नई चेतना'** (1956), **'मधुरिमा'** (1959), **'जिजीविषा'** (1962), **'संतरण'** (1963), **'संवर्त'** (1972), **'संकल्प'** (1977), **'जूझते हुए'** (1984) आदि। इनकी कविताओं में सामाजिक क्रान्ति की भावनाओं के साथ–साथ सौन्दर्य, प्रेम, विश्वास एवं आस्था की भी अभिव्यक्ति हुई है।

9. **सुदर्शन चक्र :**

सुदर्शन चक्र के अनेक काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें 'मज़दूरों की रण–भेरी' (1937), 'लाल सेना की विजय' (1942), 'साम्यवाद का शिव तांडव' (1952), 'सच्ची कविताएं' (1956), 'कम्युनिस्ट कवितावली' (1958) आदि उल्लेखनीय है।

10. **डॉ. रणजी :**

नयी पीढ़ी की प्रगतिवादी कविताओं में डॉ. रणजी का स्थान महत्वपूर्ण है। इनके काव्य संग्रह – **'ये सपने ये प्रेत'** (1964), **'जमती बर्फ खोलता खून', 'इतिहास का दर्द'** (1967), **'इतना पवित्र शब्द'** (1985), **'झुलसा हुआ रक्त कमल'** (1986) आदि। इनके प्रारम्भिक काव्य में मार्क्सवादी स्वर अत्यन्त तीखे शब्दों में सुनाई पड़ता है जिससे साम्यवाद के प्रति पूर्ण निष्ठा एवं रागात्मक सम्बन्ध की पुष्टि होती है। किन्तु इनकी यह गहरी आस्था आगे चलकर साम्यवादी व्यवस्था के भी अनेक अन्तर्विरोधी को देखकर खण्डित होने लगती है।

सोशलिस्ट स्टेट एक माँ है
बढ़ी और डरपोक
अपने बच्चों से बहुत प्यार करती हैं
उनके खाने–पीने और ओढ़ने–पहनने की

पूरी व्यवस्था भली–भांति करती है

पर लगातार डरती है

कि कहीं पड़ोसी उसके बच्चों को बहका न दें

इसलिए उन्हें गली–मुहल्ले में घूमने नहीं देती

किसी पड़ोसी से बात नहीं करने देती।

– झुलसा हुआ रक्त कमल,

यहाँ कवि ने साम्यवादी व्यवस्था की विसंगतियों का जैसा उद्‌घाटन किया है वह न केवल उनकी अनुभूति की ईमानदारी एवं विचार स्वातन्त्रय के प्रति सच्ची निष्ठा का परिचायक है अपितु कलात्मक दृष्टि से भी उनकी व्यंजना–शक्ति की सशक्ता को प्रमाणित करता है।

9.5 प्रगतिवाद की प्रवृत्तियाँ

9.5.1 संवेदनागत पक्ष

1. सामाजिक यथार्थवाद

प्रगतिवादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति सामाजिक यथार्थवाद की है। कृषक एव मज़दूरों को प्रगतिवाद ने अपने काव्य में प्रमुख स्थान दिया। प्रगतिवादी आलोचकों का मत है कि कविता का सम्बन्ध सामाजिक वास्तविकता से है और वही कविता उत्कृष्ट है जो वास्तविकता के प्रति सजग और संवेदनशील है।

बापू मरे

अनाथ हो गई भारत माता

अब क्या होगा

हाय! हाय! हम रहे कहीं के नहीं

लुट गये

रो–रो करके आँख लाल कर ली धूर्तों ने।

प्रगतिवादी कवि अपने देश की समस्याओं के प्रति तो जागरूक है ही विश्वमानवता के भी समर्थक हैं। चन्द्रकुँवर वर्त्वाल ने हिरोशिमा की बर्बादी पर आँसू बहाए हैं, अमरीका को कोसा है और पूँजीवाद के सभी गढ़ों के अवश्यम्भावी विनाश को बड़े विश्वास के साथ व्यक्त किया है –

हिरोशिमा की शाम

एक दिन न्यूयार्क भी मेरी तरह हो जाएगा;

जिसने मिटाया है मुझे वह भी मिटाया जाएगा;

आज ढाई लाख में कोई नहीं जीवित रहा;

न्यूयार्क में भी एक दिन कोई नहीं रह पायेगा।

प्रगतिवादी कवियों ने प्रारम्भ से ही बंगाल के अकाल, भारत के बँटवारे एवं पाकिस्तान के निर्माण, हिन्दू–मुस्लिम झगड़े एवं नरहत्या के नग्न ताण्डव, गणतन्त्र का आविर्भाव एवं जनता की भीषण कठिनाइयाँ – भुखमरी, अकाल, बाढ़, महामारी, महँगाई, बेकारी, झूठी लीडरी, टैक्स इत्यादि सामयिक घटनाओं एवं समस्याओं के प्रति जागरुकता प्रकट की है।

प्रगति काव्यधारा में सामाजिक यथार्थ के आग्रह के कारण काव्य विषयों में आमूल परिवर्तन हुए। प्रकृति, सूक्ष्म मानसिक प्रेम, सूक्ष्म सौंदर्यबोध, अध्यात्म, आदर्श आदि के स्थान पर ग्राम्य प्रकृति, ऊबड़–खाबड़ कच्चे घर, मटमैले अशिक्षित बच्चे, सड़कों पर पत्थर तोड़ने वाली औरतें, मिलें, खदानों और कल–कारखानों में काम करने वाले मजदूर आदि वर्गों और व्यक्तियों की मनःस्थितियों का, उनके दुःखों तथा उनके परिवेश का चित्रण किया गया।

2. बौद्धिकता :

प्रगतिवादी कवि का लक्षण है वर्गहीन समाज की स्थापना। इस कारण बौद्धिकता का आग्रह उनमें है। समाज में वर्ग–चेतना उत्पन्न करने तथा शोषित वर्ग को संघर्ष के लिए तैयार करने के लिए सर्वप्रथम ईश्वर, धर्म, परलोक एवं भाग्य सम्बन्धी विचारों का उन्मूलन करना आवश्यक है क्योंकि कवि की मान्यता है कि शोषक वर्ग इसी धर्म और अध्यात्म के बल पर शोषित वर्ग पर अत्याचार करता है।

3. व्यंग्य चित्रण :

काव्य में व्यंग्य बोध और उसकी स्थापना में प्रगतिवादी कवियों की विशेष रूचि रही है। कवि सुधार की भावना से प्रेरित होकर सामयिक समस्याओं के वर्णन में व्यंग्य दृष्टि जोड़ देता है। वह पूँजीवाद को, उसकी शोषण की प्रवृत्ति को, आधुनिक राजनीति को, उसकी झूठी लीडरी को तथा अन्य आर्थिक और सामाजिक विषमताओं के समर्थकों को अपने व्यंग्यों का लक्ष्य बनाता है।

निराला के 'कुकुरमुत्ता' और 'नए पत्ते' में बड़े तीव्र व्यंग्य मिलते हैं। इनके भी आगे नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल के तीव्र व्यंग्य मिलते हैं। नागार्जुन ने आज के जर्जर समाज और आज़ादी का वैषम्य दिखाते हुए बड़ा नुकीला व्यंग्य किया है। यह आज़ादी कागजी स्कीमों के अतिरिक्त कुछ नहीं है। उदाहरण के लिए –

बापू मेरे .....

अनाथ हो गई भारत माता

अब क्या होगा .....

हाय! हाय! हम रहे कहीं के नहीं

लुट गये

..... रो–रो करके आँख लाल कर ली धूर्तों ने।

4. क्रान्ति का आह्वान :

प्रगतिवाद के मूल में परिवर्तन कर सामाजिक समानता लाने की प्रेरणा कार्य करती है। इस कारण कवियों की अपनी रचनाओं में क्रान्ति का स्वर प्रधान रहा। प्रगतिवादी कवि सामाजिक एवं राजनीतिक दुर्व्यवस्था से दुखी होकर विप्लव गान करता है। बालकृष्ण शर्मा नवीन लिखते हैं –

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ

जिससे उथल–पुथल मच जाए।

नियम और उप–नियमों के ये बन्धन टूक–टूट हो जाएँ

विश्वम्भर की पोषक वीणा के सब तार मूक हो जाएँ

शान्ति–दण्ड टूटे–उस माहरूद्र का सिंहासन थर्राए,

उसकी पोषक श्वासोच्छ्वास, विश्व के प्रांगण में घहराए,

नाश, नाश हो ! महानाश को प्रलयंकारी आँख खुल जाए।

डॉ. रामविलास शर्मा ने 'परिवर्तन की पुकार' अथवा 'क्रान्ति भावना' को फसल के प्रतीक द्वारा व्यक्त किया है –

कुसंस्कृति भूमि यह किसान की

धरती के पुत्र की

जोतनी है गहरी दो–चार बार दस बार

बोना महा तिक्त बीज असन्तोष का

काटनी है नये साल फागुन में फसल जो क्रान्ति की।

5. सामंतवाद और पूँजीवादी (शोषक वर्ग) व्यवस्थाओं के प्रति विद्रोह :

सामंतवाद या पूँजीवादी व्यवस्था सदैव समानता–विरोधी रही है। कार्लमार्क्स ने समाज की सभी समस्याओं का कारण एक मात्र धन को माना, इसीलिए समाजवादी व्यवसाय में धन के समान वितरण या उसके सरकारीकरण अथवा राष्ट्रीयकरण पर बल दिया गया। इस प्रकार विश्व मानवता के शत्रुओं के विनाश हेतु प्रगतिवादी कवियों ने अपना तीव्र आक्रोश (खीझ) व्यक्त किया है। निराला की ''कुकुरमुत्ता'' काव्यकृति इसका उदाहरण है –

अबे, सुन बे गुलाब

भूल मत जो पायी है खुशबू, रंगो आब

खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट

डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट

बहुतों को तूने बनाया है गुलाम,

माली कर रक्खा, खिसाया जाड़ा घाम।

पूँजीवादी व्यवस्था समस्त संकटों का आधार है, इसीलिए कवि त्रिलोचन शास्त्री का कहना है कि ''पूँजीवाद से कभी किसी का हित कदापि सम्भव नहीं है'' –

पूँजीवाद ने महत्त्व नष्ट कर दिया सबका

जीवन का, जन का, समाज का, कला का।

बिन पूँजीवाद को मिटाए किसी तरह भी

यह जीवन स्वस्थ नहीं हो सकता

ज्ञान–विज्ञान से किसी प्रकार

कोई कल्याण नहीं हो सकता।

6. राष्ट्रीयता :

राष्ट्रीयता एवं देश–प्रेम की भावना का स्वरूप देश के अतीत गौरव–गान इत्यादि से भिन्न है। कवि अपने निवास–स्थलों (जनपद, ग्राम इत्यादि) की ओर देखकर प्रेम में मग्न होता है।

इस प्रकार यदि पूर्ववर्ती देश–प्रेम की भावना सामान्योन्मुखी थी तो इस काल की भावना विशेषोन्मुखी है। यह सामाजिक यथार्थवाद की भावना का ही एक रूप है। डॉ. मलखानसिंह सिसौदिया की 'ओ ज्योति देश' एक उत्कृष्ट कविता है। कवि कहता है –

इतिहासों को दिग् बोध कराने वाले,

आ ज्योति–देश, तेरा वन्दन करता हूँ।

तू प्रलय–वक्ष पर पद–प्रहार कर जन्मा

विध्वंस–मृत्यु की बन्द किये मुट्ठी में,

विक्षुब्ध तरंगों के झूले में झूला

पी गया अतल जल–राशि रोष घुट्टी में।

लोरियाँ बनीं तब शस्त्र की झँकारें,

तू निडर धधकती ज्वालाओं से खेला।

सन् 1942 के राष्ट्रीय आन्दोलन काल में सम्पूर्ण देश और द्वितीय विश्व–युद्ध (1939) के कारण विश्व में उथल–पुथल थी उसके फलस्वरूप ही प्रगतिवादी कवियों में राष्ट्रीय भावना के अंग रूप में राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम का भाव उमड़ा। उन्होंने भारत में स्थापित पूँजीवाद तथा साम्राज्यवाद का विरोध करते हुए अपने राष्ट्र–प्रेम का परिचय दिया। साम्यवाद के कट्टर हिमायती होते हुए भी डॉ. रामविलास शर्मा का अपने देश के प्रति अगाध प्रेम है। उनकी अपने राष्ट्रीय ध्वज के उत्तरोत्तर उत्कर्ष की मंगल कामना द्रष्टव्य है –

और भी ऊँचा उठे, फहरे समूचे देश पर यह,

खेत–खलिहानों, मिलों पर झूमता हो,

कह रहा है – यह तुम्हारे खेत है–अब

अन्न दो – भूखा न कोई देश में हो।

7. मानवतावाद :

दलित, शोषित और मज़दूर वर्ग के पक्ष में खड़ा होकर कवि बृहद् मानवीय दृष्टिकोण को ही उजागर करता है। प्रगतिशील कवि ने भी कर्म का सन्देश सुनाया है, उठते हुए व्यक्ति को उठाया और मानवता की अपरिमित शक्ति में विश्वास प्रकट किया है। यह विश्वास यहाँ तक बढ़ गया है कि ईश्वर का अस्तित्व भी सन्देहास्पद हो गया हैं –

जिसे तुम कहते हो भगवान्

जो बरसाता है जीवन में

रोग शोक दुख दैन्य अपार

उसे सुनाने चले पुकार ?

प्रगतिवादी मानव को संसार की सर्वोत्कृष्ट रचना मानते हैं। वे उसकी अपरिमित शक्ति, अदम्य साहस और अटूट लगन के सदैव गान गाते हैं। उनकी दृष्टि में ईश्वर अथवा भाग्य का जीवन में कोई स्थान नहीं है। पुरुषार्थ के द्वारा हर असम्भव को सम्भव बनाना मनुष्य की अपराजेय शक्ति और सामर्थ्य में है। महेन्द्र भटनागर कहते हैं –

'सामने तूफ़ान है, पर बड़ा इन्सान है,

पैर से जिसने मिटा दी, संकटों की सृष्टि सारी।'

8. नारी के प्रति यथार्थ दृष्टि :

प्रगतिवादियों ने स्त्री पुरुष को समान दृष्टि से देखा है। नारी को कोमलांगी न मानकर खेत–खलियानों में कार्य करने वाली स्वस्थ कृषक–बाला के रूप में देखते हैं।

9.5.2 प्रगतिवादी काव्य का शिल्पगत पक्ष

जनवादी चेतना को अभिव्यक्ति देने के लिए प्रगतिवादी कवियों ने जनभाषा को माध्यम बनाया। छायावादी काव्यभाषा अत्यधिक सूक्ष्म, सांकेतिक, ध्वन्यात्मक व प्रतीकात्मक होने के कारण जनसाधारण की पहुँच व समझ से परे हो गई थी इसी कारण प्रगतिवादी कवियों ने सर्व–सामान्य लोगों की भाषा को काव्य–भाषा के रूप में स्वीकार किया है, बताया है कि काव्य रचना इस भाषा में संभव है। इसी कारण अब प्रतीक, रूपक, उपमाएँ सब कुछ बदल गये। जिन वस्तुओं का सम्बन्ध ही जिंदगी से नहीं है; उसे इन्होंने हटा दिया। निराला द्वारा प्रकाशित मुक्तछन्द को इन्होंने अपनाया। प्रगतिवाद की अधिकतर रचनाएँ मुक्तछन्द की ही हैं।

छन्द की दृष्टि से प्रगतिवादी कवियों ने बहुत प्रगति की है। उन्होंने जनगीत एवं लोकगीतों की शैली अपनाकर नई धुनों का सृजन किया है। उन्होंने भोजपुरी और राजस्थानी बोली में बड़ी मार्मिक कविताओं की रचना की है। वस्तुतः प्रगतिशील कवि का लक्ष्य भाषा को सरल, सुबोध और भावाभिव्यंजना के योग्य बनाना है। छन्द की गति, लय, भाषा का सारल्य एवं शब्दों की योजना बड़ी स्वाभाविक एवं चित्रोपम है, तथा भावों की अपूर्व प्रेषणीयता लिए हुए है। पंत की पंक्तियाँ हैं –

खुल गये छन्द के बन्ध, प्रयास के रजत पाश,

अब गीत मुक्त औ, युगवादी बहती आयास।

प्रगतिवादी कवियों ने कला की बजाय प्रेषणीयता पर ध्यान दिया।

9.6 प्रगतिवाद की उपलब्धि और सीमाएं

इस काव्यधारा ने आधुनिक हिन्दी कविता की विषय वस्तु, भाषा और शिल्प के क्षेत्र में महत्वपूर्ण बदलाव किए हैं। कविता को जमीन से जोड़े रखा। अनुभूति का एक विशाल और नया क्षेत्र हिन्दी कविता को उपलब्ध हो सका। दलित और शोषित वर्ग की मूल वाणी को प्रखर यथार्थ से अभिव्यक्ति दी गई। सच कहा जाए तो सामाजिक यथार्थवादी दृष्टि इस आन्दोलन के कारण ही प्राप्त हुई। इस दृष्टि का प्रभाव अद्यतन साहित्य में विद्यमान है। काव्य भाषा को जनभाषा के निकट ला खड़ा किया। जनवादी चेतना की भाषा इस युग से ही विकसित होने लगती है।

किन्तु इस काव्यधारा की महत्ता के साथ कुछ इसकी सीमाएँ भी जुड़ी हुई हैं। वस्तुतः प्रगतिवादी काव्य धीरे–धीरे साम्यवाद का प्रचारक होने लगा था। सिर्फ शोषक और शोषितों की अभिव्यक्ति, वर्गसंघर्ष के कारण विषयगत संकीर्णता लाने लगी थी। इन्हीं विषयों की पुनरावृत्ति होने लगी और कला पक्ष पीछे छूट गया। केवल समाज निष्ठता के कारण व्यक्ति की चेतना व सत्ता का महत्व कमतर हो गया और इन्हीं सीमाओं के कारण 'प्रयोगवाद' सामने आया।

9.7 सारांश :

वस्तुतः प्रगति का अर्थ है 'उन्नति', 'आगे बढ़ना', जो व्यवस्था है उसमें परिवर्तन उपस्थित करना। आधुनिक कविता में प्रगतिवाद का अर्थ ऐसा काव्य जो परिवर्तन की ओर अग्रसर करता है और जीवन में गतिशीलता ला देता है। 'सामाजिक यथार्थवाद' प्रगतिवाद का मूल स्वर है। प्रगतिवाद का दार्शनिक आधार मार्क्सवाद है। साहित्य प्रगति का शक्तिशाली साधन या अस्त्र है जो मात्र धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष अथवा मनोरंजन के उद्देश्य से ही नहीं लिखा जाता अपितु वर्ग संघर्ष को सामने रख वर्ग विहीन समाज की स्थापना का भी लक्ष्य रखता है। प्रगतिवादी काव्यधारा ने इसी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर काव्य रचना की। प्रगतिवाद में शोषण, अन्याय, अत्याचार, सामाजिक भेदभाव का विरोध किया। जनवादी भावनाओं को जनभाषा में अभिव्यक्ति दी और वर्गहीन समाज की व्यवस्था के लिए क्रान्ति का आह्वान किया।

9.8 अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. 'प्रगति' से क्या तात्पर्य है ? प्रगतिवादी कविता के स्वरूप और विकास का वर्णन कीजिए।

_____

_____

_____

_____

2. प्रगतिवादी काव्यधारा की पृष्ठभूमि का उल्लेख कीजिए।

_____

_____

_____

_____

3. प्रगतिशील चेतना का स्वर 'छायावाद' में किस प्रकार अभिव्यक्त हुआ है ? वर्णन कीजिए।

_____

_____

_____

_____

4. प्रगतिवादी काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियों का सोदाहरण विश्लेषण कीजिए।

_____

_____

_____

_____

5. 'राजनीति में जो साम्यवाद है, साहित्य में वही प्रगतिवाद है।' इस कथन की विवेचना कीजिए।

_____

_____

_____

_____

6. प्रगतिवाद पूर्ववर्ती छायावाद के भाव और शिल्प बोध से किस प्रकार भिन्न है ? वर्णन कीजिए।

_____

_____

_____

_____

7. टिप्पणी लिखिए –

(1) केदारनाथ अग्रवाल और उनका काव्य।

_____

_____

_____

_____

(2) प्रगतिशील कवि शिवमंगल सिंह सुमन।

_____

_____

_____

_____

(3) प्रगतिवाद की उपलब्धियाँ।

_____

_____

_____

_____

(4) डॉ. रांगेयराघव का प्रगतिवादी काव्य में योगदान।

_____

_____

_____

_____

9.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. गणपति चन्द्रगुप्त – हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004
2. डॉ. रामविलास शर्मा – प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1954
3. रेखा अवस्थी – प्रगतिवाद और समान्तर साहित्य, द मैकलिन कम्पनी ऑफ इण्डिया लि., नई दिल्ली, 1978
4. डॉ. रामविलास शर्मा – प्रगति और परम्परा, किताब महल, इलाहाबाद, 1949
5. डॉ. रामसजन पाण्डेय – हिन्दी साहित्य का इतिहास, संजय प्रकाशन, दिल्ली 2004

_____

प्रयोगवाद

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 प्रयोगवाद की पृष्ठभूमि

10.3 प्रयोगवाद की सीमा रेखा अर्थ व स्वरूप

10.4 प्रमुख प्रयोगवादी कवि

10.5 प्रयोगवाद की प्रवृत्तियाँ

10.5.1 संवेदनागत पक्ष

10.5.2 शिल्पगत पक्ष

10.6 प्रयोगवाद एवं नयी कविता

10.7 सारांश

10.8 अभ्यास प्रश्न

10.9 संदर्भ ग्रंथ

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरांत आप

* प्रयोगवाद की पृष्ठभूमि को समझ सकेंगें।
* प्रयोग की प्रवृत्ति, प्रयोगवाद की सीमा रेखा व स्वरूप को समझ सकेंगे।

* तारसप्तक के प्रमुख कवियों और उनकी रचनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

* प्रयोगवादी काव्यधारा की संवेदना और शिल्प का विश्लेषण कर सकेंगे।

* प्रयोगवाद और नयी कविता का सम्बन्ध जान सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

यह सत्य है कि युग बदलता है तो जीवन और जगत के सम्बन्ध में मानदण्ड भी बदलते हैं, यही नियम प्रयोगवाद पर भी लागू होता है। यहाँ पर भी साहित्य सौंदर्य की अभिव्यक्ति के मानदण्ड बदले हैं। छायावाद की मानवीय कल्पना और शब्द विन्यास की कोमलता के कारण जो अनुभूतियाँ अर्धव्यक्त थीं, उन्हें सामाजिक भूमिका पर प्रगतिवाद ने पूर्ण व्यक्त बनाने का श्रम उठाया, परन्तु इस श्रम के परिणामस्वरूप हिन्दी कविता को मार्क्सवाद के सिद्धांतों का भी बोझ उठाना पड़ा। नतीजा यह निकला कि कविता विज्ञापनी होती गयी और जब कविता विज्ञापनी हो जाती है तो कलाशिल्प की चिन्ता भी स्वतः ही छूट जाती है। अतः कविता को कलात्मक सौष्ठव और स्वस्थ सामाजिकता प्रदान करने के लिए एक नवीन काव्यधारा 'प्रयोगवाद' का उदय हुआ।

स्वयं अज्ञेय इस काव्य धारा को वाद की संज्ञा से अभिहित करने के पक्ष में नहीं है और इसे प्रयोगशील काव्य के नाम से पुकारते हैं, इस शब्द से काव्य के संवेदना व शिल्प पक्ष के अंतर्गत नवीन प्रयोगों का होना लक्षित होता है। यह सत्य है कि श्रेष्ठ कलाकर अपने व्यक्तित्व की छाप एवं मौलिकता के द्वारा नवीन प्रवृत्तियों का विकास करते हैं। प्रयोगवाद नाम भी साहित्य के इतिहास में रूढ़ होने के कारण ही ग्राह्य हो सका और अब यह एक निश्चित प्रवृत्ति मूलक काव्य का भी बोध कराता है। प्रयोगवाद अन्त में अपने सभी विरोधाभासों को दरकिनार करते हुए नव–जीवन के नवीन विश्लेषण की ओर उन्मुख होकर नयी कविता में विलीन हो गया।

10.2 प्रयोगवाद की पृष्ठभूमि

साहित्य में प्रयोगवाद की प्रवृत्ति के उदय के मूल में क्या परिस्थितियाँ रही हैं इसकी जानकारी आवश्यक है। प्रगतिवाद का आंदोलन राष्ट्रीय स्वाधीनता के संघर्ष से घनिष्ठ रूप में जुड़ा हुआ था, लेकिन जब आज़ादी हासिल हो गई तो मध्यवर्ग के सम्मुख कोई ऐसा आदर्श नहीं रहा जो उन्हें किसी बाह्य सामाजिक आदर्श से जोड़ पाता। देश के नव निर्माण ने उनमें नवीन आकांक्षाओं को जगाया। सामूहिकता की भावना के शिथिल पड़ जाने के साथ व्यक्तिवाद ने जोर पकड़ना शुरू किया। दूसरी ओर विश्व पैमाने पर अमरीका के नेतृत्व में साम्राज्यवादी शिविर और सोवियत संघ के नेतृत्व में समाजवादी शिविर के बीच बढ़ते तनाव ने भी लेखकों व बुद्धिजीवियों के एक बड़े हिस्से को प्रभावित किया।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद साम्राज्यवादी देशों ने कम्युनिस्ट देशों और मार्क्सवादी विचारधारा के विरूद्ध प्रचार किया। इस प्रचार ने लेखकों व बुद्धिजीवियों को प्रभावित किया। इस बात को प्रमुखता दी जाने लगी कि व्यक्ति की स्वतंत्रता ही सर्वोत्तम मूल्य है। साम्यवाद व्यक्ति की स्वतंत्रता का अपहरण करता है। समाजवादी

देशों में व्यक्ति को कोई स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। वहाँ लोकतंत्र व मानव मूल्य सुरक्षित नहीं है। प्रयोगवाद के उदय में इन परिस्थितियों ने भी अपनी भूमिका निभाई है। इस विराट् परिवर्तन का साहित्य किसी एक विचारधारा से उत्पन्न नहीं हो सकता था न मार्क्सवाद से, न गान्धीवाद से, न मनोविज्ञान से, न अन्य किसी धारणा से। द्वितीय विश्वयुद्ध में छिन्न–भिन्न हुए कई योरोपीय देशों के जीवन की उथल–पुथल भी हिन्दी साहित्यकार के सामने थी। ये सब ऐसी घटनाएँ हैं, जिनके कारण 1943 के लगभग हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक ऐसा युग आरंभ होता है, जिसमें सब कुछ बदला हुआ, सब कुछ नया या नये की तलाश में नज़र आता है।

10.3 प्रयोगवाद की सीमा–रेखा, अर्थ व स्वरूप :–

प्रयोगवाद की सीमा–रेखा को सन् 1943 से 1953 तक स्वीकार किया जा सकता है। सन् 1947 में अज्ञेय के संपादन में ''प्रतीक'' नामक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ तथा इस पत्रिका में प्रकाशित होने वाली कविताओं को प्रयोगवादी कहा जाने लगा। इसके बाद से लगातार प्रयोगवाद की चर्चा होती रही यद्यपि अज्ञेय ने दूसरा सप्तक (1953) की भूमिका में प्रयोग के वाद से इन्कार किया, इसके बावजूद यह शब्द रूढ़ हो गया। इस प्रकार यह मत भी रखा गया है कि प्रयोगवाद का आरंभ ''तार सप्तक'' (1943) से नहीं बल्कि ''प्रतीक'' (1947) के प्रकाशन से माना जा सकता है, स्पष्ट है कि प्रयोगवाद एक ऐसी साहित्यिक धारा को दिया गया नाम है जिसने स्थापित मान्यताओं को पुनर्परीक्षित करके नये प्रयोग किये। वस्तुतः नये प्रयोगों के माध्यम से प्रयोगवाद साहित्य में क्रांति लेकर आयी नयी काव्यधारा थी। सन् 1943 में प्रकाशित तारसप्तक, 1953 में प्रकाशित दूसरा सप्तक प्रयोगवाद के प्रमुख संग्रह हैं। तारसप्तक में मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर ,रामविलास शर्मा और अज्ञेय की कविताओं को स्थान प्राप्त है तो दूसरे सप्तक में भवानीप्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय और भारती की कविताओं को स्थान मिला है। इन दोनों सप्तकों के अतिरिक्त प्रतीक और पाटल जैसी पत्रिकाओं ने भी प्रयोगवाद को काफी बढ़ावा दिया। नकेन (नरेश, केसरी कुमार और नलिन विलोचन) के प्रपद्यवाद के 10 सूत्री कार्यक्रम से भी प्रयोगवाद को बल मिला।

'प्रयोगवाद' के अर्थ निर्धारण का प्रयास अनेक समीक्षकों ने किया है। इस सम्बन्ध में कई ऐसी मान्यताएँ जिससे प्रयोगवाद और उनके अर्थ को समझने में सहायता मिल सकती है। इस क्रम में पहला मत लक्ष्मीकान्त वर्मा का है, उन्होंने लिखा है कि ''प्रयोगवाद ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ने की बौद्धिक जागरूकता है। यह जागरूकता व्यक्ति–सत्य और व्यापक सत्य के स्तरों पर व्यक्ति की अनुभूति की सार्थकता को भी महत्वपूर्ण मानती है। प्रयोगवाद व्यक्ति–अनुभूति की शक्ति को मानते हुए समष्टि की सम्पूर्णता तक पहुँचने का प्रयास है। प्रयोगवाद एक ओर व्यष्टि अनुभूति का समष्टि अनुभूति तक उत्सर्ग करने का प्रयास है तो दूसरी ओर से रूढ़ि का विरोधी और अन्वेषण का समर्थक भी है।'' उधर डॉ. धर्मवीर भारती का विचार है कि ''प्रयोगवादी कविता में भावना है, किन्तु हर भावना के आगे एक प्रश्नचिन्ह लगा हुआ है। इसी प्रश्नचिन्ह को आप बौद्धिकता कह सकते हैं।''

श्री गिरिजाकुमार माथुर ने प्रयोगवाद के सम्बन्ध में लिखा है कि ''प्रयोगों का लक्ष्य है व्यापक सामाजिक

सत्य के खण्ड अनुभवों का साधारणीकरण करने में कविता को नवानुकूल माध्यम देना जिसमें व्यक्ति द्वारा इस व्यापक सत्य का सर्वबोधगम्य प्रेषण सम्भव हो सके।''

इस सम्बन्ध में डॉ. देवराज ने लिखा है कि ''पुरानी कविता रूढ़िग्रस्त और अरोचक हो उठी थी, दूसरे काव्य भाषा को जनभाषा के निकट लाना था अथवा काव्यगत निबद्ध अनुभूति को जनजीवन के सम्पर्क में लाना था, अतः बदलते हुए जीवन की नयी संभावनाओं के उद्घाटन के लिए अथवा नये मूल्यों की प्रतिष्ठा व नवीन प्रयोग करने के लिए प्रयोगवाद का जन्म हुआ।''

प्रयोगवाद को अज्ञेय प्रयोगशील कहना अधिक सार्थक मानते हैं, और कहते हैं कि प्रयोगवादी कवि किसी स्कूल के नहीं हैं अभी राही भी नहीं वरन् राहों के अन्वेषी हैं। युगीन संदर्भ, स्थापित मान्यताओं की जकड़, विज्ञान द्वारा प्रदत्त बौद्धिकता, वैयक्तिकता के प्रति आग्रह, व्यक्तित्व का विघटन, जीवन की विविध जटिलताएँ, जीवन–व्यापी निराशा और पराजय से उत्पन्न अतृप्तियाँ, विश्व के रंगमंच पर पल–पल घटित होने वाले राजनैतिक और सांस्कृतिक परिवर्तन, छायावाद की धूमिल अभिव्यक्ति तथा प्रगतिवाद की राजनैतिक मतवादिता व मार्क्सीय दृष्टि के कारण नये की उपलब्धि के प्रयास में प्रयोगवाद का विकास हुआ। यही कारण है कि इस धारा के कवियों ने अपनी कविताओं के द्वारा वही सब कुछ प्रयास किया है जो इन्होंने भोगा और अनुभव किया है। जीवन के कटु से कटुतम और भयंकर से भयंकरतम व यथार्थ से अतियथार्थ तक भोगे हुए क्षणों का अंकन प्रयोगवाद में मिलता है।

10.4 प्रमुख प्रयोगवादी कवि

प्रयोगवाद के प्रमुख कवियों में तारसप्तक के सभी कवियों को लिया जा सकता है। यद्यपि इन सातों में कुछ ऐसे भी हैं जो प्रगतिवाद के साथ भी जुड़े हुए हैं। ऐसे कवियों में रामविलास शर्मा, नेमिचन्द्र जैन आदि प्रमुख हैं। हाँ, ये सभी कवि प्रायः मध्यवर्ग के ही हैं जिन्होंने अपने मध्यवर्गीय समाज के व्यक्ति के सत्य को प्रेषित किया है। ऐसी स्थिति में यह कहना अधिक उचित प्रतीत होता है कि इस धारा के कवियों में ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय समाज के जीवन का चित्र प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति ही अधिक स्पष्ट रही है।

1. अज्ञेय

कवि अज्ञेय प्रयोगवाद के प्रवर्तक और नयी कविता के सूत्रधार माने जाते हैं। उनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ – **भग्नदूत, चिन्ता, इत्यलम्, सावन मेघ, हरी घास पर क्षण भर, बावरा अहेरी, इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये, आँगन के पार द्वार, अरी ओ करुणा प्रभा–मय, कितनी नावों में कितनी बार, सागर–मुद्रा, क्योंकि मैं उसे जानता हूँ तथा पहले सन्नाटा बुनता हूँ** इत्यादि हैं। अज्ञेय जी ने कविता के साथ–साथ कहानी, उपन्यास, आलोचना, निबन्ध, यात्रा–वृत्त, संस्मरण आदि कई विधाओं में श्रेष्ठ रचनाएँ लिखीं और नई पीढ़ी को ही नहीं, अपने समवर्ती नए–पुराने साहित्यकारों को भी नए शिल्प एवं नई दृष्टि से साहित्य–रचना की प्रेरणा दी।

अज्ञेय जी आरंभ में छायावादी प्रवृत्ति की कविताएँ लिखते थे, फिर गाँधीवाद और प्रगतिवाद से भी प्रभावित रहे। वे 1943 ई. से प्रयोगवाद और 1950 के पश्चात् नई कविता के प्रतिष्ठापक कवि बन गए थे, जिसके फलस्वरूप तारसप्तक, दूसरा सप्तक तथा तीसरा सप्तक उनके सम्पादन में प्रकाशित

हुए। अपने भावों को व्यक्त करने के लिए अज्ञेय जी शिल्प को निरन्तर माँजते–तराशते चलते हैं। बिम्ब–विधान, प्रतीक और मिथक उनकी काव्य–शैली का अभिन्न अंग बन गए हैं। भाषा का अभिनव संस्कार कवि अज्ञेय ने दिया है। इसके अतिरिक्त अभिव्यक्ति के स्थान पर अनुभूति और संप्रेषण को महत्व, व्यष्टि – समष्टि द्वन्द्व की सार्थक अभिव्यक्ति, लघु कविता की स्थापना और वृहत् मानव के स्थान पर आम आदमी की प्रतिष्ठा कवि अज्ञेय ने की है।

2. रामविलास शर्मा

रामविलास शर्मा तारसप्तक प्रथम के संकलित कवि हैं। तारसप्तक में उनकी **''कार्यक्षेत्र''**, **''कवि''**, **''चाँदनी''**, **''प्रत्यूष के पर्व''**, **''केतकी''**, **''शारदीय''**, **''सिलहार''**, **''दिवा स्वप्न''**, **''दाराशिकोह''**, **''गुरुदेव की पूर्णिमा''**, **''जल्लाद की मौत''**, **''सत्यं शिवं सुन्दरं''**, **''विश्व शांति''**, **''कलियुग''**, **''परिणति''**, **''तूफान के समय''** आदि कविताएँ संकलित हैं। रामविलास शर्मा मूलतः आलोचक हैं। शर्मा की कविताओं में मोहभंग व प्रणय की प्रयोगवादी अनुभूतियाँ नहीं हैं।

रामविलास शर्मा की कविताओं की स्पष्टतः दो दिशाएँ परिलक्षित होती हैं – प्रकृति चित्रण व सर्वहारा वर्ग की अनुभूतियों का आकलन। अज्ञेय की प्रयोगशीलता की आवाज पर उन्होंने कतिपय प्रयोगवादी कविताएँ भी लिखी हैं जिसमें ''सत्यं शिवं सुन्दरं'' प्रमुख हैं।

3. गिरिजाकुमार माथुर (सन् 1918–1994)

गिरिजाकुमार माथुर की काव्य कृतियां हैं – **'मंजीर'**, **'नाश' व निर्माण**, **'धूप के दान'**, **'जनम कैद (श्रव्य नाटक संग्रह)'**, **'शिलापंख चमकीले'**, **'जो बँध नहीं सका'** और अन्त में है उनकी प्रौढ़ रचना – **'भीतरी नदी की पाल'**। इनके समूचे सृजन से उनके काव्य के विविध स्वरों को सुना जा सकता है। वे मूलतः सौन्दर्य, प्रेम तथा प्रेम से प्रसूत पीड़ा, विषाद व अवसाद के कवि है। परन्तु बाद में कटु यथार्थ व युगीन परिवेश अपनी वास्तविकता के साथ इनके काव्य में व्यक्त हुआ।

4. भारतभूषण अग्रवाल

अज्ञेय के समकालीन कवि भारतभूषण अग्रवाल 'तारसप्तक' के प्रकाशित होने से प्रसिद्ध हुए। भारतभूषण अग्रवाल की प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं – **'कवि काव्य बन्धन'**, **'जागते रहो'**, **'मुक्तिमार्ग'**, **'हाथरस'**, **'कागज के फूल'**, **'उतना वह सूरज'** आदि। 'उतना वह सूरज', काव्य संग्रह के लिए इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। **'सेतुबन्ध' व 'अग्निलीक'** इनके दो काव्य नाटक भी हैं। इनके काव्य की विषयवस्तु का ज्ञान हमें इनके विभिन्न काव्य संग्रहों के अध्ययन विवेचन से प्राप्त होता है। प्रेम, राजनीति, युगबोध सम्बन्धी व्यंग्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, प्रकृति चित्रण आदि विषय इनकी कविताओं में आए हैं ।

5. नेमिचन्द्र जैन

नेमिचन्द्र जैन भी अज्ञेय के समकालीन सहधर्मी कवि हैं । यद्यपि इन्होंने काव्यसृजन अधिक नहीं किया परन्तु इनकी जो भी कविताएँ हैं वे आधुनिक बोध से सम्बद्ध है तथा इनमें आधुनिक संक्रांति से मुक्त होने की तीव्र अभिलाषा निबद्ध है। वे आधुनिक युग को संघर्षों का युग मानते हैं। यह संघर्ष व्यक्तित्व के जहाँ टुकड़े–टुकड़े कर देता है, वहाँ वह व्यक्ति के चिन्तन को विरोधाभासों और अन्तर्द्वन्द्वों से भी भर देता है। आधुनिक युग विरोधाभासों का युग है। आज बुद्धि और हृदय, आदर्श व व्यवहार, विवेक व कर्म परस्पर पूरक न होकर विरोधी हो गए हैं।

तारसप्तक के अतिरिक्त उनका 'एकान्त' कविता संग्रह है। **'कवि गाता है', 'डूबती सन्ध्या', 'अनजाने चुपचाप', 'इस क्षण में', 'धूल भरी दोपहरी', 'आगे गहन अंधेरा है', 'क्या भाषा', 'जिन्दगी की राह', 'व्यथ व उन्मुक्त'** आदि इनकी महत्वपूर्ण कविताएँ हैं।

6. प्रभाकर माचवे

प्रभाकर माचवे 'तारसप्तक' के तार्किक कवि हैं। 'तारसप्तक' में संकलित कविताओं से कवि का वैचित्र्य प्रेम प्रकट होता है। उनकी चमत्कारप्रियता कला व वस्तु दोनों पक्षों से सम्बन्धित है। माचवे की कविताओं में रोमांस (प्रणय) व यथार्थ दोनों का संयोजन देखा जा सकता है। माचवे का कथन है – ''कवितागत रोमांस और यथार्थ एक ही कोण की दो भुजाएँ है। रोमांस स्वस्थ मन का भावनात्मक रूख है, यथार्थ उसी की बुद्धिगत परिकल्पना।''

'स्वप्न भंग', 'अनुरक्षण' तथा 'तेल की पकौड़ियाँ' माचवे के ये तीन काव्य संग्रह हैं 'सानेट' तथा 'कापालिक कविता' में कवि की रोमानी भावनाएँ प्रवाहित हुई हैं।

7. गजानन माधव मुक्तिबोध

अपनी पूरी पीढ़ी में मुक्तिबोध का व्यक्तित्व विशिष्ट है। इस पीढ़ी और परवर्ती पीढ़ी के लगभग सारे महत्वपूर्ण कवि (अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, शमशेर, भारती आदि) रूमानी कविता से हटकर नया प्रयोग करने का प्रयत्न करते हुए भी रूमानी संवेदना और भाषा से मुक्त नहीं हो सके, किन्तु मुक्तिबोध एक ऐसे कवि हैं जिनका अनुभव जगत बहुत व्यापक है, जो अपने परिवेश के जीवन से बहुत गहन भाव से जुड़े हुए हैं। उनकी प्रगतिवादी दृष्टि परिवेश–बोध, सामाजिक चिन्तन और अनुभव–वैविध्य की ओर बल देती है। अतः कहा जा सकता है कि बाद में जीवन के बहुविध छवि को लेकर विकसित होने वाली नयी कविता के अग्रज कवि सच्चे अर्थों में मुक्तिबोध ही हैं। **'चाँद का मुँह टेढ़ा है'** मुक्तिबोध का काव्य संकलन उनकी रचनाधर्मिता का खुला दस्तावेज है। मुक्तिबोध की प्रारम्भिक रचनाओं में व्यक्तिपरकता छायावादी प्रभाव के कारण आई है।

8. शमशेर बहादुर सिंह

शमशेर एक भावुक कल्पनाशील कवि हैं। उनकी कविता में वस्तुपरक सामाजिक चेतना भी पर्याप्त

है। एक ओर वे प्रणय–जीवन के कोमल चित्र प्रस्तुत करते हैं, तो दूसरी ओर मध्यवर्गीय किसान–मज़दूरों के जीवन–चित्र। एक ओर उनमें सौन्दर्यवादी–रूपवादी रूझान है तो दूसरी ओर उन पर मार्क्सवादी–प्रगतिवादी प्रभाव। एक ओर उनमें प्रेमाकुलता, निराशा और अवसाद है तो दूसरी ओर मामूली आदमी के प्रति सहानुभूति। **''कुछ कविताएँ (1959), कुछ और कविताएँ (1960), शमशेर (1971), चुका भी हूँ नहीं मैं, इतने पास अपने, उदिता** आदि आपकी काव्य–पुस्तकें हैं।''

9. नरेश मेहता

नरेश मेहता दूसरे सप्तक के कवि एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। विषय और शिल्प दोनों में ही मेहता जी ने नए–नए प्रयोग किए हैं। उन्होंने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों प्रकार की कविताएँ लिखी हैं। देश–प्रेम, प्रकृति, पौराणिक संदर्भ, समाज की समकालीन समस्याएँ आदि को मेहता जी ने नयी कविता के विषय बनाकर प्रौढ़ता प्रदान की है। **वनपाखी सुनो, बोलने दो चीड़ को, संशय की एक रात, मेरा समर्पित एकांत, महाप्रस्थान, प्रवाद–पर्व** आदि प्रमुख काव्य–कृतियाँ हैं। 'संशय की एक रात' उनका लोकप्रिय प्रबन्ध–काव्य है, जिसमें वे भगवान राम के चरित्र को नयी दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं।

10. धर्मवीर भारती

अज्ञेय की प्रयोगवादी धारा के प्रमुख कवि माने जाते हैं। **'अन्धायुग', 'ठंडा लोहा', सात गीत–वर्ष** और **कनुप्रिया** प्रकाशित काव्य ग्रंथ हैं। आरंभिक कविताओं में आप छायावादी भावुकता से प्रभावित थे, किन्तु धीरे–धीरे आप लोक–परिवेश से भी जुड़ते गए। आपकी नयी कविताओं में भी नाट्य–तत्व तथा गीतात्मकता का समावेश रहता है। भारती जी ने कविता के अलावा कहानियाँ, उपन्यास, नाटक तथा आलोचनाएँ भी लिखी हैं। ''सूरज का सातवाँ घोड़ा'' आपकी प्रसिद्ध कथा–कृति है।

इसके अतिरिक्त सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शिवमंगलसिंह सुमन आदि प्रमुख कवियों का नाम उल्लेखनीय है। ये सभी कवि अपनी काव्य रचनाओं के माध्यम से प्रयोगवाद को पार करते हुए नयी कविता के पड़ाव तक सफलतापूर्वक पहुंचे।

10.5 प्रयोगवाद की प्रवृत्तियाँ

'प्रयोगवाद' के अर्थ, स्वरूप और महत्त्व व प्रेरक तत्वों के इस निरूपण में उसकी कतिपय विशेषताएँ भी स्वतः ही आ गयी हैं, फिर भी कुछ अन्य विशेषताएँ भी ऐसी हैं जो अलग से विवेचन की अपेक्षा रखती हैं। उन्हीं का संक्षिप्त विवेचन आगे किया जा रहा है।

10.5.1. संवेदनागत पक्ष

1. वैयक्तिकता

वैयक्तिकता छायावाद में भी थी, किन्तु प्रयोगवाद में यह चरम सीमा पर है और इसका कारण विशिष्टीकरण की प्रक्रिया है। छायावादियों की वैयक्तिकता जितनी रंगीन, स्वप्निल और मनोहर भावुकता से रंजित थी, वहीं प्रयोगवादियों पर यह आरोप है कि उनकी वैयक्तिकता एकदम शुष्क, पत्रडंठलविहीन और रमणीयता हीन है। प्रयोगवादी कविता में दमित वासना की अधिक अभिव्यक्ति है।

प्रयोगवादी कवियों ने व्यक्ति के एकांत महत्व पर विशेष बल दिया है। ''नदी के द्वीप'' कविता में अज्ञेय ने व्यक्ति और समाज के संबंधों पर विचार किया है। उसके अनुसार व्यक्ति दीप के समान है जो काल रूपी नदी के बीच दृढ़ता से अवस्थित रहता है जो समाज रूपी भूखंड की तरह नदी को गंदला नहीं करता। ''नदी के द्वीप'' कविता में व्यक्ति और समाज अलग–अलग हैं। उनकी अन्य कविताओं में भी व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व पर बल दिया गया है।

व्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति यह आग्रह मध्यवर्ग की मानसिकता की अभिव्यक्ति है जो वैयक्तिक असंतोष से उपजी है। छायावाद में भी मध्यवर्ग का ही व्यक्ति केन्द्र में था। परन्तु वहाँ उसकी चेतना उर्ध्वमुखी थी, वह आत्म–विकास की ओर अग्रसर थी, उसकी व्यक्ति चेतना सामंती रूढ़ियों और बंधनों से मुक्त होना चाहती थी। प्रगतिवाद ने इस मध्य वर्ग के व्यक्ति को समाज से और सामूहिक चेतना से जोड़ा। इसके कारण मध्यवर्ग में व्यक्तिवादिता का उदय नहीं हुआ। परंतु प्रयोगवादी दौर में मध्यवर्ग का असंतोष सामाजिक धरातल पर व्यक्त होने की बजाय वैयक्तिक धरातल पर व्यक्त हुआ। समाज में कटा हुआ व्यक्ति केवल दर्द को व्यक्त करने लगा। आशा और विश्वास की जगह निराशा और अनास्था ने ले ली। इस प्रकार प्रयोगवादी कविता में व्यक्ति की भावनाएँ ही प्रमुख होती चली गयीं।

2. सत्य के लिए निरंतर अन्वेषण

डॉ. नामवर ने ''सत्य के लिए निरंतर अन्वेषण को'' प्रयोगवाद की दूसरी विशेषता माना है। जब एक बार प्रयोगवादी कवि ने परम्परावादी विचारधारा से अपने को अलग कर लिया तब सत्य को जानने के निरंतर अन्वेषण आवश्यक हो गए। अज्ञेय ने ''दूसरा सप्तक'' की भूमिका में कहा था, 'प्रयोग दोहरा साधन है, क्योंकि एक तो वह सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है उसके साधनों को जानने का भी साधन है अर्थात् प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है और अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त कर सकता है। प्रयोगशीलता की पहचान इसी प्रवृत्ति में अंतर्निहित है।

3. यथार्थ–दृष्टि

प्रयोगवाद ने प्रयोगातिशयता के कारण वर्ण्य विषयों व वार्ता–प्रसंगों को भी यथार्थवाद के नाम

पर अभिव्यक्त किया। इसी अतियथार्थवादी प्रवृत्ति के कारण पंत ने लिखा है कि ''प्रयोगवाद की निर्झरिणी कल–कल छल–छल करती हुई फ्रायडवाद से प्रभावित होकर स्वप्निल फेनिल स्वर संगीतहीन भावनाओं की लहरियों से मुखरित उपचेतन–अवचेतन की रूद्ध–क्रुद्ध ग्रंथियों को मुक्त करती हुई, दमित कुंठित वासनाओं को वाणी देती हुई लोक–चेतना के स्त्रोत में नदी के द्वीप की तरह प्रकट होकर अपने पृथक् अस्तित्व पर अड़ गयी है।''

जीवन के यथार्थ को रंगीन मोहक और भावमय रूप में प्रस्तुत करने की बजाए प्रयोगवाद ने सहज और साधारण रूप से प्रस्तुत किया। यद्यपि प्रयोगवादी कवि की जीवानुभूति बहुत सीमित थी परन्तु यह सीमित अनुभव यथार्थपरक रूप से ही व्यक्त हुआ है।

4. विद्रोह का स्वर

हम जानते हैं कि मध्य वर्ग ने ही विद्रोह किया और इसी को प्रकट करने के लिए तीव्र उद्‌गार व्यक्त किए। सामाजिक परिस्थिति की उलझन का जो स्वर 'कुकुरमुत्ता' में मुखरित हुआ था, वह आज भी विद्यमान है। अज्ञेय की कविता में आततायी सामाजिक परिवेश को चुनौती है –

ठहर, ठहर आततायी! जरा सुन ले।

मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन जा।।

साहित्यिक परम्परा के प्रति भी यह विद्रोह की भावना बड़ी व्यापक है। अजितकुमार की 'कवियों का विद्रोह' शीर्षक कविता प्रयोगवादी साहित्यिक परम्परा के विद्रोह की प्रवृत्ति का बड़ा सुन्दर रूप प्रस्तुत करती है –

''चाँदनी चन्दन सदृश'

हम क्यों लिखें ?

मुख हमें कमलों सरीखे क्यों दिखें।

हम लिखेंगे :

चाँदनी उस रूपए सी है कि जिसमें

चमक है पर खनक गायब है।

हम कहेंगे जोर से :

मुँह घर–अजायब हैं

जहाँ पर बेतुके, अनमोल, जिन्दा और मुर्दा

भाव रहते हैं।

मुक्तिबोध ने भी विवेक–चेतना को अभिव्यक्ति दी है –

मुझे भ्रम होता है कि

प्रत्येक पत्थर में

चमकता हीरा है

हरेक छाती में आत्मा अधीरा है

प्रत्येक सुस्मित में

विमला सदा नीरा है

मुझे भ्रम होता है कि

प्रत्येक वाणी में

महाकाव्य की पीड़ा है। – चौराहे : गजानन माधव मुक्तिबोध

5. बौद्धिकता

जीवन की जटिलताओं को भोगने के कारण प्रायः सभी प्रयोगवादियों ने बौद्धिकता का वरण किया है। इनकी बौद्धिकता राग–प्रेरित नहीं है। उनमें बौद्धिक चमत्कार का अंश इतना अधिक है कि यह अनुभव ही नहीं होता कि कविता का संबंध राग से भी हो सकता है। यह ठीक है कि युग बदल रहा था और बदलते युग में बुद्धि का प्रभाव बढ़ रहा था, किन्तु वह इतना नहीं था कि कविता कविता न रहकर बौद्धिक व्यायाम हो जाय तथा उसका रूप ही कुरूप हो जाय।

6. वैचित्र्य प्रदर्शन

अधिकतर प्रयोगवादी कवि वैचित्र्य प्रदर्शन को लेकर चले हैं। कहीं–कहीं यह उनकी मानसिक उलझन को व्यक्त करता है। अज्ञेय की 'हवाई यात्रा' नामक कविता में इस प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। कहीं–कहीं यह वैचित्र्य–प्रदर्शन की प्रवृत्ति बड़ी हास्यास्पद है। इस प्रवृत्ति का एक उदाहरण देखिए –

"अगर कहीं मैं तोता होता!

तो क्या होता ?

तो क्या होता;

तो होता।

(आल्हाद से झूमकर)

तो तो तो तो ता ता ता ता

(निश्चय के स्वर में)

होता होता होता होता!''

इस कविता में केवल वर्ण्य और वर्णन का वैचित्र्य प्रदर्शन ही हुआ है।

7. नारी चित्रण व प्रेम

प्रयोगवाद में नारी चित्रण व प्रेम का अलग अंदाज है। छायावादी और प्रयोगवादी कविता में नारी–चित्रण की तुलना करते हुए डा. नामवर सिंह ने लिखा है कि ''छायावादी कवि प्रायः प्रकृति की मोहक पृष्ठभूमि में अथवा सुंदर प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से नारी की छाया प्रतिमा निर्मित करते रहे, लेकिन प्रयोगवादी कवि ने यहाँ भी अप्सरामयी नारी को स्वर्ग स्थित गरिमामय पद से उबारते हुए सामान्य भाव–भूमि पर प्रतिष्ठित कर दिया। प्रयोगवाद में प्रेम की अभिव्यक्ति प्रयोगवाद के धरातल पर हुई है। यह अवश्य है कि प्रयोगवादी कविताओं में प्रेम भावुकतापूर्ण और लिजलिजे के रूप में व्यक्त नहीं हुआ है बल्कि बौद्धिक धरातल पर व्यक्त हुआ है। उदाहरण के लिए ''हरि घास पर क्षण भर'' कविता में अज्ञेय प्रेमाभिव्यक्ति करते हुए सामाजिक वास्तविकता को नहीं भूलते। प्रेम की भावना का एक आयाम यह भी है कि व्यक्ति प्रेम में डूबकर दुनिया की सुधबुध खोने की बजाय वह समाज के प्रति उदात्त और जीवन के प्रति अधिक संघर्षशील बने। गिरिजाकुमार माथुर की ''तैतीसवीं वर्षगाँठ'' में यहीं भावना व्यक्त हुई है।

8. क्षणवाद

प्रयोगवादी काव्यधारा के अन्तर्गत यह प्रवृत्ति पाश्चात्य दर्शन की अस्तित्ववादी विचारधारा से आई है। हिन्दी के प्रयोगवादी कवियों ने क्षणवाद को बड़ी व्यापकता से ग्रहण किया है। क्षण की इसी पकड़ ने प्रयोगवादी कवियों को अस्तित्व का बोध कराया। अज्ञेय की 'नदी के द्वीप', गिरिजाकुमार माथुर के 'शिलापंख चमकीले', 'पृथ्वीकल्प', मुक्तिबोध का 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' आदि काव्य संग्रहों में अस्तित्व बोध का गहरा प्रभाव विद्यमान है।

अज्ञेय का मानना है कि सर्जना के क्षण लघु होते हैं उनकी 'सृजना के क्षण' नामक कविता में क्षण के प्रति इसी आस्था के दर्शन होते है। वह कहते हैं –

''एक क्षण भर और

लम्बे सर्जना के क्षण कभी भी हो नहीं सकते हैं।

बूँद स्वाति की भले ही

बँध है मर्म सीपी का उसी निर्मम त्वरा से

जब जिससे फोड़ता चट्टान को भले ही फिर व्यथा के तम में

अरस पर बरस बीते

एक मुक्ता रूप को पकते।''

9. प्रकृति चित्रण

प्रयोगवादी कवियों ने प्रकृति–चित्रण में भी यथार्थ–दृष्टि का परिचय दिया है। कवि प्रकृति की सूक्ष्म गतिविधियों के उसके रूप, रस, स्पर्श, गंध और स्वर के अनुभवों को शब्दबद्ध करने की कोशिश करते हैं। अज्ञेय, शमशेर, गिरिजाकुमार माथुर आदि की कविताओं में हम प्रकृति के विभिन्न रूप देख सकते हैं। उदाहरणार्थ –

शमशेर बहादुर सिंह की 'उषा' कविता का शब्द चित्रण देखिए :–

प्रातः नभ था बहुत नीला शंख जैसे

भोर का नभ

राख से लीपा हुआ चौक

अभी गीला पड़ा है।

बहुत काली सिल जरा से लाल केसर से

कि जैसे धुल गयी हो

स्लेट पर यह लाल खडिया चाक

मल दी हो किसी ने

नील जल में यो किसी की

गौर हिल रही हो।

और

जादू टूटता है इस उषा का अब

सूर्योदय हो रहा है।

10.5.2. शिल्पगत पक्ष

काव्य भाषा

प्रयोगवादी काव्य की भाषा सर्वथा भिन्न है। छायावादी कविता की भाषा में कोमलता और सुकुमारता के गुण थे तो प्रगतिवादी कविता में पहली बार कविता की भाषा को बोल–चाल के निकट लाने की कोशिश की गयी। प्रयोगवाद में शब्द प्रयोग की ओर ध्यान दिया गया। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार यद्यपि प्रयोगवादी कवियों की भाषा में आरंभ में दुरूहता और अनगढ़पन अधिक था परंतु बाद में भाषा अधिक सहज और सरल बनी।

भाषा में गेयता और आलंकारिता कम हुई। अज्ञेय की भाषा आरंभ में दुरूह और बौद्धिक अधिक थी, बाद में भाषा बोलचाल के नजदीक आई। गिरिजाकुमार माथुर की भाषा में गेयता तत्व अधिक रहा है।

शमशेर के शब्द प्रयोग यद्यपि सरल हैं परंतु अर्थ की दृष्टि से अधिक गहन हैं। वे सिर्फ शब्दों तक ही अपनी कविता के अर्थ को नहीं बाँधते बल्कि उससे आगे के शब्दों के बीच के मौन अंतराल में काव्यार्थ छिपा होता है।

प्रयोगवादी कविता में ध्वन्यात्मकता, रंगों का ज्ञान और गंधचित्रों का भी उल्लेख हुआ है। प्रयोगवादी कविता में ध्वन्यात्मकता की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है, जैसे अज्ञेय की कविता में ओस की तिप्–तिप् पहाड़ी काक की 'हाक्–हाक्' गिरिजाकुमार के नींद भरे आलिंगन में चूड़ी की खिसलन इत्यादि। इसी प्रकार इन कवियों ने रंग का ज्ञान भी दिखलाया है, जैसे शकुन्तला माथुर का 'केशर रंग रंगे आँगन', गिरिजाकुमार का 'केशर रंग–रंगे वन' 'श्वेत–धुएँ सा पतला नभ', शमशेर का 'मकई से लाल गेंहुए तलुए', सूखी भूरी झाड़ियाँ। इन कवियों ने गंध का सूक्ष्म ज्ञान भी प्रदर्शित किया है, जैसा – अज्ञेय का 'गंध के डोल डालती मालती' इत्यादि।

छंद और लय

कविता पहले छंद से मुक्त हुई, फिर तुक से, फिर शब्द की लय से। अज्ञेय ने काव्य को ''शब्द'' माना है। उनके अनुसार ध्वनि, छंद, लय आदि सभी प्रश्न शब्द में से निकलते और शब्द में ही विलय होते हैं। अज्ञेय कविता में किसी–न–किसी रूप में गेय तत्व को आवश्यक मानते हैं।

डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है कि ''छायावादी युग में जो मुक्त छंद वैकल्पिक था, वह प्रयोगवादी कविता का मुख्य स्वर हो गया। मुक्त छंद को ही विशेष रूप से अपनाने के कारण प्रयोगवादियों ने इसमें नये–नये स्वरों और नयी लयों के प्रयोग किये।''

प्रतीक और बिम्ब विधान

अज्ञेय काव्य में प्रतीकों का महत्वपूर्ण स्थान मानते हैं। उनके अनुसार ''कोई भी स्वस्थ काव्य साहित्य नये प्रतीकों की सृष्टि करता है और जब वैसा करना बंद कर देता है तब जड़ हो जाता है – या जब जड़ हो

जाता है तब वैसा करना बंद करके पुराने प्रतीकों पर ही निर्भर करने लगता हैं।'' अतः अज्ञेय प्रतीक को सत्यान्वेषण का साधन मानते हैं। उनकी चर्चित कविता सोन–मछली इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

''हम निहारते रूप

काँच के पीछे हाँफ रही मछली।

रूप–तृषा भी

(और काँच के पीछे) है जिजीविषा।''

प्रयोगवादी कविता में प्रतीक ''लाक्षणिक वक्रता'' से आगे बढ़कर सांकेतिक अर्थ की अभिव्यक्ति में सहायक होते हैं। अज्ञेय के यहाँ प्राकृतिक प्रतीकों का अधिक प्रयोग है। भारत भूषण अग्रवाल और गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में प्रायः परंपरागत प्रतीकों का ही प्रयोग हुआ है।

शमशेर के प्रतीक अधिक दुरूह है जबकि मुक्तिबोध में मिथकीय, प्राकृतिक और आधुनिक जीवन से लिए गए विभिन्न तरह के प्रतीकों का प्रयोग मिलता है।

काव्यबिम्ब का संबंध भाषा की सर्जनात्मक शक्ति से है तथा इसका निर्माण मनुष्य के ऐन्द्रिय बोध का ही प्रतिफल है। शब्द और विचार के अमूर्त संकेतों के माध्यम से एक मूर्त चित्र निर्मित दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध होता है। अज्ञेय के यहाँ प्राकृतिक बिम्ब अधिक है। सामाजिक जीवन से लिए गये बिंब कम हैं। मुक्तिबोध के यहाँ मानव–स्थितियों से जुड़े बिंब अधिक हैं।

अज्ञेय की अपेक्षा शमशेर के यहाँ सौंदर्य बिंबों का रूप अधिक संश्लिष्ट और सूक्ष्म है। उन्होंने कई कविताओं में प्रकृति के बिंबों को अपनी भावनाओं के साथ इस तरह गूँथा है कि वह केवल वस्तु का चाक्षुष बिंब न होकर कवि का मानसिक प्रतिबिंब बन जाता है।

10.6 प्रयोगवाद और नयी कविता

धीरे–धीरे प्रयोगवाद वैचित्र्य–प्रदर्शन, बौद्धिकता, सत्यानुभूतियों की कच्ची लिखावट और शिल्पाग्रह की कविता प्रतीत होने लगा। उसमें न तो व्यापक जीवन के चित्र हैं, न विस्तृत फलक पर प्रस्तुत किये गये वे जीवन–संदर्भ हैं। असल में प्रयोगवाद प्रयोगों का आरम्भ था, चरम परिणति नहीं। अतः जब ये प्रयोग संतुलित हुए और बाढ़ का पानी उतरा तो कविता में संतुलन भी आया और परिष्कार भी। वह राग–संवेदनों की भूमिका पर जीवन से गहरे जुड़ती चली गयी। जब ऐसा हुआ तब उसे ही नयी कविता का नाम दिया गया।

नयी कविता का बीज प्रयोगवाद में निहित है। अतः सन् 1950 के बाद से नयी कविता का प्रारम्भ माना जा सकता है। यह वह वर्ष था जबकि नयी कविता का बीज अंकुरित होकर लहलहाने लगा था। प्रयोगवादी कविता में पनपने वाली प्रवृत्तियाँ खुले, व्यापक किन्तु स्वस्थ रूप में दूसरे सप्तक या उसकी समकालीन रचनाओं में मिलती हैं। गिराजाकुमार माथुर और बालकृष्ण राव छायावाद के पश्चात् लिखी गयी समस्त कविता को नयी कविता के अन्तर्गत समझते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा और नामवरसिंह इसे प्रयोगवाद का

छद्म रूप स्वीकार करते हैं तो नरेश मेहता और श्रीकान्त वर्मा इसे प्रयोगवाद व प्रगतिवाद के सर्वथा भिन्न प्रयत्न मानते हैं। नयी कविता को प्रयोगवाद का छद्म नाम बताने वाले भी इसी सत्य की ओर संकेत करते हैं जिसमें प्रयोगवाद और नयी कविता को एक समझा गया है। असलियत यह है कि ये दोनों पूरी तरह एक नहीं हैं। दोनों में सूक्ष्म अन्तर है। प्रयोगवाद शिल्पगत प्रयोगों के रूप में नयी कविता की एक विशिष्ट प्रवृत्ति की ओर ही संकेत करता है जबकि नयी कविता में एक स्वस्थ जीवन–दृष्टि भी मिलती है।

प्रयोगवाद एक ऐसा पौधा था जिसकी शाखाएँ व पत्तियाँ काट–छाँट के अभाव में मनमाने ढंग से फैलती जा रही थीं, जबकि नयी कविता एक कटी–छँटी, सजी–सँवरी लता है जिसमें व्यवस्था है, संतुलन है और यथार्थ का रस खींचकर हरी–भरी बने रहने की उमंग। फिर ऐसी स्थिति में नयी कविता प्रयोगवाद का छद्म नाम न होकर संशोधित रूप है जो अपने में संतुलित जीवन–दृष्टि और प्रयोगवाद की प्रयोगशील वृत्ति लिए खिलता रहा है। प्रयोगवाद में बौद्धिकता का बेमानी अतिरेक था, रसहीनता थी, चमत्कृति, विशेषीकरण की वृत्ति, कामजनित कुंठाओं, निराशाओं, अतृप्तियों और घोर वैयक्तिकता का संदर्भ था तो नयी कविता रागदीप्त, रसनीय, सामाजिक और आस्थावादी है।

10.7 सारांश

इस काव्यधारा के विकास में अज्ञेय और उनके समकालीन कवियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। हिन्दी की यह काव्य धारा भारतीय परिवेश के साथ–साथ यूरोप के काव्य–सिद्धान्तों से भी प्रभावित रही है जिसमें प्रतीकवाद, बिम्बवाद, अतियथार्थवाद, अस्तित्ववाद और मनोविश्लेषणवाद आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। पर यह भी सत्य है कि प्रयोगवाद विदेशी कविता से प्रभावित और प्रेरित तो है, किन्तु वह अनुकरण भर नहीं है। उसमें आई बौद्धिकता, दुरूहता, रसहीनता, अतियथार्थवादिता, चमत्कृति, अतिवैयक्तिकता, गद्याभास की प्रवृत्ति, नवीनता के नाम पर किये गये अनर्गल और बेमानी प्रयोग व मन की दमित भावानुभूतियों का प्रकटीकरण आदि ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके लिए भारतीय परिवेश की जटिलता भी जिम्मेदार है। प्रयोगवाद में शिल्प के प्रति वैचित्र्य प्रदर्शन को पाश्चात्य प्रभाव कहा जा सकता है।

प्रयोगवाद ने कविता को बंधी–बँधाई पद्धति के घेरे से निकाला है, सीमित जीवनानुभूतियों के अभिव्यंजन से काव्य के मूल्यांकन को एक दिशा दी है और बृहत् मानव के स्थान पर आम आदमी (लघु मानव) की महत्ता प्रतिपादित की है।

10.8 अभ्यास प्रश्न

1. प्रयोग और प्रयोगवाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए प्रयोगवाद की सीमा रेखा निर्धारित कीजिए।

_____

_____

_____

_____

2. प्रयोगवाद के प्रमुख कवियों का उल्लेख कीजिए।

_____

_____

_____

_____

3. प्रयोगवाद पूर्ववर्ती काव्यधाराओं से किस प्रकार भिन्न रहा है ? इस कथन के आलोक में प्रयोगवाद की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

4. प्रयोगवाद व नयी कविता के सम्बन्ध को स्पष्ट विवेचित कीजिए।

_____

_____

_____

_____

5. टिप्पणी लिखिए –

क. प्रयोगवाद व नयी कविता के आंदोलन में अज्ञेय का योगदान।

_____

_____

_____

_____

ख. प्रयोगवाद में विद्रोह का स्वर।

_____

_____

_____

_____

ग. प्रयोगवाद में नारी चित्रण व प्रेम।

_____

_____

_____

_____

घ. प्रयोगवाद में शिल्प–संस्कार।

_____

_____

_____

_____

10.9 संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. रामकुमार खण्डेलवाल – हिन्दी काव्य और प्रयोगवाद, संतति प्रकाशन, नई दिल्ली
2. हरिचरण शर्मा – नए प्रतिनिधि कवि, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
3. संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी – अज्ञेय, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
4. डॉ. नामवर सिंह – आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, राजकमल प्रकाशन – नई दिल्ली,

5. सम्पादक डॉ. नगेन्द्र – हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

6. अज्ञेय तारसप्तक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली,

7. प्रो. रामस्वरूप चतुर्वेदी – अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली

8. डॉ. रामकुमार खण्डेलवाल – हिन्दी काव्य और प्रगतिवाद, ऋषभचरण जैन एवं सन्तति, नई दिल्ली

9. डॉ. जयकिशन प्रसाद – हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।

10. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं. 2050

————————

नई कविता

11.0 रूपरेखा

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 वादमुक्त कविता

11.3.1 सामान्य परिचय

11.3.2 नाम–निर्धारण

11.3.3 नाम–प्रचलन

11.3.4 काल निर्धारण

11.3.5 नयी कविता का प्रवर्तक

11.3.6 नयी कविता का आशय

11.3.7 नयी कविता के प्रमुख कवि

11.3.8 प्रमुख प्रवृत्तियां

11.4 निष्कर्ष

11.5 कठिन शब्द

11.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.7 पठनीय पुस्तकें

11.1 उद्देश्य

– प्रस्तुत आलेख के अध्यायनोपरांत आप जानेगे।

– वादमुक्त कविता क्या है।

– वादमुक्त कविता का आरम्भ कहां से हुआ

– इसका नाम निर्धारण कैसे हुआ

– इसका काल निर्धारण क्या रहा है

– प्रमुख कवि कौन हैं

– वादमुक्त कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ कौन सी हैं

11.2 प्रस्तावना

आधुनिक हिन्दी कविता के विकास में नई कविता को महत्त्वपूर्ण काव्यांदोलन अथवा कविता युग के रूप में मान्यता ही नहीं, प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी है। प्रयोगवाद का अगला चरण नई कविता है अथवा नई कविता के विकास का पहला चरण प्रयोगवाद है। इससे विशेष अंतर नहीं पड़ता। यह निर्विवाद है कि तार सप्तक के प्रकाशन सन् 1943 से प्रयोगवाद का आरम्भ माना जाता है तथा इसके प्रवर्त्तक कवि अज्ञेय हैं। नई कविता का नामकरण भी इन्हीं के द्वारा हुआ। अनेक बार प्रयोगवाद और नई कविता का अंतर ही नहीं माना जाता, कारण दोनों वादों के कवियों और काव्य–प्रवृत्तियों में समानता है। कुछ नए कवियों को छोड़ शेष सभी प्रयोगवाद सप्तकीय परंपरा के कवि नई कविता के विकास में अपना वर्चस्व बनाए हैं।

11.3 वादमुक्त कविता–सामान्य परिचय

नई कविता काव्यादोलन की शुरूआत किस प्रकार हुई, इसके समारंभ में किन कवियों, समीक्षकों एवं पत्रिकाओं की मुख्य भूमिका रही–इस पर सविस्तार चर्चा **डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी** तथा **डॉ0 जगदीश गुप्त** ने की है। इनकी **धारणाओं, वक्तव्यों एवं स्थितियों** को समझे बिना नई कविता की पहचान नहीं की जा सकती। **डॉ0 चतुर्वेदी** का मानना है–**''नई कविता युग का संबंध नई कविता पत्रिका से है, जो इलाहाबाद में आरंभ हुई।''** इसके प्रकाशन का संक्षिप्त वृत इस प्रकार है–**आलोचना त्रैमासिक के सम्पादक मंडल (धर्मवीर भारती, रघुवंश, ब्रजेश्वर वर्मा, विजयदेव नारायण साही)** की एक बैठक में, जो भारती के इलाहाबाद स्थित आवास पर आयोजित थी, उसके प्रकाशक **ओमप्रकाश भी आए** हुए थे। वहाँ यह निर्णय हुआ कि इलाहाबाद के युवा लेखकों के सहकारी कविता प्रकाशन की ओर से **नई कविता** शीर्षक से **एक अर्द्धवार्षिक पत्रिका** का प्रकाशन किया जाए। संपादक का दायित्व **जगदीश गुप्त** और **रामस्वरूप चतुर्वेदी** को दिया गया । व्यवस्था और वितरण का जिम्मा **राजकमल** प्रकाशन की ओर से होना स्थिर हुआ। सारी योजना व्यवस्था के स्तर पर आकस्मिक थी, पर रचनात्मक स्तर पर उतनी आकस्मिक नहीं। पिछले कुछ समय से नई कविता की चर्चा–परिचर्चा एक काव्य आंदोलन के रूप में इलाहाबाद में और बाहर भी चल रही थी। यह प्रकाशन, योजना उसकी स्वाभाविक परिणति थी।

1953 की फरवरी में नए लेखकों की संस्था **'परिमल'** की ओर से **नई कविता विषयक एक गोष्ठी का इलाहाबाद** विश्वविद्यालय **के** ओरिएंटल हॉल में आयोजन हुआ। **भारतभूषण अग्रवाल, जगदीश गुप्त और रामस्वरूप** चतुर्वेदी ने नई कविता के विविध पक्षों पर उसमें पर्चे पढ़े और फिर शाम की बैठक में **काव्यपाठ शंभुनाथ सिंह की अध्यक्षता में** था। **शमशेर** की लंबी कविता **अमन का राग** पढ़ते समय प्रबुद्ध श्रोताओं में भी कुछ अधीरज का संचार हुआ था। **मार्च 1953 के 'नए पत्ते'** में उक्त गोष्ठी की एक संक्षिप्त सूचना प्रकाशित हुई और **काव्य पाठ को लेकर ब्रजेश्वर वर्मा का एक पत्र छपा, 'नई कविता–श्रोता के दृष्टिकोण से' भारत भूषण** अग्रवाल द्वारा पठित निबंध **'नई कविता में रूप विधान और वस्तु–तत्त्व'** भी इसी अंक में छपा है। रामस्वरूप चतुर्वेदी का गोष्ठी में पठित निबंध **'नई कविता में मुक्त छंद' कल्पना के अगस्त 53 अंक** में प्रकाशित हुआ।

नई कविता का 1954 में प्रकाशन लघु पत्रिकाओं की एक शृंखला के क्रम में है। **नये पत्ते, नई कविता, निकश, प्रतिमान** जैसी पत्रिकाएँ **परिमल–वृत** के लेखकों द्वारा आयोजित हुई। निराला का नए लेखकों में सम्मान भाव इस संगोष्ठी के नामकरण 'परिमल' से स्पष्ट है। इस परंपरा में **क ख ग त्रैमासिक** पत्रिका का महत्त्व है। नई कविता के प्रेरक निराला थे तथा व्यवहारिक रूप में सहयोग प्रदान करने वाले अज्ञेय थे। नई कविता के पहले अंक को लेकर काफी प्रतिक्रिया हुई। अतः लेखक का यह स्वीकार करना उचित है कि नई कविता शब्द अब एक व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है, जिसमें कविता ही नहीं वरन् इस पूरे रचना–युग की प्रवृत्तियाँ व्यंजित होती हैं, जिन्हें समष्टि रूप में नवलेखन भी कहा गया है। **'नयी कविता' काव्यधारा विवादास्पद होते हुए अब एक प्रतिष्ठित आंदोलन है।**

''कोई भी काव्य आंदोलन जब तक जातीय जीवन के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक आयामों को **विवेक, आस्था और संवेदना** के स्तर पर आत्मसात् न करेगा तब तक वह स्थायी महत्त्व की कृतियों को जन्म नहीं दे सकता।'' डॉ० हरिश्चन्द्र वर्मा का यह कथन नई कविता को एक महत्त्वपूर्ण काव्य आंदोलन प्रतिष्ठित करता है। साथ ही, इसके विविध आयामों एवं आंदोलनों की ओर संकेत करता है। यह निर्विवाद स्वीकार्य है कि 'नई कविता युग' **अनेक काव्य आंदोलन का युग रहा** तथा इसकी चर्चा कई आयामों के आधार पर हुई है। यहां ध्यातव्य है कि प्रत्येक देश एवं काल में साहित्यिक क्षेत्र में नए प्रयोग होते रहे हैं। समय एवं अवसर के अनुरूप अनेक काव्य–आंदोलन प्रकाश में आते रहे हैं पर ऐतिहासिक महत्त्व बहुत कम को मिल पाया है। यही स्थिति नई कविता के काव्य आंदोलन की रही है। इनमें अधिकांश आंदोलन का महत्त्व मात्र नाम –परिगणन तक सीमित है, जबकि कुछ नई कविता से पृथक् अस्तित्व घोषित कर अंततः उसी में अपनी परिणति स्वीकारते हैं। वस्तुतः किसी भी काव्य आंदोलन को मान्यता उसके प्रचलन–मात्र से नहीं मिल जाया करती। उसमें निश्चित विचारधारा के साथ उसके पक्षधर कवियों की अपेक्षा रहती है। मात्र घोषणाओं एवं दो–चार मित्रों के एक साथ प्रकाशित होने पर किसी आंदोलन की स्थापना भले ही समझ ली जाए पर उसे मान्यता नहीं मिल पाती। यही स्थिति नई कविता के अधिकांश काव्य आंदोलन की रही है। कारण यह है कि नई कविता के समक्ष लगभग **अस्सी काव्य** आंदोलन प्रचलित हो चुके हैं। इनमें एक भी आंदोलन ऐसा नहीं है, जो नई कविता आंदोलन का स्थान ग्रहण कर सके। ये सभी नई कविता का विरोध करते हुए भी अंततः उसी में अपनी सत्ता मानते हैं। इससे नई कविता युग का महत्त्व स्वयं सिद्ध हो जाता है।

नई कविता के विविध आंदोलनों की चर्चा में दो बातों को विशेषतः ध्यान में रखना चाहिए। प्रथम तो नई कविता के आंदोलन से अभिप्राय ऐसे आंदोलन से है, जिसका संबंध प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में

इस काव्य आंदोलन (युग अथवा वाद) से है। पृथक्ता के लिए नए नाम की घोषणा से उसे एक आंदोलन रूप में मान्यता नहीं मिल जाती। कारण, जितने भी नई कविता के प्रचलित आंदोलन हैं, प्रायः सभी में एकआध कवि को छोड़कर उनमें से अधिकांश कवि नई कविता से संबद्ध रहे हैं। द्वितीय, आंदोलन से अभिप्राय ऐसे आंदोलनों से है, जिनसे नई कविता एवं इससे संबद्ध कविता किसी–न–किसी रूप में प्रभावित रही है।

इसमें फ्रायड, मार्क्स, सार्त्र इत्यादि चिंतकों के साथ ऐसे अन्य वाद प्रचलित हैं, जिनका नई कविता से संबंध रहा है। यथा, **दादावाद (दादाइज्म), धनवाद (क्युविज़म) और यथार्थवाद (रियलिज़्म) प्रतीकवाद (सिंबोलिज्म) तथा बिंम्बवाद (इमेजिज्म)** इत्यादि। फ्रायडवाद, मार्क्सवाद तथा अस्तित्ववाद का प्रभाव तो विशेष रहा है। नई कविता के विविध आंदोलन के संदर्भ में प्रथम धारणा के आधार पर हम चर्चा करेंगे। दूसरी धारणा के आधार पर इन्हें आंदोलन नहीं कहा जा सकता है। भले ही पाश्चात्य काव्य विकास में ऐसा संभव हो सकता है। हमारे यहाँ नई कविता के साथ–साथ अनेक ऐसे काव्य आंदोलन प्रचलित हुए हैं, जिनको प्रेरणा पाश्चात्य देशों से मिली । डॉ० विनयमोहन शर्मा नई कविता की चर्चा करते हुए कहते हैं कि आज की कविता, नवगीत, अकविता, विद्रोही पीढ़ी, भूखी पीढी आदि नामों से पुकारी जाने लगी है और इन नामों के साथ अपने को जोड़ने वाला कवि अन्य नामधारी कविता से अपने को अधिक आधुनिक और नवीन मानता है। ये नाम पाश्चात्य देशों से उधार लिए गए हैं। **नई कविता के लिए हम अमरीका के ऋणी हैं। वहाँ भी यह अद्यतन कविता (न्यू पोएट्री) के नाम से पुकारी जाती है।** विद्रोही कविता, भूखी पीढ़ी–ये नाम भी वहीं से आयात हुए हैं। डॉ0 शर्मा के प्रस्तुत अभिमत से आंदोलन संबंधी प्रचलित धाराओं का स्पष्टीकरण सहज ही हो जाता है।

नई कविता के नामकरण पर भी तीक्ष्ण प्रहार किए गए और अन्य अनेक नामों का सुझाव दिया गया। पर अपने नामों की प्रतिष्ठा में सभी को 'नई कविता' नाम का आश्रय लेना पड़ा। भले ही उसे तथाकथित नई कविता से संबोधित किया जाए अथवा उसे मुक्त कविता घोषित किया जाए, सभी को मूलतः नई कविता नाम के आधार रूप में स्वीकारना होता है। इसलिए यह कहना समुचित होगा कि नई कविता एक ऐसा प्रतिष्ठित काव्य आंदोलन है जिनमें अनेक छुटपुट आंदोलन साँस ले रहे हैं–उनमें से किसी एक की समाप्ति का अर्थ नई कविता युग की समाप्ति नहीं लिया जाना चाहिए।

नई कविता के संस्थापकों में डॉ0 जगदीश गुप्त तथा डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। नई कविता नाम को प्रतिष्ठित करने में अन्य अनेक पत्रिकाओं में **नई कविता** का विशेष स्थान है। इसमें डॉ0 गुप्त ने **'नई कविता–किसिम किसिम की कविता'** शीर्षक निबंध में नई कविता के साथ प्रचलित नामों का उल्लेख किया है। जो इस प्रकार है–सनातन सूर्योदयी कविता, अपरंपरावादी कविता, सीमांतक कविता, **युयुत्सावादी कविता, अस्वीकृत कविता, सकविता,** अन्यथाकारी कविता, **विद्रोही कविता,** वक्रातर कविता, कबीर–पंथी कविता, समाहारात्मक कविता, उत्कविता, अकविता, अभिनव कविता, **अधुनातन कविता, नूतन कविता, नाटकीयकविता, एण्टी कविता, निर्दिशायामी कविता,** लिंग्वादल मोतवादी कविता, **एब्सर्ड कविता,** गीत कविता, नवप्रगतिवादी कविता, सांप्रदायिक कविता, **बीट कविता, ठोस कविता,** (कांक्रीट कविता), **कोलाज कविता,** बोध कविता, मुहूर्त की कविता, द्वीपांतर कविता, अतिकविता, **टटकी कविता, ताजी कविता, अगली कविता, प्रतिबद्ध कविता, शुद्ध कविता, स्वस्थ कविता, नंगी कविता, गलत कविता, सही कविता, प्राप्त कविता, सहज कविता, आँख कविता,.....।**

प्रस्तुत आंदोलन सूची पर व्यंग्य प्रहार करते हुए डॉ0 जगदीश गुप्त ने इस तथ्य की ओर संकेत भी कर दिया है कि ये नाम तीन–चार वर्षों की देन हैं। अब जबकि नई कविता के प्रचलन तथा इस सूची को दिए काफी वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, इतने समय अनेक नामों की संभावना होना स्वाभाविक है। इन नामों (आंदोलन) में से कुछ के प्रचलन एवं स्थापना से पूर्व का प्रस्तुत अभिमत द्रष्टव्य है–मैं क्या, इस बात को कोई भी दावा नहीं कर सकता है कि वह सूची पूरी हो गई है, क्योंकि यह असंभव नहीं है कि इसके छपते–छपते लोगों तक पहुँचाते दो–चार नाम और पैदा हो जाएँ।..... इस सूची के कुछ नाम इस देश में सम्मानित एवं सुदीर्घ श्रुति परंपरा से प्राप्त हैं। अतएव मुझे उनको सम्मिलित कर लेने का भागी ही न बनाया जाए वरन् उन्हें प्रयासपूर्वक स्मरण रखने का श्रेय भी प्रदान किया जाए। कुछ नाम ऐसे भी हैं, जो आंदोलनात्मक नहीं हैं।

डॉ0 रामदरश मिश्र ने 'साठोत्तरी कविता' शीर्षक के अंतर्गत अनेक आंदोलनों का उल्लेख किया है तथा नई कविता से उनकी पृथक्ता पर कई प्रश्न चिन्ह लगा दिए हैं। उनका अभिमत है– "मेरी स्पष्ट धारणा है कि **सन् साठ के बाद कविता में जो स्वर उगे हैं, वे नई कविता में बीज रूप में विद्यमान रहे हैं और गौण भाव से प्रस्फुटित होते रहे हैं। ये स्वर नई कविता के मूलाधार नहीं रहे हैं, किंतु नई कविता से सर्वथा विच्छिन्न या विरोधी स्वर के रूप में इनकी व्याख्या नहीं हो सकती जैसा कि अकविता वाले करते हैं।** "

अतः कहा जा सकता है कि नई कविता के साथ–साथ अन्य अनेक ऐसे काव्य आंदोलन प्रचलित थे, जिन्हें प्रायः इनका विकास ही मानना होगा। नई कविता की किसी एक विशिष्ट धारणा को आधार बनाकर दो–चार कवियों का सम्मिलित प्रयास पत्रिका अथवा काव्य संकलन के प्रकाशन से नए आंदोलन अथवा वाद की घोषणा करना विशेष रहा है। जिन नामों की ओर डॉ० जगदीश गुप्त ने संकेत किया है, उनमें से अधिकांश तभी समाप्त हो चुके थे, शेष ने अपनी गति नई कविता की ओर उन्मुख कर ली थी। इस प्रकार विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गई सूची को सम्मिलित करने पर लगभग नई कविता के 70–80 आंदोलनों का उल्लेख मिलता है। इन सभी में कुछ ऐसे भी काव्य आंदोलन हैं, जिन्हें नई कविता के साथ मान्यता मिली है–उनमें **समकालीन कविता तथा अकविता** का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। सन् साठ के पश्चात् **निषेध, विचार कविता, नवगीत, अगीत** इत्यादि अनेक आंदोलन प्रचलित हुए। नई कविता के समकक्ष इन आंदोलनों की महत्ता पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए डॉ० हरिश्चंद्र वर्मा कहते हैं–"हिंदी में नई कविता के अंदाज पर नवगीत और अकविता अंदाज, अगीत और एण्टी गीत नामों का प्रचलन हुआ। नामों के हेरफेर के अतिरिक्त इनमें तात्विक दृष्टि से क्या भेद है ? यह रहस्य अज्ञात और अज्ञेय है। नियमित छंद, टेक की आवृत्ति, संगीतात्मकता और तीव्र भावावेग से यथासंभव मुक्त होकर केवल अर्थाभिव्यक्ति पर आश्रित नया गीत नई कविता से ही किन रूपों में भिन्न है ? नई कविता के विविध आंदोलनों की चर्चा सोदाहरण करते हुए **डॉ0 विनयमोहन शर्मा** का अभिमत इस प्रकार है–""अकविता, अगीत आदि से भिन्न एक **एब्सडिटीवाद** चलाने का भी प्रयत्न किया गया जो कि उसके प्रवर्त्तक तक ही सीमित रह गया। डॉ० शर्मा तथा डॉ० वर्मा ने जिन तथ्यों की ओर संकेत किया है, वे विचारणीय प्रश्न हैं। मात्र दो–चार कवियों के मिलकर किसी नाम विशेष की घोषणा कर देने से किसी वाद अथवा आंदोलन को मान्यता प्राप्त नहीं हो जाया करती, भले ही बड़ी–बड़ी घोषणाएँ अथवा स्थापनाएँ की गई हों। विशिष्टता इस बात की रही है कि प्रत्येक प्रवर्तक–संस्थापक स्वयं को नई कविता से पृथक् स्थापित करने का निरंतर उपक्रम करता रहा है। पर हमारे इस कथन से यह अभिप्राय नहीं लिया जाना चाहिए कि नई कविता के साथ किसी भी काव्य आंदोलन का महत्त्व नहीं है। वस्तुतः इस विस्तृत सूची में कुछ

आंदोलन ऐसे हैं, जिन्हें नई **कविता का विकास मानकर भी उसकी पृथक् से चर्चा अपेक्षित है–** इनमें **अकविता, समकालीन कविता तथा विचार कविता** का विशेष महत्त्व है।"

वस्तुतः प्रयोगवादी कविता और नयी कविता की सीमा–रेखा इतनी क्षीण है कि अलग–अलग काव्य धारायें मानने के लिए अभी हिन्दी समालोचक–जगत एकमत से तैयार नहीं हुआ है। यद्यपि उसकी मौलिक प्रवृत्तियों को दृष्टि में रखकर अधिकांश समीक्षकों ने नयी कविता को एक स्वतन्त्र काव्यधारा माना है, तथापि उस पर प्रयोगवादी काव्य का गणनीय प्रभाव पाया जाता है। श्री वी० नारायणन कुट्टि ने लिखा है कि "नयी कविता के अनेक रचयिता पूर्ववर्ती प्रयोगवादी काव्य से प्रेरणा ग्रहण करके ही कविता के क्षेत्र में आये हैं। प्रयोगवादी कविता पर उसका प्रभाव रहना स्वाभाविक भी है।"

11.3.2 नाम–निर्धारण

(1) कतिपय आलोचकों ने आलोच्य काव्यधारा को वैज्ञानिक कविता के नाम से अभिमानित करने के औचित्य–अनौचित्य पर विचार किया है, किन्तु वैज्ञानिक कविता कहने से इस काव्यधारा की प्रवृत्तियों का आभास होना तो दूर रहा, उसके विषय में भ्रामक धारणा ही फैलने की संभावना है।

(2) इस काव्यधारा के लिए 'यांत्रिक कविता' का नामकरण देने का प्रयास किया गया है। यांत्रिक शब्द निर्जीवता, अमानवीयता, कृत्रिमता, रूखेपन आदि का द्योतक है, जो सम्पूर्ण नयी कविता को दृष्टि में रखने पर अतार्किक लगता है।

(3) कुछ साहित्यकार इसके लिए 'नव–स्वच्छन्दतावादी कविता' नाम देने के पक्ष में हैं, किन्तु नव–स्वच्छन्दतावाद आलोच्य काव्यधारा की अनेक प्रवृत्तियों में से एक है, किन्तु यह नाम तार्किक नहीं है।

(4) कतिपय समीक्षकों ने इसे 'उत्तर–प्रयोगवादी' नाम दिया है, किन्तु नयी कविता की प्रवृत्तियाँ प्रयोगवादी प्रवृत्तियों से अनेक दिशाओं में भिन्न एवं स्वतंत्र हैं। अतः यह नाम उक्त काव्यधारा की प्रवृत्तियों का परिचायक नहीं हो सकता है।

(5) आलोच्य काव्यधारा को नयी कविता नाम देने के पक्ष में विचारकों ने अनेक तर्क प्रस्तुत किये हैं। प्रथम यह कि हमारा युग पिछले युग से इतने पृथक् रूप से भिन्न है कि इसका नयापन विकसित होता हुआ नहीं, फाँदता हुआ आया है। दूसरा तर्क यह है कि युग इतना जटिल है कि इसकी प्रमुख विशेषता की ओर इंगित करना असम्भव बात है। अतः उसका असंपृक्त नयापन ही उसकी उल्लेखनीय विशेषता है, जिसको सूचित करने के लिए 'नयी कविता' नाम उपयुक्त है।

'नयी कविता' के प्रसिद्ध समीक्षक वी० नारायणन् कुट्टि ने इसके नामकरण की सार्थकता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, "अतः जिस प्रकार हिन्दी–साहित्य के आरंभिक काल के लिए 'आदिकाल' नाम का समर्थन करते हुए आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने माना है कि जब तक शोधियों के अनुसंधान के फलस्वरूप इस काल की सम्पूर्ण छवियों का उद्घाटन नहीं होगा, तब तक हम इसी नाम का व्यवहार करेंगे, इसी प्रकार हम भी यह मानेंगे कि जब तक आलोच्य काव्यधारा की पूर्ण विशेषताएँ प्रस्फुटित नहीं होंगी, हमें 'नयी कविता' नाम से संतुष्ट होकर काम लेना ही समीचीन है।"

अतः हम कह सकते हैं कि प्रयोगवाद के पश्चात् हिन्दी में जो काव्य–धारा वाद–विमुक्त होकर और कवियों के स्वतंत्र व्यक्तित्व से युक्त होकर निकली है, उसके लिए 'नयी कविता' नाम सर्वाधिक सार्थक है।

11.3.3 नाम–प्रचलन

सन् 1930 में ग्रियर्सन द्वारा संपादित 'न्यू वर्स' का अंग्रेज़ी साहित्य में अप्रतिम स्थान है। 'न्यू वर्स' का अक्षरशः अनुवाद है 'नयी कविता'। सन् 1954 में डॉ० जगदीश गुप्त और श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी के संपादकत्व में 'नयी कविता' नामक पत्रिका (अर्द्धवार्षिक) इलाहाबाद से निकलने लगी, जिसके द्वारा यह नाम हिन्दी जगत् में प्रचलित हुआ। यद्यपि उक्त पत्रिका की प्रारंभिक प्रतियों ने नयी कविता के वास्तविक स्वरूप और प्रयोगवादी कविता से उसके सम्बन्ध के विषय में अर्थगर्भ मौन धारण किया था। कतिपय समीक्षकों के अनुसार 'नयी कविता' शब्द का प्रयोग एक विशेष काव्यधारा के अभिधान के लिए सर्वप्रथम 'अज्ञेय' जी ने किया, जिसका उन्होंने 'आत्मनेपद' में साभिमान स्मरण भी किया है। कालान्तर में समीक्षकों ने 'नयी कविता' को एक व्यापक अर्थ में अपनाकर वादमुक्त काव्य–धारा का नामकरण किया, जो छायावाद, प्रगतिवाद आदि की भाँति प्रचलित हो गया।

11.3.4 काल–निर्धारण

प्रयोगवाद की संकीर्ण सीमाओं को लाँघकर कब 'नयी कविता' अपनी वादमुक्त धारा में बहने लगी, इस प्रश्न को लेकर हिन्दी–समीक्षकों में मत–मतान्तर है। काल–निर्धारण के सम्बन्ध में प्रमुख मत निम्नलिखित हैं–

(1) श्रीकान्त वर्मा ने लिखा है, "..... तारसप्तक के ठीक चार वर्ष बाद हमें जिस समय राष्ट्रीय स्वाधीनता मिली, लगभग उसी समय हिन्दी में एक नयी काव्य–प्रवृत्ति का भी अलग–अलग साहित्यिक केन्द्रों में तथा नगरों में उद्‌भव हुआ। इसी को वर्मा जी 'नयी कविता' मानते हैं। स्पष्ट है कि उनके अनुसार सन् 1947 के करीब 'नयी कविता' की धारा प्रवाहित हुई।"

(2) 'हिन्दी नवलेखन' नामक ग्रंथ में डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है कि 'नयी कविता' की प्रथम अनुभूति पहले उनके द्वारा और बाद में लक्ष्मीकांत वर्मा के सहयोग के साथ प्रकाशित 'नये पत्ते' के माध्यम से हुई। 'नये पत्ते' का प्रथम प्रकाशन सन् 1954 में हुआ था।

(3) कतिपय समीक्षकों का मत है कि, "सन् 1954 में डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी और डॉ० जगदीश गुप्त के संपादन में प्रयोगवादी कविताओं का अर्द्धवार्षिक संकलन 'नयी कविता' के नाम से प्रकाशित होने लगा है। इसी समय से प्रयोगवादी कविता का नाम 'नयी कविता' पड़ गया।"

(4) श्री वी० नारायणन् कुट्टि ने लिखा है, "..... सन् 1954 के करीब ही नयी कविता की आरम्भिक रचनायें होने लगी थीं, पर एक स्वतंत्र काव्य–धारा के रूप में वह शायद सन् 1955–56 में ही प्रकट हुई।"

उक्त कविता के काल–निर्धारण के सम्बन्ध में विद्वानों के मतों के आधार पर कहा जा सकता है कि 'नयी कविता' का प्रचलन सन् 1954 ई. से प्रारम्भ हुआ।

11.3.5 नयी कविता का प्रवर्तक

(1) कतिपय समीक्षकों ने 'अज्ञेय' जी को इस काव्य–धारा का प्रवर्त्तक माना है। डॉ. रघुवंश ने अज्ञेय जी के पक्ष में लिखा है, "किसी भी प्रवृत्ति की कविता आगे–पीछे लिखना अलग बात है और नेतृत्व के अनुकूल गत्यात्मक व्यक्तित्व होना अलग बात है। इस दृष्टि से 'अज्ञेय' जी की स्थिति विवाद के परे है।"

(2) कुछ आलोचकों ने शमशेरबहादुर सिंह को नयी कविता का प्रथम कवि माना है। डॉ० नामवर सिंह ने उनके अनुशासन, परम्परा और समसामयिकता के बोध को नये कवियों के लिए आदर्श माना है।

(3) कुँवर नारायण सिंह ने लिखा है, "नयी कविता में ऐसी चीज नहीं, जो किसी एक व्यक्ति की पूरी खोज कही जा सकती है। उसका विकास एक ऐतिहासिक उपलब्धि है। उसमें कई और प्रतिभाओं का योग है।" इसी मत का समर्थन करते हुए बी० नारायणन् कुट्टि ने लिखा है, "नयी कविता वर्षों के विचार–मंथन, अनेक कवियों की अविराम साधना और आलोचना–क्षेत्र की निरन्तर एवं गम्भीर चर्चा की उपलिब्ध है। अतः उसे किसी व्यक्ति–विशेष द्वारा प्रवर्तित मानना उचित नहीं लगता।"

11.3.6 नयी कविता का आशय

(1) आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है, "..... हिन्दी की स्वस्थ और प्रांजल परम्परा को छोड़कर इस अटपट शैली की रचना को नयी कविता नाम देना भ्रामक और असमीचीन होगा। .....हम इस नयी शैली की रचना को नयी कविता के छद्म–नाम से नहीं पुकार सकते, क्योंकि हिन्दी की नयी कविता इस छोटे से घेरे में घिरी हुई नहीं।" विश्म्भर मानव, बालकृष्ण राव, शांतिप्रिय द्विवेदी आदि शीर्षस्थ समीक्षकों ने वाजपेयी जी के मत का समर्थन किया।

(2) डॉ० जगदीश गुप्त ने नयी कविता को प्रयोगवादी कविता का विकसित रूप मानते हुए लिखा है, "प्रयोगवाद को मुक्त भाव से आत्मसात करते हुए नयी कविता उसका विकास है।" डॉ० इन्द्रनाथ मदान, श्री बी० कुट्टि आदि विद्वानों ने इसी मत का समर्थन किया है।

(3) श्री लक्ष्मीकांत वर्मा ने लिखा है, "एक ओर समष्टिवादी विचारधारा और दूसरी ओर अति–व्यक्तिवादी विचारधारा नवविकास के लिए घातक है। नयी काव्य–चेतना दोनों की अनावश्यक और कृत्रिम आकांक्षा के प्रति विद्रोह करती है।"

(4) श्रीकान्त वर्मा ने नयी कविता को रोमांटिक नवोत्थान कहा है। इस कथन के तीन–चार वर्ष पूर्व डॉ० देवराज ने भविष्यवाणी की थी कि "इस देश में नया काव्य शीघ्र ही रोमांटिक नवोत्थान को जन्म देगा।"

प्रायः अधिकांश समीक्षकों ने नयी कविता को वाद–मुक्त स्वतन्त्र काव्यधारा के रूप मे स्वीकार किया है।

11.3.7 नयी कविता के प्रमुख कवि

जिन कवियों का व्यक्तित्व नयी–कविता से प्रभावित हो चुका है और जिनकी रचनाओं के

अध्ययन द्वारा नयी कविता की अनेकमुखी प्रवृत्तियों का अध्ययन हो सकता है, उनमें कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, कुँवर नारायण, केदारनाथ सिंह, अजितकुमार, राजेन्द्रकिशोर, मलयज, विपिनकुमार अग्रवाल आदि प्रमुख हैं।

11.3.8 प्रमुख प्रवृत्तियाँ

नयी कविता एक नयी मूल्य–चेतना के संदर्भ में विकसित हुई। उस मूल्य–चेतना के कारण कविता की विषय–वस्तु और रचना–प्रक्रिया में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। संक्षेप में नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं–

भावगत प्रवृत्तियाँ

(1) वैयक्तिकता

प्रगतिवादी साहित्य में मार्क्सवादी दर्शन के प्रभावस्वरूप व्यक्तिनिरपेक्ष सामूहिकता देखी गयी थी, जिसकी प्रतिक्रिया प्रयोगवादियों की असामाजिक अहंवादिता में साकार हो उठी। इन दोनों अतिवादों से भिन्न नयी कविता में एक विशिष्ट प्रकार की वैयक्तिकता पायी जाती है, जिसका स्वाभाविक एवं मर्यादित सामाजिकता से कोई सैद्धान्तिक या व्यावहारिक विरोध नहीं है। वी० नारायणन् कुट्टि ने लिखा है, "वह न तो व्यक्ति निरपेक्ष सामूहिकता है न समाज निरपेक्ष अहंवादिता।" कीर्ति चौधरी ने एक प्राकृतिक दृश्य के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा है –

दिन बीते कभी इस शाख पर, किसी कोयल को कूकते सुना था
बार–बार कानों में वही कुछ, गूँजती हुई पाती हूँ।

(2) मानव मूल्यों के विघटन की पुकार

आज सर्वत्र बढ़ती हुई व्यक्तिगत स्वार्थ–साधना, बेईमानी, चोर–बाज़ारी, घूसखोरी आदि के युग–युगों से समादृत मानव–मूल्यों के सम्मुख भारी प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया है। इस विघटित अवस्था का सही–सही चित्रण नयी कविता में बहुतायत से पाया जाता है। मूल्यों से विघटित दुनिया को कुंवर नारायण ने इस प्रकार देखा है–

पागल से लुटे–लुटे, जीवन से छुटे–छुटे, ऊपर से सटे–सटे
अन्दर से हटे–हटे
कुछ ऐसी भी यह दुनिया जानी जाती है।

(3) नवमानव की कल्पना

गिरिजाकुमार माथुर ने लिखा है कि आधुनिक कविता की विभिन्न धारायें युगीन व्यक्ति को परिभाषित करने के विभिन्न प्रयास हैं। उनका कहना है कि द्विवेदी युग में महाकाव्यों के महापुरुष के रूप में, छायावादी युग अमूर्त व्यापक आत्मा की खंड इकाई के रूप में, प्रगतिवादी युग में सामूहिक व्यक्ति के रूप में और प्रयोगवादी काव्य में

असामाजिक अहंवादी के रूप में युगीन मानव को देखने–परखने तथा उसको परिभाषित करने का प्रयास हुआ। नयी कविता में इस प्रवृत्ति की अगली कड़ी हम नव–मानव की कल्पना के रूप में देखते हैं। केदारनाथ सिंह ने लिखा है–

अगर नहीं हैं मेरे स्वरों में तुम्हारा स्वर तो.....

पछाड़ खाये बादलों की तरह टूट जाने दो।

(4) बौद्धिकता

नयी कविता में बौद्धिकता मुखर है और दिग्विजयी विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के इस युग में यह अस्वाभाविक भी नहीं है। वी० नारायणन् कुट्टि ने लिखा है, 'नयी कविता' के कवियों में वैचारिक तीव्रता के रूप में बौद्धिकता का दर्शन मिलता है। जिसके द्वारा कवि अन्तर से या परिवेश से प्राप्त संवेदनों के प्रति प्रौढ़ बौद्धिक प्रतिक्रिया की मार्मिक अभिव्यक्ति काव्य में करते हैं। बौद्धिक कविताओं में कुँवर नारायण की 'आदमी के वेश में जानवर' नामक कविता का अप्रतिम स्थान है। इस कविता में कवि ने भय, आत्मरक्षा आदि मानव की मूल प्रवृत्तियों को रूपक में बाँधकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि अन्यों पर विश्वास करके धोखा खाने से बड़ा धोखा है ग्रन्थों पर अविश्वास करना।

(5) यथार्थवादी दृष्टि

डॉ० इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है, "नयी कविता का यथार्थ आत्मप्रेरित है जो रहस्यात्मक न होकर मानवीय स्तर का है।" प्रायः इन कवियों में जीवन के बाह्य या आन्तरिक यथार्थ पर दृष्टिपात करके तज्जन्य संवेदना के प्रति अपनी वैयक्तिक प्रतिक्रिया को काव्याकार देने की प्रवृत्ति पायी जाती है। मदन वात्स्यायन ने लिखा है–

इस युग की पत्नी–सी हो कुछ, कौन बहस में जीते तुमसे।

नयी कविता का सौन्दर्य–बोध भी यथार्थ पर ही आधारित है। नयी कविता की दृष्टि से यथार्थ का क्रियाशील तत्त्व ही सौन्दर्य के अध्यायों को सँवारता और परिमार्जित करता है।

(6) नव स्वच्छन्दतावाद

श्रीकांत वर्मा ने सम्पूर्ण नयी कविता को नव स्वच्छन्दतावादी माना है, किन्तु यह मत तथ्याश्रित नहीं है। नव स्वच्छन्दतावाद नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों में एक है। ओढ़ी हुई बौद्धिकता का स्थान नयी कविता में भावुकता एवं कल्पना ग्रहण करने लगी है। कीर्ति चौधरी ने लिखा है :

जब याद तुम्हारी आती है,
साँसों में केसर की उसाँस छा जाती है
यह आस–पास का जग, फीका–फीका–सा लगता है

मैं सिहर–सिहर रह जाती हूं

आकंठ डूबकर, मधु के निर्मल सागर में।

(7) प्रकृत्युन्मुखता

नव स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के कारण प्रकृत्ति के प्रति नये कवियों में विशेष संवेदनशीलता परिलक्षित होती है। कवि अपने अनुभूत सत्यों की अभिव्यक्ति के लिए प्राकृतिक दृश्यों का सहारा लेता है। कीर्ति चौधरी ने लिखा है :

नभ के कोने में एक सितारा काँपा,

मुझको लगा कि हाँ

हर चीज़ कहीं तो यों ही ऊपर चमकेगी।

(8) मानवीय प्रेम–भावना

बी० नारायणन् कुट्टि ने लिखा है कि नयी कविता में प्राप्त प्रेम–भावना की आकर्षक विशेषता उसकी नितान्त मानवीयता है। नवस्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के कारण या युगीन परिस्थितियों की विशेषता के कारण शृंगार के उभय पक्षों में वियोग पक्ष की प्रमुखता नयी कविता में पायी जाती है। मदन वात्स्यायन ने लिखा है :

अभी तो तेरी छुट्टी के पैंतीस दिन हैं .....

आज तो बीत ही चला बत्तीस समझो, कल दिन भर

व्यस्त रहूँगा

तो इक्कीस

गोया एक मास, तीस रोज

(9) मानव–गरिमा

नयी कविता का आग्रह जिस विशेष तत्त्व पर है, वह उसे मानव व्यक्तित्व की स्थापना और उसकी उपयोगिता से विकसित होता है, जो समस्त विद्रूपताओं और कटूक्तियों के बावजूद मनुष्य को उसकी मूल मर्यादा के प्रति, निजत्व और अस्तित्व के प्रति जागरूक रखना चाहता है। एक मँजे हुए गरिमायुक्त मानव को कर्मण्यता का संदेश देते हुए रामावतार चेतन ने लिखा है :

डाल दो कुछ अमिट रेखाएँ स्वयं की .....

यह घिस नहीं सकती, डरो मत जिन्दगी है यह

कोई क्रेआन की पेंसिल नहीं है।

कलागत विशेषताएँ

(1) व्यंग्यात्मक शैली

नयी कविता में वर्तमान जीवन की कटुताओं और कुण्ठाओं के प्रति व्यंग्यात्मक भावनाओं की अभिव्यंजना मिलती है। श्री नरेश मेहता ने लिखा है, "जिस समाज में मानव–मन बीमार और कुंठित ही नहीं, खोखला भी है, उस समाज में रचित काव्य में व्यंग्यात्मकता का आ जाना स्वाभाविक है।" ..... सामाजिक विश्वास और वास्तविकता, नेताओं की कथनी और करनी के बीच जो अन्तर दिखायी देता है, वह भी कवि को व्यंग्यात्मक शैली अपनाने के लिए विवश करता है। मदन वात्स्यायन ने लिखा है :

ब्रह्म का लिखा मिटा सकता है, कल का अछूत आज

मंत्री बन सकता है।

पर तुम्हारी लाइन का भार लिये मैं कहाँ जाऊँ, कहाँ भागूँ ?

अफसरों से भरा सरकारी कारखाना, साँपों से भरी कोठरी है।।

(2) बिम्ब–विधान

श्री केदारनाथ सिंह का मत है कि आधुनिक काव्य की आलोचना की कसौटी न तो रस, अलंकार आदि हैं न चरित्र–चित्रण, बल्कि उसमें प्रयुक्त बिम्ब हैं। इन बिम्बों की रचना के लिए कभी अप्रस्तुतों का सहारा लिया जाता है और कभी उनकी झाँकी मात्र से कवि का कार्य हो जाता है। कुँवर नारायण ने 'स्मृति' का एक बिम्ब खींचा है :

आज भी स्मृति वह, मन के वातायन में, लौट रही

किरणों–सी

अमिट खींची है।

(3) प्रतीक–विधान

नयी कविता में पौराणिक प्रतीकों को प्रधानता मिली है। द्रोणाचार्य, कुन्ती, एकलव्य, आदि बहुत से पौराणिक पात्रों और उनसे सम्बन्धित घटनाओं का प्रयोग अप्रस्तुत के रूप में हुआ है। कुंठा से ग्रसित अपनी उस मानसिक स्थिति को कवि ने 'कुन्ती' से रूपक बाँधकर अभिव्यक्त किया है जिसमें कुंठा को दबाने की अपनी असमर्थता और उससे साहित्य–जगत को अपवित्र करने की हिचक–दोनों में पारस्परिक संघर्ष चलता है। नयी कविता के सशक्त हस्ताक्षर दुष्यन्त कुमार ने लिखा है :

मेरी कुंठा क्वारी कुन्ती, बाहर आने दूँ तो लोक लाज मर्यादा

भीतर रखूँ तो घुटन सहन से ज्यादा .....

ओ स्वर निर्झर बहो कि तुम में,

गर्भवती अपनी कुंठा का कर्ण बहा दूँ

मुझको इससे मोह नहीं है, इसे विदा दूँ।

(4) लघु कविता–शैली

नयी कविता में प्रायः तीन या चार पंक्तियों में समाप्त होने वाली लघु कविताएँ रचने की एक प्रणाली प्रचलित हो गयी है। टी० ई० ह्यूम जैसे पश्चिमी बिम्बवादी कवियों ने इस प्रकार की प्रवृत्ति को अपनाया था। कतिपय प्रयोगवादी कवियों ने इसका पूर्वाभास दिखाया था। पर उसका प्रचलित रूप नयी कविता में आकर ही विकसित हुआ है, जैसे :

मुँडेर पर लाल सूरज यों रूका था।

जैसे कोई फूल धर के जा चुका था। **–महेन्द्र भल्ला**

इस प्रवृत्ति के अतिवादी रूप को भी कतिपय कवियों ने अपनाया है। श्रीकान्त वर्मा की 'विद्युत' शीर्षक एक कविता ऐसी ही है जिसका रूप केवल इतना ही है :

आकाश में द–रा–र

(5) अलंकार

नयी कविता की विद्रोही प्रवृत्ति के कारण शास्त्रीय अलंकारों का उपयोग प्रचुर मात्रा में नहीं हुआ है। सशक्त अभिव्यंजना पर विशेष आग्रह होने और उसे रूपगत चमत्कार से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण मानने के कारण अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि शब्दालंकारों का विधान यहाँ प्रायः नहीं पाया जाता है। अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, रूपकातिश्योक्ति आदि सादृश्यमूलक अलंकारों का उपयोग दृष्टिगत होता है। साभिप्राय विशेषणों का प्राचुर्य भी नयी कविता में व्याप्त है जिसके कारण परिकर अलंकार का भी व्यापक विधान हुआ है, जैसे –

किराये के मकान की छत सा यह आसमान

बारिश में टपकता है जिससे पानी।

नयी कविता में अलंकारों का प्रयोग साधन के रूप में किया गया है, साध्य के रूप में नहीं। अतः उपलब्ध अलंकार–शास्त्र की कसौटी पर नयी कविता की शैली की आलोचना करना न्यायसंगत नहीं है। मानवीकरण, विशेषण–विपर्यय आदि का खुलकर प्रयोग हुआ है।

(6) छंद–योजना

नयी कविता में मुक्त छंद का प्रचुर प्रयोग हुआ है। मुक्त छंद को प्रतिष्ठित करने का श्रेय कविवर निराला को है। मुक्त छंद में नियमों का जटिल बन्धन नहीं है, जिस पर ध्यान रखते–रखते कवि द्वारा काव्य के आन्तरिक तत्त्वों की उपेक्षा हो जाए। मुक्त छंद के कारण ही नयी कविता पर गद्यात्मकता का आरोप लगाया जाता है। इस आरोप से नयी कविता को बचाने के आग्रह से डॉ० जगदीश गुप्त ने अर्थ की लय वाला सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। श्री बी० नारायणन् कुट्टि ने लिखा है–"हमारा मत है कि मुक्त छंद ही नयी कविता के लिए सर्वथा उपयोगी छंद है।"

कालान्तर में छंद के आकार को लेकर कतिपय कवियों ने विचित्र प्रयोग किया है। जैसे :

कागज की नाव सही उत्तर दर्द

पानी के बुलबुले सही उत्तर मन। **(आग्नेय, समवेत अंक–1)**

भाषा

डॉ० जगदीश गुप्त का कथन है कि नयी कविता में आकर खड़ी बोली का मौलिक व्यक्तित्व और सहज सौन्दर्य उभर आया है। नयी कविता की मूलवर्ती वर्जनाहीन दृष्टि के कारण उसका शब्द–भंडार काफी समृद्ध है। इसकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्द, अरबी–फारसी के शब्द एवं कतिपय अंग्रेज़ी शब्दों का भी समावेश है। श्री वीरेन्द्रकुमार जैन ने लिखा है :

टेस्ट ट्यूब बेबी तुम्हारी सभ्यता की आखिरी सौगात है

तुम्हारा दिल माँस का नहीं सिर्फ प्लास्टिक का है

उसमें खून नहीं शाम्पेन बहती है।

भाषा–सम्बन्धी यथार्थवादी दृष्टि के कारण नयी कविता की वाक्य–रचना में पर्याप्त सजीवता और स्वाभाविकता का समावेश हुआ है। श्री वी० नारायणन कुट्टि ने लिखा है, "..... नयी कविता में आकर काव्य–भाषा खड़ी बोली के सहज स्वरूप की ओर अधिक झुक आयी है। काव्य–भाषा सम्बन्धी पिछली परंपराओं से लाभ उठाकर उसने उसकी अभिव्यंजना–क्षमता को काफी बढ़ा दिया है। शब्दचयन और शब्द–योजना की दृष्टि से जन–भाषा की ओर उसका स्पष्ट झुकाव है।"

11.4 निष्कर्ष

1950 के बाद प्रयोगवादी कविता नयी–कविता के रूप में ढल गयी। प्रयोगवाद के कवि नयी कविता के कवि बन गये। प्रयोगवाद तथा नयी कविता में कुछ आलोचकों ने कुछ अन्तर निर्दिष्ट किया है। उनके विचार से **प्रयोगवाद द्वन्द्व और प्रतिक्रिया की कविता है और नयी कविता संश्लेषण सामंजस्य की कविता है। अधिकांश समीक्षक प्रयोगवाद तथा नयी कविता में अन्तर नहीं करते। प्रयोगवाद को सत्यान्वेषण**

की कोशिश तथा प्रक्रिया की अनिश्चित दिशा नयी कविता में निश्चित हो गयी। इसका प्रमुख लक्ष्य है मानव मुक्ति। मुक्ति की चेष्टा जन्म–मरण के आवागमन से नहीं बल्कि सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक वर्जनाओं तथा रूढ़ियों की जकड़न से है।

नयी कविता आधुनिक भावबोध को (समकालीन बोध जिसका अभिन्न हिस्सा है) **बड़ी गहराई से उजागर करती है।** वैज्ञानिक तथा प्राविधिक विकास के कारण मनुष्य–मनुष्य के बीच निर्मित होने वाले नये रिश्तों पुराने रिश्तों की जर्जरता, नये–पुराने मूल्यों, नैतिक मापदण्डों के द्वन्द्व, पूर्व प्रचलित मान्यताओं से स्खलित, नवीन मान्यताओं के प्रति सशक्ति, मानव की बेचारगी को नयी कविता वर्ग सजगता से अपने कथ्य में अभिव्यंजित करती है, समाज की समग्र इकाई में अस्मिता, समाज के प्रति समर्पित होकर भी अपनेपन के प्रति सजग, आरोपित मर्यादा तथा नैतिकता को तोड़कर भी स्वतः स्फूर्ति दायित्व से सम्पृक्त '**मनुष्य**' **की प्रतिष्ठा करना नयी कविता का प्रमुख उद्देश्य है। जिस तरह विज्ञान में परमाणु की महत्ता है उसी तरह काल में क्षण की महत्ता है। नये कवियों के लिए जीवन के हर क्षण का यथार्थ अद्वितीय है । क्षण–क्षण में विभक्त अनुभूति की ताज़गी उसके सृजन में काल की सूक्ष्म गति संश्लिष्ट तथा अविरल हो जाती है।**

नये कवियों का **संवेदन जगत देश की परिधि तोड़कर विश्व–संदर्भों में परिव्याप्त हो जाता है।** वह जहाँ से जैसा अनुभव करता है उसे वैसे ही कहना चाहता है। उसकी **यही व्यापक दृष्टि मनुष्य के भावों तथा समस्त क्रिया–कलापों को चित्रित करने में है।** मनुष्य के लघु जीवन में अच्छे–बुरे, आदर्श–यथार्थ के टुकड़े बना देने से वह और भी लघु हो जाता है। किसी एक अंश को रचना में समेट लेने से उसकी समग्रता खंडित हो जाती है। नया कवि जीवन को समग्रता में ग्रहण करता है। इसीलिए उसके तथ्य की सीमाओं में शिव–अशिव, शुभ–अशुभ, सुन्दर–असुन्दर सब कुछ आ जाता है। जैसे –

पढ़िए गीता

बनिए स्त्रोता

फिर इन सब में लगा पलीता

किसी मूर्ख की हो परिणीता

निज घर बार बसाइए।

होय कटीली

आँखे गीली

लकड़ी, सीली, तबियत ढीली

घर की सबसे बड़ी पतीली

भरकर भात पकाइए

नये कवियों में 'अहं' के प्रति विशेष संचेष्टता है। वह अपने अस्तित्व की स्वीकृति चाहता है और उसके माध्यम से जीवन, सौंदर्य और समाज का साक्षात्कार करता है।

नयी कविता के लोकोन्मुखी लहजे तथा लोक–सम्पृक्ति से भाषा तथा शिल्प दोनों में एक नूतन संजीदगी उत्पन्न होती है। उसमें ग्रामीण जीवन का बाह्य स्थूल वृत्त नहीं आता बल्कि लोक बिम्बों, प्रतीकों तथा नव उपमानों के माध्यम से जीवन की जटिल अनुभूतियों का साक्षात्कार होता है। नयी कविता में शब्दों का ठेठ प्रयोग परिवेशगत विशिष्ट अर्थ छवि को अंकित कर देता है। बिम्ब बहुलता नयी कविता की विशिष्ट पहचान है। मुक्तिबोध की कविता उद्धृत है –

मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर में
चमकता हीरा
हर एक छाती में आत्मा अधीरा है
प्रत्येक सुस्मित में विमल सदा नीरा है
मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी में
महाकाव्य पीड़ा है।

डॉ० जगदीश गुप्त ने नयी कविता में शब्द लय की अपेक्षा अर्थ लय की महत्ता को विश्लेषित किया है। पद्य में ही नहीं गद्य में भी तथा मनुष्य के जीवन में भी एक लय है जो विविध, काव्यों, अवस्थाओं और परिस्थितियों में विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होती रहती है। काव्य जीवन से अविछिन्न है। नयी कविता में चित्रात्मकता, लाक्षणिकता और वक्रोक्ति की प्रधानता है। उसमें रसानुभूति उतनी सम्भव नहीं है जितना सह–अनुभूति।

11.5 कठिन शव्द

1. चित्रात्मकता 2. लाक्षणिकता 3. अविछिन्न 4. अवस्था 5. संचेष्टता 6. साक्षात्कार 7. प्रक्रिया

8. समीक्षक 9. प्रस्फुटित 10. स्वच्छन्दतावादी ।

11.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न – वादमुक्त कविता का परिचय देते हुए इसकी प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिये।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – वादमुक्त कविता के प्रमुख कवि कौन से हैं उनका परिचय दीजिए।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – वादमुक्त कविता के काल निर्धारण के विषय में विभिन्न विद्धानों के मतों का उल्लेख कीजिए।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – नयी कविता के प्रवर्तक कौन हैं, स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

_____

टिप्पणी लिखिए

प्रश्न – नयी कविता का आशय।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – प्रमुख कवि

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – नाम निर्धारण

_____

_____

_____

_____

11.7 पठनीय ग्रंथ

1.	नामवर सिंह	–	छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1990
2.	हजारी प्रसाद द्विवेदी	–	ग्रंथावली, भाग–3, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1981
3.	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	–	हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
4.	रामस्वरूप चतुर्वेदी	–	हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1993
5.	डॉ. नगेन्द्र (सं.)	–	हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशलन पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली 1982
6.	डॉ. जयकिशन प्रसाद	–	हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
7.	डॉ. नामवर सिंह	–	आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, राजकमल प्रकाशन – नई दिल्ली,

.....

नवगीत

12.0 रूपरेखा

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 नवगीत

12.4 नवगीत की प्रतिष्ठा

12.5 'नवगीत' का प्रचार–प्रसार

12.6 नवगीतः स्वरूप–वैशिष्टय

12.7 नवगीत : विशेषताएँ व उपलब्धियाँ

12.8 नवगीत की विषय वस्तु

12.9 सारांश

12.10 कठिन शब्द

12.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.12 पठनीय पुस्तकें

12.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप –

– नवगीत के स्वरूप और वैशिष्टय को समझेंगे।

– नवगीत का नामकरण कब और कैसे हुआ ? जानेंगे।

– नवगीत की प्रतिष्ठा कब हुई जानेंगे।

– नवगीत का प्रचार – प्रसार कैसे हुआ जानेंगे

– नवगीत की विशेषताएँ एवं उपलब्धियों को समझेंगे।

12.2 प्रस्तावना

छायावादोत्तर काल में गीत–विधा की दो धाराएं सामने आईं। एक में **व्यक्तिनिष्ठ संवेदन और राग बोध** की अभिव्यक्ति हुई और दूसरी में राष्ट्रीय चेतना ओजपूर्ण स्वरों में मुखर हुईं प्रगतिवादी चेतना से अनुप्राणित गीतों में विचारधारा की स्फीति के कारण आत्मानुभूति की गहनता का अभाव रहा। पाश्चात्य काव्यान्दोलनों के प्रभाव से प्रयोगवादी काव्यान्दोलन चला। इस धारा में मुक्त छंद पर बल दिया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 'नई कविता' का प्रस्ताव किया गया जिसमें छंद मुक्त और छंदबद्ध रचनाओं को समाहित कर लिया गया। डॉ० जगदीश गुप्त द्वारा संपादित 'नई कविता' त्रैमासिक पत्रिका में दोनों प्रकार की रचनायें प्रकाशित होती थीं। सभी पूर्ववर्ती धाराओं का अपनी पूर्व पहचान खोकर एक मंच पर आ जाना एक अभूतपूर्व घटना थी। इसी अर्थ में इसे नई कविता' की संज्ञा दी गई।

12.3 नवगीत

कालान्तर में नई कविता' बौद्धिक आग्रह के कारण मुक्त छंद की पक्षधर और गीतविरोधी हो गई। भावों के स्थान पर विचारों पर बल देने के कारण 'बुद्धि रस' की भी कल्पना की गई। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् की परिवर्तित मानसिकता ने भी वस्तु और शिल्प के धरातल पर नवीनता की मांग की। जीवन की जटिलता को अभिव्यक्ति देने के लिये मुक्त छंद अधिक अनुकूल सिद्ध हुआ। मुक्त छंद की गद्यवत् भाषा में काव्य–सृजन सरल हो गया। कवियों की संख्या बढ़ी, किन्तु अपेक्षित सामर्थ्य के अभाव में अराजक स्थिति भी उत्पन्न हुई। दूसरी ओर छांदस रचनाओं को असमर्थ मानकर उन्हें कालवाह्य घोषित कर दिया गया। कुछ समर्थ कवियों ने नई कविता की इस चुनौती को स्वीकार किया और अपनी प्रतिभा, सामर्थ्य से सिद्ध किया कि जटिल यथार्थ को रागात्मकबोध के साथ छांदस रचना में अभिव्यक्त किया जा सकता है। इसी स्थिति में **'नवगीत'**– विधा का प्रस्ताव किया गया। नवगीत अर्थात् ऐसा गीत जो समस्त पारंपरिक रूढ़ियों से मुक्त होकर, आम आदमी को आशाओं–आकांक्षाओं, सीमाओं–संभावनाओं, सफलताओं–विफलताओं, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक स्थितियों को रागात्मबोध के साथ छंदबद्ध रूप में अभिव्यंजित कर सके।

नवगीत का नामकरण बहुत बाद में हुआ, किन्तु उसके उत्स भारतेन्दु काल से ही अस्तित्ववान हो गये थे। 'निराला' की रचनाओं में नवगीत की प्रकृति प्रायः स्पष्ट हो गई थी। जिस प्रकार छंद मुक्त 'नई कविता' का आरंभ 'निराला' से माना जाता है उसी प्रकार नवगीत का आरंभ भी 'निराला' से ही माना जाता है। 'नवगति , नव लय, ताल छंद नव' की प्रबल आकांक्षा के साथ ही उन्होंने 'नव नभ के नव विहंगवृंद के लिये 'नव पर, नव स्वर' की भी प्रार्थना की। इसमें सर्वथा नूतन अन्तर्वस्तु और शिल्प के साथ रूढ़िमुक्त उन्मुक्त वातावरण का स्पष्ट आग्रह है। 'निराला' ने कविता की मुक्ति को मानव मुक्ति के साथ जोड़कर मुक्त छंद की सार्थकता को रेखांकित किया था, मुक्त छंद में अनेक सफल रचनाएँ भी की थीं। किन्तु 'निराला' जी मुक्त छंद के साथ छंद से मुक्ति के पक्षधर नहीं थे। वे केवल काव्यरूढ़ियों की जड़ता के विरोधी थे। इसीलिये

वे आजीवन छंद–साधना करते रहे। उनके 'गीतिका' 'अर्चना' 'आराधना' 'गीत गुंज' और 'सांध्य काकली' जैसे काव्य संकलनों में गीत विधागत वस्तु और शिल्प के अनेक आयाम सामने आये।

"मैं अकेला/देखता हूं, आ रही/ मेरे दिवस की सांध्य बेला।"

"स्नेह निर्झर बह गया है। रेत सा तन रह गया है।"

प्रस्तुत पंक्तियों में भाषा, बिंब, प्रतीक और यथार्थ जीवन की कटु अनुभूतियों का जो रूप प्रकट हुआ है, 'नवगीत' की मुख्य पहचान है। उनके प्रसिद्ध गीत "बांधो न नाव इस ठांव बन्धु/पूछेगा सारा गांव बन्धु" को मर्यादित प्रेम की उत्कटता, अनुभूति की गहनता और प्राणवान परिवेशिक बिंबात्मकता के कारण नवगीत विधा को प्रेमपरक गीतों की गंगोत्री माना गया है। सुमित्रानन्दन पंत और माखनलाल चतुर्वेदी के गीतों में भी वस्तु और शिल्प के अनेक नये आयाम उद्घाटित हुए । छायावादोत्तर काल में नरेन्द्र शर्मा, बच्चन, अंचल, नेपाली अथवा राष्ट्रीय धारा के बालकृष्ण शर्मा नवीन, 'दिनकर', सोहनलाल द्विवेदी जैसे कवियों में यत्र–तत्र अभिनव कल्पना के साथ यथार्थबोध का स्वर मुखर हुआ। किन्तु जन–जीवन के साथ तदाकार होने का रागात्मक बोध उनमें अनुपस्थित है। इसलिये इस कालखण्ड में निराला की जन्मोन्मुखी और जीवनवादी काव्यधारा में गतिरोध आया। परवर्ती काल की गीत–विधा में नवोन्मेषशालिनी प्रतिभाओं के आगमन से इसे पुनः गति मिली। अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, कुंवर नारायण, नरेश मेहता, प्रभाकर माचवे, भवानी प्रसाद मिश्र, जगदीश गुप्त, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, धर्मवीर भारती, रामदरश मिश्र जैसे कवियों ने नई कविता के साथ गीतों की भी रचना की। इनके गीतों में वस्तु और शिल्प की नवता के साथ सामाजिक संपृक्ति और लोक संपृक्ति के भाव बड़ी सफलता के साथ अभिव्यक्त हुए। जानकी वल्लभ शास्त्री, बलबीर सिंह 'रंग', ठाकुर प्रसाद सिंह, शिवबहादुर सिंह भदौरिया, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, वीरेन्द्र मिश्र, राम मनोहर त्रिपाठी, रमानाथ अवस्थी, शंभूनाथ सिंह, रवीन्द्र भ्रमर, केदारनाथ सिंह, हंसकुमार तिवारी, उमाकान्त मालवीय, भारत भूषण, रघुवीर सहाय जैसे गीतकारों ने गीत–विधा को नये रूप में समृद्ध किया। इनके गीतों में नूतन सौंदर्यबोध, मध्यवर्गीय जीवन की त्रासद स्थितियों, विभिन्न स्तरों पर व्याप्त भ्रष्ट व्यवस्थाओं, टूटते सांस्कृतिक मूल्यों, बदलते मानवीय संबंधों, आम आदमी के दुःख–दर्द की व्यंजना ज्ञानात्मक संवेदन और रागात्मक बोध के साथ की गई। नागार्जुन, त्रिलोचन शास्त्री और केदारनाथ अग्रवाल ने भी अनेक गीत लिखे।

नये गीतकारों में माहेश्वर तिवारी, उमाकांत मालवीय, सोम ठाकुर, रामचन्द्र चन्द्रभूषण, श्रीकृष्ण तिवारी, बालस्वरूप राही, हरीश भदानी, कुंवर बेचैन, श्यामसुन्दर घोश, उमाशंकर तिवारी, नईम, अनूप अशेष, ओम प्रभाकर, गुलाब सिंह, राजेन्द्र गौतम, कुमार रवीन्द्र, अखिलेश कुमार सिंह, ज़हीर कुरेशी, बुद्धिनाथ मिश्र, दिनेश सिंह, देवेन्द्र वर्मा 'इन्द्र' जैसे अनेक सफल गीतकार हैं जो इस विधा को समृद्ध कर रहे हैं।

यद्यपि 'नयागीत' या 'नवगीत' जैसे शब्दों की चर्चा पहले भी मिलती है किन्तु सन् 1955–56 से पहले किसी ने इसे गम्भीरता से नहीं लिया था किन्तु जब 'नयी कविता' के नेताओं ने गीति को काव्य के क्षेत्र से ही बहिष्कृत करने का प्रयास किया तो इससे गीतिकारों के भी आत्म–सम्मान को गहरी चोट पहुंची और उन्होंने भी पूरी शक्ति से 'गीतिकाव्य' को 'नवगीत' के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए उन सभी साधनों एवं माध्यमों का उपयोग किया जो कि प्रयोगवाद एवं 'नयी कविता' के प्रतिष्ठाताओं के द्वारा प्रयुक्त हो चुके थे। निश्चय ही 'नयी कविता' के पृष्ठ पोषकों द्वारा यह चुनौती न मिली होती तो 'नवगीत' कभी भी एक संगठित शक्ति के रूप में उभरकर नहीं आता। डॉ0 शम्भूसिंह ने इस तथ्य को रेखांकित करते हुए लिखा है –"नयी कविता के कवियों ने गीत–रचना को पिछड़ेपन की निशानी मानकर उससे अपने को पूर्णतः विच्छिन्न कर लिया। ..... नवगीत न कभी काव्यान्दोलन था, न आज है।

वह तो नयी कविता का जुड़वाँ भाई है जिसे नयी कविता ने वयस्क होकर साज़िश द्वारा अपने शिविर से बहिष्कृत कर दिया। इस तरह नवगीत का रास्ता नयी कविता के रास्ते से अलग हो गया।"

12.4 'नवगीत' की प्रतिष्ठा – यद्यपि 'नयी कविता' के समानान्तर 'नया गीत', 'आज का गीत', 'आधुनिक गीत' की चर्चा छठे दशक के आरम्भ से ही यत्र–तत्र होने लग गयी थी, किन्तु इसकी सुस्पष्ट रूप मे घोषणा सन् 1957 में ही हुई जबकि इलाहाबाद के साहित्य–सम्मेलन की कविता–गोष्ठी में वीरेन्द्र मिश्र 'नयी कविता : नया गीत : मूल्यांकन की समस्याएं' शीर्षक निबन्ध को पढ़ते हुए घोषित किया – 'हिन्दी में नये गीत का जन्म हुआ है। यह नया गीत फार्म और कण्टेन्ट – दोनों ही पक्षों में समृद्ध हुआ है।'

उपर्युक्त घोषणा को ठोस आधार प्रदान करने का श्रेय **राजेन्द्र प्रसाद सिंह** को है जिन्होंने फरवरी, 1958 ई0 में अपने द्वारा संपादित एवं प्रकाशित रचना 'गीतांगिनी' में आधुनिक युग के लगभग सत्तर कवियों की रचनाओं को संकलित रूप में प्रस्तुत करते हुए इसे 'नवगीत –संकलन' की संज्ञा दी। इसकी भूमिका में 'नवगीत' के विभिन्न पक्षों पर विचार करते हुए इन्होंने स्पष्ट किया 'हिन्दी कविता में प्रयोगवाद के उत्थान के साथ ही साहित्य की पूर्वागत मान्यताओं पर चोट पड़ने लगी और मौलिकता, नवीनता, आधुनिकता, प्रयोग, जटिल संश्लेषण, अनुबिम्बन, छन्द– विरोध, मनोवैज्ञानिकता और राहों का अन्वेषण, आन्दोलन की तीव्रता से चल पड़ा। ..... प्रगति और विकास की दृष्टि से उन रचनाओं का बहुत मूल्य है जिनमें नयी कविता के प्रगति का पूरक बनकर 'नवगीत' का निकाय जन्म ले रहा है।

'नव गीत' के पांच तत्त्व ऐसे हैं जो नयी कविता के तत्त्वों से पृथक हैं – वे तत्त्व हैं – (1) जीवन– दर्शन (2) आत्मनिष्ठा (3) व्यक्तित्व बोध (4) प्रीति–तत्त्व और (5) परिसंचय।

'गीतांगिनी' की भूमिका में तत्कालीन गीति–काव्य की स्थिति का विवेचन करते हुए कहा गया है – ''वस्तु स्थिति यह है कि अधिक गीतकार रचना की दिशा में विषयगत और शैलीगत नवीनता के साथ उचित प्रगति नहीं कर पा रहे हैं और पूर्वागत सीमाओं से, उन रूचियों और त्रुटियों से इस तरह (लापरवाह और अनुत्तरदायी होकर) आग्रह–बद्ध हो गये हैं कि प्रगति के क्षेत्र का पिछला गत्यवरोध गीत के क्षेत्र में आ गया है।''

इस प्रकार 'गीतांगिनी' के सम्पादक ने गीतकारों को परम्परागत सीमाओं से युक्त होने के लिए प्रेरित करते 'नवगीत' के आदर्श रूप का भी संकेत संक्षेप में दिया है –''.....ऐसे ध्यातव्य कवियों का अभाव नहीं है जो मानव–जीवन के ऊँचे और गहरे, किन्तु सहज नवीन अनुभव की अनेकता, रमणीयता, मार्मिकता, विच्छति और मांगलिकता को अपने विकसित गीतों में सहज–संवार कर नयी टेकनीक से, हार्दिक परिवेश की नयी विशेषताओं का प्रकाशन कर रहे हैं।''

आगे चलकर इसे और स्पष्ट करते हुए कहा गया है–'समकालीन हिन्दी कविता की महत्त्वपूर्ण और महत्त्वहीन रचनाओं के विस्तृत आन्दोलन में गीत–परम्परा 'नवगीत' के निकाय में परिणति पाने को सचेष्ट है।'नवगीत'–नयी अनुभूति की प्रक्रिया में संचयित मार्मिक का आत्मीयतापूर्ण स्वीकार होगा, जिसमें अभिव्यक्ति के आधुनिक निकायों का उपयोग नवीन प्रविधियों का संतुलन होगा।

उपर्युक्त घोषणा को हम 'नवगीत' का संक्षिप्त घोषणा–पत्र मान सकते हैं जिसमें विभिन्न विशेषताओं का समावेश संकेतात्मक रूप में हो गया है। वस्तुतः 'नवगीत' की स्थापना का लक्ष्य परम्परागत गीत की भाव–भूमि को व्यापक करने, उसमें नयी अनुभूतियों एवं नूतन संवेदनाओं का संचरण करने अपने परिवेश के साथ उसका हार्दिक

सम्बन्ध स्थापित करने एवं अभिव्यंजना–शैली को आधुनिक बनाने का था–जिनका संकेत 'गीतांगिनी' की भूमिका में दिया गया है।

अस्तु, 'गीतांगिनी' के सम्पादक ने न केवल 'नवगीत' संज्ञा को सम्यक् रूप में प्रतिष्ठित करके उसे सुदृढ़ आधार प्रदान किया अपितु उसने उसके विकास की भावी दिशाओं एवं नयी राहों का भी संकेत स्पष्ट रूप में किया है।

12.5 'नवगीत' का प्रचार–प्रसार – आगे चलकर नवगीत का प्रचार–प्रसार विभिन्न पत्रिकाओं एवं गोष्ठियों के माध्यम से द्रुतगति से हुआ। 'वासन्ती' पत्रिका में 1962 में 'नये गीत : नये स्वर ' लेखमाला का प्रकाशन हुआ तो 'वातायन' ने तीन वर्षों (1964, 65, 66) तक गीत–विशेषांकों का प्रकाशन किया। इनके अतिरिक्त 'धर्मयुग', साप्ताहिक हिन्दुस्तान, माध्यम, उत्कर्ष, गीत, लहर आदि पत्र–पत्रिकाओं ने भी सन् 1964 से 67 की अवधि के बीच नवगीत सम्बन्धी अनेक लेख प्रकाशित करके इसको बहुचर्चित बनाये रखा।

'प्रज्ञा' (दिल्ली), 'साहित्यिकी' (कलकता), 'रंगायन' (बम्बई) आदि संस्थाओं ने भी इसी कालावधि में नवगीत पर अनेक गोष्ठियों का आयोजन करके नवगीत की चर्चा को आगे बढ़ाने में योग दिया।

साथ ही विभिन्न गीतिकारों– रवीन्द्र भ्रमर, वीरेन्द्र मिश्र, बालस्वरूप राही आदि– के निजी गीत संकलनों तथा 'कविता' (1964), 'गीत' (1965), 'पाँच जोड़ बांसुरी' सम्पादक – चन्द्रदेव सिंह (1965) आदि सम्मिलित संकलनों के प्रकाशन से भी नव गीत को बल मिला। वस्तुतः 'नयी कविता' की स्थापना के लिए जिन साधनों एवं माध्यमों का उपयोग किया गया था, उन सभी का प्रायः नवगीतकारों द्वारा भी प्रयोग हुआ तथा इसके फलस्वरूप नवगीत एक सशक्त एवं व्यापक विधा के रूप मे उभर कर आगे आने में सफल हो गया। अब वह 'नयी कविता' का पिछलग्गू या उसका पूरक मात्र न रहकर एक स्वतन्त्र एवं शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी के रूप में साहित्य–क्षेत्र में प्रतिष्ठित हो गया।'

12.6 नवगीत : स्वरूप–वैशिष्टय – यद्यपि नवगीत की आधारभूमि छायावादी गीतिकाव्य ही है किन्तु उसने परवर्ती काव्यान्दोलनों–प्रगतिवाद, प्रयोगवाद व नयी कविता के संसर्ग का भी पूरा लाभ उठाया; अतः उसमें इन सभी के थोड़े बहुत संस्कार विद्यमान हैं। छायावादी काव्य में वैयक्तिकता का आग्रह इतना अधिक था कि वह अपने युग और परिवेश से पूरी तरह कटा हुआ दृष्टिगोचर होता है किन्तु नवगीत में ऐसा नहीं है। वहाँ व्यक्ति है किन्तु वह अपने युग और समाज को खुली आँखों से देखता है तथा तद्विषयक अपनी प्रतिक्रिया को व्यक्त करता है। इसीलिए उसमें तद्युगीन परिवेश की अनुगूंज सर्वत्र सुनाई पड़ती है। छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह भी कहा गया है किन्तु नवगीत में स्थूल और सूक्ष्म–दोनों अपने–अपने स्थान पर सुसमन्वित हैं। छायावादी काव्य में कल्पना, अलौकिकता एवं अध्यात्म की प्रमुखता बताई जाती है जबकि नवगीत में अपेक्षाकृत बौद्धिकता, यथार्थता एवं लौकिकता का एकान्त संयोग है।

आज का नवगीत अनेक दृष्टियों से छायावाद की अपेक्षा प्रगतिवाद के अधिक निकट है। प्रगतिवादी कवियों की ही भाँति नवगीतकार घोर वैयक्तिकता से ग्रस्त न होकर सामाजिक यथार्थ के प्रति सजग है। दोनों ने ही जीवन से पलायन करने की अपेक्षा संघर्ष को महत्त्व दिया है। प्रकृति, सौन्दर्य एवं प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण की दृष्टि से भी नवगीतकार छायावाद की अपेक्षा प्रगतिवाद के अधिक निकट हैं क्योंकि वे इस क्षेत्र में सूक्ष्म कल्पनाओं एवं संवेदनाओं की अपेक्षा स्थूल भौतिक रूपों एवं शारीरिक सम्बन्धों पर अधिक बल देते हैं तथा अभिव्यंजना की दृष्टि से भी दोनों लोक–भाषा एवं शैली से अधिक प्रभावित हैं।

हरिवंशराय बच्चन ने गीत के संबंध में कहा था –"गीत एकांतिक अवसाद की वैयक्तिक रागिनियों का रेखांकन

है।" 'नवगीत' को उक्त परिभाषा स्वीकार नहीं थी। 'नवगीत' ने 'एकांतिक' अवसाद की भावभूमि को छोड़कर सामूहिक संवेदना को स्वीकार किया। परिणामस्वरूप उसकी प्रवृत्ति जनोन्मुखी हो गई। इसी प्रवृत्ति ने नवगीतकारों को जीवन की जटिल अनुभूतियों को गीतात्मक अभिव्यक्ति देने की कठिन चुनौती को स्वीकार करने का साहस और संकल्प प्रदान किया। नव गीतकारों ने देशकाल सापेक्ष आधुनिक बोध के साथ, भारतीय काव्य–परंपरा के उज्ज्वल पक्षों से पोषित लोकचेतना से अनुप्राणित, राष्ट्रीय चेतना से संपृक्त, जनोन्मुखी समष्टिमूलक संवेदना का सहज भाषा में, नादयुक्त छांदस लयात्मकता के साथ अभिव्यंजन किया। सितम्बर 1986 में नवगीतकारों का वाराणसी में 'नवगीत अर्द्धशती समारोह' हुआ। इस समारोह में नवगीतकारों ने छांदसिकता, संवदेनशीलता, ग्राहयता, संप्रेषणीयता, बिंबात्मकता, सादगी, अप्रतिबद्धता, जनसंपृक्ति, जातीय बोध, सामाजिक यथार्थबोध, मानव की प्रतिष्ठा, भारतीय आधुनिकता, सांस्कृतिक चेतना, परंपरा पोषित नवता, सौन्दर्य और प्रेम की मानवीय दृष्टि, गत्यात्मकता, आम आदमी की उपस्थिति जैसी सत्रह विशेषताओं को नवगीत के लिये आवश्यक माना।

डॉ० शंभूनाथ सिंह ने 'नवगीत' के विकास के चार चरण माने हैं। प्रथम चरण 1935 से 50 तक है जिसमें 'निराला' से लेकर प्रगतिवादी और प्रयोगवादी उन कविताओं तक का समावेश है जिनमें 'नवगीत' का अंकुरण हो रहा था। द्वितीय चरण में सन् 1951 से 60 तक के गीतों का समावेश है। इस काल खंड में नवगीत का स्वरूप स्पष्ट हो गया था। इसी दशक के अंत में 'नवगीत' संज्ञा भी निश्चित हुई। इसी कालविधि में कुछ महत्त्वपूर्ण नवगीत संग्रह भी प्रकाशित हुये। "गीतम" वीरेन्द्र मिश्र (1953) "दिवलोक" "माध्यम में" डॉ० शंभूनाथ सिंह (क्रमशः 1953, 1955) "वंशी और मांदल" ठाकुरप्रसाद सिंह (1959) वीरेन्द्र मिश्र ने अपने इसी प्रथम संग्रह में घोषित किया था–

दूर होती जा रही है कल्पना
पास आती जा रही है ज़िन्दगी

तृतीय चरण में 1961 से 1970 तक के गीतों का समावेश है। इस कालावधि में नई कविता में बिखराव की अराजक स्थिति उत्पन्न हुई, किन्तु नवगीत दृढ़ता से अग्रसर होता रहा। पत्र–पत्रिकाएँ उसे सम्मानित करती रहीं। अनेक संग्रह प्रकाश में आये, विचार गोष्ठियाँ आयोजित हुईं, पत्रिकाओं के नवगीत केन्द्रित विशेषांक निकले। सन् 1971–1985 तक का काल खंड विकास का चौथा चरण माना गया है। आठवें दशक में नवगीत अन्यान्य प्रवृत्तियों और विशेषताओं को अपने में समेटकर परिपूर्ण बन गया। विसंगति बोध, जनोन्मुखता, संघर्ष–चेतना अस्मिता की पहचान, भारतीयता में निष्ठा, लोक संपृक्ति, यथार्थबोध, मानवीय करुणा, सांस्कृतिक चेतना, मूल्यनिष्ठा जैसी विशेषतायें आज तक के नवगीतों में सरलता से देखी जा सकती हैं।

पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होने और मंचों पर प्रस्तुत किये जाने के अतिरिक्त नवगीतकारों के अनेक गीत संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जो नवगीत का सफल प्रतिनिधित्व करते हैं। 'जलते शहर में' (उमाशंकर तिवारी) 'रवीन्द्र भ्रमर के गीत' (रवीन्द्र भ्रमर) 'गीत विहाग उतरा' (रमेश रंजक) 'झुलसा है छायानट धूप में' (वीरेन्द्र मिश्र) 'गीत के हंस' (राम मनोहर त्रिपाठी) 'ओ प्रतीक्षित' (शांति सुमन) 'किरण के पांव' (रमेश रंजक) 'पुष्पचरित' (ओम प्रभाकर) 'मेंहदी और महावर' 'सुबह रक्त पलाश की' (उमाकांत मालवीय) 'जहां रक्त नीला है' (शंभुनाथ सिंह) 'लौट आएंगे सगुन पंछी' (अनूप अशेष) 'ऋतु वृंदावन' (सुरेश श्रीवास्तव) 'पथराई आँखें' (नईम) 'हरसिंगार कोई तो हो' (माहेश्वर तिवारी) 'एक चावल स्नेह रींधा' (उमाकांत मालवीय) 'शेष रहने के लिए' (राम सेंगर) 'सोत नदी बहती है' (उर्मिलेश) 'मोम के घर' (नीलम श्रीवास्तव) 'बरगद जलते हैं' (राजेन्द्र गौतम) 'किरण सतरंगी' (माधव मधुकर) 'धूप सिरहाने खड़ी' (राम

अधीर) 'धूल भरे पांव' (गुलाब सिंह) 'कहो सदाशिव' (यश मालवीय) 'गीत वंश' (मधुकर गौड़) जैसे अनेक नवगीत संग्रह प्रकाशित हुये हैं जिनसे नवगीत की स्वतंत्र और सार्थक पहचान बनी है।

वस्तु तत्व की दृष्टि से नवगीत ने पारंपरिक गीत–विधा की कल्पना प्रधान अति भावुक कोमल भूमि को छोड़कर दायित्व–चेतना को पूर्ण सजगता के साथ, यथार्थ जीवन की युगव्यापी विकृतियों को वस्तुनिष्ठ दृष्टि से देखा और उनके कारणों की खोज की। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, साहित्यिक क्षेत्रों की भ्रष्ट प्रवृत्तियों से आहत, आत्मसंघर्ष की पीड़ा नवगीतकारों के भावबोध का प्रमुख घटक तत्त्व बनी। यह अनुभव आकस्मिक नहीं था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जीवन के विविध स्तरों और क्षेत्रों में इस जनविरोधी भयानक युग–सत्य से साक्षात्कार किया जा रहा था। न्यस्त स्वार्थ, अकरुण शोषण, विवेकहीन मूल्यहीनता, व्यापक भ्रष्टाचार, अशिक्षा, बेरोजगारी, ईर्ष्या–द्वेष आदि के प्रति तीव्र आक्रोश उभर रहा था। साहित्य की सभी विधाओं में इस असंतोष और आक्रोश को व्यक्त किया जा रहा था। नवगीत की विशेषता यह रही कि उसमें तीव्र संक्षोभ को भी लय–ताल बद्ध छांदस रचनाओं के माध्यम से व्यक्त किया गया। वर्तमान की त्रासदी को व्यक्त करने वाले कुछ नवगीतकारों में रवीन्द्र भ्रमर, जगदीश श्रीवास्तव, योगेन्द्र दत्त शर्मा, श्रीकृष्ण तिवारी, विनय भदौरिया उद्धरणीय हैं।

इनमें मानवीय नियति की वर्तमान त्रासदी की गहन अनुभूति और रागात्मक बोध के साथ चित्रण हुआ है। इनमें तटस्थ द्रष्टा के अनुभव का नहीं भोक्ता मन की वेदना–विकल छटपटाहट का पीड़ा बोध है। नवगीतकारों में यह पीड़ा–बोध कहीं–कहीं पर असह्य हो उठा है और उसकी बेचैन मनीषा आर्तनाद कर उठी है। ऐसे नवगीतकारों में अनूप अशेष, राजेन्द्र गौतम, राधेश्याम बन्धु, राममनोहर त्रिपाठी की अभिव्यक्तियों को भी देखा जा सकता है ।

12.7 नवगीत : विशेषताएँ व उपलब्धियाँ

हिन्दी काव्य में नवगीत का विकास अपनी परम्पराओं एवं परिवेशगत चुनौतियों के आधार पर सहज स्वाभाविक रूप में हुआ; उसका आरोपण पाश्चात्य काव्य की प्रवृत्तियों के आधार पर कृत्रिम रूप में नहीं हुआ। यही कारण है कि नवगीत की स्थापना किसी एक नेता द्वारा किसी निश्चित तिथि से विधिवत घोषणापूर्वक नहीं हुई– यह दूसरी बात है कि इसके स्वतन्त्र अस्तित्व को अनुभव करते हुए इसके विभिन्न प्रचलित नामों में से किसी एक को चुनकर इसका नामकरण संस्कार अवश्य हुआ। नवगीत की आधार भूमि छायावादी काव्य है, जिसे परवर्ती युग में बच्चन एवं भगवतीचरण वर्मा जैसे व्यक्तिवादी कवियों ने विकसित करके नई दिशा प्रदान की । यह सही है कि इन कवियों द्वारा छायावादी काव्य का व्यक्तिवाद और अधिक–सघन हो गया किन्तु साथ ही वह सूक्ष्मता से स्थूलता की ओर, कल्पना से वास्तविकता की ओर तथा मानसिकता से शारीरिकता की ओर अग्रसर हुआ। निश्चय ही इससे छायावाद का उदात्त सौन्दर्य–स्वप्न एवं भव्य प्रणय का स्वरूप भंग हो गया, किन्तु वह गगन की असीम उच्चता से अवतरित होकर यथार्थ की लौकिक भूमि पर आ गया। इन कवियों द्वारा इसकी शैली में भी विकास हुआ। जहाँ पूर्ववर्ती छायावादी कवियों की शैली संस्कृत गर्भित अधिक थी, वहाँ अब वह लोक प्रचलित शब्दावली के निकट आ गई। नवगीत ने इस व्यक्तिवादी काव्य की यथार्थवादी दृष्टि, लौकिक भावभूमि एवं शैली का समन्वय अपने काव्य में एक सीमा तक किया जिससे वह छायावादी कल्पना एवं अयथार्थता के आक्षेप से मुक्त रहा। आगे चलकर प्रगतिवाद के प्रभाव से नवगीत में वैयक्तिकता के स्थान पर सामाजिकता, कल्पना के स्थान पर यथार्थ एवं पलायन के स्थान पर संघर्ष का प्रादुर्भाव हुआ। सामाजिक जीवन की असंगतियों, आर्थिक विषमताओं एवं साम्राज्यवादियों के शोषण आदि का चित्रण नवगीतकारों ने भी पूरी शक्ति से किया।

प्रयोगवाद की स्थापना के अनन्तर नवगीतकारों का सम्बन्ध इससे भी स्थापित हुआ। प्रारम्भ में प्रयोगवाद के नेताओं ने नवगीत को नयी कविता का अंग माना किन्तु जब उन्होंने देखा कि नवगीत लोकप्रियता में नयी कविता से भी आगे बढ़ रहा है तो उन्होंने इस आधार पर कि इसमें बौद्धिकता, आधुनिकता और यथार्थवादिता का अभाव है, इसे अकाव्य घोषित कर दिया। इस प्रकार नवगीत के अस्तित्व के लिए भी संकट उपस्थित हो गया, किन्तु नवगीतकारों ने इस चुनौती का भी सामना किया और उन्होंने सिद्ध कर दिया कि आधुनिक बोध, बौद्धक चिन्तन एवं जीवन के यथार्थ चित्रण की दृष्टि से नवगीत किसी से भी पीछे नहीं है। नवगीत अपनी विकास यात्रा में छायावाद से चलकर मार्ग में पड़ने वाले अनेक वादों–व्यक्तिवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता आदि से सम्पर्क रखता हुआ तथा उनसे बहुत कुछ ग्रहण करता हुआ आगे बढ़ा है। इसलिये नवगीत में आधुनिक काव्य की विभिन्न विशेषताओं का समन्वय सहज स्वाभाविक रूप में दिखता है। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की भाँति वह एकाएक आरोपित 'वाद' नहीं है, अपितु वह सहज स्वाभाविक रूप में विकसित है, इसलिए उसकी जड़ें बहुत गहरी हैं और वह अधिक स्थिरता, गम्भीरता एवं स्थायित्व प्राप्त कर सका है।

नवगीत के पक्ष में एक विशेष बात यह निःसंकोच कही जा सकती है कि भले ही उसने विभिन्न आयातित काव्य आन्दोलनों से आवश्यकतानुसार प्रभाव ग्रहण किया हो किन्तु फिर भी वह अपनी परम्परा एवं अपने परिवेश से गहराई से जुड़ा रहा है। इस संदर्भ में **वीरेन्द्र मिश्र** का कथन उल्लेखनीय है–''नवगीत अपनी परम्परा से जुड़ी हुई एक जीवन शक्ति है। कविता की तरह पश्चिम के दर्शन पर आधारित–आयातित मूल्यों का प्रतिबिम्ब नहीं। नवगीत आस्थाशील अनुभूतियों का निबन्ध समवेत स्वर है।''

नवगीत ने साहित्य, समाज और जीवन के प्रति भी स्वस्थ, व्यापक एवं संतुलित दृष्टिकोण का परिचय दिया है। साहित्य के क्षेत्र में उसने आधुनिक युग के अनुरूप बौद्धक चिन्तन को अपनी अभिव्यक्ति का आधार बनाया है, किन्तु ऐसा करते समय वह रागात्मकता की उपेक्षा करना आवश्यक नहीं समझता। फलस्वरूप 'राही के शब्दों में–मेरी कोशिश यह है कि वस्तु तो बौद्धिक हो जिससे वह हमारे युग की सच्चाई के अधिक निकट होगी किन्तु अभिव्यंजना रागात्मक होनी चहिए। बौद्धिक अनुभूतियों को पचाकर और उन्हें संवेदनात्मक रूप देकर ही कविता में व्यक्त किया जा सकता है। अन्यथा कविता में काव्यात्मकता का संचार नहीं होगा बौद्धिकता और रागात्मकता की भाँति ही वैयक्तिकता एवं सामाजिकता, कल्पना एवं यथार्थ, वस्तु एवं शिल्प का भी समन्वय इनमें दृष्टिगोचर होता है।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि नवगीतकारों ने आधुनिकता की चुनौती को स्वीकार करते हुए भी उसके पाश्चात्य पुरोधाओं के वर्चस्व को स्वीकार नहीं किया। प्रयोगवादियों की भाँति उन्होंने आधुनिकता का मानदण्ड केवल पाश्चात्य भौतिकतावाद, सार्त्र के अस्तित्ववाद, फ्रायड के यौनवाद एवं अंग्रेज़ी कविता के बिम्बवाद एवं प्रतीकवाद अथवा फ्रेंच चित्रकला के अतियथार्थवाद को ही स्वीकार नहीं किया अपितु उसने भारतीय परिवेश के अनुरूप आधुनिक भाव–बोध एवं व्यापक चिन्तन पर आधारित विचारों एवं मूल्यों को आधार बनाया है। वस्तुतः नवगीतकार विदेशों से आयातित आधुनिकता एवं आरोपित बौद्धिकता का विरोधी है, जिसकी अभिव्यक्ति उसके काव्य में भी अनेक स्थलों पर हुई है, यथा–

1. हमको क्या लेना है, परदेशी केशर से,

   बूढ़े हिमपात सड़ते तालाबों में खिले हुए बासी जलजात से,

हम को तो लिखने है गीत नये/पिघले इस्पात से।

–बाल स्वरूप राही

2. यह कब हुआ कि हमने अपने अनुभव से सीखा हो

कुछ उधार के लिए भाव, कुछ ओढ़ लिया चिन्तन को। **–पुष्पा राही**

12.8 नवगीत की विषय–वस्तु – नवगीत की विषय–वस्तु का क्षेत्र बहुत व्यापक है; उसमें प्रकृति, नारी सौन्दर्य, प्रेम, विरह आदि के परम्परागत विषयों का तो निरूपण हुआ है किन्तु साथ ही दाम्पत्य, पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन की विभिन्न स्थितियों का भी अंकन सहजता से हुआ है। यहाँ पर भी उल्लेखनीय है कि परम्परागत विषयों को भी नवगीतकारों ने नई दृष्टि से ग्रहण करते हुए नये रूप में प्रस्तुत किया है। यथा–प्रकृति एवं नारी के सौन्दर्य एवं प्रेम का चित्रण छायावादी काव्य में भी अतिशय गम्भीरता से हुआ है, किन्तु उसमें सर्वत्र कल्पना की प्रमुखता होने के कारण वह वास्तविकता से दूर प्रतीत होता है जबकि नवगीत में कल्पना के स्थान पर यथार्थ का आश्रय ग्रहण किया गया है। इस दृष्टि से सर्वप्रथम इनके प्रकृति–चित्रण को देखा जा सकता है। प्रकृति पर मानवीय भावनाओं का आरोपण करने की प्रवृत्ति परम्परागत गीत एवं नवगीत दोनों में मिलती है, किन्तु फिर भी नवगीत में कल्पना का रंग गहरा नहीं है कि उससे प्रकृति का यथार्थरूप सर्वथा आवृत हो जाये। नवगीतकारों ने प्रकृति को निजी भावनाओ के रंग मे रंगकर इस भांति प्रस्तुत किया है जिससे प्रकृति और मानव दोनों का अस्तित्व घुल–मिल सा गया है। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं–

चाँदनी :

दूध से नहा रही निर्वसना चाँदनी

किरण में निचोड़ धवल मर–मर की शिला पर

वसन को सुखा रही निर्वसना चाँदनी **– चन्द्रसेन "विराट"**

संध्या :

वही शाम पीले पत्तों की गुमसुम और उदास,

वही रोज का मन खोजने का एहसास

टांग रही है मन को एक नुकीले खालीपन से **– नरेश सक्सेना**

रात्रि :

स्याह–स्याह रात ने कहा मुझे

लाल–लाल प्रातः अभी दूर है। **– वीरेन्द्र मिश्र**

कहीं–कहीं प्रकृति मानवीय भावनाओं एवं क्रिया–कलापों के आरोपण से इस तरह अतिरंजित हो गई है कि वह कवि की अनुभूति को व्यक्त करने का माध्यम बन गई है। यहाँ प्रभात का एक दृश्य प्रस्तुत है–

'गगन से धरा पर सुबह छन रही है, किरण डोर खींच बिना तन रही है,

दिये बुझ गए हैं, नयन जल गये हैं, सपन उठ गये हैं, नयन मिल गये हैं।

हवा देखकर ही सुनाना तराना, सुमन ने कहा पर भ्रमर ने न माना।' **–वीरेन्द्र मिश्र**

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि नवगीत में प्रकृति का सौन्दर्य एवं वैभव कम नहीं है किन्तु वह मानवीय भावनाओं से सर्वत्र ओत–प्रोत है।

नारी का चित्रण पूर्ववर्ती गीति–काव्य में प्रेयसी के रूप में ही अधिक हुआ है। जबकि नवगीत में वह सखी, सहचरी, पत्नी एवं अन्य रूपों में भी चित्रित हुई है। पुरूष और नारी का सम्बन्ध नवगीत में कोरी कल्पना पर आधारित न होकर यथार्थ की भूमि पर है, इसलिए इसमें नारी केवल पूजा की वस्तु न रहकर शारीरिक एवं मानसिक तृप्ति का भी साधन बन गई। नारी एवं पुरूष के दैनिक संसर्ग के अनेक चित्र नवगीतकारों ने प्रस्तुत किए हैं, किन्तु उनकी विशेषता यह है कि उनमें चित्रण अत्यन्त संकेतात्मक ढंग से किया गया है जिससे उनमें कहीं भी स्थूलता, शारीरिक नग्नता या अश्लीलता प्रत्यक्ष नहीं होती अपितु सम्पूर्ण अनुभूति प्राकृतिक बिम्बों एवं प्रतीकों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप में व्यंजित होती है। इसी प्रकार विरह की अभिव्यंजना भी नवगीत में हुई किन्तु इसका आधार काल्पनिक प्रेयसी न होकर वास्तविक पत्नी है। दूसरे, उसका विरह कल्पना और वेदना के उस व्यापक एवं गम्भीर रूप का भी स्पर्श नहीं करता जोकि छायावाद में दृष्टिगोचर होता है; न तो इसमें विरही की आह से गीत फूटते हैं और न ही उसके अश्रुओं से कोई गंगा बहती है। उनका विरह सीधा, सादा और स्पष्ट है, जोकि जीवन के यथार्थ से पूरी तरह जुड़ा हुआ है। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं–

1. चन्द्रमा उगा करवा चौथ का

   तुमने भी अर्ध्य दिया होगा मेरे लिए

   निर्मल उपवास किया होगा मेरे लिए

   प्रियतम ! परदेस न सो सका।

   भरी–भरी आँख ही संजो सका। **–उमाकान्त मालवीय**

2. टूटे आस्तीन का बटन/या कुर्ते के खुले सिवन

   कदम–कदम पर मौके, तुम्हें याद करने के।

   फूल नहीं बदलते गुलदस्तों के / धूल मेजपोश पर जमी हुई,

   जहाँ–तहाँ पड़ी दस किताबों पर, घनी सौ उदासियाँ थमी हुई ।

   –वही, 'नवगीत दशक' 1/89

यहाँ पत्नी की याद का निरूपण सर्वथा यथार्थ रूप में किया गया है जोकि जीवन की वास्तविकता पर आधारित है।

जहाँ छायावादी कवि की दृष्टि नारी के केवल एक ही रूप–प्रेयसी या पत्नी पर ही केन्द्रित थी वहाँ नवगीतकार ने उसके अन्य रूपों को भी लिया है। इसलिए इनके काव्य में केवल दाम्पत्य जीवन की ही नहीं पारिवारिक जीवन की भी झलक मिलती है। डॉ0 शान्ति सुमन के शब्दों में – (छायावाद में), आत्मरति के कारण परिवार के अन्य सम्बन्ध क्षीण हो गये थे। छायावादोत्तर काल में परिवार भाव को जागृत करने की चेष्टा हुई। सुख–दुःख के क्षणों में परिवार का महत्त्व महसूस किया गया पर लगातार अस्तित्ववाद, दुःखवाद एवं व्यक्तिवाद के विचलन ने इस सम्बन्ध पर कशाघात किए। पत्नी–प्रेमिका के सम्बन्ध में द्वन्द्व की स्थिति बनी रही। नवगीत ने पहली बार पिता, पुत्र, पत्नी, भाई, बहन, माँ तथा अन्य सामाजिक सम्बन्धों का पुनर्संस्कार किया। सम्बन्ध की इस प्रगाढ़ता को नवगीतकार ने जैसा अप्राण महसूस किया वह पहले की रचनाओं में दुर्लभ है।'' इसके यहां कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं–

गृहस्थ जीवन :

''माँ की परछाई–सी लगती गोरी दुबली शाम,

पिता सरीखे दिन के माथे चूने लगता धाम।

उजले–पीले कई–कई संदर्भ सलोने–से

टूटी जिद पर गुस्से लगते काँच–खिलौने–से

नूपुर पहन बहन का हँसना, फरना सारा गाम ।।'' **–डॉ० शान्ति सुमन**

यहाँ माँ, पिता, बहन से युक्त परिवार की झलक प्रकृति के विभिन्न दृश्यों के माध्यम से प्रस्तुत की गई है। इसी प्रकार सोम ठाकुर ने बुआ, जीजी आदि का चित्रण भारतीय जीवन के सन्दर्भ में अत्यन्त यथार्थ रूप में किया है –

' कहाँ गये बड़ी बुआ वाले वे आरते,

कहाँ गये गेरू–काढ़े सतिये द्वार के,

कहाँ गये थापे वे जीजी के हाथों के,

कहाँ गये चिकने पत्ते बन्दरबार के ।' **–'नवगीत दशक'–पृ० 41**

इस प्रकार हम देखते हैं कि नवगीत में भारतीय गार्हस्थ्य एवं पारिवारिक जीवन के विभिन्न दृश्यों का चित्रण आकर्षक रूप में हुआ है जो कि इसके रचयिताओं की व्यापक चेतना का द्योतक है।

नवगीत में सामाजिक–जीवन की विभिन्न स्थितियों, परिस्थितियों , विषमताओं विकृतियों आदि का चित्रण भी यथार्थ रूप में हुआ है। नवगीत में चित्रित समाज सामान्यतः भारतीय मध्य वर्ग से सम्बन्धित है। इसलिए इसमें इस वर्ग की आशाओं, आकांक्षाओं, निराशाओं, कुंठाओं एवं विभिन्न विकृतियों का भी चित्रण स्वाभाविक रूप में हुआ है। आज के मध्य वर्गीय समाज में जीवन की मधुरता की अपेक्षा निराशाजन्य कटुता की ही प्रधानता है। आर्थिक विषमताओं के कारण मध्य वर्ग के सपने प्रायः यथार्थ की धरती से टकराकर चकनाचूर हो जाते हैं। इस स्थिति का अंकन अलग–अलग कवियों ने किया है; जैसे–

'घिस गये जिन्दगी के सारे मनसूबे

दफ्तर की सीढ़ी चढ़ते और उतरते।' **–बालस्वरूप राही**

कुछ को चूहे खा गये/कुछ को झींगुर चाट गए,

नये–नये संकल्पों के/जो भी जाल हमने बुने। **–कुँअर बेचैन**

मध्यवर्गीय जीवन की विभिन्न स्थितियों के साथ ही महानगरीय जीवन का बोध भी, नवगीत में घनीभूत रूप में व्यक्त हुआ है। शहरी जीवन की कृत्रिमता, दिखावटीपन, औपचारिकता, यांत्रिकता, घुटन, संत्रास आदि के सम्बन्ध में तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त हुई है। यथा –

नगर–जीवन का सर्वांगीण बोध :

''इन ओढ़े हुए मुखौटों पर संशय

यह महज़ औपचारिकता, यह अभिनय

जीविका हेतु यान्त्रिकी व्यस्तताएँ

अपराध, पतन या नैतिक हत्याएँ

नारे, सभा, जुलूस, प्रदर्शन–क्रोध

त्रास, तनाव, यह उत्पीड़क युगबोध।'' **–चन्द्रसेन विराट**

अजनबीपन :

बाँह से जुड़ती न कोई बाँह

जैसे आए हों हम किसी बन्दी शिविर में **–भगवान स्वरूप**

टूटते हुए रिश्ते :

भीड़ से होकर गुजरते हुए रिश्ते

मोड़ पर नींबू निचोड़े दूध जैसे फट रहे हैं। **–उमाकान्त मालवीय**

नवगीत में सामाजिक चेतना के साथ–साथ आर्थिक वैषम्य एवं राजनैतिक भ्रष्टाचार का भी उद्‌घाटन अत्यन्त सशक्त रूप में हुआ है। अनेक गीतकारों ने विभिन्न सन्दर्भों में राजनैतिक स्थितियों पर तीखे व्यंग्य किये हैं। यहाँ कुछ उक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

चाटुकारिता :

आ गए फिर चारणों के दिन

लौट आये चारणों के दिन

सिर धूने चाहें गिरा पछताय

फूल क्या, सौगन्ध भी असहाय। **–उमाकान्त मालवीय**

नेताओं के आश्वासन :

बड़े–बड़े आश्वासन हैं/तोता मैना के किस्से।

लाठी, गोली, अश्रुगैस/इतना ही जन के हिस्से।

जनता की भूमिका यही/जूठन से मात कुछ बिने। **–'सुबह रक्त पलाश की, पृ० 51**

बहुमत :

भारत के माने है/केवल कौरव सभा

बहुमत का मतलब/धृतराष्ट्र है। **वही, पृ० सं० 40**

वस्तुतः विभिन्न राजनीतिक स्थितियों की प्रतिक्रिया तीखी आलोचनात्मक एवं व्यंग्यात्मक शैली में व्यक्त करना नवगीतकार के स्वभाव का अंग है। इसलिए उसने आधुनिक राजनीति की विद्रूपताओं का उद्घाटन सशक्त रूप में किया है। यहां तक कि उसने आपातकालीन स्थिति के सम्बन्ध में भी अन्य वर्ग के कवियों की भांति मौन की नीति न अपनाकर उसकी भर्त्सना संकेतात्मक ढंग से की है; देखिए–

देहरी मत लाँघ जाना तुम/धूप ने कर्फ्यू लगाया है।

X X X

''कल मरे थे बेवजह चार, एक बिन्दी खा गया अखबार''

''सत्य क्या है देवता जाने/ मरे हैं या हो गये हैं गुम''

धूप ने कर्फ्यू लगाया है। **–मिट्टी बोलती है (रमेश रंजक) पृ० 23**

यहाँ आपातकाल में पत्र–पत्रिकाओं पर लगे हुए प्रतिबन्ध का चित्रण व्यंग्यात्मक रूप में हुआ है तो साथ ही सत्ताधारी नेताओं के द्वारा जनता पर किए जाने वाले अत्याचारों का भी निरूपण द्रष्टव्य है–

चन्द बुलडोजर, सड़क की पीठ पर तैनात

हाँफती–सी काँपती–सी, आदमी की जात। **–वही, पृ० 11**

इस प्रकार हम देखते हैं कि नवगीत की चेतना अत्यन्त व्यापक है; वह जन–जीवन की सामान्य स्थितियों से लेकर उच्च वर्ग की विभिन्न असंगतियों, सामाजिक व आर्थिक जीवन की विषमताओं एवं समकालीन राजनीतिक जीवन की विद्रूपताओं का भी उद्घाटन पूर्ण सजगता एवं सशक्तता से करता है। नवगीतकार ने पूर्ण तल्लीनता से अपने युग और समाज की विसंगतियों एवं विकृतयों का उद्घाटन करके अपनी सच्ची आधुनिकता का परिचय दिया

है। नवगीतकार की विशेषता यह है कि उसकी काव्यात्मकता में कहीं भी कोई कमी नहीं आई है न तो उसकी रचनाओं ने कहीं शुष्क तर्कों का रूप धारण किया है और न ही कहीं बौद्धिक प्रवचनों का। इसका कारण यह है कि उसकी हर उक्ति उसके आत्मानुभव व्यक्तिगत निरीक्षण एवं संवेदनात्मक संस्पर्श से समन्वित है। उसका बोध यथार्थ की भूमि पर आधारित है। उसकी दृष्टि बौद्धिक है किन्तु वह हृदय की रागात्मकता से शून्य नहीं है। इसलिए उसकी उक्तियों के साथ सर्वमान्य का साधारणीकरण होता है।

वैचारिक व्यापकता एवं भावात्मक गम्भीरता के साथ–साथ 'नवगीत' की अभिव्यंजना–शिल्प एवं शैली सम्बन्धी उपलब्धियाँ भी अप्रतिम हैं। यहाँ इसके कतिपय उद्धरण प्रस्तुत हैं–

(क) आंचलिक शब्दावली :

'निंदिया सतावे मोहे संझही से सजनी।'

प्रेम बतकही तनकहूँ न भावे।

(ख) लोक भाषा का प्रयोग :

'निमिया की डार में फर–फर फूल झरे।'

(ग) अनुकरणात्मक एवं ध्वन्यात्मक प्रयोग :

'बदरिया झिमिर–झिम बरसे,

जैसे मोतियन लर टूटे।'

(घ) आधुनिक उपमान :

जैसे कोई महानगर में ढूँढे नया मकान।'

(ड.) सांस्कृतिक संदर्भों पर आधारित उपमान :

'धूल किसी रावणरथ पर, रोती सीती–सी अम्बर में।'

'चिन्तन की लक्ष्मण–रेखा को,

थोड़ा आज लाँघना होगा।'

इसी प्रकार नवगीत में विशेषण–विपर्यय एवं विशेषण–वक्रता के द्वारा उसकी लाक्षणिकता एवं व्यंजकता में पर्याप्त वृद्धि की गयी है; यथा–'लूले संकल्प', 'बीमार यादें', 'घिसे हुए मनसूबे' आदि।

शिल्प की दृष्टि से नवगीत में अनेक सार्थक प्रयोग किये गये हैं। नवगीत के लिए, नई कविता के गीत, अतिगीत, मुक्तगीत जैसी संज्ञायें दी गई हैं। किन्तु सभी में गेयता की अनिवार्यता पर बल दिया गया है। नवगीत टेक और तुक जैसी पारंपरिक रूढ़ियों का आग्रही नहीं है। लय प्रवाह से आगे बढ़कर वह ध्वनि प्रवाह में भी अपनी पूर्णता अनुभव करता है। संरचना की दृष्टि से नवगीत में कल्पनातीत विविधता है। शब्दों, मुहावरों, कहावतों आदि

के सार्थक प्रयोग से नवगीत में कल्पनातीत विविधता है। शब्दों, मुहावरों , कहावतों आदि के सार्थक प्रयोग से नवगीतों की अर्थ गर्भता बढ़ी है। नवगीतकारों ने अपने–अपने अंचलों की लोक धुनों जनबोलियों में प्रयोग किये हैं। लोक धुनों पर आधारित गीतों में माधुर्य की वृद्धि हुई है। नवगीत के शिल्प की लक्षणीय विशेषता यह है कि वह गीत की अन्तर्वस्तु का सहज अनुगामी है। प्रत्येक संप्रेष्य वस्तु अपने सहज संप्रेषण का शिल्प–विधान कर लेती है।

नवगीत ने अपनी प्रकृति के अनुसार गीत को परिभाषित करने का भी प्रयास किया है। नवगीत गौरवगान करने के स्थान पर कुछ नया रचनात्मक कार्य करने का पक्षधर है। आज जटिल जीवन की व्यथा असह्य हो गई है। मुक्ति के मार्ग अवरूद्ध हो गये हैं। ऐसी विकट स्थिति में गीत का दायित्व बहुत बढ़ गया है। आज गीत रंजन का नहीं निर्माण का माध्यम है। राजेन्द्र गौतम रचनाकारों का आह्वान करते हुये कहते हैं–

शोर को हम गीत में बदलें। इन निरर्थक शब्द दूहों का

खुरदरापन ही घटे कुछ तो, उमस से दम घोटते छिन

सुखद लमहों में बँटे कुछ तो, चुप्पियों का यह विषैलापन

लयों के नवगीत में बदलें।

शोर को गीत में बदलने और लय के नवगीत बनाने की आवश्यकता इसलिए भी अनुभव की जा रही है कि आज के अर्थप्रधान युग में कोमल भावनाओं की घोर उपेक्षा हो रही है। कोमल भावों और मार्मिक अनुभूतियों के संवाहक गीतों की उपेक्षा का अर्थ है मानवीय संवदेना की उपेक्षा। इस बोध को स्पष्ट करते हुये मुकुट सक्सेना कहते हैं–

ग्लोबल कल्चर का युग आया, हरा लेंस पहने

मुखिया बनकर अर्थ लगा हर घर–घर में रहने

उसके बंद मिल दरवाज़े, जिन तक गीत गए।

गीत हृदय के घाव का मरहम है। यह आत्मा का संगीत है। निर्मल प्रसन्न मन की भाषा है। गीत के लिये दरवाजों का बंद होना मानवता का अशुभ लक्षण है। ज्ञानवती सक्सेना गीत की प्रकृति को स्पष्ट करते हुये कहती हैं–

बंजारा भी पथ पर गाए/जीवन वह जो सबको भाए

नींद लगे तो लोरी–लोरी/चोट लगे तो मरहम मरहम।

वीरेन्द्र कुमार बसु गीत के प्रति आस्था व्यक्त करते हुये कहते हैं–

आज नहीं तो कल आएगा/गीतों का स्वर फिर भाएगा।

हिय की हूक न होगी निष्फल/गीतों के संग मन गाएगा।

12.9 सारांश

नवगीत आज की सर्व स्वीकृत काव्य–विधा बन गई है। किन्तु अपने वांछित विकास के लिये अपनी कमज़ोरियों से सावधान रहना होगा झंडा बरदारी, शिविर बद्धता, आत्मा स्थापन की प्रवृत्ति अहो रूपं अहो ध्वनिः की दलीय संकीर्णता, स्वार्थमय दोहन की नीति आदि से नवगीत के विकास को हानि पहुँचेगी। इसी प्रकार प्रतिभाहीन असमर्थ गीतकारों के प्रवेश या हस्तक्षेप से नवगीत की छवि धूमिल होगी। समीक्षकों को भी वस्तुनिष्ठ और उदार नीति अपनानी होगी। समीक्षा की दिशा से सबसे बड़ा खतरा यह रहता है कि दृष्टि के पूर्वग्रह दूषित होने के कारण वे अपनी दृष्टि के अनुकूल कमज़ोर रचनाओं को चुनकर, उन्हीं के साक्ष्य पर अपना निर्णय घोषित कर देते हैं। इसी प्रकार प्रशंसा करने की स्थिति भी अपने दुरारूढ़ तर्कों को आरोपित कर देते हैं। इससे विधा विशेष के प्रति भ्रांत धारणाएँ उत्पन्न होती हैं। इस संदर्भ में आवश्यक होगा कि समर्थ नवगीतकार स्वयं भी अपने पक्ष को स्पष्ट करें।

12.10 कठिन शब्द

1. स्वीकृत 2. अनुकूल 3. दोहन 4. शिविर 5. दुरारूढ़
6. तर्क–वितर्क 7. संसर्ग 8. पुनसंस्कार 9. पूर्ववर्ती 10.संक्षोभ

12.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न. – नवगीत आज की सर्वस्वीकृत विधा है। स्पष्ट करते हुए इसकी प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न.– नवगीत का आरम्भ और नामकरण कब और कैसे हुआ? स्पष्ट करें।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न. – नवगीत के स्वरूप एंव वैशिष्टय पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न. – नवगीत के प्रचार एवं प्रसार पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न. – नवगीत की उपलब्धियों का उल्लेख करें।

_____

_____

_____

_____

12.12 पठनीय पुस्तकें

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ० नगेन्द्र

2 हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

3 हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामसजन पाण्डे

4 आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ – नामवर सिंह

5. आधुनिक हिन्दी साहित्य – विकास के विविध आयाम – पुष्पपाल सिंह

6. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका – लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

7. हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी – नंद दुलारे वाजपेयी

8. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ० बच्चन सिंह

.....

अकविता

13.0 रूपरेखा

13.1 उद्देश्य

13.2 प्रस्तावना

13.3 अकविता

13.3.1 लधु पत्रिकाएँ

13.3.2 अकविता का घोषणा पत्र

13.3.3 निषेध का प्रकाशन

13.3.4 अस्वीकृत कविता

13.3.5 बंगला का भूखी पीढ़ी काव्य

13.4 प्रमुख कवि एवं काव्य प्रवृत्तियाँ

13.5 सारांश

13.6 कठिन शब्द

13.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.1 उद्देश्य

– प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप

– अकविता को समझ सकेंगें

– लघु पत्रिकाओं के नाम जानेगें

– प्रमुख कवियों के बारे में जानेगें

– अकविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ क्या है, इस बारे में जानेगें।

13.2 प्रस्तावना

'प्रयोगवाद' एवं 'नयी कविता' के आन्दोलन की सफलता ने न केवल हिन्दी मुक्तक के क्षेत्र में घोर व्यक्तिवाद, अति यथार्थवाद, उन्मुक्त भोगवाद, क्षणवाद एवं लघुमानवतावाद की प्रतिष्ठा को बढ़ावा दिया अपितु उसने ऐसे नुस्खों एवं फार्मूलों का भी प्रचार–प्रसार किया जिनके द्वारा व्यक्तियों का कोई भी समूह बिना काव्य–प्रतिभा एवं साधना के अपनी शुष्क, नीरस, अस्पष्ट, दुरूह एवं काव्यत्व शून्य उक्तियों के आधार पर भी अपने युग के श्रेष्ठ कवियों की पंक्ति में विराजमान हो सकता है। अब यह भली–भाँति स्पष्ट हो गया था कि यदि पाँच–सात व्यक्ति मिलकर कविता का कोई नया नाम उछाल सकें, सामूहिक रूप में कोई 'कविता–संग्रह' प्रकाशित कर सकें, साथ ही कोई छोटी–बड़ी अनियतकालीन पत्रिका निकाल सकें तथा अपने बेतुके वक्तव्यों द्वारा चर्चा का विषय बनते हुए बहुचर्चित होने का गौरव प्राप्त कर सकें तो यह काव्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठित होने के लिए पर्याप्त है। ऐसी स्थिति में भले ही सामान्य पाठक एवं आलोचक उनकी रचनाओं में काव्यत्व के अभाव का आरोप लगाते रहें किन्तु उनका मुँह बन्द करने के लिए उन्हें परम्परावादी, आधुनिक बोध–शून्य रूढ़िवादी या पोंगापंथी घोषित किया जा सकता है।

13.3 अकविता सन् 1960 के बाद एक ओर तो लघु पत्रिकाओं की बाढ़ आ गयी, जिनकी संख्या सम्भवतः कई दर्जन है तो दूसरी ओर प्रत्येक लघु–पत्रिका की छत्र–छाया में कविता का कोई न कोई नया वाद या रूप पलने लगा। थोड़े ही वर्षों में हिन्दी कविता में इतने प्रकार की कविताएँ उभर आईं कि जिन्हें देखकर आश्चर्य होता है। डॉ० जगदीश गुप्त ने इन कविताओं के लगभग चार दर्जन नामों की सूची दी है।

13.3.1 कुछ लघु पत्रिकाओं के नाम हैं – समिधा, युयुत्सा, लय, अभिव्यक्ति, अकविता, उत्कर्ष, 'आज की कविता', विन्यास, आमुख, अन्तर, अगली कविता, आवेश, संकेत, उत्तरार्द्ध, सर्वनाम और बातचीत, विचार, वाम, गंतव्य, सप्तांशु, नया, निकेत, हस्ताक्षर, अनाहूत, अंकन, फिर, रचना, तेवर, अब, हम, अप्रत्याशित अर्थात् अधुना, न, युवा आदि।

सनातन सूर्योदयी कविता, अपरम्परावादी कविता, सीमान्तक कविता, युयुत्सावादी कविता, अस्वीकृत कविता, अकविता, सकविता, अन्यथावादी कविता, विद्रोही कविता, क्षुत्कार कविता, उत्कविता, विकविता, अभिनव कविता, अधुनातन कविता, नूतन कविता, निर्दिशायामी कविता, एब्सर्ड कविता, साम्प्रतिक कविता, बीट कविता, ठोस कविता, कोलाज कविता, बोध कविता, मुहूर्त की कविता, दीपान्तर कविता, अति कविता, टटकी कविता, ताजी कविता, अगली कविता, प्रतिबद्ध कविता, शुद्ध कविता, स्वस्थ कविता, नंगी कविता, गलत कविता, सही कविता, प्राप्त कविता, सहज कविता.....।

सन् 1960 के बाद विभिन्न संज्ञाओं से विभूषित इन काव्यान्दोलनों में से अधिकांश तो ऐसे हैं जो अपने जन्म के साथ ही समाप्त हो गये, आगे नहीं बढ़ सके। कुछ अवश्य ऐसे हैं जो वर्ष, दो वर्ष या अधिक से अधिक पाँच–सात वर्ष की आयु प्राप्त कर सके। आरम्भ में सात कवियों का एक काव्य–संग्रह इलाहाबाद से 'विद्रोही पीढ़ी' नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें एक ओर

तो केशनी प्रसाद चौरसिया जैसे कवियों की यौन विकृतियों से परिपूर्ण कविताएँ थीं तो दूसरी ओर 'विद्रोह की दिशा' भी दिखाने की चेष्टा की गयी। वस्तुतः यह संग्रह अपने आप में अन्तर्विरोध का उदाहरण है।

सन् 1963 में जगदीश चतुर्वेदी के सम्पादन में चौदह कवियों का काव्य–संग्रह 'प्रारम्भ' शीर्षक से प्रकाशित हुआ जिसमें 'अभिनव काव्य' की स्थापना का दावा किया गया। यह अभिनव काव्य 'नयी कविता' से ही प्रेरित है, इसका प्रमाण सम्पादक के निम्नांकित वक्तव्य में उपलब्ध है –

'ये कवि उस 'अभिनव काव्य' के नियन्ता कहे जा सकते हैं जो सहज रूप से विकसित हो रहा है और जिसमें अनेक सम्भावनाएँ दिखाई देती हैं । यह संकलन उस कमी को पूरा करता है जो कि 'नयी कविता' की उपलब्धियों से अवगत होने के लिए आवश्यक प्रतीत हो रही थी। इन कविताओं को हिन्दी काव्य की अत्याधुनिक उपलब्धियों के रूप में मान्यता दी जा सकती है।' अन्यत्र यह भी कहा गया–'नयी कविता के उत्तरोतर विकास की स्वस्थ परम्परा इस संकलन के विभिन्न खण्डों में दिखाई देगी।'

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि 'प्रारम्भ' के सम्पादक का लक्ष्य नयी कविता का विरोध करना नहीं अपितु उससे जुड़ना था। किन्तु वे साथ ही यह चाहते थे कि 'नयी कविता' की अत्याधुनिक उपलब्धियों का श्रेय भी उन्हें दे दिया जाये। दूसरे शब्दों में वे अपने आपको 'नयी कविता' का पूरक बनाकर उसकी श्रेष्ठता के भी अधिकारी बन जाना चाहते थे। किन्तु यह बात स्वीकार्य नहीं हुई।

जगदीश चतुर्वेदी जब नयी कविता के साथ जुड़ने में सफल नहीं हो सके तो अगले वर्ष ही–सन् 1965 में–उन्होंने डॉ० इन्द्रनाथ मदान एवं रमेश कुन्तल 'मेघ' द्वारा सम्पादित 'अभिव्यक्ति' में नयी कविता के विरोध में वक्तव्य देते हुए 'अभिनव काव्य' को एक नया नाम "एंटी पोइट्री या अकविता" दे डाला। सन् 1963 में जो नयी कविता उनके लिए सकल गुणों की निधान थी वही अब सर्वथा त्याज्य बन गयी। उनके शब्दों में–"नयी कविता के मैनरिज्म और पिष्टपेषण से मुक्ति पाने के लिए गत सात–आठ वर्षों से प्रयास होते रहे हैं और अब यह स्थिति आ गई है कि एक स्वतन्त्र काव्य–धारा के रूप में उन सम्भावनाओं का मूल्यांकन तथा विवेचन किया जाये ..... सच तो यह है कि जहाँ अज्ञेय की रूचि पुरानी पड़ जाती है, सप्तकों के अधिकांश कवि चूक गए या पिष्टपेषण करते दिखाई देते हैं। वहीं से इस काव्य का श्रीगणेश होता है ।

13.3.2 अकविता का घोषणा–पत्र– ''अभिव्यक्ति'' की उपर्युक्त घोषणा में नयी कविता के विरोध के साथ '(एण्टी) कविता और अभिनव काव्य' का चार्टर भी प्रस्तुत कर दिया गया है जिसमें इसकी निम्नांकित विशेषताओं या प्रवृत्तियों का संकेत किया है–

(क) 'उन रूढ़ियों से मुक्त जोकि अनायास ही नयी कविता वादियों के द्वारा संश्लिष्ट हैं।'

(ख) 'अत्याधुनिक काव्य–बोध..... जो अपने वर्तमान के प्रति पूर्ण सजग है, सक्रिय है।'

(ग) 'अतीत के प्रति आकर्षण की दुर्बलता से मुक्त।'

(घ) 'अपनी पूरी तल्लीनता के साथ भोगे हुए क्षणों की एक तटस्थ अन्वेषक की भाँति अभिव्यक्ति।

(ड.) 'भाषा प्रतीक–योजना, बिम्ब विधान सभी पूर्ववर्ती कवियों से नितान्त भिन्न।'

(च) 'नैतिकता की सभी परम्परागत व्याख्याओं को नकारना।'

(छ) 'जीवन के विभिन्न विरोधाभासों को एक नया संदर्भ देना।'

(ज) 'एक सचेत बौद्धिक दृष्टिकोण लेकर कविता के शिल्प तथा वस्तु को एक सर्वथा नया रूप प्रदान करना।'

उपर्युक्त सारी बातें एक ही साँस में जिस प्रकार कही गयी हैं, उससे उनमें चिन्तन की गम्भीरता का अभाव परिलक्षित होता है तथा कुछ बातें–जैसे एकदम नयी भाषा, सर्वथा नये रूप, नितान्त भिन्न बिम्बों एवं प्रतीकों का प्रयोग आदि–हास्यास्पद नारेबाजी के तुल्य प्रतीत होती हैं। फिर भी इनमें इतना स्पष्ट हो जाता है कि अकविता के मूल में निषेधात्मक तत्त्वों की प्रेरणा अधिक थी जो 'अकविता' नाम को सार्थक करते हैं।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि अपने इस घोषणापत्र में जगदीश चतुर्वेदी का दृष्टिकोण इस नये काव्य आंदोलन के नाम के सम्बन्ध में स्पष्ट एवं स्थिर नहीं है, कहीं वे इसे 'एंटी काव्य' कहते हैं, कहीं 'अभिनव काव्य' तो कहीं ''आक्रोश काव्य'' । किन्तु अगले वर्ष ही अर्थात् सन् 1965 में श्याम परमार के सम्पादन में ''अकविता'' पत्रिका का विधिवत् आरम्भ हो जाने से यही नाम स्थिर हो गया।

''अकविता'' पत्रिका के प्रथम अंक में इस गुट से सम्बन्धित कवियों की रचनाएँ बिना किसी वक्तव्य या भूमिका के प्रकाशित की गयीं–केवल इसके फलैप पर यह घोषणा अवश्य की गई है–''वृहत्तर परिवेश से उपजी काव्य–रचनाएँ'' किन्तु इससे अकविता की किसी विशेष प्रवृत्ति पर प्रकाश नहीं पड़ता।

आगे चलकर क्रमशः '88 अकविता' पत्रिका के कुछ अंक और प्रकाशित हुए। प्रत्येक अंक में कविताओं के अलग–अलग शीर्षक दिये गये हैं जो इस प्रकार हैं–

1. विघटन 2. शरीर (वासना) 3. मृत्यु 4. नगर 5. व्यक्ति

ये शीर्षक अपने–आप में स्पष्ट नही हैं फिर भी ये 'अकविता' की जीवन–यात्रा के विभिन्न पड़ावों के सूचक अवश्य हैं। अकविता में सृजनात्मक दृष्टि की अपेक्षा ध्वंस को, संघटन की अपेक्षा विघटन को, सूक्ष्म तत्त्वों की अपेक्षा शारीरिक भोग को, जीवन के स्वस्थ दर्शन की अपेक्षा मृत्यु के दर्शन को, गाँवों की अपेक्षा नगर की कुण्ठाओं को तथा समाज की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक महत्त्व दिया गया है। उपर्युक्त शीर्षकों से इन तथ्यों का संकेत मिलता है।

13.3.3 ''निषेध'' का प्रकाशन – 'अकविता' वस्तुतः निषेधात्मक मूल्यों की कविता थी–यह बात स्वयं जगदीश चतुर्वेदी के नये काव्य–संकलन 'निषेध' से भी स्पष्ट हो जाती है, जो सन् 1973 में प्रकाशित हुआ। इसमें 'अकविता' नाम के प्रति विशेष आग्रह दिखाई नहीं पड़ता है। अतः समझना चाहिए कि अकविता आंदोलन की ही परिणति 'निषेध' में हो गयी।

13.3.4 ''अस्वीकृत कविता''– 'निषेध' के प्रकाशन से पूर्व ही 'अकविता' की परम्परा को आगे बढ़ाने में योग देने वाले और भी कई आंदोलन मैदान में आये 'अस्वीकृत कविता' उल्लेखनीय है। इसकी स्थापना श्री राम शुक्ल ने 'उत्कर्ष' (जुलाई 1961) के माध्यम से करते हुए घोषित किया–''मैं और मेरे समकालीन कवि कविता नहीं लिखते, कविता का धोखा खड़ा करते हैं। साथ ही इन्होंने 'अस्वीकृत कविता' का नमूना प्रस्तुत करते हुए एक 'लम्बी कविता' भी प्रकाशित करवाई जिसका शीर्षक है–'मरी हुई औरत के साथ सम्भोग'। कविता का शीर्षक ही बताता है कि 'अस्वीकृत' के क्षेत्र

में ये कितने आगे बढे हैं। श्रीराम शुक्ल के अनेक अन्य सहयोगियों–शरद एवं मुद्राराक्षस–ने 'अस्वीकृत कविता' का दर्शन प्रस्तुत करते हुए अनेक मौलिक एवं चौंकाने वाली बातें कही हैं, जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण यह है–''लेखक वही है जो चाहे अपने लिए हो या दूसरों के लिए केवल मूर्खतापूर्ण चीज़ें ही लिखें।'' जहाँ तक इस वर्ग के लेखक का सवाल है, यह बात पूरी तरह खरी उतरती है। सचमुच, सच्चाई को इस तरह स्वीकार कर लेना भी 'अस्वीकृत कविता' की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् यूरोप और अमरीका के साहित्य क्षेत्र में अनेक ऐसे आंदोलन उभरे जिनका दृष्टिकोण पूर्णतः निषेधपरक था–उन्होंने अपने समाज की परम्परागत मान्यताओं, नीतियों, नैतिकता के आदर्शों, शिष्टता की मर्यादाओं आदि का खुलकर विरोध किया। इस आंदोलन के साथ जुड़े हुए युवा वर्ग को अलग–अलग देशों में अलग–अलग संज्ञाएँ दी गयीं। फ्रांस में इन्हें समकालीन पीढ़ी एवं विश्वासघाती (कम. मतजमत) कहा गया तो इंग्लैण्ड में 'आक्रोशी पीढ़ी' (Angry Young Man) के नाम से पुकारा गया। इन्हीं के समानांतर अमरीका में 'बीट जैनरेशन' की स्थापना सन् 1942 में हुई। हिन्दी के अकविता आंदोलन का इसी 'बीट जैनरेशन' से सीधा सम्बन्ध है–इसे आगे स्पष्ट किया जाता है।

'बीट जैनरेशन' के प्रवर्तकों में **जैक कैरूआक** एवं **एलेन गिंसबर्ग** के नाम प्रमुख हैं। गिंसबर्ग का एक काव्य संग्रह सन् 1954 में 'हाउल' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था किन्तु उसकी समाज–विरोधी प्रवृत्तियों के कारण उसे पुलिस द्वारा ज़ब्त कर लिया गया, पर अदालत ने अपना निर्णय गिंसबर्ग के पक्ष में दे दिया जिससे उसकी ख्याति एवं लोकप्रियता में चार चाँद लग गये तथा उसका प्रभाव चारों ओर फैलने लगा।

सन् 1962–63 के आस–पास एलेन गिंसबर्ग अपने कुछ साथियों के सहित भारत आये तथा वे यहाँ लगभग दस महीने रहे। कलकत्ता और बनारस इनकी गतिविधियों के प्रमुख केन्द्र बने, जहाँ देश के सैंकड़ों युवा साहित्यकारों ने इनके सम्पर्क में आकर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव ग्रहण किया । साथ ही विभिन्न लोकप्रिय पत्रिकाओं में बीटनिकों के परिचय, चित्र, दिनचर्या के वृत्तान्त, इनकी जीवन–पद्धति एवं साहित्य प्रवृत्तियों के विवरण प्रकाशित हुए। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक था कि भारत का वह युवा वर्ग जो कि पहले ही भारतीय आदर्शों व संस्कारों से शून्य होकर पश्चिम के अन्धानुसरण के लिए लालायित था तुरन्त इनके प्रभाव में आ गया। फलस्वरूप बंगला कविता में 'भूखी पीढ़ी आंदोलन बड़ी तेजी से उभरा तथा आगे चलकर उसी की नकल पर हिन्दी में 'विद्रोह पीढ़ी' बीटनिक कविता, अकविता, अस्वीकृत कविता, शमशानी पीढ़ी' आदि अलग–अलग नामों से कई आंदोलन विभिन्न व्यक्तियों के नेतृत्व में प्रवर्तित हुए।

इन आन्दोलनों की विभिन्न संज्ञाओं से यह भ्रम हो सकता है कि ये परस्पर भिन्न होंगे। किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। इन सभी का मूलमन्त्र एक ही है–अस्वीकृत या निषेध–किन्तु उसकी अभिव्यक्ति प्रत्येक ने अपने–अपने ढंग से की है, यह दूसरी बात है कि अपने–आपको सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध करने की होड़ में ये अनेक दृष्टियों से बीटनिक से भी आगे बढ़ गये हैं। वास्तविकता यह है कि बीटनिकों की अस्वीकृत उनके अपने देश–काल की विशिष्ट परिस्थितियों पर आधारित थी, जबकि इनकी अस्वीकृति आरोपित एवं आयातित है।

वस्तुतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतीय भाषाओं में रचित अकविता कविता उस बीट जैनरेशन की नकल है जो सभी प्रकार की समाजिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक मर्यादाओं के नियन्त्रण से मुक्त होकर जीना चाहती है। इसकी दृष्टि में समाज व्यक्ति को एक पशु–समूह में परिणत करके उसकी अन्तश्चेतना को सुषुप्त कर देता

है–अतः वह व्यक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए सामाजिक व्यवस्था एवं उसके सभी नियमों व प्रतिबन्धों को अस्वीकार कर देती है। बीट–दर्शन के अनुसार आज का व्यक्ति औद्योगिक सभ्यता की घुटन से छटपटा रहा है। जिससे वह अपनी आन्तरिक चेतना से विच्छिन्न हो गया है। इसलिए वह एक ऐसी जीवन–पद्धति को अपनाता है जिससे वह सभी बाह्य बन्धनों से मुक्त होकर जीवन का निर्बाध भोग कर सके। बीट पीढ़ी के काव्य में भी इसी दर्शन के अनुरूप कला, साहित्य, समाज, नीति एवं भाषा सम्बंधी सभी परम्परागत मूल्यों को अस्वीकार किया गया है।

13.3.5 बंगला का 'भूखी पीढ़ी' काव्य – जैसा कि संकेत किया जा चुका है, बीट का प्रभाव हिन्दी में मुख्यतः बंगला की 'भूखी पीढ़ी' के माध्यम से आया। बंगला भाषा में 'भूखी पीढ़ी' की स्थापना हिन्दी के काव्य आन्दोलनों से पूर्व हो चुकी थी, जिसकी चर्चा हिन्दी में भी समय–समय पर होने लगी। राजकमल चौधरी ने 'लहर' में लेख (1964) प्रकाशित करते हुए घोषित किया –'एलेन जीन्सबर्ग (गिन्सबर्ग) पैगम्बर बन गया और बंगला की नयी कविता को नया बाना, नया रंगरूप, नया वजीफा और नया औहदा मिल गया।' यह नया बाना और नया रंग–रूप कैसा है –इसका परिचय **सुविमल वसाक** ने अपने 'कलकत्ता और कलकत्ता' शीर्षक लेख में देते हुए 'भूखी पीढ़ी' के कवियों की जो विशेषाताएँ बताईं वे इतनी वीभत्स हैं कि उनकी चर्चा करने में भी संकोच होता है–स्वमुख में पेच्छाव (पेशाब) करने एवं रज से मुँह धोने या कुल्ला करने' से लेकर नारी और पुरूष के यौन अंगों के साथ भाँति–भाँति के खिलवाड़ करने तक इन्होंने अपने भ्रष्ट यौनाचरण, कुत्सित एवं वीभत्स क्रिया–कलापों का चित्रण जिस प्रकार की भौंडी एवं अश्लील शब्दावली में किया है, वह किसी भी शिष्ट समाज में सह्य नहीं हो सकता। सम्भवतः इन्होंने नग्नता, अश्लीलता एवं वीभत्सता के प्रदर्शन में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है।

हिन्दी के कुछ अकवितावादियों ने अपने पर बीटनिक प्रभाव का खण्डन किया है, किन्तु वे भूल गये कि "अभिव्यक्ति–1" (1964) में उन्होंने न केवल बीटनिक प्रभाव को स्वीकार किया है अपितु इसके 'बीटिनिक कविता' शीर्षक खण्ड के अन्तर्गत जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, नरेन्द्र धीर आदि ने अपनी कविताएँ प्रस्तुत करते हुए बीटनिक परम्परा से प्रत्यक्ष से सम्बन्ध स्थापित किया है, अतः उनका यह खण्डन निराधार है।

13.4 प्रमुख कवि एवं काव्य प्रवृत्तियाँ – अकविता आन्दोलन के साथ जुड़ने वाले कवियों में जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, कैलाश वाजपेयी, नरेन्द्र धीर, राजकमल चौधरी, रमेश गौड़, राजीव सक्सेना, गंगा प्रसाद विमल, परेश, मोना गुलाटी, मणिका मोहिनी, सोमित्र मोहन आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त 'अस्वीकृत कविता' के माध्यम अकविता काव्यान्दोलन को सहयोग देने की दृष्टि से श्रीराम शुक्ल और मुद्राराक्षस का नाम भी उल्लेखनीय है। इनके काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का निर्देश यहाँ किया जाता है।

13.4.1 परम्परागत तत्त्वों की अस्वीकृति – इन कवियों ने धर्म, संस्कृति, समाज, राष्ट्र एवं नैतिकता से सम्बन्धित प्रायः सभी परम्परागत तत्त्वों, मूल्यों एवं धाराओं का बहिष्कार किया है। इसीलिए कहीं उन्होंने ईश्वर की खिल्ली उड़ाई है तो कहीं धर्म, समाज और नैतिकता के परम्परागत मूल्यों का उपहास किया है। ईश्वर के सम्बन्ध में इनकी घोषणा है–

'मुझे अब नहीं करना है विश्वास

बदलते आकाश पर रिरियाते ईश्वर पर' **जगदीश चतुर्वेदी**

इसी प्रकार अपने पूर्वजों तथा कुटुम्ब परिवार के अंग्रेज़ों के प्रति भी इन्होंने घोर अवज्ञा का परिचय दिया है । जगदीश चतुर्वेदी अपने पिता का स्मरण किन शब्दों से करते हैं, यहाँ दर्शनीय है–

'बच्चा था तो पिता का जन्तु बाहर निकलने पर रोक लगाता था

'बाप ने मेरे चेहरे पर जो चाँटे जड़े थे, वे आज सूज आये हैं

और अगर देश के चेहरे पर मैं वही चांटे जड़ रहा हूँ

तो जनतन्त्र नाम का खरगोश चौंकता क्यों है ?'

इसी प्रकार पारिवारिक मर्यादाओं, सामाजिक व नैतिक मान्यताओं का भी इनकी दृष्टि में कोई महत्त्व नहीं है, इसीलिए वे घोषित करते हैं –**'माँ और बहन और प्रिया में अब कोई अन्तर नहीं दिखता है मुझे।'** अपनी इसी विकृत दृष्टि के कारण कुलटाएँ देवियाँ नजर आने लगती हैं और प्रत्येक स्त्री को देखकर उनका कम्पित हाथ उसके घुटने से ऊपर की ओर सरक जाता है।'

इन्होंने राष्ट्रीय गौरव, राष्ट्रभक्ति, देश प्रेम आदि की भी निन्दा करते हुए देश–प्रेम को **'एक अय्याशी का दिया हुआ महामन्त्र** ' घोषित किया है। साथ ही अपने भारत देश की जैसी 'प्रशंसा' इन्होंने की है, वह भी दृष्टव्य है–

''हिन्दुस्तान तुम उस कपटी की सन्तान हो जिसने हमेशा

विभीषण और जयचन्द पैदा किये हैं,

हिन्दुस्तान! तुम्हारा शरीर सदियों के कोढ़ से विंधा है

हट जाओ मेरे सामने से पिचके कपोल

मैं तुम्हें देखकर शर्म से झुक जाता हूँ।'' **–जगदीश चतुर्वेदी**

इस प्रकार इन कवियों को सभी परम्परागत तत्त्वों, मूल्यों एवं आदर्शों से घृणा है जिसकी अभिव्यक्ति इन्होनें बार–बार की है।

13.4.2 उच्छृंखल भोगवाद – इनके काव्य की सर्वाधिक प्रमुख प्रवृत्ति उच्छृंखल भोगवाद, नग्न यौनवाद एवं अस्वाभाविक काम चेष्टाओं के चित्रण की है। इन्होंने जहाँ अपनी वासनाओं की तुष्टि के लिए न केवल प्रत्येक नारी को उपभोग्य घोषित किया है। अपितु वे विभिन्न पशु–पक्षियों से भी अस्वाभाविक एवं अप्राकृतिक सम्बन्ध स्थापित करने में कोई संकोच नहीं करते। इसीलिए कहीं वे 'मरी हुई नारी के साथ सहवास' में रत दिखाई पड़ते हैं तो कहीं विभिन्न मादा पशुओं या पक्षियों से यौन क्रीड़ा की चेष्टा करते हैं। इस क्षेत्र में पुरुष कवियों द्वारा तो अत्यन्त अश्लील एवं भौंड़ी उक्तियाँ कही गई हैं किन्तु आश्चर्य तो यह है कि इनके साथ जुड़ी हुई महिला कवयित्रियों ने भी निर्लज्जता, अश्लीलता एवं नग्नता के प्रदर्शन में कोई संकोच नहीं किया है। यहाँ मणिका मोहिनी की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

'सुबह होने से लेकर, दिन डूबने तक / मैं इन्तजार करती हूँ रात का

जब हम दोनों एक ही कोने में सिमटकर / एक दूसरे को

कुत्तों की तरह चाटेंगे /विवाह के बाद ज़िन्दा रहने के लिए

जानवर बनना बहुत जरूरी है।'

यहाँ कवयित्री ने नारी–पुरूष के मधुर सम्बन्ध के स्थान पर कुत्तों की तरह चाटने का जो आदर्श प्रस्तुत किया है उसमें स्नेह और प्रेम के स्थान पर पाश्विक वृत्तियों एवं वासना का ही आवेग अधिक है। वस्तुतः यौन– प्रवृत्तियों का ऐसा कुत्सित रूप जो मनुष्य को पशुता के स्तर तक पहुँचा दे मानसिक विकृतियों का सूचक है।

13.4.3 मानवता के महानाश की कामना – इन कवियों का उन्मुक्त भोगवाद जहाँ अन्त में इन्हें आत्मघात की ओर उन्मुख करता है वहाँ साथ ही वे समस्त मानवता को भी नष्ट कर देने की कामना करते हैं। अकाल मृत्यु के ग्रास बन जाने वाले राजकमल चौधरी का कथन था –

''मुझे दहशत नहीं होती सुनकर

कि एक पूरा मुल्क आग में झुलसा दिया जायेगा।''

इसी प्रकार जगदीश चतुर्वेदी की चाह है कि संसार की सारी यात्राएँ दुर्घटनाओं में बदल जाएँ जिससे कि वे मानव के महाविनाश की लीला देखने का आनन्द लूट सकें–

''मैं तमाम यात्राओं को दुर्घटना में बदलना चाहता हूँ

मैं प्रेम करते युग्मों को आग में जलते कंटूरों पर बिठाकर

मांस गन्ध को चिरचिराते देखना चाहता हूँ।

मैं चाहता हूँ विनाश

इन कीड़ों से मानव पिण्डों के लिए मेरे मन में कोई दया नहीं **–'इतिहासहन्ता' पृ0 2**

मानव का महाविनाश देखने की रूचि न केवल अकविता के पुरुष कवियों में ही है अपितु इस वर्ग की महिलाएँ भी इस दृष्टि से पीछे नहीं हैं। यहाँ मोना गुलाटी की कुछ उक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

"मुझे नहीं आकांक्षा/किसी के जीवन या मृत्यु की,

काली और सपाट आँखों में/देखते हुए हत्याएँ करूँगी

और अपनी आत्महत्या/प्रतिशोध की अंधी गलियों में

दौड़ते हुए और भोगते हुए।" **–मोना गुलाटी**

यहाँ सबसे अधिक विचित्र बात तो यह है कि कवयित्री न केवल सबकी हत्याएँ करना चाहती है अपितु उसके साथ–साथ ही आत्महत्या की बात कहती है। किन्तु उसकी विशेषता यह है कि वह हत्या करे या आत्महत्या, पर प्रत्येक स्थिति में उसका एक कार्य–व्यापार निरन्तर चलता रहेगा–'भोगते हुए' अर्थात् मृत्यु के अन्तिम क्षण तक उसकी भोग–साधना बराबर चलती रहेगी।

13.4.4 लोकतन्त्र का विरोध – अकविता के प्रस्तोताओं को वैसे तो प्रत्येक प्रकार की व्यवस्था से घृणा है किन्तु लोकतन्त्र के प्रति उनकी विशेष अरूचि है जिसकी चर्चा उन्होंने अपनी अनेक कविताओं में की है–

(क) "आदमी को इस लोकतन्त्री सरकार से अलग हो जाना चाहिए,

चले जाना चाहिए कस्साबों, गाँजाखोर साधुओं, भिखमंगों,

अफीमची, रंडियों की काली और अंधी दुनिया के मस्सानों में।" **–राजकमल चौधरी**

(ख) "मुझे तानाशाही से लगाव है, जनतन्त्र के रिरियाते गीदड़ से नहीं,

मुझे वेश्यालयों में गन्दगी नजर नहीं आती।" **– जगदीश चतुर्वेदी**

वस्तुतः यहाँ दोनों कवियों का मूल स्वर एक ही है, जहाँ एक ने लोकतन्त्र से अलग होकर 'रंडियों के मस्सानों' में जाने की बात कही है तो दूसरे ने प्रजातन्त्र की अपेक्षा वेश्यालयों को अधिक स्वच्छ माना है।

13.4.5 कविता के प्रति हेय दृष्टिकोण– इस वर्ग के कवियों का कविता के प्रति कोई गम्भीर दृष्टिकोण नहीं है। उनके लिए वह एक छिछले मनोरंजन की वस्तु है। इस सम्बन्ध में इनकी कुछ उक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

(क) "कविता के ज़रिये क्रान्ति होना नामुमकिन है। हाँ आप चाहें तो इससे हवा में लटठ् भाँज सकते है।"

जगदीश चतुर्वेदी ने कविता पर प्रवचन देते हुए और भी कई मनोरंजक बातें कही हैं। उनके विचार से कविता का महत्त्व इतना ही है कि उससे व्यक्ति 'स्मार्ट' लगता है पर उनकी एक शर्त यह भी है अच्छी कविता लिखने के लिए कवि को सूट–बूट और हैट पहनना चाहिए क्योंकि उनके विचार से लंगोट लगाने वाले और लिजलिजी धोती पहनने वाले लोग कविता नहीं लिख सकते।

'कविता अब एक लंगोट और लिजलिजी धोती से परे हैट में मिलती है।'

सम्भवतः कुछ लोगों को अकविता से आनन्द न मिले किन्तु इनके विचार से सफल कविता के लिए सबसे बड़ा गुण है–'लोगों की नींद हराम करना।' इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह विशेषता अकविता में पूरी तरह मिलती है। फिर भी यदि किसी को अकविता माफिक न आये तो उनके लिए जगदीश चतुर्वेदी का नुस्खा प्रस्तुत है–'आपको अकविता माफिक नहीं आती/आप ताकत की गोलियाँ लीजिए और सिर पर सुगन्धित तेल की बारह महीने एक मालिश कीजिए।'

इन सारी उक्तियों को सुनकर लगता है कि कोई कवि नहीं जोकर बोल रहा है और अपनी बेतुकी बातों से लोगों को कभी हँसाता है, कभी चिढ़ाता है तो कभी चौंकाता है। इस बात को स्वयं जगदीश चतुर्वेदी ने भी स्वीकार करते हुए लिखा है–

"एक बालिस्त भर का जोकर सारे शहर के लिए सिरदर्द है/दोजख से मिट्टी लाकर वह बौद्धिकों के सिर पर डाल देता है।"

निश्चय ही 'लोगों की नींद हराम करने' तथा 'बौद्धिकों के सिर पर दोजख की मिट्टी डालने' के लिए लिखी गयी कविताओं को विदूषकों की तत्त्व–शून्य मूर्खता–पूर्ण उक्तियाँ मानकर उपेक्षा की जा सकती है फिर भी इससे काव्य के उच्च आदर्शों, उसकी गौरवपूर्ण परम्पराओं एवं साहित्य के स्वस्थ वातावरण को जो क्षति पहुँचती है, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। वस्तुतः केवल अपना नाम उछालने एवं सस्ती ख्याति प्राप्त करने की आकांक्षाओं से प्रेरित होकर इन्होंने साहित्य के क्षेत्र को जिस प्रकार दूषित एवं विकृत किया है उसके लिए इतिहास इन्हें क्षमा नहीं कर सकता।

13.4.6 अकविता के कवि अपने प्रति पूर्णतः ईमानदार हैं – उन्होंने अकविता में अंतर्विरोध स्वीकार कर अपने चिंतन में इसका प्रमाण स्वयं प्रस्तुत कर दिया है। अकविता में ऊब और निराशा का होना तथा कविता की स्वाभाविक दिशा घोषित होना परस्पर–विरोधी वक्तव्य है। इतना ही नहीं, इसमें एक साथ स्थिति का संतुलित स्तर तथा संबंधों की विकृति भी दृष्टव्य है। हमारे विचार में इन्हें इस स्थिति का बोध हो चुका था कि इस नाम, आंदोलन की पृथक्ता का कोई अर्थ नहीं हैं इसीलिए इनका प्रयास स्वयं को नई कविता से अलगाना रहा है। तभी इन्हें कहना पड़ा–पार्थक्य के नाते अकविता समग्रता विहीन, विवश, अनगढ़ एवं सीमांतक अनुभूति की अभिव्यक्ति है तथा भविष्य में क्या होगा–कविता मरेगी या जिएगी ? अकविता प्रतिष्ठित होगी या अँधड़ में नष्ट हो जाएगी, इसकी चिंता से कोई लाभ नहीं। वस्तुतः कथन में भले ही चिंता की प्रतीति न हो पर उनका आधार इसे आंदोलन रूप में प्रतिष्ठित करना रहा है। इसीलिए तो ये यहाँ तक घोषित करते हैं – सोचने पर कविता और नई कविता साधारण शब्द प्रतीत होते हैं– कविता शब्द में 'अ' जोड़ने से उक्त दोनों शब्दों के बासीपन से मुक्ति मिलती है।

साठोत्तरी कविता के आंदोलनों में अकविता का कई दृष्टियों से विशेष महत्त्व है। यद्यपि इसका उल्लेख डॉ० जगदीश गुप्त ने अपनी सूची में किया है। पर इसका प्रचलन काफी समय पश्चात् तक चलता रहा।

इसके पक्षधर कवि समीक्षकों में श्याम परमार का नाम विशेष उल्लेखनीय है। सन् 1965 में डॉ० परमार तथा उनके कुछ सहयोगियों के संरक्षण में अकविता को पुनः प्रमुखता प्राप्त हुई। इसमें अतुल, विमल, गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे तथा भारत इत्यादि कवियों के नाम प्रस्तावकों में परिगणित किए जाते हैं। इस काव्यधारा के कवियों में श्रीकांत वर्मा, कैलाश वाजपेयी, जगदीश चतुर्वेदी, मुद्राराक्षस, विष्णु चंद्र शर्मा, चंद्रकांत देवताले, सतीश जमाली, राजकमल चौधरी, केदारनाथ सिंह, परमानंद श्रीवास्तव, रामदरश मिश्र, राजीव सक्सेना, सौमित्र मोहन, त्रिलोचन, शमशेर बहादुर, प्रतीप चौधरी, सुविमल वसाक, वीर सक्सेना तथा उत्पल कुमार, वसु इत्यादि कवियों को समाविष्ट किया जाता है। एक प्रकार से उसे काव्य आंदोलन की सीमा में अकवि भी कहा जा सकता है। यहाँ ध्यातव्य यह है कि इस सूची के अधिकांश नाम नई कविता के पक्षधर, संस्थापक, प्रतिष्ठित कवियों में स्वीकृत हैं। फिर भी डॉ० श्याम परमार ने अकविता को अनेक पक्षों में विवेचित एवं प्रतिष्ठापित करने का उपक्रम किया है। इसके लिए लेखक ने अनेक वक्तव्य प्रस्तुत किए हैं। जो अकविता काव्य आंदोलन की पुष्टि हेतु दिए गए हैं। अकविता और कला संदर्भ पुस्तक में नई कविता को अनेक दृष्टियों से अपूर्ण स्वीकारते हुए उसकी चर्चा तथाकथित विशेषण से की है। पर अकविता को वे एक आंदोलन/वाद घोषित न करते हुए भी नई कविता की श्रेणी को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। अकविता पर लगाए आरोपों को नकारते हुए डॉ० परमार ने उसकी मूलस्थिति का परिचय दिया है। इसके स्पष्टीकरण हेतु लेखक ने अनेक प्रसंग प्रस्तुत किए हैं। यथा–

(क) अकविता स्थितिपरक संतुलित स्तर की कविता है।

(ग) अकविता वस्तुतः कविता के ऊबे हुए लोगों की अभिवृत्ति है। यह ऊब नैराश्य जापा नहीं, न ही ऐसे लोगों की प्रतिक्रिया है, जिन्हें आईडेन्टिटी की आवश्यकता है। नैराश्य अब स्वभाव बन गया है।

(घ) अकविता अंतर्विरोधों की अन्वेषक कविता है।

(ङ) अकविता अवाक् मन की प्रतिक्रिया नहीं।

(च) अकविता स्वाभाविक कविता की दिशा है।

13.5 सारांश

उपर्युक्त वक्तव्यों अथवा सिद्धांत वाक्यों के अतिरिक्त लेखक ने अनेक स्थलों पर नई कविता पर व्यंग्य प्रहार करते हुए अकविता नाम की सार्थकता पर बल दिया है।

13.6 कठिन शब्द

1. वक्तव्य,	2. सिद्धांत	3. व्यंग्य,	4. परिगणित	5. संरक्षण,
6. प्रतिष्ठित,	7. अंर्तविरोध	8. संतुलित	9. अनुभुति	

13.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न – अकविता किसे कहते है? स्पष्ट करते हुए इसकी प्रवृतियों का उल्लेख कीजिए।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – अकविता के प्रमुख कवि कौन से है उनका परिचय दीजिए।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – बंगला का भूखी पीढ़ी, काव्य से क्या आशय है।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – अकविता का घोषणा पत्र क्या है ? स्पष्ट किजिए।

_____

_____

_____

_____

13.8 पठनीय पुस्तकें

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ० नगेन्द्र

2 हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

3 हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामसजन पाण्डे

4 आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ – नामवर सिंह

5. आधुनिक हिन्दी साहित्य – विकास के विविध आयाम – पुष्पपाल सिंह

6. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका – लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

7. हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी – नंद दुलारे बाजपेयी

8. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ० बच्चन सिंह

_____

विचार कविता

14.0 रूपरेखा

14.1 उद्देश्य

14.2 प्रस्तावना

14.3 विचार कविता

14.3.1 पूर्व परम्परा

14.3.2 विचार कविता : स्वरूप विश्लेषण

14.3.3 प्रवृत्तियाँ

14.4 सारांश

14.5 कठिन शब्द

14.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.7 पठनीय पुस्तकें

14.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप

– विचार कविता से क्या आशय है, समझेंगे।

– विचार कविता की पूर्व परम्परा को जानेंगे।

– विचार कविता के प्रमुख कवि और इसकी प्रवृतियों को समझेगें।

14.2 प्रस्तावना

आठवें दशक में हिन्दी कविता के क्षेत्र में 'संचेतना' पत्रिका के 'विचार कविता विशेषांक' (जून 1973) के माध्यम से एक नये आन्दोलन का प्रवर्तन हुआ जिसे 'विचार कविता' की संज्ञा दी गयी। इस पत्रिका के सम्पादक

डॉ. महीप सिंह एवं डॉ. नरेन्द्र मोहन के अतिरिक्त इस विशेषांक में कतिपय अन्य लेखकों डॉ. हरदयाल, नित्यानन्द तिवारी, राजीव सक्सेना, रामदरश मिश्र, बलदेव वंशी आदि–के भी लेख प्रस्तुत किये गये हैं जिनमें विचार कविता के विभिन्न पक्षों पर विभिन्न दृष्टियों से प्रकाश डाला गया है। साथ ही इसमें विभिन्न कवियों की कविताएँ भी विचार कविता का नमूना या आदर्श प्रस्तुत करने के लिए संकलित की गयी हैं। इस प्रकार इस विशेषांक में विचार कविता के सिद्धान्त और व्यवहार–दोनों पक्षों को समुचित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इस विशेषांक से सर्वप्रथम इस नाम को साहित्य जगत में परिचय प्राप्त हुआ। वैसे कविता में विचार को लेकर अनेक बार चर्चा होती रही पर विचार कविता रूप में नामकरण इस पत्रिका द्वारा ही हुआ। इस विशेषांक में विचार कविता की प्रतिष्ठा और स्पष्टीकरण हेतु कुछ वक्तव्य प्रस्तुत किए गए हैं। डॉ. नरेंद्र मोहन ने 'कविता की वैचारिक भूमिका' पुस्तक का संयोजन किया। इस प्रकार विचार कविता के पक्षधर कवि समीक्षक डॉ. बलदेव वंशी ने समकालीन कविता नामक पुस्तक का संपादन कर इस काव्य आंदोलन के स्पष्टीकरण के साथ संभावनाओं की ओर संकेत किया है।

कवि वंशी ने भी विचार कविता की प्रतिष्ठा करते हुए अपने काव्य संग्रह 'उपनगर की वापसी' के वक्तव्य के अंत में घोषित किया है– ''ये विचार कविताएँ इसलिए और उन अर्थों में हैं कि वे आज की असलियत का अन्वेषण करती हैं और समकालीन व्यक्ति का उसके आस–पास का, उसकी सही हालत का बोध कराती हैं और सक्रिय करती हैं।'' इस बोध की वाचकता वैचारिक मनःस्थिति में से छनकर आई है। हम वंशी को विचार कविता में आबद्ध लिखने वाला कवि नहीं मानते। यह संवेदनशील कवि हैं – इनके सम्मुख अनेक समस्याएँ हैं। आत्मदान इस कवि की महत्त्वपूर्ण उपलिब्ध है। यह कवि निरंतर लिख रहा है।

विचार कविता को स्थापित करने के लिए पूर्व प्रचलित आंदोलन का खंडन भी परंपरा के अनुरूप किया जाना है। इसलिए डॉ. नरेंद्र मोहन ने नई कविता से विचार कविता के लेख में सभी आंदोलनों में प्रस्तुत आंदोलन की वकालत की है, शेष को किसी न किसी आधार पर खंडित किया है। लेखक ने अकविता में बड़बोलापन और वैयक्तिक्ता की अतिव्याप्ति घोषित की है। अभिमत से विचार कविता के पक्ष पर कवि एवं समीक्षक डॉ. विनय के अकविता को समर्थन देते सभी आंदोलनों में कुछ दोष रहने की पुष्टि की है। लेखक का अभिमत है कि–सारी अकविता न तो बड़बोलापन है, और न उतनी वैयक्तिक। अकविता ने वस्तु सत्य को जिस नज़रिए से देखा, वह उत्तेजक हो सकता है, पर असामाजिक नहीं। हाँ, जहाँ कवि ने कथन में अतिरिक्त आस्फलन की प्रक्रिया अपनाई है, वहाँ कविता का ढाँचा ही नहीं रह पाता। फिर उसके स्वीकार की बात कहाँ रहती है। पर इस तरह की रचनाएँ अन्य कविताधारा में भी मिल जाती हैं।

14.3 विचार कविता

'विचार कविता' आन्दोलन का प्रवर्तन अत्यन्त सुनियोजित ढंग से किया गया, अतः प्रतिष्ठित होने के लिए बहुत अधिक संघर्ष नहीं करना पड़ा। इसके अतिरिक्त इससे पूर्व सातवें दशक में जिस प्रकार कविता के नाम पर विभिन्न प्रकार के छिछले, भौंड़े, तर्कहीन एवं अश्लील प्रयास किये गये थे, उनसे भी साहित्य जगत बुरी तरह त्रस्त हो चुका था। अकविता और उससे सम्बन्धित विभिन्न भूखी, नंगी, अस्वीकृत एवं श्मशान पीढ़ी को युवा कवियों की कुत्सित, विकृत एवं आत्मघाती घोषणाओं को सुनते–सुनते हिन्दी जगत ऊब चुका था। ऐसी स्थिति में 'विचार कविता' आन्दोलन ने हिन्दी

काव्य को एक स्वस्थ, संतुलित एवं सशक्त आधार एवं सही दिशा प्रदान करके ऐतिहासिक महत्त्व का कार्य किया। इसलिए यह स्वाभाविक था कि उसका विरोध कम और स्वागत अधिक हुआ।

14.3.1 पूर्व परम्परा

यद्यपि 'विचार कविता' संज्ञा एकाएक सुनने में प्रतीत होती है किन्तु इसका वास्तविक अर्थ 'विचारात्मक कविता' या 'विचार–प्रधान कविता' है। सामान्यतः कविता में विचार की अपेक्षा भाव एवं कल्पना की प्रमुखता होती है। किन्तु ऐसी कविता की भी परम्परा सदा रही है जिसमें कवि का प्रेरक तत्त्व या प्रतिपाद्य विचार हो। रस–सिद्धान्त के आचार्यों ने शान्त रस की स्थापना विचार–प्रधान कविता की दृष्टि से ही की थी। मध्यकाल में कबीर, दादू, रैदास, सुन्दरदास आदि सन्तों ने एवं गिरिधर राय, दीनदयाल गिरि, रहीम आदि नीति–काव्य रचयिताओं ने, अपने–अपने क्षेत्र के विचारों को ही आकर्षक शैली में व्यक्त किया है।

'विचार कविता' आन्दोलन का भले ही प्रत्यक्ष रूप में इस परम्परा से सम्बध न रहा हो किन्तु इसके लिए पर्याप्त पृष्ठभूमि पहले से तैयार हो चुकी थी–इसमें कोई सन्देह नहीं।

14.3.2 विचार–कविता : स्वरूप विश्लेषण

'विचार कविता' से तात्पर्य ऐसी कविता से है जिसमें भाव और कल्पना की अपेक्षा विचार की प्रमुखता हो। छायावादी कविता में जिस प्रकार कल्पना पर या नयी कविता में अनुभूति पर अधिक बल दिया गया है, उसी प्रकार 'विचार कविता' में विचार पर बल दिया गया है। विचार से तात्पर्य **कविता, चिन्तन** या **सोचने की प्रक्रिया** से है– इसीलिए '**विचार कविता**' को '**सोचते हुए मन की कविता**' भी कहा गया है। 'विचार कविता' में विचार ही केन्द्रीय तत्त्व है किन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं है कि उसमें अनुभव एवं अनुभूति का सर्वथा अभाव रहता है। वस्तुतः जिस प्रकार कोरी अनुभूति एवं कोरी कल्पना से कविता का सृजन सम्भव नहीं उसी प्रकार कोरे विचारों से भी किसी कविता की रचना नहीं हो सकती। भाव–प्रधान एवं कल्पना–प्रधान कविता से विचार–प्रधान कविता का अन्तर है कि जहाँ उनमें क्रमशः भाव एवं कल्पना का अनुपात अधिक होता है। वहाँ इसमें विचार का होता है। अस्तु 'विचार कविता' में भाव सर्वथा त्याज्य नहीं होते। फर्क बस इतना है कि समकालीन रचनाकार रोमानी बोध के कवि की तरह भावों के उच्छल आवेग और अप्रतिहत प्रवाह में नहीं जाता। वह अपने भावावेश को संयत करते हुए, अपनी अनुभूति को 'ज्ञानात्मक संवेदन' या 'संवेदनात्मक ज्ञान' के रूप में प्रस्तुत करता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'विचार कविता' का केन्द्रीय तत्व या प्रमुख तत्व विचार है, शेष तत्व गौण या उसकी व्यंजना के साधन मात्र हैं। तत्व की प्रमुखता के कारण ही यह कविता एक ओर तो मध्यकालीन बोध से अलग होकर आधुनिकता से जुड़ जाती है तो दूसरी ओर कविता, अकविता या प्रतिबद्ध कविता से अलग अपनी स्वतन्त्र सत्ता को प्रमाणित करती है। साथ ही यह किसी विशिष्ट विचार या विचारधारा से भी बँधी हुई नहीं है–अतः इस दृष्टि से प्रगतिवादी या वाम कविता से इसका पार्थक्य स्पष्ट है।

'विचार कविता' में विचार ऊपर से आरोपित नहीं होते और न ही वे किसी पूर्व स्थापित विचारधारा के अंग होते हैं। कविता के विचार को किसी एक विचार में आबद्ध नहीं किया जा सकता है और न किसी विचारधारा में बन्द किया

जा सकता है। कठमुल्लापन विचार को ही नहीं कविता को भी ले डूबता है। कविता विचार को ओढ़ती नहीं, उसे अपने लिए वास्तविकता की पहचान के निमित्त तलाशती है।'

वस्तुतः 'विचार कविता' को 'सोचते हुए मन की कविता' के रूप में प्रस्तुत किया गया है, अतः इसमें प्रत्यक्षानुभूति पर अधिक बल दिया जाता है। किसी विशिष्ट स्थिति, परिस्थिति या घटना के प्रत्यक्ष बोध से चिन्तनशील मस्तिष्क में विचार स्वतः उद्‌भूत होते हैं–ऐसे ही विचारों को इस कविता में प्रामाणिक एवं ग्राह्य माना जाता है। किसी बाह्य स्त्रोत से आयातित या ग्रहीत विचारों के लिए भी इस कविता में कोई स्थान नहीं है। मध्यकालीन सन्त–काव्य एवं नीति–काव्य से 'विचार कविता' का यही प्रमुख अन्तर है– उनमें पूर्व घोषित दार्शनिक या नैतिक तत्वों की व्यंजना कल्पना या भावना के सहयोग से की गयी है। इस दृष्टि से 'विचार कविता' में कवियों के निजी बोध पर आधारित तत्वों की अभिव्यक्ति की जाती है। इस दृष्टि से 'विचार कविता' विचारों की कविता कम और विचारोत्तेजन की कविता अधिक है।

14.3.3 विचार कविता : कवि एवं काव्य–प्रवृत्तियाँ

'संचेतना' के 'विचार–कविता' विशेषांक में छत्तीस कवियों की रचनाएँ निम्नांकित पाँच शीर्षकों में विभक्त करके प्रस्तुत की गई हैं–

(1) **संघर्ष की नियति –** चन्द्रकांत देवताले, लीलाधर जगूड़ी, नरेन्द्र मोहन, बलदेव वंशी, नीलम सिंह, ज्ञानेन्द्र पति, गोविन्द उपाध्याय।

(2) **कल की लड़ाई के लिए –** राजीव सक्सेना, वेणु गोपाल, राजकुमार, कुम्भज, कुलभूषण, विजेन्द्र, रमेश कुन्तल मेघ, श्री हर्ष।

(3) **वर्तमान से संवाद करते हुए –** रामदरश मिश्र, कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, विनय, कन्हैयालाल नन्दन, कार्तिक नाथ, गौरीनाथ ठाकुर, वेदनन्दन हरिप्रकाश त्यागी।

(4) **विद्रोह की विडम्बना –** ऋतुराज, हरदयाल, हरिशंकर अग्रवाल, श्याम विमल, रमेश द्रिविक, पवन माथुर, सुरेश ऋतुपर्ण, सुधा गुप्ता।

(5) **विसंगत परिवेश में –** रमेश गौड़, रामावतार चेतन, महेन्द्र प्रताप, केवल गोस्वामी, अचला शर्मा, मंजुल उपाध्याय, लक्ष्मीकान्त सरस।

उपर्युक्त कवियों में अनेक ऐसे भी हैं जो कि पहले नयी कविता, अकविता, प्रतिबद्ध कविता या सहज कविता के साथ भी जुड़े हुए थे–जिससे प्रतीत होता है कि क्षेत्र के कुछ व्यक्ति हर आन्दोलन में सम्मिलित होकर अपना नाम उछालने के लिए सदैव प्रस्तुत रहते हैं, आन्दोलन की विशेष दृष्टि या दिशा क्या है – इसकी चिन्ता वे नहीं करते।

'विचार कविता' सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक – दोनों ही दृष्टियों से विकासोन्मुख है, फिर भी इसकी कतिपय विशिष्ट प्रवृत्तियों का संकेत यहाँ किया जाता है–

(1) **आस्थामूलक दृष्टिकोण –** 'विचार कविता' ने जीवन और समाज के प्रति एक स्वस्थ, सकारात्मक एवं व्यापक दृष्टिकोण का परिचय दिया है। उसमें न नयी कविता एवं अकविता की सी उच्छृंखल भोग–लिप्सा

है और न ही निषेधमूलक एवं संघर्षमूलक रचनाओं की सी अस्वीकृति, निषेध एवं विद्रोह का विचार शून्य आवेग है। वह काव्य–रचयिता को स्थितियों के प्रति तटस्थ दृष्टिकोण अपना कर स्वतन्त्र चिन्तनमनन की प्रेरणा देते हुए उसे अपनी प्रतिक्रिया को सन्तुलित ढंग से व्यक्त करने का मार्ग सुझाती है।

(2) **वैचारिक आधार की प्रमुखता –** जैसे कि अन्यत्र स्पष्ट किया जा चुका है, विचार कविता में भावना और कल्पना की अपेक्षा वैचारिक आधार को प्रमुखता दी गयी है। इसका कारण स्पष्ट करते हुए डॉ. नरेन्द्र मोहन ने लिखा है–'काव्यानुभव में भावना का योग अब उतना नहीं रहा है जितना विचार का। कविता की भावनामूलक प्रकृति संवेदना को रोमेंटिक भावावेश में बल देने और ठोस सन्दर्भों को धुंधला देने के कारण अनावश्यक और अप्रासंगिक लगने लगी है और इसी से कविता का भावमूलक आधार भी भोथरा और अतिरंजित लगने लगा है। कविता की संवेदनात्मक प्रकृति में भाव विह्वलता की जगह वैचारिक बेचैनी ने ले ली है।' परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि 'विचार कविता' में अनुभूति में शून्य शुद्ध विचारों या प्रत्ययों का प्रस्तुतीकरण होता है, अपितु इसमें विचार को 'काव्यनुभूति' को गहराने उसे व्यापक बनाने और वास्तविकता के करीब लाने में सहायक माना गया है।

(3) **अपने परिवेश के प्रति सजगता –** 'विचार कविता' अपने युग और समाज से विच्छिन्न कविता नहीं है अपितु वह अपने परिवेश से पूरी तरह संयुक्त है। इसलिए वह अपने अनुभव में आने वाली प्रत्येक स्थिति या परिस्थिति का प्रत्यक्ष बोध प्राप्त करते हुए उसका बौद्धिक विश्लेषण प्रस्तुत करती है। यहाँ आधुनिक जीवन की विभीषिका से आक्रान्त एक कवि की स्थिति का विश्लेषण प्रस्तुत है –

'रोटी' जो मेरी जुबान पर है/यकीन मानिए
महज मेरे झूठ की कमाई है।
मेरे हम वतनों/मेरी जुबान पर रोटी है
झूठ की रोटी/और किताबों–से घिरा हुआ मैं
जानवर–सा चुप हूँ। **–गोविन्द उपाध्याय**

(4) **समकालीन जीवन की विसंगतियों का उद्‌घाटन –** विचार–कविता में समकालीन जीवन के विभिन्न पक्षों – पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि में व्याप्त विषमताओं, विसंगतियों एवं विद्रूपताओं का विश्लेषण एवं उद्‌घाटन अत्यन्त सशक्त शब्दों में प्रस्तुत किया गया है। यहाँ आधुनिक साहित्य की स्थिति का एक चित्र व्यंग्यात्मक शैली में द्रष्टव्य है –

'आप भी/एक वाद चलायें।
मैं भी/एक वाद चलाऊँ।
आप करें/मेरी आलोचना।
मैं करूँ/आपकी आलोचना।
इसी बीच/कुछ समालोचक, पैदा हो जायेंगे।
इस कशमकश में
हम दोनों/हिट हो जायेंगे।' **–सतीशचन्द्र अग्रवाल : 'चितवन' पृ. 46**

इसी प्रकार जीवन के अन्य पक्षों एवं क्षेत्रों की विसंगतियों का उद्‌घाटन इस कविता में व्यंग्यात्मक शैली में किया गया है।

(5) **व्यवस्था, राजनीति एवं क्रान्ति का उपहास –** 'विचार कविता' का रचयिता आधुनिक जीवन में व्याप्त विषमताओं के विश्लेषण से इस तथ्य को हृदयंगम करता है कि इन सबके लिए वर्तमान व्यवस्था एवं राजनीति उत्तरदायी है, अतः वह इनके प्रति अपनी प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति आलोचना, व्यंग्य एवं उपहास के रूप में करता है, यथा–

'देश के हित में और/आम आदमी के हित में
गले मिल गये हैं समाज – पाल – क्रान्तिलाल,
और लम्बी और हिलती हुई दुमों को,
और लम्बी और हिलाकर वे
योजनाएँ (नौजवानों की मुनासिब कार्यवाही
को रोकने और ध्वस्त करने वाली)
लागू करने में लगे हैं।' **–नरेन्द्र मोहन**

यहाँ भारतीय राजनीति में लोकहित एवं समाज के नाम पर होने वाले षड्‌यन्त्रों का चित्रण किया गया है तो आधुनिक प्रजातन्त्र की अनेक विडम्बनाओं का उद्‌घाटन भी द्रष्टव्य है–

'कुछ लोग पार्लियामेंट में कुर्सी/और बाकी सब
पागलखाने की दीवारों पर चिपके हुए
अपने आज़ाद होने की कोशिश करते हैं।
परेशानियों के ठहराव को/भोग रही है देश की जनता
और जनतन्त्र/ताली बजा रहा है।' **–राजकुमार कुम्भज**

राजनीतिक व्यवस्था के प्रति तीव्र उपहासात्मक दृष्टिकोण के होते हुए भी 'विचार कविता' का कवि क्रान्ति में विश्वास नहीं करता। उसे क्रान्ति की बात 'लिजलिजी' सी लगती है और तथाकथित विद्रोह खोखले प्रतीत होते हैं –

'हमारे समझ में, अब यह नहीं आता,
कि देश–प्रेम के गीत/निकल पड़े क्रान्ति को,
झूठे नेताओं और ढेरों किताबें पढ़े लोगों
के नारों के सेल्स मैन बनें या
हम भी खेलें मुखौटों वाला खेल।' **–पवन माथुर**

'कितना हास्यापद हो जाता है तब
जब एक कायर दूसरे कायर की ओर,
उंगली उठाता है – 'तुम छद्‌म हो'

और स्वयं सड़क के किनारे खड़ा होकर
उच्चतम स्वर में चिल्लाता है/मैं विद्रोही हूँ
उलट–पुलट दूँगा यह दुनिया।' **–हरदयाल**

वस्तुतः प्रत्येक बुद्धिवादी व्यक्ति की यह सीमा होती है कि वह स्थितियों का सूक्ष्म विश्लेषण तो कर सकता है किन्तु उन्हें बदलने की क्षमता का उसमें अभाव होता है क्योंकि परिवर्तन, संर्घष और क्रांति के लिए शुष्क बौद्धिकता के स्थान पर गम्भीर भावना की अपेक्षा होती है। ऐसी स्थिति में क्रांति की बात को ये कवि बहुत गम्भीरता से न ले पायें तो स्वाभाविक है। बौद्धिक विश्लेषण से क्रान्ति एक दूर का सपना लगती है, अतः उसकी कल्पना भी इन्हें अविश्वसनीय प्रतीत होती है –

'वे उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं/कभी चाय के प्याले पर
कभी विदूषकों की मुद्रा में,
वे समझते हैं, वे कमसिन हैं, इसलिए युवा हैं।
और युवा के पास वह अपने आप... आएगी।
इसलिए आधुनिक पोशाक में वे उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं,
सहूलियत की सतहों पर बुलबुलाते वे मनचले
यह नहीं समझते कि सिर्फ शब्दों का झुनझुना सुन
वह नहीं आती है :
वह क्रान्ति है, कोई बेवकूफ लड़की नहीं।' **–गोपालाकृष्ण कौल**

(6) **मध्यवर्गीय शहरी जीवन का चित्रण –** 'विचार कविता' के कवि प्रायः शहरों में रहने वाले मध्यवर्गीय समाज से सम्बन्धित हैं, अतः इनकी कविता में इसी जीवन की अभिव्यक्ति अधिक हुई है। यहाँ शहरी जीवन की औपचारिकता व कृत्रिमता का चित्रण प्रस्तुत है–

'कहो दोस्त कैसे हो?'
'खुश हूँ–बहुत खुश', उसका जवाब था।
कितना तो भला है मेरा आस–पास,
यहाँ लोग दुःखी न होते हुए भी तुम्हारे लिए
आँखों में आँसू ला सकते हैं
खुश न होते हुए भी तुम्हारी खातिर
उछाल सकते हैं हवा में कहकहे।
कितना तो अच्छा...' **–रमेश गौड़**

इसी प्रकार नगरों की रूपहली सभ्यता के दमघोटू प्रभाव की अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है–

'जब/रूपहली सभ्यता की,
आसमानी चिमनी/ऊब और खीज और उदासी का

टनों काला धुआँ
हर साँस में उगलती–करती घटाटोप/तब मुझे
अकविता/कहानी और गीत
प्यारा मीत/अद्‌भुत प्रीत
कुछ भी अच्छा नहीं लगता।' **–महेन्द्र प्रताप**

(7) **अभिव्यक्ति की सहजता–** 'विचार कविता' में सायास अभिव्यक्ति को प्रश्रय नहीं दिया गया, अतः इसमें खुरदरापन और अनगढ़ता भी मिलती है। कहीं–कहीं उसमें सपाटता एवं वक्तव्यात्मकता भी आ जाती है, किन्तु ऐसा सर्वत्र नहीं है। फिर भी जहाँ अनुभूति का उद्रेक है वहाँ लाक्षणिकता एवं वक्रता का भी संचार सहज स्वाभाविक रूप में हो गया है, यथा–

(क) 'तुम्हें याद भी नहीं/अपने दिमाग में खुद तुम नहीं हो'

(ख) 'समय और आँख हमारे पास है/नहीं है सिर्फ आवाज़' **–हरिप्रकाश त्यागी**

(ग) 'हम जो सड़के ओढ़े हुए थे/अपने नंगे जिस्मों पर' **–केवल गोस्वामी**

इसके अतिरिक्त विभिन्न कविताओं में उपमानों, बिम्बों एवं प्रतीकों का भी प्रयोग सहज रूप में हुआ है, जैसे–

उपमान – 'कालाकार/सूखे तौलिए सा/खुद को निचोड़ रहा है। –महेन्द्र प्रताप

प्रतीक – 'जो चाहते थे/वह सब कुर्सियाँ/हजम कर गयीं।' –सुधा गुप्ता

14.4 सारांश

वास्तव में विचार कविता के अंतर्गत जिन कवियों एवं उनकी कविताओं को सम्मिलित किया जाता है उनमें अधिकांश रचनाओं की कल्पना के आधार पर समीक्षा की है। वस्तुतः कविता में कोरा उपदेश, विचार, घोषणा अथवा स्थापना का सपाट वर्णन नहीं किया जाता है। अनुभूति के स्तर पर विचार के संप्रेषण में कवि को गहन मनोभूमि में से गुजरना पड़ता है– जहाँ प्रत्येक शब्द, बिंब प्रतीति में सपाट होते हैं। पर मंतव्य अभिव्यक्ति में पूर्णतः समर्थ होते हैं। इसलिए डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा ने विचार कविता के विशेषांक में अधिकांश कविताओं को बिंबमूलक, अनुभूतिपूर्ण कविताएँ तथा कुछ को शुष्क गद्यखंड मात्र स्वीकार किया है। उनके इस कथन से हमारी पूर्णतः सहमति है। वस्तुतः कविता न कोरा विज्ञान है, न दर्शन न कोई वैचारिक मतवाद। कविता में विचार अनुभूति का अंतवर्गी अंग होकर आता है। 'कंक' पत्रिका में विचार कविता विशेषांक पर निर्मल शर्मा द्वारा प्रस्तुत प्रतिक्रिया का विशेष महत्त्व है। परस्पर विरोधी अभिमतों को एक साथ प्रस्तुत कर विचार एवं कविता के संबंध की चिरंतनता की ओर संकेत किया गया है इतना ही नहीं, इस प्रतिक्रिया में विचार की कविता के अंतर्गत ऐसे कवियों की ओर संकेत किया गया है जिन पर एक साथ कई काव्य आंदोलनों के लेबल लगे हुए हैं। विचार कविता में जिन सैंतीस कवियों को सम्मिलित किया गया है, वहाँ लेबल को लेकर कवि (लेखक) की ईमानदारी तथा कमिटमेंट को आधार रूप में स्वीकार कर इस श्रेणी के सभी कवियों पर तीक्ष्ण प्रहार भी किया गया है। स्पष्टीकरण हेतु चंद्रकांत देवताले तथा राजीव सक्सेना के नामों का उल्लेख किया गया है। देवताले तथा सक्सेना अकविता काव्य आंदोलनों के वफादार एवं परिचित कवि स्वीकार किए जाते हैं। साथ ही परवर्ती तथा कथित आंदोलनों के प्रति इनकी ईमानदारी का प्रश्न स्वाभाविक है।

14.5 कठिन शब्द

1. अनुभूति 2. चिरंतनता 3. स्वाभाविक 4. बिंब 5. बिंबमूलक 6. प्रहार 7. कृत्तिमता 8. विश्लेषण 9. प्रतिक्रिया 10. तीक्ष्ण

14.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 विचार कविता किसे कहते हैं? स्पष्ट करते हुए इसकी प्रवृतियों पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न 2 विचार कविता के प्रमुख कवि कौन–कौन से हैं?

_____

_____

_____

_____

14.7 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेन्द्र
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामसजन पाण्डे
4. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ – नामवर सिंह
5. आधुनिक हिन्दी साहित्य – विकास के विविध आयाम – पुष्पपाल सिंह
6. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका – लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
7. हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी – नंद दुलारे बाजपेयी
8. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. बच्चन सिंह

_____

हिन्दी निबन्ध : उद्‌भव और विकास

15.0 रूपरेखा

15.1 उद्देश्य

15.2 प्रस्तावना

15.3 हिन्दी निबन्ध : विधा और विकास

15.4 निबन्ध और उसके पर्याय

15.5 निबन्ध परिभाषा

15.6 निबन्ध तत्व

15.7 निबन्ध के प्रकार

15.8 हिन्दी निबन्ध का विकास

15.9 सारांश

15.10 कठिन शब्द

15.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.12 पठनीय पुस्तके।

15.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्यायनोपरांत आप –

– गद्य की विभिन्न विधाओं के बारे में जानेगें।

– गद्य की विधा निबन्ध की परिभाषा उसके पर्याय एवं इस विद्या का विकास कैसे हुआ समझेगें।

– निबन्ध के वर्गीकरण से परिचित होगें।

15.2 प्रस्तावना

साहित्य मानवीय चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम है । अनुभूति का सम्बन्ध जहाँ मानव के हृदय की संवेदनशीलता से है वही चिन्तन उनके जीवन–परिवेश में उठने वाली उसकी स्थिति बोध से उत्पन्न जिज्ञासाओं का बौद्धिक समाधान है । मानवीय चेतना के इस समन्वयात्मक रूप ने उसके जीवन–विकास के विविध चरणों में क्रमशः विचारों को पारस्परिक आदान–प्रदान द्वारा सामाजिक बन्धनों में दृढ़ता प्रदान की होगी । इसी अनुभूतियुक्त चिन्तन ने अपनी सामाजिक प्रस्तुति के निमित्त जो अभिव्यक्ति का माध्यम चुना वही साहित्यिक शैलीगत भेदों के उत्स का कारण बना । रामचन्द्र तिवारी जी की मान्यता है कि 'हृदय की सम्वेदनशील वृत्तियाँ विशिष्ट छन्द, स्वर, लय, गति प्रवाह तथा ध्वनि के आधार पर मूर्त होकर पद रचना में सौष्ठव ला देती हैं । शब्दों में पाद सौन्दर्य आ जाता है। वे कोमलता, मधुरता, सरलता और कभी परुषता में बँधकर थिरक उठते हैं । सम्वेदनात्मक वृत्तियों की यह अभिव्यक्ति–शैली सामान्यतः पद्य कही गई है । दूसरी और चिन्तन, जटिल समस्याओं के बौद्धिक समाधान, तर्को की शृंखला, विचारों के क्रम, नियमों की मर्यादा तथा सूक्ष्मताओं की सीमाओं में बँधकर मूर्त होता है । शब्द रूपों में संयम आ जाता है । वाक्य–रचना में अर्थ–तत्त्वों की स्थिति बोध के लिए सम्बन्ध–तत्वों की परम्परा–विहित प्रणाली का अनुसरण किया जाता है । चिन्तन की छन्द युक्त इस अभिव्यक्ति शैली को सामान्यतः गद्य कहा गया है ।

यद्यपि हिन्दी गद्य आज साहित्य की एक सशक्त–प्रौढ़ विद्या है । निबन्ध, आलोचना, उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी आदि के साथ–साथ रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, यात्रा, डायरी, साक्षात्कार, एकभाषा गद्यगीत प्रभूति बहुविध रूपों में भावक–समाज के प्रभावित करते हुए नित् नूतन रूपों में ढलकर विषय के पथ पर अग्रसर है । विकासोन्मुखी इस साहित्यिक शैली का हिन्दी के साहित्येतिहास के प्रथम चरणों में वह रूप नहीं मिलता जो आधुनिक काल के समय में हुआ ।

परम्परा से जब हिन्दी उत्स के आधार स्त्रोत पर विचार करते हैं तो संस्कृत–साहित्यशास्त्र में 'छन्द' को आधार मानते हुए पद्य और गद्य साहित्य के दो भेद किए गए हैं । आचार्य भामह, दण्डी, वामन से लेकर विश्वनाथ तक सभी ने छन्द मुक्त रचना को गद्य के अन्तर्गत मानते हुए उसके आख्यायिका, वृत, कथा आदि प्रभेदों का उल्लेख किया है । आचार्य विश्वनाथ ने छन्द–बद्धता रहित शब्दार्थ योजना को गद्य मानते हुए सूत्र रूप में कहा 'वृत्तगन्धोज्झित' । साथ ही मुक्तक, वृत्त गन्थि, उत्कलिदा प्राय और पूर्णक इसके भेदो की मानवायीय आचार्य वामन ने गद्य की विशेषताओं को दुर्त्रेय तथा उसकी रचना को कठिन बताते हुए 'गद्यं कविता निकषं वदन्ति' इसे कवियों की कसौटी के रूप

में मान्यता दी । वस्तुतः गद्य जीवन के वैचारिक प्रधान बौद्धिक चिन्तन की अभिव्यक्ति का माध्यम है । यह ऐसा माध्यम है जिसका प्रयोग जाने–अनजाने प्रायः सभी सामाजिक करते हैं । इसी दृष्टि से ब्रजेश्वर वर्मा जी ने कहा है कि 'जिस शब्दार्थ युक्त भाषा का साधारण बातचीत में प्रयोग किया जाता है, वही गद्य है । संस्कृत साहित्य शास्त्र की परम्परा मे आचार्य भामह ने भी प्रकृत और अनाकुल शब्दार्थ को प्रेषित करने वाली शैली को 'गद्य' कहा था । पद्य का सम्बन्ध रागात्मक कल्पना से अधिक रहता है जबकि 'गद्य' मूलतः विचार तर्क का चिन्तन प्रधान होता है ।

प्रयुक्ति की दृष्टि से 'गद्य' दो सामाजिकों के बीच साधारण वार्तालाप से लेकर बड़ी बड़ी गोष्ठियों के कलापूर्ण भाषणों तक व्यावहारिक रूप से प्रयुक्त होता है । लिखित रूप में पारस्परिक पत्र व्यवहार से लेकर शास्त्र और विज्ञान के विभिन्न ज्ञानानुशासनों के विवेचनात्मक, विश्लेषण पूर्ण अनुसंधान प्रबन्धों (थीसिसों) तक में इसकी प्रयुक्ति होती है । इस प्रकार लिखित रूप में इसके बहुपक्षीय रूप आज के सामाजिकों द्वारा व्यवहृत होते है । साहित्यिक विधा के रूप में लेख, निबन्ध, प्रबन्ध के साथ–साथ आधुनिक हिन्दी साहित्य मे कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, वो प्रमुख रूप हैं जिसके रूप में 'गद्य' विधा का विराम माना जाता है । साहित्यिक विधाओं की दृष्टि से कहानी, उपन्यास, नाटक एकांकी की गणना उपयोगी ललित साहित्य के अंतर्गत की जाती है जबकि लेख, निबंध, आलोचना में साहित्यिक गद्य का रूप दिखाई देता है ।

15.3 हिन्दी निबन्ध : विधा और विकास

हिन्दी गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं में 'निबन्ध; आधुनिक युगीन हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। यद्यपि 'निबन्ध' शब्द नया नहीं है– परम्परा से संस्कृत का तत्सम शब्द नि+बन्ध (बांधना) + धञ् (संग्रह) या नि+बन्ध (बांधना) अच् रूप में व्युत्पन्न है, जिसका प्रयोग याज्ञवल्क्य स्मृति में – 'निबन्धों द्रव्यमेव' के रूप में हुआ है । यहां का सन्दर्भ इस शब्द का प्रयोग बन्धन के अर्थ में है। श्री मद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय के पाँचवे श्लोक में भी यह शब्द बांधने के सन्दर्भ में ही प्रयुक्त हुआ है । इससे स्पष्ट होता है कि संस्कृत में इस शब्द का प्रयोग लिखे हुए भोजपत्रों को संवारकर बांधनें की प्रक्रिया के लिए होता था । इस शब्द के साथ ही प्रबन्ध – प्र+बन्ध+ अच्– का प्रयोग ग्रन्थ रचना के सन्दर्भ में होता था । आगे चल कर ये दोनों ही शब्द अपनी प्रयुक्ति यात्रा में अर्थ परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरते हुए आज नये अर्थों में प्रयुक्त होते हैं । प्रबन्ध से अभिप्राय आज के सन्दर्भ में ऐसी गद्य रचना से है जिसमें लेखक किसी विषय विशेष का सांगोपांग विस्तार के साथ अपनी भाषा शैली में विवेचन करता है । इस रूप में यह शोध प्रबन्ध का समानार्थी माना जाता है । जबकि निबन्ध एक ऐसी गद्य विधा के लिए प्रयुक्त होता है जिसमें गद्य का निजी रूप दृष्टिगोचर होता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी की मान्यता है कि 'साहित्य की अन्यविधाओं में तो गद्य की भाषा एक माध्यम मात्र है, लेकिन निबन्ध में तो वह अपनी पूर्ण शक्ति एवं सजधज के साथ व्यक्त होती है ।'

15.4 निबन्ध और उसके पर्याय

निबन्ध के पर्याय के रूप में लेखक, सन्दर्भ, रचना या प्रस्ताव संज्ञा का प्रयोग भी प्रायः होता

है । पर ये दोनों ही शब्द निबन्ध के मूल सन्दर्भ से अलग हैं । 'लेख' यूं तो समस्त लिखित सामग्री के लिए व्यवहार में आता है पर विशिष्ट सन्दर्भ में यह उस गद्य रचना के लिए प्रयुक्त होता है जिसमें लेखक प्रमुख तथा निर्वैयक्तिक ढंग से किसी विषय पर शास्त्रीय ढंग से प्रकाश डालता है । इसे अंग्रेजी में आर्टीकल (Artical) कह सकते हैं । 'सन्दर्भ' किसी रचना विशेष के दुरूहस्थलों के अर्थ से सम्बन्धित है । रचना का मूल अर्थ कृति से है । प्रस्ताव में किसी विषय विशेष से सम्बन्धित प्रस्ताव पर विचार किया जाता है । जबकि निबन्ध आधुनिक युग में अंग्रेजी एस्से (Essay) का पर्याय है । यह निबन्ध विधागत रूप में ऐसा साहित्यिक माध्यम बन चुका है जिसमें गद्य की विविध शैलियों के निखार और विकास की सम्भावनाएँ विचारकों को दिखाई देती हैं इसी कारण 'निबन्ध को गद्य की कसौटी' कहा जाता है । हिन्दी साहित्य कोश (भाग 1) में कहा गया है 'निबन्ध लेखक एक ऐसे पथ का अनुसरण करता है, जो किसी का जाना–समझा नहीं है । उसे अपनी भाषा की शक्ति से ही प्रमाणित करना पड़ता है कि यह अनजाना पथ उसके लिए सर्वथा परिचित और अपना हो' इसी दृष्टि से जय नाथ 'नलिन' जी ने निबन्ध को व्यक्ति की मानसिक चेतना और भावात्मक अनुभूति का लिखित रूप है और जन विकास का यथार्थ पत्रक'' मानते हुए स्पष्ट किया कि 'निबन्ध किसी देश की जनसत्तात्मक विचार स्वातन्त्रय और उदार सामाजिकता का लेखन है ।' इससे स्पष्ट होता है कि निबंध को गद्य के विकास का मापदंड माना जाता है ।

15.5 निबन्ध परिभाषा : हिन्दी के आधुनिक काल में विकसित इस गद्य विधा पर पाश्चात्य साहित्य परम्परा विशेष कर अंग्रेजी का प्रभाव सर्वाधिक है । अंग्रेज़ी के एस्से (Essay) शब्द की व्युत्पति फ्रांसीसी शब्द 'एसाई' से मानी जाती है जिसका अर्थ 'प्रयत्न' है । इस रूप में फ्रांसीसी लेखक मौण्टेन महोदय ने निबन्ध को आत्माभिव्यक्ति का प्रयत्न कहा है । अंग्रेज़ी साहित्य में इस विधा के सूत्रधार में लार्ड बेकन ने इसे बिखराव युक्त चिन्तन मानते हुए dispersed meditations कहा । जानसन महोदय ने a loose sally of the mind माना है जबकि अलेक्जेडर स्मिथ इसे गीतिकाव्य के निकट मानते रहे । पाश्चात्य ये सभी समीक्षक अपने–अपने भावानुरूप निबन्ध की विशेषताओं के आधार पर पारिभाषित करते रहे । विलियम हेंजलिट और चार्ल्स लैम्ब महोदय ने इस विधा में आत्माभिव्यक्ति को महत्त्व दिया। उन्नीसवीं शती में आकर आक्सफोर्ड डिक्शनरी में 'किसी विशिष्ट विषय पर एक सीमित दायरे में लिखे गए गद्य–विधान' को निबन्ध कहा गया । इसके पश्चात् परवर्ती काल के निबन्धकारों ने जिस शब्द विभिन्न विषयों के सन्दर्भ को इस विधा में प्रस्तुत किया उससे तो यही स्पष्ट होता है कि इस विधा के सम्बन्ध में जो वैयक्तिक भावाभिव्यक्ति की बात हडसन महोदय ने कही थी वही सत्य रही ।

पाश्चात्य विद्वानों की भांति आधुनिक हिन्दी समीक्षकों ने भी 'निबन्ध' विधा की विशेषताओं को दृष्टि मे रखते हुए इसकी परिभाषा देकर अन्य गद्य विधाओं से इसके विलगाव का स्वरूप स्पष्ट किया है। बाबू गुलाब राय की मान्यता है कि 'निबंध उस गद्य रचना को कहते हैं, जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीवन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो।' जय नाथ 'नलिन' जी की मान्यता है कि 'निबन्ध स्वाधीन चिन्तन और निश्छल अनुभूतियों का सरल, सजीव और मर्यादित गद्यात्मक प्रकरण है।

भगीरथ मिश्र जी ने निबंध की सटीक व्यंजना करते हुए स्पष्ट किया है कि 'निबन्ध वह गद्य रचना है, जिसमें लेखक किसी भी विषय पर स्वच्छन्दता पूर्वक परन्तु एक विशेष सौष्ठव, संहिति, सजीवता और वैयक्तिकता के साथ अपने भावों, विचारों और अनुभवों को व्यक्त करता है।' उपर्युक्त सभी मतों का समाहार करते रामचन्द्र तिवारी जी ने निबन्ध में लेखक की रूचि एवं मनः प्रवृत्ति के अनुसार आत्यव्यंजना को मूलभूत विशेषता माना है। उनकी मान्यता है कि 'निबंध में विषय के स्थान पर लेखक का व्यक्तित्व ही पाठक के मन' को प्रभावित करता है ।

15.6 निबन्धः तत्व : निबन्ध के मूलरूप से विद्वानों ने कहीं तो प्रस्तावना, विवेचन और समाप्ति या उत्थान, विकास और परिणाम तत्त्व माने हैं । यह विचार श्री ब्रह्मदत्त शर्मा जी के हैं । दशरथ ओझा जी ने गद्य रचना, लेखक के व्यक्तित्व का आभास, रोचकता को अनिवार्य माना है । कुछ विद्वान भावों के पुट के साथ औपचारिकता के अभाव को निबन्ध के तत्त्वों के रूप में मान्यता देते हैं । सभी विद्वानों के विचारों को समन्वित करने पर यह स्पष्ट होता है कि निबन्ध में वैयक्तिकता, वैचारिकता, स्वच्छन्दता, कलात्मक शैली तथा स्वतः पूर्ण आकार का होना आवश्यक है ।

वैयक्तिकता से अभिप्राय लेखक के व्यक्तित्व अथवा निजीपन की छाप से है । साहित्य के अन्य रूपों की अपेक्षा निबन्ध में लेखक का व्यक्तित्व अधिक समाया रहता है। इस व्यक्तित्व का निर्माण लेखक के अध्ययन, मनन व चिन्तन द्वारा होता है जिसका प्रभाव समग्रतः निबन्ध में दिखाई देता है ।

निबन्ध में जो विचार होते हैं वे कोई विचार न होकर हृदय और बुद्धि के योग से समन्वित विचार होते हैं । इन्हीं से लेखक की वैचारिकता स्पष्ट होती है । वैचारिकता के साथ–साथ स्वच्छन्दता भी निबन्ध का एक विशेष पक्ष है । लेखक के स्वकीय भाव प्रवणता से निबन्ध की महत्ता बढ़ती है । इससे विचारों में प्रौढ़ता, स्वच्छन्दता और परिपुष्टता आती है । विजय वेदालंकार जी की मान्यता है कि 'निबन्ध लिखने वाले की स्वच्छन्दता उसकी अपनी शक्ति है । विषय चाहे जो हो, निबंधकार विचारों को व्यक्त करने में स्वतन्त्र है ।'

निबन्ध को गद्य की कसौटी के रूप में मान्यता दी जाती है । गद्य का व्यवहार तो कोई भी कर सकता है पर निबन्ध लेखन परिष्कार और परिमार्जन का कार्य है । इस विधा पर वही लेखनी चला सकता है जो इसकी कलात्मक शैली में अपने विचारों को भावक समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर सकता हो । निबन्धकार सरल और सजीव शैली द्वारा अपनी भाव प्रस्तुति को प्रभावोत्पादक व रोचक बना बोधगम्य कराने में समर्थ होता है । निबन्ध –कथ्य की सम्प्रेषणीयता शैली की कलात्मकता–जिसमें विचारानुकूल भाषा की प्रयुक्ति प्रमुख होती है –से ही सम्भव है ।

निबन्ध का अपने आप में पूर्ण होना भी आवश्यक है, उसका आकार छोटा या बड़ा हो सकता है । निबन्ध का विषय–क्षेत्र सीमित होता है इस कारण उसे एक बद्ध व सुगठित रूप में अपने आप में पूर्ण होना आवश्यक है ।

उपयुर्क्त तत्त्वों का सुसंगठित रूप ही निबन्ध की विशेषता शक्ति को सही रूप में विषय–प्रस्तुति में सहायक बनाता है ।

15.7 निबन्ध के प्रकार

निबन्ध एक ऐसी गद्य विधा है जिसका प्रकार में वर्गीकरण करना सहज नहीं । प्रत्येक समीक्षक का इस दृष्टि में अपना–अपना निजी दृष्टिकोण है । कुछ विद्वानों ने वैयक्तिक, निर्वैयक्तिक भेद किए हैं तो कुछ विद्वान आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ रूप में निबन्धों को बाँटते हैं । विषय वैविध्य के आधार पर बाबू गुलाब राय का वर्गीकरण निबन्ध के सभी प्रकारों का समाहार करने में समर्थ है । उनके अनुसार निबन्ध वर्णनात्मक, विवरणात्मक, विचारात्मक तथा भावात्मक चार प्रकार के हो सकते हैं ।

किसी प्राकृतिक वस्तु, स्थान, क्षेत्र या किसी मनोहर आह्लादकारी दृश्य की प्रस्तुति वर्णनात्मक निबन्ध के रूप में की जा सकती है । इस कोटि के निबन्धों में निबन्धकार के नेत्रों की परख अधिक प्रभावी होती है । मस्तिष्क व तर्क के स्थान पर कल्पना का अवलंब इस प्रकार के निबन्धों में अधिक होता है । ऐसे निबन्धों में भाषा का सहज प्रवाह और वर्णन पक्ष सूचनापरक होते हुए भी पाठक को अखरता नहीं । इस प्रकार के निबन्धों में कल्पना की सज्जा निबन्धकार की कला को निखारने में सहायक होती है ।

विवरणात्मक निबन्ध में गतिशील वस्तुओं, काल और परिस्थितियों का वर्णन होता है। संस्मरणों पर आधारित ऐसे निबन्धों में शिकार, पर्वतारोहण, दुर्गम यात्राएं आदि के छुपे पक्षों की खोज का विवरण अधिक होता है । विवरणात्मक निबन्धों को कथात्मक, घटनात्मक, जीवनचरित्रात्मक उपभागों में विभाजित किया जा सकता है । विवरणात्मक निबन्धो में कौतूहल, कल्पना और अनुभूति का योग अधिक गहराई से दिखाई देता है ।

विचारात्मक निबन्धों में बौद्धिक विवेचन की प्रधानता रहती है । इनमें हृदय पक्ष की अपेक्षा मस्तिष्क तत्त्व अधिक प्रभावी होता है । इसी कारण इस प्रकार के निबन्धों में दार्शनिक आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक विषयों की विवेचना होती है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी की मान्यता है कि 'शुद्ध विचारात्मक निबन्धों का चरम उत्कर्ष वही कहा जा सकता है जहाँ एक–एक अनुच्छेद में विचार दबा–दबाकर ठूंसे गये हों और एक एक वाक्य किसी सम्बद्ध विचार खण्ड के लिए हो ।' इस प्रकार के निबन्धों को ही आलोचनात्मक, गवेषणात्मक, विवेचनात्मक आदि उपभागों में विभाजित किया जा सकता है । समास प्रधान शैली में लिखित विचारात्मक निबन्धों में विचारों की एक ऐसी सुसम्बद्ध शृंखला होती है कि उनमें से एक वाक्य तो क्या एक शब्द भी आगे पीछे नहीं किया जा सकता ।

भावात्मक निबन्धों में बुद्धि तत्त्व की अपेक्षा भाव तत्व की प्रधानता होती है । इनमें हृदय पक्ष अधिक प्रभावी होता है । इस प्रकार के निबन्धों में रागात्मकता की प्रधानता होने के कारण धारा, तरंग और विक्षेप शैली का प्रयोग होता है । बाबू गुलाब राय का कहना है 'धारा शैली में भावों की धारा प्रवाहमय रहकर प्रायः एक गति से चलती है किंतु तरंग शैली में वे भाव लहराते हुए प्रतीत होते हैं – तरंग की भाँति उठते और गिरते प्रतीत होते हैं। विक्षेप शैली में वह कुछ उखड़ी उखड़ी रहती है उसमें तारतम्य और नियन्त्रण का अभाव रहता है ।'

भावात्मक निबन्धों की सबसे बड़ी पहचान लेखक के भाव के साथ पाठकीय संवेदना का

एकात्म हो जाना होती है । इस प्रकार के निबन्धों में रस और भावों की व्यंजना प्रधान रूप से परिलक्षित होती है ।

उपर्युक्त प्रकारों के अतिरिक्त विषयनिष्ठ, विषयीनिष्ठ, हास्य व्यंग्य प्रधान, ललित आदि और भी निबन्ध प्रकारों का उल्लेख विद्वानों ने किया है पर ये सभी विषयवस्तु व प्रस्तुति पक्ष की दृष्टि से इन चारों भेदों में ही आ जाते हैं ।

15.8 हिन्दी निबन्ध का विकास

हिन्दी साहित्येतिहास के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि गद्य विधाओं का विकास आधुनिक युग से ही हुआ । इस दृष्टि से निबन्ध भी गद्य की एक आधुनिक विधा है । इसकी विधा की परम्परा भी हिन्दी साहित्येतिहास के आधुनिक युग के उन्मेष से होता है। भारतेन्दु हरीशचन्द्र के कृतित्व में सर्वप्रथम इस विधा के सूत्र मिलते हैं यद्यपि लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय जी की मान्यता है कि 'निबन्ध नाम से पुकारी जाने वाली अनेक रचनाएं निबन्ध नहीं, लेख हैं और इसी दृष्टि से उन्होंने पं. बाल कृष्ण भट्ट जी को हिन्दी का पहला निबन्धकार स्वीकार किया है । भारतेन्दु युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन', जगमोहन सिंह, अम्बिकादत व्यास, राधाचरण गोस्वामी आदि लेखकों की रचनाओं को वार्ष्णेय जी लेख रूप में मान्यता देते हैं । इनसे अलग श्री रामनाथ गौड़ व शिवनाथ जी ने श्री सदासुख लाल जी के निबन्ध विधा का प्रारम्भ माना है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने भी निबन्धों का उत्स भारतेन्दु युग से ही माना है ।

भारतेन्दु युग (सन् 1857–1900 ई) में अंग्रेज़ी साहित्य के सम्पर्क से भारतीय जीवन में पत्र–पत्रिकाओं के प्रचार तथा साहित्यिक जगत् का जन–सामान्य से सहयोग के रूप में एक नवीन चेतना के साथ नये रूप में प्रस्तुत हुआ । इस युग धारा में गद्य के विकास से एक नवीन विधान के रूप में पाठक का परिचय निबन्ध विधा से हुआ । इस युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, श्री प्रताप नारायण मिश्र, श्री बालकृष्ण भट्ट, श्री बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', लाला श्री निवास दास, श्रीराधा चरण गोस्वामी, श्री मोहन लाल विष्णु लाल पंडया, श्री काशी नाथ खत्री, श्री चन्द्र भूषण, ठाकुर जगमोहन सिंह, श्री ज्वाला प्रसाद, तथा श्री अम्बिकादत व्यास आदि के निबन्ध मिलते हैं ।

भारतेन्दु युग के निबंधकारों ने समाजसुधार, राजनीति, धर्म, आर्थिक स्थिति, आध्यात्म, अतीत का गौरव, महापुरुषों का जीवन चरित्र आदि विषयों पर विचार करते हुए निबंध – साहित्य का सृजन किया । इस युग के निबन्ध प्रायः सामाजिक समस्याओं के साथ–साथ इतिहास तथा मनोवैज्ञानिक भावों पर विचार व्यक्त किए । भारतेन्दु युगीन निबंधकारों में श्री बालकृष्ण भट्ट का स्थान सर्वप्रथम है । उन्होंने सजीव भाषा में शिष्ट–हृदय और कल्पना के सुन्दर समन्वय के साथ जीवनोपयोगी शिक्षा द्वारा सामयिकता को पाठक वर्ग के सम्मुख प्रस्तुत किया ।

इस युग विशेष के निबन्धों में गद्य–विकास की प्रारम्भिक स्थिति होने के कारण वर्णनात्मकता का विशेष आग्रह रहा । श्री राधा चरण गोस्वामी ने सामाजिक विषयों पर अधिक लेखनी चलाई जबकि श्री काशीनाथ खत्री ने प्रायः नैतिक एवं सामाजिक विषयों पर अधिक ध्यान दिया । भारतेन्दु युगीन

निबन्ध साहित्य के सन्दर्भ में श्री राम विलास शर्मा जी का मत बड़ा सटीक है 'जितनी सफलता भारतेन्दु युग के लेखकों को निबन्ध–रचना में मिली उतनी कविता और नाटक में नहीं मिली ।'

हिन्दी सहित्येतिहास में भारतेन्दु युग के बाद आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादन पद पर आसीन होते ही एक नये युग का सूत्रपात होता है। बाबू श्याम सुन्दर दास जी ने द्विवेदी जी को 'हिन्दी का सबसे बड़ा उन्नायक' माना है और इसी दृष्टि से हिन्दी साहित्येतिहासकारों ने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को 'युग गुरु' मानते हुए सन् 1900 से 1920 ई. तक के काल खंड को 'द्विवेदी युग' के नाम से सम्बोधित किया । इस युग में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के साथ–साथ गोविन्द नारायण मिश्र, श्री बालमुकुन्द गुप्त, श्री माधव प्रसाद मिश्र, श्री श्याम बिहारी तथा श्री शुकदेव बिहारी (मिश्रबन्धु) मिश्र, गोपालराम गहमरी, सरदार पूर्ण सिंह, श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, बाबू श्याम सुन्दर दास, श्री जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, श्री रामचन्द्र शुक्ल, श्री पद्मसिंह शर्मा, पं. कृष्ण बिहारी मिश्र, बाबू गुलाब राय, पं. गंगा प्रसाद अग्निहोत्री, श्री माधव राव सप्रे, श्री सत्यदेव, श्री काशी प्रसाद, डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, श्री गणेश शंकर विद्यार्थी, श्री लालता प्रसाद शर्मा, श्री बदरीनाथ भट्ट, श्री हनुमानदास पौद्दार, श्री ब्रजरत्न दास, श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय, श्री पदुमलाल पुन्नालाल, श्री मन्नन द्विवेदी, श्री माखनलाल चतुर्वेदी प्रभृति विद्वानों के नाम उल्लेखनीय है ।

भारतेन्दु युग के पश्चात् द्विवेदी युगीन निबन्धों में प्रायः उन सभी भावनाओं, विचारों एवं शैलियों का विकास हुआ जिसका उदय भारतेन्दु काल में हुआ था । द्विवेदी युगीन निबन्ध साहित्य में साहित्य व भाषा, वैज्ञानिक आविष्कार, पुरातत्त्व एवं इतिहास, भूगोल, जीवन–चरित, आध्यापन तथा अन्य जीवनोपयोगी विषयों पर लेखकों ने अधिक विचार किया । द्विवेदी युगीन निबन्ध–लेखकों ने लेखन–शैलियों में भी पर्याप्त विस्तार किया । वर्णनात्मक, विवरणात्मक, भाषात्मक तथा विचारात्मक इन सभी रूपों में निबन्ध रचना हुई। यह ठीक है कि ये सभी रूप अभी अपनी शैशवावस्था में थे पर यही रूप परवर्ती काल में व्यवस्थित एवं प्रौढ़ रूप में विकसित हुए । हिन्दी साहित्येतिहास में द्विवेदी युग भाषा सम्बन्धी सुधारों के लिए विषेश रूप से उल्लेखनीय है । इस दृष्टि से निबन्ध विधा में भी शैलीगत प्रयोगों की स्वाभाविक परम्परा विद्यमान रही । इस युग के लेखकों ने व्यास और समास शैली का ही विशेष प्रयोग किया । वियोगी हरि जी ने इस युग के अपने निबन्धों के द्वारा शैली का प्रयोग किया।

द्विवेदी युगीन हिन्दी निबंधों में सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं के प्रति भी जागरूकता दिखाई देती है। रूप की दृष्टि से वर्णनात्मक निबंधों में यथातथ्य व कल्पना प्रधान वर्णन की प्रमुखता दिखाई देती है। विवरणात्मक निबन्धों मे कथात्मक, घटनात्मक तथा जीवन चरित्रात्मक कम दिखाई देते हैं। कथात्मक निबन्धों में आत्म, स्वप्न तथा रूपकात्मक कथा विवरण मिलते हैं । इस युग में पौराणिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक तथा धार्मिक सभी प्रकार के महापुरुषों के जीवन परिचयात्मक निबन्ध भी लिखे गए । भावात्मक निबंधों में भावुकता का आधिक्य मिलता है । इस युग में विशेष रूप से विचारात्मक निबंधों का विवेचनात्मक एवं आलोचनात्मक दोनों रूपो में विशेष विकास हुआ ।

द्विवेदी युगीन विचारात्मक निबन्धों में गम्भीर मनोभावों के विवेचन में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

जी का नाम तो सर्वविदित है । आपके निबन्धों में बौद्धिक विलक्षणता एवं सहृदयता दोनों का योग लक्षित होता है । आलोचनात्मक निबन्धों में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के साथ–साथ बाबू श्याम सुन्दर दास, डॉ. पीताम्बर दत्त, लाला भगवान दीन, मन्नन द्विवेदी आदि विद्वानों नें उल्लेखनीय योगदान दिया है । इस प्रकार इस युग के हिन्दी निबंन्ध साहित्य मे विषय चयन मे पर्याप्त विस्तार दिखाई देता है । विचार प्रधान निबंध इस युग की एक महती उपलब्धि है । द्विवेदी युगीन निबन्धकारों ने इस विधा को समृद्ध करने के लिए अन्य भाषाओं में लिखित गम्भीर विचारात्मक निबन्धों का अनुवाद भी हिन्दी में किया । अंग्रेजी बंगला और मराठी के श्रेष्ठ निबन्धों का अनुवाद हिन्दी में इस युग में विशेष रूप से हुआ ।

इससे स्पष्ट होता है कि इस युग में हिन्दी निबन्ध साहित्य का बहु विधि विकास हुआ । परवर्ती काल की निबन्धकीय विशिष्टता को इस युग ने सुदृढ़ पृष्ठभूमि प्रदान की। विषय निरूपण और अभिव्यंजना सौष्ठव दोनों ही दृष्टियों से इस युग में निबन्ध जिज्ञासा और निर्णय की प्रौढ़ता के परिचायक ही द्विवेदी युग के उत्तरार्द्ध से आचार्य रामचन्द्र गुप्ता, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरि औध, बाबू श्याम सुन्दर दास, बाबू गुलाब राय, वियोगी हरि, पदुम लाल पुन्नालाल आदि ने निबंध साहित्य परम्परा को अपने योगदान से जो पुष्टि प्रदान की वो किसी से छुपी नहीं है । बाबू बाल मुकुन्द गुप्त के 'शिव शम्भु का चिद्ठा' व्यंग्यात्मक निबंधों की अक्षय निधि है । प. पद्मसिंह शर्मा जी ने तुलनात्मक प्रणाली से परिचित करवाया। इस प्रकार इस युग के निबन्धों में विविधता, मौलिकता, गम्भीरता, अभिव्यक्ति की सहजता आदि गुणों का सहज वर्णन मिलता है ।

द्विवेदी युग के बाद हिन्दी साहित्येतिहास में सन् 1938 ई तक का काल 'छायावादी' या 'स्वच्छन्दतावादी' काल कहलाता है । हिन्दी निबन्ध साहित्य में इसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सर्वोपरि होने के कारण 'शुक्ल युग' के रूप में जाना जाता है । आचार्य शुक्ल जी के चिन्तामणि भाग–1 तथा 2, से संग्रहीन निबन्धों में उनकी प्रतिभा का जो रूप मिलता है उससे वे आज भी हिन्दी की इस विधा विशेष के शीर्षस्थ स्थान के अधिकारी बने हुए हैं। इस युग विशेष में पूर्ववर्ती द्विवेदी युगीन के उत्तरार्द्ध के निबन्धकारों ने परिपक्व रूप में हिन्दी निबन्ध साहित्य का अभिवादन तो किया है उनके साथ श्री चतुर सेन शास्त्री, श्री रामकृष्ण दास, डॉ रघुवीर, श्री जयशंकर प्रसाद, पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी, सुश्री महादेवी वर्मा, श्री शान्ति प्रिय द्विवेदी, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, पं. नन्द दुलारे वाजपेयी, डॉ धीरेन्द्र वर्मा, डॉ सम्पूर्णानन्द, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', श्री कामता प्रसाद गुप्त, श्री केदार नाथ भट्ट तथा श्री रमाशंकर शुक्ल आदि निबन्धकारों ने भी विशेष योगदान दिया ।

शुक्ल युग के हिन्दी निबन्ध साहित्य में आचार्य शुक्ल के निबन्ध केवल हिन्दी भाषा के ही नहीं अपितु समूचे भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि के रूप में मान्य है । छायावादी कवियों में से जिन्होंने भी (प्रसाद, महादेवी आदि) इस विधा में लेखनी चलाई उन्होंने भी विषय अनुभव भावों की अभिव्यक्ति का अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है । प्रसाद जी के 'काव्यकला तथा अन्य निबन्ध' संग्रह में उनकी सूक्ष्म सौन्दर्य चेतना की विशिष्टता दिखाई देती है । 'निराला' जी ने साहित्य और भाषा समस्या के साथ ही सामाजिक विषयों पर भी निबन्ध लिखे हैं । राहुल जी ने भाषा और साहित्य के सम्बन्ध में सुलझे हुए विचार व्यक्त किए हैं । इसी युग के प्रेमचन्द जी के निबन्ध भी कथा साहित्य

विधा सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट करते हैं । शिवराम शरण गुप्त जी निबंध कवित्व एवं विचार तत्व के समन्वित रूप को प्रस्तुत करते हैं । रामकृष्ण दास जी के निबन्ध भाषात्मक गद्य गीत के रूप मे प्रस्तुत हुए हैं । महादेवी वर्मा के संस्मणात्मक, समीक्षात्मक एवं ललित निबंधों का संकलन 'क्षणदा' भी इस कालखंड की एक उल्लेखनीय रचना है । आप की 'संकल्पिता' सांस्कृतिक एवं विचारात्मक निबंधों का संग्रह है । शान्ति प्रिय द्विवेदी छायावादी काव्य के समर्थ समीक्षक हैं । शिवपूजन सहाय ने व्यक्तिगत निबंध अधिक लिखे हैं । रामकृष्ण गुप्ता 'शिलीमुख समीक्षात्मक एवं सांस्कृतिक विषयों पर सबल रूप से लेखनी चलाते हैं । डॉ० बड़थ्वाल के निबन्ध चिन्तन प्रधान हैं । आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जी ने सांस्कृतिक विषयों पर निबन्ध लिखे हैं।

शुक्ल युग के निबन्धकारों नें अपने पूर्ववर्ती निबंधकारों की अपेक्षा अधिक गम्भीरता एवं सूक्ष्मता से इस विधा में भाव विचरण किया है । भाषा शैली एवं अभिव्यंजना की दृष्टि से इस युग का निबन्ध साहित्य पर्याप्त प्रौढ़ है । विचारात्मक निबन्धों का इस युग में पर्याप्त विकास हुआ ।

हिन्दी साहित्येतिहास में छायावाद/स्वच्छन्दतावाद के पश्चात् प्रगतिवादी 1943 ई तक, प्रयोगवादी काल 1953 ई तक तथा स्वतन्त्र लेखन काल जो कि अब तक चल रहा है – के रूप में मान्य हुआ। निबन्ध क्षेत्र में इस सारे आज तक के काल को शुक्ल काल के नाम से जाना जाता है।

हिन्दी शुक्लोत्तर निबंध साहित्य विधा में शुक्ल काल के लेखकों के साथ ही समय – समय पर नए लेखकों ने भी निबन्ध विधा में योगदान दिया है । इनमें श्री सद्गुरु शरण अवस्थी, श्री रामवृक्ष वेनी पुरी, श्री इला चन्द्र जोशी, श्री यशपाल, डॉ. वासुदेवशरण आग्रवाल, डॉ विनय मोहन शर्मा, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, श्री जतेन्द्र कुमार, डॉ. तजबली पाण्डेय, श्री रामधारी सिंह दिनकर, डॉ. इन्द्रनाथ मदान, डॉ. रमेश कुमार मेघ, डॉ पाण्डेय शशि भूषन, डॉ. नरेंद्र मोहन, डॉ संसार चन्द्र, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, श्री देवेन्द्र सन्यासी, श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. निर्मला जैन, डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, डॉ. नामवर सिंह, श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', डॉ. भागीरथ मिश्र, श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त, डॉ. धर्मवीर भारती, श्री कुबेरनाथ राय, डॉ. विद्या निवास मिश्र, श्री मोहन राकेश, डॉ. विवेकी राय, डॉ. मैनेजर पाण्डेय, डॉ. वियज पाल सिंह, डॉ. लाल चन्द्रगुप्त मंगल, डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', श्री हरि शंकर परसाई, श्री लाल शुक्ल, डॉ. रामविलास शर्मा, बेढ़ब बनारसी, भवानी प्रसाद मिश्र, रमेश चन्द्र शाह– प्रभृति विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं ।

शुक्लोत्तर निबंध साहित्य में समर्थ हस्ताक्षर आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी जी का नाम सर्वोपरि आता है । आचार्य जी ने संस्कृतिक आधारभूमि पर जीवन तथा साहित्य की प्रत्येक समस्या को रेखांकित किया है । आपके निबन्धों में प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का गम्भीर ज्ञान एवं आधुनिक युग की नवीन चेतना का जीवन बोध मिलता है। जैनेन्द्र कुमार आधुनिक चिन्तनशील निबन्धकार हैं। रामधारी सिंह 'दिनकर' विचारक निबंधकार हैं । डॉ. नगेन्द्र साहित्यिक एवं आलोचनात्मक निबंधों से हिन्दी निबंध साहित्य को समृद्ध किया है । अज्ञेय जी ने अपने निबधों में साहित्य सम्बन्धी मान्यताओं को रेखाकिंत किया है । डॉ. मदान ने साहित्य समीक्षा सम्बन्धी निबन्धों में आत्मीयता के साथ जीवन की विसंगतियों को भी प्रस्तुत किया है । डॉ. संसार चंद जी ने काव्य प्रधान निबन्धों से मानवीय विडम्बनाओं को समझाया है । ललित निबन्ध क्षेत्र में विद्या निवास मिश्र, कुबेर नाथ राय, कन्हैया लाल मिश्र, प्रभाकर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

15.9 सारांश

इस प्रकार हिन्दी निबन्ध साहित्य के संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि यह हिन्दी साहित्य की एक ऐसी सशक्त विधा है जिसमें अन्य विधाओं को एक सजग प्रहरी के रूप में विचार करते हुए सही दिशा दिखाने का प्रयास किया है। यह ठीक है कि आज यह विधा आलोचनात्मक अधिक हो गई है। साथ ही संस्मरण, रेखाचित्र, डायरी आदि गद्य की गौरव विधाओं के विकसित होने के कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल या आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी जी जैसे स्वतन्त्र विचार व चिंतन निबन्धकार कम ही दिखाई देते हैं पर फिर भी विजय शंकर मल्ल जी ने ठीक ही कहा है : 'आगे साहित्य में विषय वैविध्य ज्यों–ज्यों बढ़ता जाएगा दोनों प्रकार के – विषय निष्ठ और व्यक्ति निष्ठ जिन्हें परिबन्ध–निबन्ध और निर्बन्ध–निबन्ध कह सकते हैं– निबन्धों की आवश्यकता का अनुभव करने वाले पाठक और उन्हें लिखने वाले लेखक बढ़ते जाएँगे।' इस कथा की सत्यता तभी सार्थक है जब आज हर हिन्दी विद्यार्थी निबन्ध–लेख, प्रस्ताव, के भेद को सही तरीके से समझ कर 'निबन्ध' पढ़ने–लिखने के लिए प्रस्तुत हो।

15.10 कठिन शब्द

1. विषयनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ 2. सार्थकता. 3. संस्मरण 4. रेखाचित्र 5. प्रहरी

6. सूक्ष्म, 7.व्यवस्थित 8. आविष्कार 9. निबन्धकीय 10. सम्बोधन

15.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न. – निबन्ध की परिभाषा देते हुए इसके तत्वों पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न.– निबन्ध के वर्गीकरण पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न. – निबन्ध विधा का विकास कब और कैसे हुआ? स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

_____

15.12 पठनीय ग्रंथ

1.	नामवर सिंह	–	छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1990
2.	हजारी प्रसाद द्विवेदी	–	ग्रंथावली, भाग–3, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1981
3.	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	–	हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं. 2050
4.	रामस्वरूप चतुर्वेदी	–	हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1993
5.	डॉ. नगेन्द्र (सं.)	–	हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली 1982
6.	डॉ. जयकिशन प्रसाद	–	हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
7.	डॉ. नामवर सिंह	–	आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, राजकमल प्रकाशन – नई दिल्ली,

_____

हिन्दी उपन्यास – उद्‌भव और विकास

16.0 रूपरेखा

16.1 उद्देश्य

16.2 प्रस्तावना

16.3 हिन्दी उपन्यास : उद्‌भव और विकास

16.3.1 उपन्यास शब्द की व्युत्पति

16.3.2 उपन्यास – परिभाषा

16.3.3 उपन्यास – तत्व

16.3.4 उपन्यास – प्रकार

16.3.5 चरित्र – प्रधान

16.3.6 प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास

16.3.7 प्रेमचन्दोत्तर युग

16.4 सारांश

16.5 कठिन शब्द

16.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

16.7 पठनीय पुस्तकें

16.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप –

– उपन्यास विद्या के विकास के बारे में जानेंगे।

– उपन्यास के कौन – कौन से तत्व हैं? जानेंगे।

– उपन्यासों के वर्गीकरण को जानेंगे।

16.2 प्रस्तावना सुविकसित साहित्य–विधा के रूप में उपन्यास काव्य और नाटक की अपेक्षा नवीनतर साहित्यिक विधा है। नवीनतर होते हुए भी मानव–जीवन के परिवेश के प्रति यथार्थ दृष्टिकोण अभिव्यक्त करने वाली एक सशक्त विधा है। कहा भी गया है कि "जीवन की यथार्थ व्याख्या से समन्वित होने के कारण उपन्यास आधुनिक युग की सभी साहित्यिक विधाओं में से सर्वाधिक सशक्त एवं पुष्ट विधा है।"

16.3 हिन्दी उपन्यास : उद्‌भव और विकास

16.3.1 उपन्यास शब्द : उपन्यास शब्द 'उप' = समीप तथा न्यास Fiction = थाती, के योग से बना हुआ शब्द है। इस प्रकार व्युत्पति के आधार पर इसका अर्थ हुआ पास में, निकट में रखी हुई वस्तु। इससे स्पष्ट होता है कि यह एक ऐसी साहित्यिक विधा है जिसमें वस्तु कृति या रचना को देख/पढ़ कर जीवन का प्रतिबिम्ब झलकता दिखे। देवराज जी की मान्यता है कि "इसमें हमारी ही कथा हमारी ही भाषा में कही गई होती है।" यू तो यह शब्द 'उपन्यासस्तु वाङ्‌मुखम्' अमरदोष में मिलता है पर जिस सन्दर्भ में–साहित्यिक विधा विशेष के लिए आज यह प्रयुक्त होता है उसमें प्रकृति अंग्रेजी नावेल (Novel) से अधिक मिलती है। 'नावेल' शब्द का प्रयोग यथार्थवादी कथा साहित्य के लिए होता है। काल्पनिक कथा को फिक्शन (Fiction) कहा जाता है। मराठी में इस विधा को 'नवालिका' अथवा 'कादम्बरी' कहा जाता है। इस प्रकार 'जीवन की यथार्थ व्याख्या' के रूप में उपन्यास विधा को अधिक मान्यता मिली। यद्यपि हिन्दी साहित्येतिहास में विधागत रूप में इस विधा का प्रारम्भिक चरण रोमांस या काल्पनिकता प्रधान अधिक रहा। आगे चलकर उपन्यास में जीवन अपने वास्तविक रूप के निकट उपस्थित होने का प्रयत्न करते हुए अपने जिस रूप में आज हिन्दी जगत में विशिष्टता प्राप्त किए है उससे स्पष्ट होता है कि यह 'गद्य का महाकाव्य' है।

16.3.2 उपन्यास : परिभाषा–उपन्यास हिन्दी साहित्य में आधुनिक युग की उपज है। आधुनिक युग जिसका दृष्टिकोण व्यक्तिवादी अधिक है। इस दृष्टि से इसके स्वरूप के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने अपने विचार भी प्रस्तुत किए हैं। आधुनिक युग की परिस्थितियों के प्रतिफलन इस विधा में जो लचीलापन है उसके कारण इसके कई रूप आज साहित्य जगत् में प्रचलित हैं। आज समष्टि को दबा व्यक्ति ऊपर उठता नज़र आ रहा है उसे दृष्टि में रखते हुए इस विधा को **न्यू इंगलिश डिक्शनरी में–**बृहत् आकार गद्य आख्यान या वृतान्त, जिसके अन्तर्गत वास्तविक जीवन के प्रतिनिधित्व का दावा करने वाले पात्रों और कार्यों को कथानक में चित्रित किया जाता है–के रूप में व्याख्यायित किया गया है।

पाश्चात्य विद्वानों ने इसके सन्दर्भ में जहां **जेम्स स्काट** इसे "विभिन्न प्रवृत्तियों के उद्‌घाटन का माध्यम" मानते हैं वहीं **'कलाईल'** इसे 'यथार्थ का चित्र' मानते हैं। अब मानना है कि "इसमें अपने समय और उसकी गतिविधि का यथार्थ अंकन रहता हो **थामस हार्डी** ने वस्तु जगत को यथार्थ और कल्पना के माध्यम से प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने वाली रचना को उपन्यास कहा है।

हिन्दी विद्वानों ने भी उपन्यास के विविध प्रभावी पक्षों को दृष्टि में रखते हुए इसके विषय में अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। **बाबू श्याम सुन्दर दास जी** की मान्यता है कि "उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।" उपन्यास साहित्येतिहास के प्रकाश स्तंभ **उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द जी** ने माना है कि ""मैं उपन्यास को मानव–चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव–चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"" **बाबू गुलाब राय** जी का इस सम्बन्ध में कहना है कि ""उपन्यास कार्य–कारण श्रृंखला में बंधा हुआ वह गद्य कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव–जीवन के सत्य का रसात्मक रूप में उद्‌घाटन किया जाता है।"" **भगवती प्रसाद वाजपेयी** जी ने भी उपन्यास के विषय में कहा है, ""उपन्यास साहित्य भी वह अविकल अक्षुण्ण विधा है जो जीवन के अधिकाधिक निकट पहुँचकर उसमें नव–प्राण संचार ही नहीं करती, उसके सतत प्रबुद्ध और अक्षरणशील बनाती रहती है इसलिए जीवन का जैसा सम्पूर्ण उद्‌घाटन उपन्यास में सम्भव है, वैसा अन्यत्र नहीं।""

इन सभी परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास में मानव–जीवन का प्रतिनिधित्व ही अधिक प्रभावी होता है। इसमें मानवीय मनोवेगों का चित्रण गहरे से रहता है। उपन्यास मानव–जीवन के मानसिक संघर्ष का एक ऐसा चित्र है जिसमें यथार्थ, कल्पना के सहयोग से प्रस्तुत होता है पर इसकी कल्पना जीवन के सत्य को अभिव्यक्त करने का साधन होती है। उपन्यास में उपन्यासकार अपनी अभिव्यक्ति–गरिमा से मंडित कर इस प्रकार प्रस्तुत करता है जिससे सहृदय–सामाजिक जीवन भी वास्तविक वस्तु स्थिति को आंकने में समर्थ होता है।

उपन्यासः तत्व–बुद्धिनाथ झा जी की मान्यता है कि उपन्यास का आरंभ चाहे जिस दृष्टिकोण से हुआ हो, अब उसके जीवन का ऐसा निश्चित और लक्ष्य गर्भित रूप हो गया है कि उसको छोड़ देने से वह उपन्यास नहीं रह सकेगा। उपन्यास साहित्य का वह अंग है, जो एक ओर समाज की आभ्यंतरिक प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाल कर उनके व्यापार को सबके सन्मुख उपस्थित करता है और दूसरी ओर निम्न गामी प्रवृत्तियों का दुष्परिणाम दिखाकर कल्याण पथ पर आरूढ़ और अग्रसर होने के लिए लोगों में नई–नई प्रवृत्तियाँ पैदा करता है। ऐसे रूप के लिए उपन्यासकार घटनाओं, पात्रों, मनोवेगों आदि को एक निश्चित उद्देश्य के अनुसार उपस्थित कर सामान्य जीवन का दर्शन कराता है। इस कार्य की पूर्णता के लिए उपन्यास के कथा–साहित्यनुसार छः तत्व बताए गए हैं। – कथावस्तु, पात्र, संवाद, देशकाल, शैली और उद्देश्य। इनमें से वस्तु, चरित्र–चित्रण, शैली और उद्देश्य को प्रमुख माना जाता है। कुछ विद्वानों ने द्वन्द्व या संघर्ष तथा कौतूहल या द्वैधाभाव को भी उपन्यास का तत्व माना है पर ये दोनों रचना कौशल के अंग है। छः तत्वों में से देशकाल को भी प्रायः कथावस्तु का एक अंग माना जाता है। देशकाल कथावस्तु को स्वाभाविक एवं विश्वसनीय बनाता है। उद्देश्य वह परिणाम है जिसे कथावस्तु द्वारा प्राप्त किया जाता है और संवाद तथा शैली उसे प्राप्त करने के साधन बनाते हैं।

उपन्यास के कथानक का निर्माण उन घटनाओं और कार्यों से होता है जिन्हें व्यक्ति करते या झेलते हैं। यही व्यक्ति उपन्यास के पात्र होते हैं। इन पात्रों का पारस्परिक संताप,संवाद के रूप में जाने जाते हैं। उपन्यास का वातावरण औपन्यासिक कथा के स्थान और समय में घटित घटनाओं द्वारा निर्मित होता है और शैली वह विधान है जिसके माध्यम से लेखक अपनी कथा प्रस्तुत करता है। इसके साथ ही लेखक की समस्याओं के प्रति दृष्टिकोण उसकी जीवन–दृष्टि होती है। इसी दृष्टि को सामाजिकों तक पहुँचाना लेखक का उद्देश्य होता है।

सम्पूर्ण उपन्यास के कथ्य का आधार जिन उपकरणों पर आधारित होता है वह **कथावस्तु या कथानक** कहलाता है। यह कथावस्तु ""उपन्यासकार का वर्णनीय विषय है।"" इसमें कथा सूत्र (थीम), मुख्यकथानक (प्लाट), प्रासंगिक कथाएं एपीसोड, उपकथानक (अण्डर प्लाट), पत्र, समाचार, डायरी के पृष्ट (डाक्यूमेंटस) आदि उपकरणों की गणना की जाती है। जिनका यथास्थान प्रसंगानुकूल उपयोग लेखक द्वारा किया जाता है। कथा सूत्र (थीम) मुख्य कथा को कहा जाता है। आधुनिक युग में एक विशिष्ट स्थिति में कुछ लेखकों ने इसकी ओर विशेष ध्यान देना छोड़ दिया है जो विशेष स्थिति के रूप में माना जाता है। कथा के विकास में मुख्य कथा को पुष्ट करने के लिए **प्रासंगिक कथाएं** भी आती हैं, ऐसी कथाएं बीच में ही आती हैं और मुख्य धारा के प्रवाह को गति देते हुए बीच में ही लीन भी हो जाती हैं। कई उपन्यासों में मुख्यकथानक के साथ उसके सहायक उपकथानक का भी समावेश होता है। इसका कार्य मुख्य कथा के सूत्रों को स्पष्ट करना होता है। समाचार, पत्र या डायरी आदि का प्रयोग लेखक मुख्य कथा की सत्यता की प्रतीति के लिए करता है।

उपन्यास को मानव–चरित्र का चित्र माना जाता है इसलिए इसका कथानक मानव – जीवन की घटनाओं से सूत्रों को एकत्र करके ही लेखक द्वारा निर्मित होता है। इसमें विस्मयादि द्वारा उत्सुकता जगाने के लिए कल्पना का मिश्रण भी होता है। ""उपन्यासकार अपनी प्रतिभा उच्च से उच्च स्तर पर उठाकर अपने कथानक की रोचकता में भव्यता पैदा कर सकता है।"" देवराज जी का यह कथन औपन्यासिक कथावस्तु की वास्तविकता को स्पष्ट कर देता है।

औपन्यासिक कथावस्तु के विकास क्रम में घटनाओं की संगति होती है। संगति की स्वाभाविकता उपन्यास के कथ्य को स्पष्ट करने में सहायक होती है। पं. बुद्विनाथ जी के अनुसार ""जीवन के प्रकृतपथ का अनुसरण करते हुए, पात्रों का कार्य–क्रम कथानक को निर्दिष्ट परिणाम की ओर ले जाने में समर्थ होता है और उस प्रगति के पथ पर घटनाएं क्रमविहीन और असंभव सी नहीं मालूम है।" संबद्ध कथा की स्वाभाविकता जीवन के वास्तविक पक्ष को उजागर करती है जबकि असम्बद्व पक्ष में जुड़े भावों को मुख्यधारा के साथ जोड़ने के लिए लेखक कल्पना का सहारा लेता है। इन दोनों पक्षों का संयोजन लेखक की प्रतिभा पर आधारित होता है। उपन्यास के कथानक की सुसम्बद्धता तथा उसकी विश्वसनीयता के लिए मनोवैज्ञानिक क्षण, उत्कण्ठा, संघर्ष, भविष्य केत और चरमोत्कर्ष का होना आवश्यक है। प्रायः सफल उपन्यासकार इन सभी का यथासंभव प्रयोग अपने उपन्यास की सफलता के लिए करते हैं।

उपन्यास के **पात्रों** के क्रिया–कलाप से उसकी कथावस्तु का निर्माण होता है। इससे चरित्र–चित्रण की कुशलता को कथावस्तु के संघटन व विन्यास से भी अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। चरित्र–चित्रण का अर्थ प्राकृतिक राग–द्वेष और मनोवेगों के आधार पर उपन्यास के पात्रों का जीवन–व्यापार प्रदर्शित करना। इसी से पात्रों को सजीव और यथार्थ बनाने के लिए उपन्यासकार की कल्पनाशक्ति, मानव मन के सूक्ष्म अध्ययन कलात्मक योजना परखी जाती है। ब्रजेश्वर वर्मा जी की मान्यता है कि चरित्र–चित्रण के द्वारा ही कथानक में वे समस्त खूबियाँ लाई जा सकती हैं, जिनके आधार पर उपन्यासकार अपनी कृतियों में महान उद्देश्य की अवतरणा करके उसे स्थायी मूल्यों से समन्वित कर सकता है। चरित्र–चित्रण की सबसे बड़ी विशेषता पात्रों की सहज, सरल, स्वाभाविक पाठकीय संवेदना से जुड़ने में सहजता से होती है। ब्रजेश्वर जी ने स्पष्टतः स्वीकार किया है कि "मनुष्य प्रकृति के विभिन्न पक्षों और स्तरों के सूक्ष्म अध्ययन और कम–से–कम शब्दों में चित्र उपस्थित कर सकने की योग्यता ही सफल चरित्र–चित्रण की कसौटी है।" उपन्यास में वर्गगत प्रतिनिधि पात्र, व्यक्तित्व प्रधान पात्र, स्थिर पात्र, गत्यात्मक या परिवर्तनशील पात्रों की संयोजना लेखक द्वारा होती है। इन पात्रों का प्रत्यक्ष या परोक्ष विधि से चरित्र चित्रण किया जाता है।

चरित्र–चित्रण के अन्तर्गत ही पात्रों के संभाषण या संवाद आते हैं। मनुष्य का परिचय उसकी बातचीत में बड़ी सहजता से मिल जाता है। इसी दृष्टि से उपन्यास में संवाद या कथोपकथन पात्रों को सजीव बनाने तथा कथावस्तु के प्रवाह में नाटकीयता का समावेश एवं उसके प्रभाव को बढाने वाले सिद्ध होते हैं। उपन्यास में इन्हीं के माध्यम से लेखक अपने पात्रों के चरित्र का उद्‌घाटन करते हुए अपने कथ्य की विशिष्टता को स्पष्ट करते ही औपन्यासिक कथोपकथनों में देश–काल और पात्र के अनुकूल स्वाभाविकता मनोविज्ञान की उपयुक्तता और उपन्यास के प्रति पाठकीय रोचकता बढाने वाली सरसता आवश्यक है।

उपन्यास में पात्रों का चरित्र उनकी बातचीत से स्पष्ट होता है। इस स्पष्टता के लिए पात्र की परिस्थिति और वातावरण जिसमें वे अपने कार्य कर रहें हैं का होना भी आवश्यक है। यह आवश्यक माना जाता है कि कथानक की घटनाओं के घटित होने की सम्पूर्ण परिस्थिति उसका स्थान व समय भी पाठक वर्ग के सन्मुख साकार हो। इस कार्य के लिए उपन्यासकार के अपने कथा को **देशकाल तथा वातावरण** का भी पूरा ध्यान रखना पड़ता है। देशकाल तथा वातावरण व्यक्ति के निर्माण में प्रमुख सहायक होते हैं। इसके अन्तर्गत आचार विचार, रहन–सहन, रीति–रिवाज़ के साथ–साथ राजनीतिक व सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन आ जाता है। प्रकृति की भावानुकूल पृष्ठभूमि यथार्थता का आभास देने एवं भावों को उद्दीप्त करने तथा उपन्यास में रोचकता व रमणीयता लाने में सहायक होती है। देशकाल का वातावरण के लिए भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन का समग्र परिचय लेखक के लिए आवश्यक है। विशेषकर ऐतिहासिक उपन्यासों में तो इसको विशेष रूप से अधिमानता दी जाती है। आंचलिक और स्थानीय रंग वाले उपन्यासों में भी वातावरण का सजीव–चित्रण आवश्यक तत्व माना जाता है।

उपन्यास–रचना में पात्रों का विन्यास और घटनाओं का संयोग संघटित करने के लिए लेखक वर्णन–विधान की जिस भिन्न रूपता को स्वीकार करता है उसे उपन्यास की **शैली** कहा जाता है। शैली वास्तव में लेखक के व्यक्तित्व का परिचय देती है। उपन्यास की शैली सांकेतिक न होकर विश्वात्मक होती है, क्योंकि इसके माध्यम में उपन्यासकार वातावरण में रस की पूर्ण सृष्टि करता है। शैली के साथ–साथ **भाषा** का भी जुड़ाव होता है। विजय कदमकर के अनुसार ""साहित्य में भाषा–शैली का वही स्थान है जो मनुष्य में उसके स्वरूप, आकृति और वेशभूषा का है। भाषा–शैली चित्रण रसानुभूति के लिए बहुत सहायक है।"" शैली लेखक के व्यक्तित्व की छाप छोड़ती है। कोई तो व्याख्या पसन्द करता है तो अपने कथन को व्याख्यात्मक शैली में प्रस्तुत करता है। कोई अभिनयात्मक ढंग से बात कहने में कुशल होता है कहीं–कहीं तो अंगप्रत्यंग की समग्रता चित्रात्मक ढंग से प्रस्तुत की जाती है। आधुनिक युग में व्यंजना संकेत, प्रतीक और रूपक की शैलियों के प्रयोग भी साहित्य में दिखाई देते हैं। उपन्यासों में कहीं तो वर्णनात्मक शैली को प्रमुखता दी जाती है, इसमें लेखक तटस्थ रहकर जैसे देखता है वर्णन कर देता है। इसके साथ ही कहीं आलोचनात्मक शैली भी मिलती है, जिसमें लेखक एक विचारक के रूप में कथा प्रसंग में अपनी ओर से सिद्धान्त या विचार के रूप में कथा के बीच–बीच में पात्रों के माध्यम से अपने विचार प्रस्तुत करता है। चरित्र–चित्रण और कथानक विस्तार के लिए लेखक संभाषणात्मक शैली का प्रयोग भी अपनी रचना में करते हैं। पत्र या डायरी के रूप में भी सम्पूर्ण कथावस्तु की प्रस्तुति पत्र या डायरी शैली में की जाती है। कहीं–कहीं उपन्यास में कथा–नायक नायिका पूरी कथा 'मैं' के रूप में कहते हैं। इसे उत्तम पुरुषात्मक शैली कहा जाता है।

उपन्यास में जो कथा कही जाती है, उसका कोई न कोई परिणाम होता है। एक सामाजिक होने के कारण उपन्यासकार अपनी रचना के माध्यम से जो कुछ कहना चाहता है वही उसका उद्देश्य होता है। यह उद्देश्य ही लेखक का **जीवन–दर्शन** है जिसका वह पाठकों पर सफलतापूर्ण प्रभाव डाल सकने की प्रक्रिया से सारा कार्य करता है।

उपन्यास के उद्देश्य के रूप में उपन्यास की कथावस्तु और उसके पात्र तथा उसका चरित्र–चित्रण किया जाता है। पहले भले ही किस्सा कहानी या अफसाने के रूप में उपन्यास का उद्देश्य मनोरंजन से कला प्रदर्शन रहा हो पर आज मानव हृदय के भावों और अनुभूतियों की व्यंजना ही उपन्यास का उद्देश्य ठहराता है। पं. बुद्विनाथ झा जी की मान्यता है कि ""उपन्यास का उद्देश्य न केवल यथार्थ का नग्न चित्र उपस्थित करना है, न आदर्श की काल्पनिक कारीगरी दिखलाना है, बल्कि दोनों के मेल से एक ऐसा सुलभ, सुन्दर और सर्वप्रिय जीवन–पथ प्रस्तुत करना है जिस पर यथार्थ और आदर्श का मेल हो जाए।""

16.3.4 उपन्यासः प्रकार–मावन–जीवन का कल्पना समन्वित चित्रण करने के कारण उपन्यास का क्षेत्र आज व्यापक हो गया है। इसका स्वरूप सभी विषयों को अंगीकार करने में समर्थ है, इसी दृष्टि से उपन्यास के विभिन्न भेद और प्रकार आज साहित्य–मंजूषा में संकलित दिखाई देते हैं। उपन्यास के भेद–प्रकार उसकी कथावस्तु, रूप–विधान और उद्देश्य के आधार पर विद्वानों द्वारा किए गए हैं।

कथावस्तु के आधार पर उपन्यास ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, राजनीतिक, तिलस्मी, जासूसी आदि विभिन्न रूपों में विभाजित किए जाते हैं।

रूपविधान की दृष्टि से उपन्यास घटना प्रधान चरित्र प्रधान, रस प्रधान और नाटकीय चार प्रकार के होते हैं। उद्देश्य की दृष्टि से भी उपन्यास सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, देशकालपरक व नीतिपरक चार प्रकार के होते हैं। कुछ साहित्यमनीषियों ने घटना प्रधान, सामाजिक, अंतरंग जीवन के तथा देशकाल सापेक्ष व निरपेक्ष के रूप में उपन्यासों के भेद किए हैं। इसके साथ ही कुछ आलोचकों ने प्रकृति के आधार पर बहिर्मुखी, अन्तर्मुखी तथा समन्वित इन रूपों में उपन्यासों को बाँटा है। कुछ प्रसिद्ध प्रमुख प्रकारों का परिचय इस प्रकार हैः–

घटना प्रधान उपन्यासों में तिलस्मी, साहसिक, जासूसी, प्रेमाख्यानक, ऐतिहासिक व पौराणिक उपन्यासों की गणना होती है। **तिलस्मी** उपन्यासों में नायक–नायिका, अय्यार तिलस्म तोड़ना आदि का वर्णन होता है। इनके लिए अद्भुत कल्पनाशक्तिः प्रतिभा व कौशल की आवश्यकता होती है। हिन्दी उपन्यास के इतिहास में देवकीनन्दन खत्री ने विशेषरूप से ऐसे उपन्यास लिखे हैं। **साहसिक** उपन्यास चोर, डाकू, डकैती आदि से सम्बन्धित होते हैं। इस प्रकार के उपन्यास दुर्गाप्रसाद खत्री, चन्द्रशेखर पाठक, जयराम गुप्त आदि ने उपन्यासेतिहास के प्रारम्भिक चरण में रचे हैं। **जासूसी** उपन्यासों में डकैती, चोरी या किसी दुर्घटना का पता जासूस लगाते हैं। ऐसे उपन्यास घटना प्रधान अधिक होते हैं। गोपाल राम गहमरी के उपन्यास इस प्रकार के उदाहरण ही रोमांसिक या प्रेमाख्यानक उपन्यास प्रेम, अधिकार, उत्कण्ठा आदि का चित्रण करते हैं। किशोरी लाल गोस्वामी के उपन्यास इसी श्रेणी के हैं। ऐसे उपन्यासों में प्रेम का चित्रण शोखी, शरारत और चुहल के साथ किया जाता है। इनमें नाटकीयता का पुट अधिक रहता है। रामलाल वर्मा और जी.पी. श्रीवास्तव ने इसी ढंग के उपन्यास लिखें हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों में कथा इतिहास सफल होती है। प्रारम्भ में किशोरी लाल गोस्वामी जी ने इस प्रकार के उपन्यास–लेखन का प्रयास किया पर सही रूप में इस प्रकार के उपन्यास वर्तमान युग की ही देन हैं। इनमें भारतीय इतिहास के निर्धारण का प्रयास किया गया। ऐसे उपन्यासों में ऐतिहासिक तथ्यों, तत्कालीन सामाजिक जीवन, भौगोलिक वातावरण आदि तर्कसम्मत इतिवृत प्रस्तुत किया जाता है। ब्रजनन्दन सहाय, वृन्दावन वर्मा, राहुल सांकृत्यायन आदि इस प्रकार के उपन्यास रचनाकार है। इसी श्रेणी में पौराणिक उपन्यासों की कथावस्तु पौराणिक पात्रों व घटनाओं पर आधारित होती है।

16.3.5 चरित्र–प्रधान उपन्यास में कथा मनोरंजन और उपदेश का पथ छोड कर मानवीय संवेदना के साथ गहरे में जुड़ती है। ऐसे उपन्यासों में पात्र की विशेषता प्रभावी होती है। ऐसे उपन्यासों में पात्र घटनाओं से प्रभावित तो होते हैं पर अपनी छाप छोड़ने का ढंग उनका निराला होता है। ऐसे उपन्यास मानवीय भावों के अधिक निकट होते हैं। इनका प्रारम्भ प्रेमचन्द के साथ होता है। यद्यपि इनसे पूर्व मन्नन द्विवेदी, हरिओम, विजय कुमार घोष आदि ने ऐसे उपन्यास लिखे हैं पर विशिष्टता प्रेमचन्द जी से ही मानी जाती हैं। चरित्र प्रधान उपन्यासों में वैज्ञानिक सत्य की दुहाई देने वाले **प्राकृतवादी** उपन्यास भी मिलते हैं। **भावनाप्रधान** उपन्यास कवित्व प्रधान होते हैं। **मनोवैज्ञानिक** उपन्यासों में पात्रों के क्रिया व्यापार की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। इन उपन्यासों में पूर्वदीप्ति, चेतना प्रवाह पद्धति तथा कथा के क्रमिक विकास की अवहेलना मिलती है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में अनुभूति की आत्मनिष्ठा अभिव्यक्ति पर अधिक बल दिया जाता है। इन्हीं उपन्यासों में जब अन्तर्मन प्रभावी होता है तो मनोविश्लेषणवादी रूप प्रभावी हो जाता है।

आधुनिक युग में **आंचलिक** उपन्यास भी प्रभावी है। आंचलिक रचनाओं में कोई शिष्ट अंचल व क्षेत्र या उसका कोई एक भाग व गांव ही प्रतिपाद्य या विवेच्य होता है। ऐसे उपन्यासों में स्थानीय दृश्यों, प्रकृति, जलवायु, लोक जीवन के विविध आयाम विशेष रूप से प्रभावी होते हैं। फणीश्वर नाथ रेणु व नागार्जुन आदि की रचनाएं इसी कोटि की हैं।

सांस्कृतिक उपन्यासों में मानव संस्कृति के विविध सोपानों की व्याख्या रहती है। **देशकाल परक** उपन्यासों में लेखक ऐतिहासिक व युगीन सामाजिक समस्याओं का निरूपण करते हुए उपयुक्त समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। **नीतिमूलक** उपन्यासों में लेखक मानव–जीवन का यथावत् निरूपण करते हुए अपने कथ्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से नैतिक आदर्शों के प्रति विशेष आग्रह रखते हैं। **नाटकीय** उपन्यास प्रायः संवाद प्रधान होते हैं।

हिन्दी उपन्यासः विकास हिन्दी उपन्यास विधा का विकास भारतेन्दु युग से होता है, पर इस विधा में प्रेमचन्द एक ऐसा नाम है जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि हिन्दी उपन्यास–साहित्य में प्रेमचन्द एक ऐसे टीले के समान हैं जिसके दोनों ओर दलान हैं। इसी दृष्टि से हिन्दी उपन्यास को पूर्व प्रेमचन्द, प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्दोत्तर युग के रूप में ही देख जाता है।

पूर्व प्रेमचन्द युग सन् 1877 से 1918 ई तक माना जाता है। इसके पश्चात् सन् 1918 से 1936 ई.तक प्रेमचन्द युग और फिर सन् 1936 के बाद प्रेमचन्दोत्तर युग माना जाता है।

पूर्व प्रेमचन्द युग प्रेमचन्द पूर्व युग में हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भिक रूप दिखाई देता है। इस युग में सामाजिक, ऐतिहासिक व घटना प्रधान तीन प्रकार के उपन्यास मिलते हैं। यह युग हिन्दी साहित्येतिहास में भारतेन्दु युग के सामविक हैं। इस समय के हिन्दी उपन्यास का मूल प्रेरणा बंगला उपन्यासों से मिली। 1877 ई में श्रद्धाराम फिल्लौरी रचित 'भाग्यवती' एक सामाजिक उपन्यास है। यह उपदेशात्मक उपन्यास है। इसके पश्चात् लाला श्री निवास दास के "परीक्षा गुरु" का नाम आया है।

प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासों पर प्रत्यक्ष रूप से बंगला और परोक्ष रूप से अंग्रेज़ी उपन्यासों का प्रभाव दिखाई देता है। साथ ही इनमें बीज रूप से प्राचीन भारतीय कथा–साहित्य भी प्रेरक रूप में कार्य करता दिखाई देता है। इस युग के सामाजिक उपन्यासों में श्रद्धा राम फिल्लौरी तथा लाला श्री निवास दास के अतिरिक्त सर्व श्री बाल कृष्ण भट्ट, राधा कृष्ण दास, लज्जा राम शर्मा तथा किशोरी लाल गोस्वामी के उपन्यास विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त

श्री ब्रजनन्दन दास व मन्नद द्विवेदी ने भी सामाजिक उपन्यासों की रचना की। इन सामाजिक उपन्यासों में उपदेशात्मक प्रवृत्ति अधिक प्रभावी रहती है।

श्री किशोरीलाल गोस्वामी, गंगा प्रसाद गुप्त, मथुरा प्रसाद शर्मा तथा जयराम दास गुप्त ने विशेष रूप से **ऐतिहासिक** उपन्यासों की रचना की इन सभी में पात्रादि तो ऐतिहासिक हैं पर प्रसंग वर्णन में कल्पनाधिक्य दिखाई देता है। इन उपन्यासों के कथानक प्रणय–कथाओं एवं रहस्यमयी घटनाओं का ताना–बाना अधिक बुनते हैं। ऐतिहासिक उपन्यास परम्परा में बलदेव प्रसादमिश्र, बाबू ब्रजनन्दन सहाय तथा मिश्र बन्धुओं ने भी योगदान दिया है। इन सभी ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास के नाम पर पाठकों के मनोरंजन की सामग्री प्रस्तुत की गई है।

पूर्व प्रेमचन्द युग में **घटना प्रधान** उपन्यासों में तिलस्मी ऐय्यारी उपन्यासों का विशेष योगदान रहा है। ऐसे उपन्यासों का प्रवर्तन हिन्दी में बाबू देवकी नन्दन खत्री द्वारा हुआ। स्न 1888 में लिखित उनकी 'चन्द्रकान्ता' रचना के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी की मान्यता है कि "पहले मौलिक उपन्यास लेखक जिनके उपन्यासों की सर्वसाधारण में धूम हुई।" 'चन्द्रकान्ता' उपन्यास का हिन्दी जगत् में अभूतपूर्व स्वागत हुआ। खत्री जी के साथ ही इस क्षेत्र में श्री हरे कृष्ण जौहर जी का नाम भी आता है। किशोरी लाल गोस्वामी, बाबू दुर्गा प्रसाद खत्री, देवी प्रसाद उपाध्याय, गुलाबदास, विश्वेश्वर प्रसाद शर्मा, श्री राम लाल वर्मा जी ने भी इस प्रकार के उपन्यास पाठकों के मनोरंजनार्थ लिखे। भले ही इस प्रकार के उपन्यासों का साहित्यिक महत्व कम रहा पर हिन्दी के प्रचार में इन उपन्यासों का योगदान अद्वितीय है, इस तथ्य को कोई नकार नहीं सकता।

घटना प्रधान उपन्यासों में ही जासूसी उपन्यासों की गणना भी होती है। जासूसी उपन्यासों में चोरी, डकैती, खून, ठगी आदि की भयंकर घटना के सुराग जासूस द्वारा लगा कर उनके रहस्य को सुलझाने का वर्णन होता है। इस दृष्टि से इस युग में श्री गोपाल राम गहमरी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके साथ ही श्री राम लाल वर्मा, जयराम दास गुप्त, राम परसाद लाल आदि ने भी इस क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

घटनात्मक उपन्यासों में ही **अद्‌भुत घटना प्रधान** उपन्यासों की रचना भी इस युग में हुई। इन उपन्यासों में रोमांचकारी रहस्यों की प्रधानता रहती थी। श्री निहाल चन्द वर्मा, पं. विट्ठलदास सागर, श्री बांके लाल चतुर्वेदी आदि ने इस प्रकार के उपन्यासों द्वारा जनरंजन का प्रयास किया है। इस काल में ठाकुर जगमोहन सिंह का 1888 में प्रकाशित 'श्यामा स्वप्न' रोमानी उपन्यास भी आता है। इस उपन्यास में प्रेम कथा का स्वछन्द शैली में वर्णन हुआ है।

पूर्व प्रेमचन्द युग में हिन्दी उपन्यासों में बंगला, मराठी तथा अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद भी खूब हुआ। श्री गदाधर सिंह, बाबू राधा कृष्ण दास, राधाचरण गोस्वामी, बाबू राम कृष्ण वर्मा, बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री ने विभिन्न बंगला उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया। गोपाल दास गहमरी जी ने भी अनुवाद किया पर उनके अनुवाद प्रायः भावानुवाद ही होते थे। श्रीमती मल्लिका देवी ने मराठी से हिन्दी में अनुवाद का कार्य किया। लज्जाराम शर्मा जी ने गुजराती से हिन्दी मे अनुवाद किया। उर्दू से हिन्दीं में अनुवाद करने वालों में बाबू राम कृष्ण वर्मा तथा श्री गंगा प्रसाद गुप्त का नाम उल्लेखनीय है। गंगा प्रसाद गुप्त, महावीर प्रसाद पोद्दार और लाला चन्द्र लाल ने अंग्रेजी से उपन्यासों का अनुवाद किया। इस प्रकार प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास साहित्य में उपदेश प्रधान सामाजिक, कल्पना प्रधान ऐतिहासिक तथा कौतूहल प्रधान घटना प्रधान उपन्यासों की प्रधानता रही। यथार्थ जीवन की समस्याओं का चित्रण इन उपन्यासों में बहुत ही कम है। इस युग के उपन्यासों में पाठकों को मनोतुष्टि का प्रयत्न

भावुकता और रहस्य विधायिनी कल्पना का महत्व ही दिखाई देता है। इस युग के मनोरंजन प्रधान उपन्यास आज इतिहास को वस्तु बनकर रह गए हैं।

16.3.6 प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास

हिन्दी उपन्यासों के विकास क्रम में सन् 1918 से 1936 ई. तक का समय प्रेमचन्द युग के नाम से जाना जाता है। निश्चित रूप से प्रेमचन्द (1880–1936 ई.) हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में क्रान्ति के अग्रदूत के रूप में अवतरित हुए। प्रेमचन्द ने "तिलस्म–ऐयार एवं जासूस की पिटारी में बंद हिन्दी–उपन्यास को जीवन की वास्तविकता से परिचित कराया।" हिन्दी साहित्य–इतिहास में यह समय 'छायावाद युग' नाम से प्रसिद्ध है। यह युग भाववेग, आदर्शप्रियता, राष्ट्रीय भावना, स्वच्छन्दता आदि नवजागरणीय प्रवृत्तियों की सूचना देने वाला है। इस युग का लेखन पाश्चात्य प्रभाव को स्वीकार करते हुए भी भारतीय संस्कृति के मूलभूत आधारों–आदर्श, संयम, त्याग, उदारता, सेवा, परोपकार आदि को जीवन दर्शन का प्रेरक मानते थे इस युग में विशेष रूप से प्रेमचन्द जी ने हिन्दी उपन्यास को तिलस्म–ऐय्यारी व जासूसी के फन्दों से मुक्ति दिलाकर उसे जीवन की वास्तविकता से परिचित कराया।

यद्यपि प्रेमचन्द जी का 'प्रेमा' व 'रूठी रानी' का प्रकाशन 1907 ई. में ही हो चुका था जिनमें उन्होंने सामाजिक सुधार के संकेत दिए थे पर 1918 में प्रकाशित 'सेवा सदन' एक ऐसा प्रौढ़ उपन्यास है जिसका प्रकाशन हिन्दी उपन्यास साहित्य के लिए एक महत्वपूर्ण घटना के रूप में मान्य है। 'सेवासदन' के बाद 'गोदान' पूर्ण तथा मंगलसूत्र (अपूर्ण) तक निरन्तर उनके उपन्यासों ने जीवन के विविध पक्षों पर सधी हुई दृष्टि से विचार किया। उनके उपन्यासों में व्यक्ति चेतना, समाजमंगल, यथार्थ की अनुभूति, आदर्श की कल्पना, बाह्य घटना, आंतरिक मनोमंथन एवं भाव द्वन्द्व सभी पक्षों का खुलकर दर्शन होता है।

प्रेमचन्द से प्रभावित इस काल खंड (1918–1936) में विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कोशिक', श्री नाथ सिंह, शिव पूजन सहाय, भगवती प्रमाद वाजपेयी, चण्डीप्रसाद हृदयेश, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह आदि ने आदर्शवादी मनोवृत्ति प्रधान उपन्यासों की रचना की। प्रेमचन्द युग में ही वृन्दावन लाल वर्मा जी ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि वाले उपन्यासों की रचना प्रारम्भ की। भगवती प्रसाद वाजपेयी जी ने मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण किया। राहुल सांकृत्यायन जी ने ऐतिहासिक रोमानी कथानकों को आधार बनाकर उपन्यास रचना की। सिया रामशरण गुप्त जी ने गांधी दर्शन पर आधारित मनोवैज्ञानिक सामाजिक उपन्यासों की रचना की। आचार्य चतुर सेन शास्त्री, ऋषभचरण जैन, जैनेन्द्र, भगवतीचरण वर्मा आदि ने भी इसी युग में उपन्यास रचना प्रारम्भ की पर इनका विकसित रूप प्रेमचन्दोत्तर काल में ही हुआ।

प्रेमचन्द युग में ही उषा देवी मित्रा, 'निराला' आदि के उपन्यासों में स्वच्छन्तावादी प्रकृति के दर्शन होते हैं। आचार्य चतुरसेन, पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" ऋषभचरण जैन आदि ने प्रकृतिवादी प्रकृति के आधार पर समाज के यथार्थ पक्ष को वरीयता प्रदान की।

16.3.7 प्रेमचन्दोत्तर युग

साहित्यकार युग स्रष्टा के साथ–साथ युग दृष्टा भी होता है। इस दृष्टि से प्रेमचन्द जी ने अपने जीवन काल में आगे आने वाले समय की कल्पना करते हुए स्पष्ट कहा था "यों कहना चाहिए कि भावी उपन्यास जीवन चरित होगा, चाहे किसी बड़े आदमी का यो छोटो आदमी का।.....अभी हम झूठ को सच बनाकर दिखाना चाहते हैं, भविष्य में सच

को झूठ बनाकर दिखलाना होगा।" प्रेमचन्द जी का यह कथन उनके परवर्ती समाज में यथार्थ बन कर उभरा है। सन् 1936 के बाद विश्व में और भारत वर्ष में बहुत बड़े परिवर्तन हो चुके हैं। 1939 से 1945 तक का विश्व युद्ध, इस बीच 1940–41 में कांग्रेस का सत्याग्रह, तथा बंगाल का अकाल 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन, 1947 में भारत विभाजन के साथ मिली आज़ादी, 26 जनवरी 1949 भारतीय संविधान का निर्माण 26 जनवरी 1950 को भारत का सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य के रूप में उदय, इस बीच कश्मीर पर कबीलाई हमला, चीन के साथ युद्ध, पाकिस्तान के साथ युद्ध फिर बंगलादेश का अस्तित्व में आना, एमरजेन्सी लगना, उत्तरी क्षेत्रों में आतंकवाद का दौर और कहीं पर नक्सलवादियों का ज़ोर ये सभी ऐसी घटनाएँ हैं जिन्होंने साहित्यिक विधाओं को किसी–न–किसी प्रकार से कुछ कहने को मजबूर किया है। अन्य विधाओं के साथ हिन्दी उपन्यास भी अपने भीतर समय की आवाज़ को समेटे हुए इस प्रेमचन्दोत्तर काल की एक विशिष्ट विधा के रूप में अपनी सहभागिता निभाता दिखाई देता है।

हिन्दी उपन्यास का प्रेमचन्द युग हिन्दी साहित्येतिहास में 'छायावाद' के नाम से जाना जाता है। प्रेमचन्दोत्तर युग भी इसी प्रकार छायावादोत्तर विभिन्न धाराओं–प्रगतिवाद (1957–1943 ई.), प्रयोगवाद (1943–1953 ई.) और फिर 1947 ई. के पश्चात् के इतिहास की विविध धाराओं को स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य और 2000 ई. के बाद के साहित्य से इक्कीसवीं सदी के साहित्य के रूप में सम्बोधित किया जाता है।

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास के स्वतन्त्रता पूर्ण तथा स्वातन्त्र्योत्तर काल के उपन्यास के रूप में देखा जा सकता है। स्वातन्त्र्योतर काल को बीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध तथा इक्कीसवीं सदी का प्रारम्भिक काल के रूप में देखा जा सकता है। इस सारे कालखंड में हिन्दी उपन्यास के विविध रूप मिलते हैं। प्रेमचन्द द्वारा चलाई गई **सामाजिक** धारा की परम्परा में भगवतीचरण वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, उपेन्द्रनाथ अश्क, अमृत लाल नागर, उदयशंकर भट्ट, कंचन लता सब्बरवाल आदि के नाम आते हैं।

प्रेमचन्दोत्तर काल का प्रथम चरण हिन्दी साहित्येतिहास में प्रगतिवाद के रूप में मान्य है। प्रगतिवाद में मार्क्सवादी धारा से साम्यवाद विशेष रूप सें प्रभावी रहा। मार्क्सवादी विचारधारा के दर्शन समाजवादी यथार्थ के चितेरे यशपाल के उपन्यास साहित्य में मिलते हैं। मार्क्सवाद के साथ ही फ्रायडीय मनोविश्लेषण का प्रभाव भी जैनेन्द्र के उपन्यासों में दिखाई देता है। अज्ञेय जी ने जहाँ मनोविज्ञान को प्रमुखता दी वहीं इलाचन्द्र जोशी ने मनोविश्लेषणात्मक पद्धति से उपन्यास रचना की। धर्मवीर भारती जी ने अपनी औपन्यासिक रचनाओं में मनोवैज्ञानिक आधार को ग्रहण किया। नरेश मेहता, रघुवंश, प्रभाकर माचवे इसी परम्परा का अनुमोदन करते हैं।

यशपाल, रामेश्वर शुक्ल अंचल, मन्मथनाथ गुप्त, रांगेय–राघव, भैरव प्रसाद गुप्त, अमृत राय आदि उपन्यास लेखकों ने सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासों की रचना की है।

प्रेमचन्दोत्तर काल में ऐतिहासिक उपन्यासों की एक समृद्ध परम्परा दिखाई देती है। इन उपन्यासों में इतिहास सम्बन्धी नया दृष्टिकोण मिलता है। इस परम्परा में वृन्दावन लाल वर्मा का अप्रतिम स्थान है। आचार्य चतुर सेन शास्त्री, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव आदि ने भी अपनी लेखनी से इस धारा को पुष्ट किया है। इस परम्परा में आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, रघुवीर शरण मित्र, आनंद प्रकाश जैन के नाम भी उल्लेखनीय हैं। शिव प्रसाद रूद्र ने जहां काशी की ऐतिहासिकता को प्रस्तुत किया है वहीं पद्मा सचदेव ने अपने उपन्यास में जम्मू नगर की परम्परा को प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार नागर जी ने लखनऊ के इतिहास को प्रस्तुत किया है।

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में **आंचलिकता** की प्रवृत्ति विशेष रूप से उभर कर सामने आती है। आंचलिक

उपन्यासों में किसी पिछड़े हुए अज्ञात अंचल या किसी अपरिचित या अर्द्धपरिचित जाति के जीवन को पूरी सहृदयता के साथ चित्रित किया जाता है। यद्यपि इस प्रकार के उपन्यासों का नामकरण फणीश्वर नाथ रेणु कृत 'मैला आंचल' की भूमिका से होता है पर इनका रूप नागार्जुन, देवेन्द्र सत्यार्थी, रूद्रकाशिदेय, उदयशंकर भट्ट, रांगेय राघव, राजेन्द्र अवस्थी बलभद्र ठाकुर, रामदाशमिक, शैलेश मटियानी, केशव प्रसाद मिश्र, यमुनादत्त वैष्णव व राही मासूम रजा आदि के उपन्यासों में भी मिलता है। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में राष्ट्र के भूखंड मे फैलते हुए नूतन प्रकाश का ऐसा प्रभाव दिखाई देता है जिसके आलोक में उन क्षेत्रों की छुपी हुई सौन्दर्य भावना से जगत् को परिचय कराने का सफल प्रयास किया गया है।

प्रेमचन्दोत्तर विशेषकर स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल, डॉ. देवराज, नरेश मेहता, दुष्यन्त कुमार, निर्मल वर्मा, पद्मा सचदेव, मृणाल पाण्डेय, शिवानी, चन्द्र कान्ता, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, जगदीश चन्द्र, कृष्ण चन्द्र शर्मा मिक्खु, मन्नू भंडारी, श्री लाल शुक्ल, ममता कालिया, मुद्राराक्षस, कान्ताभारती, मृदुला गर्ग, अब्दुल बिस्मिल्लाह, महेन्द्रभल्ला, शशिप्रभा शास्त्री, मैत्रेयी पुष्पा, कृष्णासोबती, कुसुमकुमार नरेन्द्र कोहली आदि कई ऐसे नाम आते हैं, जिन्होंने मानवीय संवेदना को बहुत गहरे से मापते हुए मानव चरित्र के इस चित्र की बड़ी सफलता से सहृदय सामाजिकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

आज हिदी उपन्यास का टेकनीक की दृष्टि से भी विशेष विकास हुआ है। आत्मकथात्मक शैली, डायरी शैली, पत्र शैली, रेखाचित्र–रिर्पाताज शैली इन सभी को समन्वित कर एक विशिष्ट शैली के साथ उपन्यास लोक मन के अन्तर्जगत् की गहन अनुभूतियों को बाह्य वर्जनाओं से मुक्त कर साहित्य जगत् में विशिष्ट स्थान का अधिकारी बना हुआ है।

16.4 सारांश

आज हिन्दी गद्य विधाओं में उपन्यास निश्चित रूप से एक विकसित कथा रूप है। इसका भविष्य आशाप्रद है और विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि इस विधा के अध्येताओं को इस विधा के सृजक निश्चित रूप से सामाजिक यथार्थ से परिचित करा उन्हें विवेकपूर्ण जीवन की मान्यता पर चलने की प्रेरणा देने में समर्थ सिद्ध होंगे।

16.5 कठिन शब्द

1 संवेदना 2 समृद्ध 3 मान्यता 4 प्रेरणा 5 सृजक 6 सम्मुख 7 मनोविश्लेषण 8 प्रत्यक्ष 9 गर्भित 10 अंकन

16.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न – उपन्यास की परिभाषा देते हुए इसके तत्वों पर प्रकाश डालिए

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – उपन्यास शब्द की व्युत्पति, एवं परिभाषा देते हुए इसके विकास पर प्रकाश डालिए

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – 'चरित्र प्रधान' उपन्यास कौन से होते हैं? स्पष्ट करें।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – 'आचंलिक उपन्यास कौन से होते हैं? स्पष्ट करते हुए किसी एक आंचलिक उपन्यास का संक्षिप्त रूप से लेख लिखिए।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – 'ऐतिहासिक उपन्यास' कौन से होते हैं? स्पष्ट करते हुए हिन्दी साहित्य के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास एवं उपन्यासकारों का परिचय दीजिए

_____

_____

_____

_____

16.6 पठनीय ग्रंथ

1. नामवर सिंह – छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1990
2. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी – ग्रंथावली, भाग–3, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1981
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं. 2050
4. रामस्वरूप चतुर्वेदी – हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1993
5. डॉ. नगेन्द्र (सं.) – हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली 1982
6. डॉ. जयकिशन प्रसाद – हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
7. डॉ. नामवर सिंह – आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, राजकमल प्रकाशन – नई दिल्ली,

.....

हिन्दी नाटक – उद्‌भव और विकास

17.0 रूपरेखा

17.1 उद्देश्य

17.2 प्रस्तावना

17.3 हिन्दी नाटक : उद्‌भव और विकास

17.3.1 नाटक : शब्द व परिभाषा

17.3.2 नाटक के तत्व

17.3.3 कथावस्तु

17.3.4 नाटक : प्रकार

17.3.5 नाटक : उत्पत्ति

17.3.6 हिन्दी नाटक : विकास

17.4 सारांश

17.5 कठिन शब्द

17.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

17.7 पठनीय पुस्तकें

17.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप–

– नाटक विद्या के बारे में जानेगे।

– नाटक शब्द की व्युत्पति एवं इसके विकास के बारे में जानेंगे।

– नाटक के तत्वों के बारे में जानेंगे।

– नाटक के प्रकार के बारे में जानेंगे

17.2 प्रस्तावना

साहित्य की अन्यान्य विधाओं की भांति नाटक भी मानवीय जीवन की व्याख्या प्रस्तुत करने की एक समर्थ विधा है, पर अन्य विधाएं जहाँ श्रवणेन्द्रिय अधिक हैं वहीं नाटक चक्षुरिन्द्रिय से सम्बन्धित है। इस कारण इसमें जीवन की अभिनयात्मक व्याख्या रहती है। सुरेन्द्र चन्द्र गुप्त जी की मान्यता है कि "मानव–जीवन की अनुकृति होने के कारण यह अत्यन्त लोक प्रिय साहित्य–विधा है।"

17.3.1 नाटक : शब्द व परिभाषा : परम्परा से 'नृत्' धातु के प्राकृत रूप 'नट' से उत्पन्न मात्र विक्षेपण एवं अभिनय के भाव की अभिव्यक्ति करने वाली विधा 'नाट्य' के रूप में प्रसिद्ध हुई। दशरूपक में स्पष्ट किया गया है कि "अवस्थानुकृतिर्नाट्यं" अर्थात् अवस्था के अनुकरण को नाट्य कहते हैं। अवस्था को अभिव्यक्ति घटनाओं से मिलती है। घटना से अभिप्राय कार्य है। वही कार्य महत्त्वपूर्ण होता है जो मानव–समाज का ध्यान अपनी ओर केन्द्रित करने में समर्थ होता है। इसी दृष्टि से विजय वेदालंकार जी की मान्यता है कि "नाटक में लक्ष्ययुक्त, क्रमबद्ध, परस्पर सम्बन्धित घटनाएँ अर्थात् एक कथा होती है। यह कथा ऐतिहासिक, कल्पित या मिश्रित होती है। इन घटनाओं को जब अभिनेता रंगमंच पर प्रदर्शित करता है तो उसे नाटक कहते हैं।" इनसे पूर्व भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने नाटक को "नट लोगों की क्रिया" माना था। बाबू गुलाब राय जी की मान्यता है कि "नाटक में जीवन की अनुकृति को शब्दगत संकेतों में संकुचित करके उसको सजीव पात्रों द्वारा एक चलते–फिरते सप्राण रूप में अंकित किया जाता है। नाटक जीवन की सांकेतिक अनुकृति नहीं है वरन् सजीव प्रतिलिपि है।....नाटक में फैले हुए जीवन–व्यापार को ऐसी व्यवस्था के साथ रखते हैं कि अधिक–से–अधिक प्रभाव उत्पन्न हो सके।"

नाटक को अभिव्यक्तिपरक अनुकरण मानते हुए रघुवंश जी की मान्यता है कि 'नाटक की उत्पत्ति मानव–जीवन की क्रीड़ात्मक प्रवृत्ति से सम्बन्धित है।" पाश्चात्य विद्वानों ने भी नाटकों के पर्याय ड्रामा (Drama) की व्याख्या करते हुए उससे अनुकरणात्मक क्रीड़ा द्वारा सुखानुभूति की प्राप्ति माना है। बोल्टन महोदय की मान्यता है कि "Drama, at its best, is an exercise of the imagination not only for writer, product and actor but also for the audience"

इस प्रकार नाटक में रचनाकार पात्रों द्वारा विशिष्ट परिस्थितियों का परिचय मानव–समाज के साथ कराने का प्रयास करता है। यह एक ऐसी साहित्यिक विधा है जिसमें वास्तविकता का अनुकरण जीवित पात्रों तथा जीते–जागते साधनों के साथ किया जाता है। इसमें अनुकरण और सम्भाषण के आधार पर मानवीय मनोवृत्तियों का अभिव्यक्तिकरण किया जाता है। विजय वेदालंकार जी मानते हैं कि "नाटक समाज का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। नाटक को समाज के निकट आना पड़ता है। समाज के शिक्षित और अशिक्षित दोनों वर्ग नाटक से मनोरंजन प्राप्त करते हैं। शिक्षित वर्ग के लिए तो नाटक बोधगम्य है ही, परन्तु अभिनीत होने के कारण प्रत्यक्ष और मूर्त्त होने से वह अशिक्षित वर्ग के लिए भी बुद्धिगम्य हो जाता है।"

17.3.2 नाटक के तत्त्व : नाटक निरूपण निर्वाह के लिए नाटकीय तत्त्व के विभिन्न अंग निर्धारित किए गए हैं। भारतीय दृष्टि से वस्तु, नेता और रस यह तीन तत्त्व नाटक के स्वीकार किए जाते हैं। जबकि पाश्चात्य दृष्टि से इन तत्त्वों की संख्या सात तक पहुंच जाती है। कथावस्तु (Plot), पात्र और चरित्र–चित्रण (Character), संवाद (Dialouge), देशकाल व वातावरण (Atmosphere and Environment), उद्देश्य (Purpose), भाषा–शैली (Language and Style) तथा अभिनय (Stage Acting)

यद्यपि इन सभी की समन्वति भारतीय तत्त्वों में हो जाती है पर आज जिस रूप में हिन्दी में नाटक विधा की गणना होती है उसमें पाश्चात्य दृष्टि प्रभावी होने के कारण सातों तत्त्वों का विवेचन ही प्रायः किया जाता है।

17.3.3 कथावस्तु (Plot) : नाटक के मूल भाव की जिस तत्त्व में प्रस्तुति होती है वह उसकी कथावस्तु या कहानी या कथानक कहलाता है। इसका विस्तार ही नाटक के मूल कथ्य को आगे बढ़ाता है। यह कथा वस्तु या इतिवृत्त प्रख्यात, उत्पाद्य या मिश्र तीन प्रकार का हो सकता है। प्रख्यात वृत्त इतिहास–पुराण या समाज की वास्तविक घटना से लिया जाता है। उत्पाद्य लेखक की कल्पना द्वारा प्रसूत होता है। जबकि मिश्र में प्रख्यात व कल्पना का मिश्रण होता है। मुख्य चरित्र के आधार पर कथावस्तु आधिकारिक और प्रासंगिक दो प्रकार की होती है। आधिकारिक कथावस्तु का सीधा सम्बन्ध नाटक के फलभोक्ता नायक से होता है। इस मुख्य कथा के प्रवाह को गति देने के लिए प्रसंगानुकूल कुछ प्रासंगिक या गौण कथाएँ भी सहायक रूप में आती थी। यह दो प्रकार–पताका और प्रकटी की होती है। पताका कथायें दूर तक मुख्य कथा का साथ देती हैं वही प्रकटी थोड़े काल तक ही साथ चलती हैं।

नाटक की 'फल' प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण रचना में कार्य का विस्तार होता है। यह विस्तार क्रमशः पांच अवस्थाओं में होता है :

"अवस्था पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिमि।
आरम्भयत्न प्राप्त्याशानियताप्तिफलागगयाः।।"

अर्थात् आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलागम्। फल की सिद्धि हेतु उत्सुकता 'आरम्भ' है, जिसके पश्चात् फल प्राप्ति के लिए यत्न किया जाता है। प्राप्त्याशा में विघ्न निवारण और फल प्राप्ति की सम्भावना बनती है और फिर विघ्न–बाधाएँ दूर होने पर फल प्राप्ति का निश्चय नियताप्ति है। सम्पूर्ण फल की प्राप्ति फलागम् अवस्था में होती है।

पाश्चात्य विद्वानों ने भी संघर्ष और घटनाओं के आधार पर कथाविकास की–प्रारम्भ (Exposition), संघर्ष का विकास (Rising Action), चरम सीमा (Crisis), उतार या निगति (Denoument) तथा उपसंहार या परिणति (Catastrophe)–पाँच अवस्थाएँ मानी हैं।

कथावस्तु को मुख्य फल की ओर अग्रसर करने में चमत्कार पूर्ण अंश जो–'प्रयोजन सिद्धि हे तव' :–के रूप में मान्य है उन्हें अर्थ प्रकृति कहा जाता है–

"बीज बिन्दुपताकाख्यप्रकरी कार्यलक्षण। :।
अर्थ प्रकृतयः पञ्च ता एता परिटीर्तिताः।।"

प्रयोजन की सिद्धि हेतु बीज, बिन्दु, पताका, प्रकटी तथा कार्य पांच अर्थ प्रकृतियाँ नाट्क की वस्तु योजना में सहायक होती हैं। यहां नाटक में फल की प्राप्ति का इष्ट बीज, कथा का फैलाव बिन्दु, मुख्य कथा की सहायिका पताका, मुख्य कथा में प्रसंगवश सहायिका प्रकटी तथा परिणाम कार्य कहलाता है।

नाटक की कथावस्तु की अवस्थाओं तथा अर्थ प्रकृतियों को जोड़ने के लिए सन्धियों का विधान किया गया है।

"मुख प्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहृति।
मुखं बीज समुत्पत्तिर्नानार्थरससंभवा।।"

मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा निर्वहण ये पांचों संधियां क्रमशः आरम्भ और बीज, यत्न और बिन्दु प्राप्त्याशा और पताका, नियताप्ति और प्रकटी तथा फलागम् और कार्य के मध्य सहयोग कर कथावस्तु की गति के प्रवाह दिए रहती है।

अभिनेयता की दृष्टि से परम्परा से वाच्य और सूच्य दो प्रकार की कथावस्तु की योजना की जाती है। कार्यावस्था, अर्थ प्रकृति और सन्धियों को वाच्य श्रेणी में रखा जाता है। कहीं ऐसे प्रसंग भी नाटक की कथावस्तु में आ जाते हैं जिनका मंचन संभव नहीं होता ऐसी घटनाओं को सूचना द्वारा बताया जाता है। इसे ही 'सूच्य' कहा जाता है। इस 'सूच्य' को अर्थोपक्षेपक भी कहा जाता है। इसमें यदि पूर्व अथवा बाद में होने वाली घटना की सूचना दी जाए तो उसे 'विष्कम्पक' कहा जाता है। पर्दे के पीछे से दी गई सूचना चूलिका कहलाती है। अगले अंक की सूचना अंकावतार कहलाती है। अंक के अंत में अगले अंक की सूचना अंक मुख और दो अंकों के बीच में निम्न पात्रों द्वारा अभिनय कथा की सूचना प्रवेशक कहलाती है। अर्थोपक्षेपक में नाटक में रसहीन वस्तुओं की केवल सूचना दी जाती है।

कथावस्तु के पश्चात् नाटक में पात्रों का स्थान आता है। पात्रों के आश्रय में घटनाएँ घटित होती हुई कथावस्तु का निर्माण करती हैं। नाटक का प्रमुख पात्र नायक होता है और उसके सामने नायिका का रूप स्थित होता है। अभिनय के समय नाटकीय पात्र का रूप धारण कर अभिनेता पात्र यथार्थ पात्र के जीवन–व्यापार को प्रदर्शित करता है। नाटक के प्रमुख नायक में बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा तथा कला के प्रति समर्पण होना आवश्यक माना जाता है। परपरा के नायक को धीर ललित, धीरशान्त, धीरोदात तथा धीरोद्धत चार रूपों में माना जाता है। ये भेद प्राचीन नाट्य परम्परा के हैं। आज आधुनिक आदर्शों से अनुप्राणित नाटक–नायक के रूप में नई मान्यताएं स्थापित हो रही हैं। इनके अनुसार नाटक में मानवीय गुणों का रूप ही मान्य होता है। आज नाटक के सभी पात्र युग बोध के अनुरूप जीवन के आस–पास के अधिक निकट होते हैं। ऐतिहासिक तथा पौराणिक सन्दर्भों में नाटक के पात्र परम्परा से लिए जाते हैं।

नाटक के पात्रों का चरित्र–चित्रण नाटकीय अभिनय के रूप में प्रत्यक्ष होता है। नाटककार स्वयं पात्रों के विषय में कुछ नहीं कहता। कथावस्तु की घटनाओं और कथोपकथनों द्वारा नाटक के पात्रों का चरित्र सामाजिकों के समक्ष स्पष्ट होता है। नाटक में दो पात्रों के मध्य पारस्परिक वार्तालाप, या पात्र के स्वगत कथा द्वारा पात्रों की मानसिकता व चारित्रिक विशेषता स्पष्ट होती है। कहीं–कहीं अन्य पात्रों के कथनों में भी किसी पात्र के चरित्र का परिचय मिलता है। इसके साथ ही पात्र विशेष की चारित्रिक विशेषताओं का परिचय उसके क्रिया–कलापों द्वारा भी स्पष्ट होता है।

नाटक दृश्य काव्य है। इसमें संवाद या कथोपकथनों द्वारा ही मूल कथ्य की प्रस्तुति का विकास होता है।

नाटककार और सामाजिक के विचारों के मध्य कथोपकथन ही संवाहक की भूमिका निभाते हैं। धीरेन्द्र वर्मा जी की मान्यता है कि, "कथोपकथन नाटक में पात्रों को जीवन्त रूप में स्थित करते हुए उनकी प्रकृति को प्रत्यक्ष रूप में प्रकट करता है।" कथोपकथनों के माध्यम से ही नाटक के चरित्र चित्रण में पूर्णता आती है। नाटक के पात्रों के पारस्परिक संवाद प्रभावशाली, अर्थपूर्ण, अभिनययोग्य, संक्षिप्त व हृदयस्पर्शी होने चाहिए। इन्हें सर्वश्राव्य, नियत श्राव्य तथा अश्राव्य तीन रूपों में बाँटा गया है। नाटक में प्रायः कथोपकथन पात्र के स्वयं के चरित्र के उद्घाटक होते हैं, साधारण तथा प्रसंग को गति इन्हीं से मिलती है। इन्हीं के माध्यम से दूसरे पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं। नाटककार का मन्तव्य भी इन्हीं के माध्यम से समाज तक पहुँचता है।

सर्व, नियत तथा अश्रव्य के अतिरिक्त नाटकों में अपवादित, जनान्तिक, स्वगत तथा आकाशभाषित रूप में भी संवादों का उल्लेख मिलता है।

नाटक में देशकाल तथा वातावरण इसलिए आवश्यक है कि इसी से पात्र अपने युग का सच्चा प्रतिनिधित्व कर सकते हैं। दृश्यविधान, वेशभूषा, अभिनय की सजीवता इसी तत्त्व पर आधारित होती है। देशकाल के अन्तर्गत रीतिरवाज, रहन–सहन, वेशभूषा, शिष्टाचार युग तथा क्षेत्र विशेष की भाषा शैली आदि सभी की गणना होती है। इस दृष्टि से नाटक में काल, स्थान और क्रिया की तीन नाट्य–अन्वितिया–समय की एकता (Unity of Time), स्थान की एकता (Unity of Place), तथा कार्य की एकता (Unity of action) की गणना भी की जाती है। इन्हें संकलनत्रय भी कहा जाता है। नाटक में समय, स्थान व कार्य की एकता का ध्यान रखने से ही नाटककार युग–क्षेत्र विशेष के वास्तविक रूप को प्रस्तुत करने में समर्थ हो सकता है। नाटक में प्रस्तुत घटना को सही रूप में उपस्थित करने के लिए संकलनत्रय का विशेष महत्त्व स्वीकार किया जाता है।

नाटक की भाषा सजीव, सरल और स्पष्ट होनी चाहिए पर यह नहीं कि सहज सरल करते हुए नाटककार उसमें कलात्मकता का समावेश न करें। भाषा की कलात्मकता ही नाट्यवस्तु व पात्रों की सजीवता का प्रमाण बनती है। सफलता, सरलता, स्वाभाविकता, अलंकरण, लाक्षणिकता, प्रवाह, मुहावरों लोकोक्तियों की संयुक्ति भाषा को जीवंत रूप प्रदान करती है। नाटक की भाषा में शिष्टता अनिवार्य है अन्यथा अशिष्ट भदेस रूप में प्रस्तुत होगा। नाटक की भाषा पात्रानुकूल होनी चाहिए। नाटककार का बहुमुखी व्यक्तित्त्व ही नाटक की भाषा के साथ–साथ उस शैली को साकार करता है जिसमें नाटक की प्रस्तुति होती है। नाटककार में यदि कविभावुकता है तो उसकी भाषा–शैली भी कवित्वपूर्ण होगी। इस प्रकार भाषा की अभिव्यक्ति का ढंग नाटककार भी मनोभावना को स्पष्ट करने में समर्थ होता है।

नाटक का उद्देश्य मानव–जीवन की रोचक रूप में व्याख्या करना है। उद्देश्य की अभिव्यक्ति या तो मुख्य पात्र की उक्तियों के माध्यम से की जाती है या पात्रों के व्यवहार और वार्तालाप के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा उसका बोध हो सकता है। आजकल कथावस्तु को जीवन अथवा समाज की किसी समस्या से सम्बन्धित रखने पर बल दिया जाता है। इससे स्पष्ट है कि समस्या की अभिव्यक्ति और उसका समाधान नाटक के उद्देश्य के रूप में मान्य है।

नाटक दृश्य काव्य है इस कारण अभिनेयता भी उसका एक आवश्यक तत्त्व है। अभिनय को नाटक से अलग नहीं किया जा सकता। 'अभिनयति हृदयगत् भावान् प्रकाशयति' के अनुसार मन के भावों की अभिव्यक्ति या किसी व्यक्ति का प्रकृत अनुकरण प्रदर्शन अभिनय के अन्तर्गत आता है। अनुकरण का आधार संकेत, वाणी, वस्त्र और वेशभूषा है। नाट्यशास्त्र के अनुसार इसी आधार पर आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक चार प्रकार का अभिनय माना जाता

है। आंगिक का सम्बन्ध विभिन्न शारीरिक अंगों के द्वारा अनुकरण है जबकि वाचिक का सम्बन्ध वाणी से है। आहार्य का सम्बन्ध वेशभूषा और साज–सज्जा से जुड़ता है जबकि सात्विक अभिनय में अश्रु, कथा, रोमांच आदि का अनुकरण कोई सफल अभिनेता ही कर सकता है।

इस प्रकार नाटक के विभिन्न तत्त्व समग्रतः इस साहित्यिक विधा की कलात्मकता की रक्षा करते हुए 'काव्येषु नाटक श्रेष्ठम्' उक्ति को सार्थक करते हैं। नाटक पात्रों के अभिनय द्वारा सामाजिकों की आत्मीयता कथ्य के साथ जोड़ने में जिस प्रकार से न सफल प्रयास करता है उससे 'भावक अपनी अहंता को मूल अनेकता में एकता का अनुभव करने लगते हैं।' इसमें इतिहास और भाव दोनों का सुन्दर समन्वय हो जाता है। आज नाटक जीवन की अभिव्यक्ति के रूप में एक सशक्त साहित्यिक विधा के रूप में मान्य है।

17.3.4 नाटक : प्रकार–परम्परा से नाटक अपनी कथावस्तु के अन्त में प्राप्त रूप के अनुसार सुखान्त या दुखान्त दो प्रकार का माना जाता रहा है। जहां नायक अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेता है उसे सुखान्त तथा जहां उसे अभीप्सित की प्राप्ति नहीं होती उसे दुखान्त रूप में माना जाता रहा है। पाश्चात्य मनीषी इन्हें क्रमशः कामदी (Comedy) तथा त्रासदी (Tragedy) के रूप में मान्यता देते हैं। इन दो रूपों के अतिरिक्त पाश्चात्य परिवेश में मैलोड्रामा, हीरोइक ड्रामा, फार्म आदि प्रकार भी विवेचित होते हैं। कामदी (Comedy) में-Comedy of Errors, Comedy of manners, Sentimental Comedy तथा Comedy of character or Humours भेद भी किए जाते हैं।

भारतीय पम्परा में नाट्य–भेद 'रूपक' के अन्तर्गत विवेचित है। रूपक और उपरूपक के भेदोपभेद के अन्तर्गत 'नाटक' का विशेष स्थान दिया गया है :

"प्रकृतित्वादथान्येषां भुयोरसपरिग्रहात्।
संपूर्णलक्षणत्वाच्च पूर्व नाटकमुच्यते।।"

नाटक को दशरूपक में सब रूपकों का मूल माना गया है। वैसे रूपक के–नाटक, प्रकरण, अंक, व्यायोग, भाण, समवकार, वीथी, प्रहसन, डिम और ईहामृग–दस भेद मान्य है। दशरथ ओझा जी के अनुसार "नाट्य पर आधृत दृश्यकाव्य रूपक कहलाते हैं और नृत्या पर आधृत उपरूपक।" उपरूपक विधा का विवेचन संस्कृत काव्यशास्त्र विवेचन परम्परा में 'भाव प्रकाश' व 'साहित्यदर्पण' से होता है इनमें पूर्व मात्र रूपक विवेचन ही उपलब्ध होता है। आचार्य अभिनव गुप्त ने डोम्बिका, भाण, प्रस्थान, माणिका, प्रेक्षणक, रासाडीड़, हल्लीशक, रासक आदि का उल्लेख तो किया है पर इनके लक्षणादि की विवेचना नहीं की। परवर्ती काल में सट्टक, श्रीगपित, गोष्ठी, नर्त्तनक, नाट्यरासक भाण, मणिका, दुर्मीलिता आदि अट्ठारह उपरूपकों की गणना की गई।

आधुनिक काल में पाश्चात्य प्रभाव के कारण जिस रूप में इस विधा का विकास हुआ है उसमें, समस्यामूलक, विचार प्रधान, प्रतीकात्मक, एकांकी, रेडियो, गीतिनाट्य, भाव नाट्य, प्रहसन आदि रूपों का प्रचलन दिखाई देता है। वैसे विषय की दृष्टि से ऐतिहासिक–पौराणिक तथा सामाजिक नाटक के दो भेद किए जाते हैं। रंगमंच की दृष्टि से अभिनयात्मक और पाठ्य नाटक के दो भेद किए जाते हैं।

पौराणिक नाटकों में कथावस्तु पौराणिक सन्दर्भों से ली गई होती है जबकि ऐतिहासिक नाटकों के कथ्य सूत्र

इतिहास से गृहीत होते हैं। सामाजिक या नैतिक समस्याओं को समस्या नाटक में उठाया जाता है जबकि विचार प्रधान नाटक का लक्ष्य बौद्धिक आनन्द प्रदान करना होता है। ऐसे नाटक भावक–समाज के भावों का कम ही स्पर्श करते हैं। शिक्षाप्रद या प्रचारात्मक नाटक धर्ममत, राजनैतिक, साम्प्रदायिक या किसी पक्ष विशेष के सिद्धान्तों का प्रचार अधिक करते हैं। प्रतीकात्मक नाटकों में विचारों या भावों का प्रतिनिधित्व पात्रों के माध्यम से किया जाता है। इनके द्वारा मानव–मन की आन्तरिक भावनाओं, संघर्षों या भाववेगों का प्रतीकों के माध्यम से चित्रण किया जाता है।

17.3.5 नाटक : उत्पत्ति–'नाटक' एक प्राचीन विधा है। इसके बीच किस रूप में पल्लवित हुए इस सम्बन्ध में धार्मिक तथ्य लौकिक दो मत प्रचलित हैं। धार्मिक मतानुसार दैवी उत्पत्ति तथा वेद और रामायणादि पर आधारित मत मान्य है। दैवी उत्पत्ति मतानुसार ब्रह्मा ने ऋग्वेद से कथा, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्व वेद से रस ग्रहण कर पंचम वेद नाट्यवेद की रचना कर उसका ज्ञान आचार्य भारत को दिया। दशरूपक में कहा गया है :

उद्धत्योद्धत्य सारं यमखिलिनिगमान्नाट्यवेदं विरिच–
श्चक्रे यस्य प्रयोगं मुनिरपि भरतस्ताण्वं नीलकण्ठः।
शर्वाणी लास्यमस्य प्रतिपिदमपरं लक्ष्य कः कर्तुमीष्ठे,
नाट्यानां किंतु किंचित्प्रगुणरचनया लक्षणं संक्षिपामि।।

इससे स्पष्ट होता है कि संस्कृत परम्परा में 'नाटक' के दैवी रूप में उत्पन्न माना जाता है।

वेद रामायणादि को लेकर लिए गए मतानुसार बलि या यज्ञ के अवसर पर जो अभिनयात्मक ढंग से मन्त्रोच्चार होता था उसी का परवर्ती काल में नाटक विधा के रूप में विकास हुआ। मैक्समूलर, कै वी. हर्टेल, हरप्रसाद शास्त्री, आदि विद्वान इस मत का समर्थन करते हैं।

लौकिक रूप से नाटकों की उत्पत्ति के सम्बन्ध नाटकों की उत्पत्ति लोक–जीवन में प्रचलित स्वांगों आदि में हुई है। इसमत की कार्नो, हिलेब्रा, पिशेल, रित्रवे आदि ने मान्यता दी है। दैवी और लौकिक के अतिरिक्त कुछ विद्वान नाटकों की उत्पत्ति यूनानी नाट्य कला से भी मानते हैं। पर अधिकांश विद्वान भारत में नाटक की परम्परा को प्राचीन मानते हुए दैवी और लौकिक मत को ही अधिमान देते हैं।

17.3.6 हिन्दी नाटक : विकास–हिन्दी साहित्येतिहास के प्रथम तीनों कालों में आज की प्रचलित नाटक विधा का सर्वथा अभाव रहा। पद्यात्मक तथा वर्णन के रूप में जो कृतियां–विद्यापति कृत पारिजत हरण, लछिराम कृत करुणाभरण, गुरु गोबिन्द सिंह जी कृत विचित्र नाटक, हृदयराम भल्ला कृत हनुमान नाटक, व्रज वासीदास का प्रबोधचन्द्रोदय आदि–नाटक की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। लोक जीवन में स्वांग, नौटंकी, लीला, रास, यक्षगान आदि रूपों में नाट्य परम्परा तो मिलती है पर साहित्यिक विधागत रूप में नाटक का प्रारम्भ भारतेन्दु युग से ही होता है।

आधुनिक युग में हिन्दी नाटक–साहित्य के विकास को भारतेन्दु, प्रसाद तथा तथा प्रसादोत्तर तीन भागों में बांटा जाता है। यद्यपि भारतेन्दु जी के पिता श्री गोपाल चन्द्र गिरधर दास कृत नहुष (1859 ई.) में नाट्य–रीति का पालन मिलता है पर इस विधा का विधिवत प्रचलन भारतेन्दु जी से ही होता है। रामविलास शर्मा जी की मान्यता है कि "भारतेन्दु ने अपने मौलिक और अनूदित नाटकों के जरिये एक साथ कई काम किये। उन्होंने नाटकों द्वारा नई हिन्दी को लोकप्रिय बनाया, पारसी रंगमंच का विरोध किया तथा प्राचीन नाटकों का उद्धार किया।"

भारतेन्दु जी ने नाटक ही नहीं अपितु निजी अध्ययन एवं अनुभव के आधार पर 1883 ई. में हिन्दी नाट्यशास्त्र की रचना भी की। अपने 1868 ई. में संस्कृति विद्या–सुन्दर नाटक का अनुवाद किया। इसके पश्चात् आपने सत्य हरिश्चन्द्र, श्री चन्द्रावली नाटिका, विषस्थ विषमौषधम् भारत दुर्दशा, नीलदेवी, अन्धेर नगरी, प्रेम जोगिनी, सती प्रताप तथा भारत जननी, नाटकों की रचना की। आपके नाटक सामाजिक, राजनैतिक, पौराणिक तथा प्रेम तत्त्व सम्बन्धी है। आपके नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी युगानुरूप अभिव्यक्ति में ही भारतेन्दु के सहयोगियों में श्री निवासदास कृत रणधीर और प्रेममोहिनी, राधाकृष्णदास कृत दुखिनी बाला, पद्मावती, धर्मालाप, किशोरी लाल गोस्वामी कृत मयंक मंजरी, रावकृष्णदेवशरण कृत माधुरी रूपक का उल्लेख साहित्येतिहास ग्रन्थों में मिलता है। इनके अतिरिक्त खड्गबहादुर मल्ल, देवकीनन्दन त्रिपाठी, अम्बिकादत्त व्यास, बलदेव प्रसादमिश्र, लाला काशीनाथ खत्री, कार्तिक प्रसाद खत्री, अन्नतराम पाणें आदि के नाम भी गिनाये जा सकते हैं।

भारतेन्दु जी ने जहां अपने नाटकों में जीवन की व्यापक समस्याओं का चित्रण किया है वहीं अन्य नाटककारों ने भी सामाजिक समस्याओं को उठाते हुए अपने युग का चित्र प्रस्तुत किया है भारतेन्दुयुगीन सामाजिक समस्या प्रधान नाटकों में बाल–विवाह, स्त्री की विवशता एवं दीनता, समाज में शिष्टाचार का ह्रास आदि विषयों को ग्रहण किया गया है। कलात्मक प्रकर्ष का अभाव होते हुए भी उपदेशात्मकता के रूप में इन रचनाओं–दुखिनी बाला, विधवा, विवाह, विडम्बना, कलिकौतुक रूपक, भारत ललना आदि–में राधाकृष्ण दास, देवकीनन्दन त्रिपाठी, तोताराम, प्रतापनारायण मिश्र, खड्ग बहादुर भल्ल आदि ने युगीन सामाजिक समस्याओं को सहृदय सामाजिकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

भारतेन्दु युग में राष्ट्रीय भावना प्रधान नाटकों की रचना भी हुई। इस भाव में भारतेन्दु जी कृत 'भारत दुर्दशा' का नाम लिया जा सकता है। इस प्रकार के नाटकों में खड्ग बहादुर मल्ल कृत भारत आरत, अम्बिकादत्त व्यास का 'भारत सौभाग्य', देवकीनन्दन त्रिपाठी कृत 'भारतहरणं', प्रताप नारायण कृत 'भारत दुर्दशा' जगत नारायण कृत भारतदुर्दिन तथा बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' कृत 'भारत सौभाग्य' का नाम लिया जा सकता है। 'प्रेमघन' जी की रचना इस युग की राष्ट्रीय भावना के ओत–प्रोत प्रतिनिधि रचना कही जा सकती है।

इस युग–विशेष में रोमानी प्रेम–भाव प्रधान नाटकों की झलक भी दिखा देती है। भारतेन्दु कृत 'विद्यासुन्दर' तथा 'चन्द्रावली' में प्रेम की मार्मिक व्यंजना मिलती है। इनके अतिरिक्त श्री निवास दास कृत 'रणधीर–प्रेम मोहिनी', नानक चन्द्र कृ. 'चन्द्रकला', कृष्ण देव शरण सिंह कृत 'माधुरी रूपक', शालिग्राम रचित 'लावण्यमयी सुदर्शन' आदि नाटकों में रोमानी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं।

भारतेन्दु युगीन नाट्य–विधा की सबसे बड़ी सम्पत्ति हास्य–व्यंग्य प्रधान प्रहसन नाटकों के रूप में मिलती है। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'अंधेर नगरी' तथा विषस्यं विषमौषधम जैसी रचनाओं द्वारा भारतेन्दु जी ने जिस विशिष्ट विधा का सूत्रपात किया उसे देवकीनन्दन त्रिपाठी, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, किशोरी लाल गोस्वामी तथा गोपालराम गहमरी ने सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य करते हुए पुष्ट किया। 'जयनारसिंह की', 'कलयुगी जनेऊ', 'बूढ़े मुंह मुहासे', 'चौपट चपेट', लल्ला बाई आदि इस काल के विशिष्ट प्रहसन है।

भारतेन्दु युग में कमलाचरण मिश्र कृत 'अद्भुत नाटक' रतन चंद कृत 'न्याय सभा' तथा शंकरानन्द कृत 'विज्ञान' नाटकों में मानवीय मनोवृत्तियों तथा भावों को जिस प्रकार से प्रस्तुत किया गया है उनमें प्रतीकात्मक पद्धति का दर्शन होता है।

भारतेन्दु युग में पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों की रचना भी हुई है। भारतेन्दु जी की 'चन्द्रावली', हरी हरदत जी का 'महारास', सूर्य नारायण का 'श्यामानुराग नाटिका' इसके उदाहरण ही इसके अतिरिक्त चन्द्र शर्मा तथा कार्तिक प्रसाद खत्री ने 'उषाहरण' प्रसंग को आधार बना नाटकों की रचना की है। देवकीनन्दन खत्री, शीतल प्रसाद त्रिपाठी, ज्वाला प्रसाद मिश्र ने 'सीता बनवास' प्रसंग पर नाटक लिखे हैं। अमर सिंह, महाराणा प्रताप आदि ऐतिहासिक पात्रों को भी चरितनायक के रूप में इस युग के नाटककारों ने प्रस्तुत किया है।

इस युग में संस्कृत, बंगला तथा अंग्रेज़ी में अनुवाद कर नाटकों को भी लोक मानस से परिचित कराया गया। भारतेन्दु जी के अतिरिक्त अनुवाद के क्षेत्र में राजा लक्षमण सिंह, लाला सीताराम, लाला शालिग्राम, नन्दलाल, विश्वनाथ दूबे, ज्वाला प्रसाद मिश्र, शीतला प्रसाद, मथुरा प्रसाद उपाध्याय, बद्रीनारायण, उदितनारायण आदि ने विभिन्न नाटकों का अनुवाद हिन्दी में किया है। इस प्रकार भारतेन्दु युग के हिन्दी नाटककारों ने हिन्दी नाटक के विकास में अपूर्व योगदान दिया है।

भारतेन्दु के पश्चात् आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में द्विवेदी युग का समय आता है। इस काल में नाटकों के शिल्प में कोई खास उपलब्धि दिखाई नहीं देती। पूर्ववर्ती परम्परा के आधार पर राधाचरण गोस्वामी, शिवनन्दन सहाय, गंगा प्रसाद, नारायण सहाय आदि ने पौराणिक संदर्भों को लेकर नाटकों की रचना की। इस विधा में माखन लाल चतुर्वेदी कृत 'कृष्णार्जुन युद्ध' तथा हरी दास माणिक कृत 'पाण्डव प्रताप' लक्ष्मी प्रसाद कृत 'उर्वशी' आदि प्रसिद्ध रचनाएं है। गंगा प्रसाद गुप्त, वृन्दावन लाल वर्मा, कृष्ण प्रकाश सिंह आदि ने ऐतिहासिक पात्रों या घटनाओं पर आधारित नाटकों की रचना की। भगवती प्रसाद, जीवानन्द शर्मा, कृष्णानन्द जोशी आदि ने सामाजिक जीवन के आधार पर वृद्धविवाह, भारत विजय, उन्नति वहां में होगी आदि नाटकों की रचना की।

द्विवेदी युग के मुहम्मद मिया रौनक, मुंशी विनायक प्रसाद, सैयद मेंहदी हसन, आगा मोहम्मद हक्ष आदि ने रोमानी नाटकों की रचना की है। बद्रीनाथ भट्ट, गंगा प्रसाद श्रीवास्तव आदि ने प्रहसनों की रचना इस युग में की है। सदानन्द अवस्थी लाला सीताराम, कविरत्न सत्यनारायण ने विभिन्न भाषाओं में नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया है।

द्विवेदी युग के सन्ध्या काल में जयशंकर प्रसाद की करुणामय, राज्यश्री रचनाएं विशेष उल्लेखनीय हैं क्योंकि द्विवेदी युग के छायावादी काल में प्रसाद जी के सहयोग से हिन्दी नाटक के विकास का एक नया युग प्रारम्भ होता है जिसे हिन्दी नाटक के इतिहास का एक विशिष्ट मोड़ माना जाता है। इसी कारण भारतेन्दु के पश्चात् हिन्दी नाटक के विकास में प्रसाद युग को ही मान्यता मिलती है हिन्दी साहित्येतिहास का छायावादी काल हिन्दी नाटक के इतिहास में प्रसाद युग के नाम से भी जाना जाता है। जय शंकर प्रसाद (सन् 1891–1937) का आगमन हिन्दी–नाट्य–साहित्य में एक युगान्तर प्रस्तुत करता है। "उनके नाटकों से हिन्दी नाट्य साहित्य प्रौढ़ता को प्राप्त करता है।" यह कथन सर्वथा सत्य है क्योंकि बाबू गुलाब राय के अनुसार 'उन्होंने नाटकों में मौलिक क्रान्ति की।' प्रसाद जी ने हिन्दी नाट्य साहित्य मंजूषा को चौदह पूर्ण रत्न प्रदान किए। प्रसाद जी को विशेष सफलता ऐतिहासिक नाटकों की रचना में मिली। उनकी मान्यता थी "मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकांड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है।" सज्जन से ध्रुवस्वामिनी तथा आग्रिमित्र (अपूर्ण) तक के नाटकों में अधिकांश नाटक ऐतिहासिक हैं। इन नाटकों की कथावस्तु महाभारत युद्धोपरान्त से लेकर हर्षवर्द्धन के राज्यकाल तक के भारतीय इतिहास से ली गई है। यह काल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग है। इन

नाटकों में प्रसाद जी ने जिस प्रकार भारतीय संस्कृति के उत्कर्ष का चित्रण किया है उससे नगेन्द्र जी ने उन्हें सांस्कृतिक नाटककार के रूप में अधिमानता दी है। दुर्गाशंकर सिन्धु जी की मान्यता है कि "प्रसाद के सभी नाटकों में देशानुराग का आधिक्य है और उनके अधिकांश पात्रों में बलिदान का उल्लास, राष्ट्र निर्माण का संकल्प तथा उनके प्रयत्नों में सफलता का गौरव है।"

सज्जन, प्रायश्चित, कल्याणी परिणय, करुणालय, यशोधर्मदेव, राज्य श्री, विशारक, अजातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, कामना, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, एक घूंट, ध्रुवस्वामिनी तथा अग्निमित्र (अपूर्ण) प्रसाद जी के नाटक है। प्रसाद जी के अतिरिक्त चन्द्ररात्र भंडारी, भंवरलाल सोनी, हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मीनारायण मिश्र आदि ने ऐतिहासिक नाटकों की रचना की। इस युग में मिश्र जी ने आगे चलकर हिन्दी नाट्य साहित्य को एक नई दिशा दी।

प्रसाद युग में अम्बिका दत्त त्रिपाठी, राम चरित उपाध्याय, गंगाप्रसाद अरोड़ा, गौरी शंकर, वियोगी हरि, गोकुल चंद वर्मा, लक्ष्मीनारायण शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध तथा किशोरी दास वाजपेयी जी ने धार्मिक–पौराणिक नाटकों की रचना की। सामाजिक नाटकों के क्षेत्र में विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, ईश्वरी प्रसाद शर्मा, बैजनाथ चावल वाला, केदारनाथ बजाज, रामेश्वरी प्रसाद, बेचन शर्मा 'उग्र', प्रेमचन्द्र, जमुनादास मेहरा, गोविन्द वल्लभ पंत, छविनाथ पाण्डेय आदि नाटककारों के नाम आते हैं। इस युग में मैथिलीशरण गुप्त, भगवतीचरण वर्मा, उदयशंकर भट्ट जी ने गीतिनाट्य लिखकर नाट्यसाहित्य का संवर्द्धन किया। जी. पी. श्रीवास्तव ने दुमदार आदमी, चाल बेदब, चोर के घर छिछोर आदि नाटकों हास्यव्यंग्य प्रधान नाट्यविधा की धारा को पुष्ट किया। प्रसाद युग में प्रसाद जी का कोमल मानव जीवन के अन्तर्गत चलने वाली सद् एवं असद् वृत्तियों के शाश्वत संघर्ष को मूर्त करने का प्रयत्न करने वाला प्रतीकात्मक नाटक है। ऐसे नाटकों में भगवती प्रसाद वाजपेयी, सेठ गोविन्द दास, कुमार हृदय, शंभुनाथ सिंह तथा लक्ष्मीनारायण लाल जी ने भी छलना, नवरस, नक्शे का रंग, धरती और आकाश तथा मादा कैक्टस लिख कर उल्लेखनीय योगदान दिया।

प्रसाद युग में भी अनूदित नाटकों की परम्परा मिलती है। मैथिलीशरण गुप्त, अतर चंद कपूर, हरदयालु सिंह आदि ने संस्कृत नाटकों का अनुवाद किया है। संस्कृत के अतिरिक्त अंग्रेज़ी, रूसी, फ्रांसीसी आदि भाषाओं के नाटकों के अनुवाद भी हिन्दी में हुए। भारतीय भाषाओं में विशेषकर बंगला भाषा के द्विजेन्द्र लाल राय तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा गिरीश चन्द्र घोष आदि के जनप्रिय नाटकों का अनुवाद भी हिन्दी में हुआ। इस प्रकार प्रसाद युग में हिन्दी नाटक साहित्य विशेष रूप से समृद्ध हुआ।

प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक साहित्य में पूर्ववर्ती नाट्यधाराओं के साथ–साथ एक क्रान्तिकारी परिवर्तन के रूप में **समस्या नाटकों** का विकास भी दिखाई देता है। प्रसादोत्तर–छायावादोत्तर–युग हिन्दी साहित्योतिहास में प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य के साथ–साथ अब इक्कीसवीं सदी के साहित्य के रूप में विभाजित किया जाता है। प्रगतिवाद युग का समय 1938–1943 ई. तथा प्रयोगवाद–युग का समय 1943–1953 ई. माना जाता है। **प्रगतिवाद–युग** में हिन्दी नाटक रंगमंच और जीवन के यथार्थ के साथ जुड़कर नयी दिशा की ओर उन्मुख हुआ। इस युग में उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने नाटक को रोमांस के कटघरे से मुक्त करवा उसे आधुनिक भाव बोध के साथ जोड़ा। सेठ गोविन्द दास, लक्ष्मी नारायण मिश्र, उद्यशंकर भट्ट, जगन्नाथ दास मिलिन्द नाटककार भी इस युग के उल्लेखनीय नाटककार ही **प्रयोगवाद युग** में नाटककारों ने आधुनिक जीवन की जटिलता को अपना कथ्य का आधार बनाया है।

इस युग के नाटककारों रूढ़ियों से मुक्त जीवन दृष्टिकोण को लेकर लोकमानस सम्मुख प्रस्तुत हुए है। विष्णु प्रभाकर, जगदीश चन्द्र माथुर, गिरिजाकुमार माथुर, हरि कृष्ण प्रेमी, उदय शंकर भट्ट आदि ने जीवन की नई दिशा का संकेत अपने नाटकों में किया है। **स्वातन्त्र्योत्तर** हिन्दी नाटक साहित्य में मनोरंजन के विविध माध्यमों के विकास के कारण एक नया परिवर्तन दिखाई देता है। 1947 ई० के बाद 2000 तक के हिन्दी साहित्य में तक नई शती के हिन्दी साहित्य में जो कथ्य और शिल्प की दृष्टि से रचा गया उसका प्रभाव हिन्दी नाटक–विधा में भी दिखाई देता है। "इस युग के साहित्य में युगीन जीवन की अभिव्यक्ति के लिए प्राचीन परिपाटी के स्थान पर नये मानदण्ड अपनाए गए। उन पर जी की इस उक्ति का दर्शन कोणार्क, अंधायुग, आषाढ़ का एक दिन आदि नाटकों में दिखाई देता है इस युग के नाटककारों ने सामाजिक युग से जुड़े रंग तत्वों को विशेष अधिमानता दी। इस समय के नाटकों में लोक कथा की ओर झुकाव के साथ–साथ नयी तकनीकों का प्रयोग भी दिखाई देता है"

प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक परम्परा में **पौराणिक** सन्दर्भों को लेकर उदयशंकर भट्ट, चतुरसेन शास्त्री श्रीमती तारा मिश्रा, हरी शंकर सिन्हा आदि ने नाटकों की। रचना की ऐतिहासिक सन्दर्भों को लेकर श्यामाकान्त पाठक, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, कैलाश नाथ भटनागर, परिपूर्णानन्द, वृन्दावन लाल वर्मा, हरि कृष्ण प्रेमी, रामकुमार वर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय है। प्रसादोत्तर ऐतिहासिक नाटक परम्परा में उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण सिंह, वृन्दावन लाल वर्मा, जगदीशचन्द्र माथुर का प्रमुख स्थान है। **समस्या प्रधान** नाटक लेखकों में प्रेमसहाय सिंह, भगवती प्रसाद वाजपेयी लक्ष्मी नारायण सिंह, सूर्य नारायण शुक्ल, पृथ्वी नाथ शर्मा आदि द्वारा नाटकों के सामाजिक और पारिवारिक जीवन को अनेक समस्याएं उठायी गई है। विनोद रस्तोगी के नाटकों में पुराने मूल्यों का विघटन दिखाई देता है।

नये युग में नाटक बुद्धिवादी दृष्टिकोण से लिखे गए हैं। आज का नाटककार कृत्रिमता, आडम्बर, पाखंड और खोखले आदर्शों का साथ न देकर स्वतन्त्र नैसर्गिकता को प्रमुखता देते हुए नाटक लिख रहा है। पिछली सदी के उत्तरार्द्ध में साठोत्तरी समय में प्रसारण सुविधाओं के विस्तार से जिन नाटककारों की विशिष्टता के साथ रेखांकित किया जाता है उनमें मोहन राकेश और धर्मवीर भारती का नाम विशेष है। इनके अतिरिक्त भीष्म साहनी, मणिमधुकर, शंकर शेष, विपिन अग्रवाल, लक्ष्मीकांत वर्मा, सुरेन्द्र वर्मा आदि ने जो कथ्य शिल्प और मंचीय स्तर पर जो प्रयत्न किए हैं उनमें रंगमंच के साथ–साथ सामाजिक युग में जुड़े रंग तत्वों से पूर्ण नाटक हिन्दी जगत् में प्रस्तुत हुए हैं।

सन् 1970 ई. के पश्चात् हिन्दी नाटक विधा में प्रतीकात्मक ढंग से सामाजिक विडम्बनाओं पर व्यंग्य प्रदर्शन का रूप ज्ञानदेव अग्निहोत्री द्वारा शुतुरमुर्ग से माना जाता है। विपिन कुमार (अग्रवाल अमृतराय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि ने नाटकों द्वारा सामाजिक और राजनीतिक अन्याय के विरुद्ध एक साधारण आदमी की असाधारण खीज और गुस्से को प्रस्तुत किया है। लक्ष्मीकांत शर्मा ने अपने नाटक रोशनी एक नदी हैं में एक सार्थक तलाश में लगे इंसान की ओर संकेत किया है। दया प्रकाश सिन्हा, लक्ष्मीरनारायण लाल, सुशील कुमार सिंह, हमीदुल्ला, नरेन्द्र कोहली आदि ने इस समय में अपने नाटकों द्वारा लोक मानस के भावों को अभिव्यक्ति दी है।

आज हिन्दी नाटक में जीवन का कोई क्षेत्र अछूता नहीं रहा। पौराणिक और ऐतिहासिक प्रसंगों की नयी दृष्टि से अभिव्यक्ति, सामाजिक युग के औद्योगिक विकास के अभिशाप और आर्थिक विषमताओं से टूटते जीवन मूल्यों और विघटित मानवीय सम्बन्धों की सशक्त अभिव्यक्ति आज के प्रयोगधर्मी नाटकों में मिलती है।

आज के **सामाजिक** हिन्दी नाटकों में सुशील कुमार सिंह, दयाप्रकाश सिन्हा, सुरेन्द्र वर्मा, मृदुला गर्ग, बृजमोहन शाह आदि ने सामाजिक–राजनीतिक सन्दर्भों को कथ्यानुभव के नये मुहावरें में ढाल कर प्रस्तुत किया है। ऐतिहासिक सन्दर्भों में **मिथकीय** दृष्टि से पारम्परिक मिथकों के नये प्रयोग लक्ष्मी नारायण लाल, जयशंकर त्रिपाठी, ललित सहगल, सुरेन्द्र वर्मा आदि के नाटकों में दिखाई देते हैं। **राजनीतिक** समस्याओं को लेकर शरद जोशी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, भीष्म साहनी, स्वदेश दीपक, रमेश उपाध्याय आदि ने नाटक लिखे हैं। नये युग के साथ विसंगतियां भी खासी जुड़ गई है। इस दृष्टि से **असगंत–एसर्ड** नाटक भी हिन्दी नाटककारों द्वारा लिखे गए हैं। ऐसे नाटकों में व्यवस्था का विरोध दिखाई देता है। स्वप्न या फंतासी में लेखकों ने हरकत भाषा में भावों की विशिष्टता को उकेरने का सफल प्रयास किया है। मुद्राराक्षस, विपिन कुमार अग्रवाल, ब्रजमोहन शाह, शंकर शेष, कवि मधुकर, वियु कुमार आदि ने नाटकों में इसे देखा जा सकता है। **काव्यनाटकों** में वीरेन्द्रनारायण, रामेश्वर सिंह कश्यप, विनोद रस्तोगी, चन्द्रशेखर, हंसकुमार तिवारी आदि ने उल्लेखनीय योगदान दिया है।

नुक्कड़ नाटक भी आज जननाट्य मंच द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है। कन्नड़, मराठी, बंगला आदि भारतीय भाषाओं से हिन्दी में नाटकों का अनुवाद भी हुआ है। आज हिन्दी नाटक का जो रूप दिखाई देता है उसमें समग्र जीवन की धड़कन सुनाई देती है। आज हिन्दी नाटक की अपनी परम्परा व पहचान है उसे शैली या शिल्प की दृष्टि से किसी अन्य दृष्टि की ओर देखना नहीं पड़ता।

भारतेन्दु युग से लेकर आधुनिक हिन्दी नाटक के विकास में विविधता के दर्शन होते हैं। पर जो रूप आज इस विधा का है उससे स्पष्ट होता है कि यह हिन्दी की एक सशक्त विधा है और इसमें मानवीय संवेदना की युगानुरूप भावना की प्रस्तुति हो रही है।

17.5 कठिन शब्द

1 काव्य नाटक 2 विविधता 3 मानवीय संवेदना 4 युगानुरूप 5 विशिष्टता
6 जटिलता 7 नैसर्गिकता 8 मनोवृत्ति 9 प्रौढ़ता 10 व्यंजन

17.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न – नाटक की परिभाषा देते हुए इसके तत्वों पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – नाटक की उत्पत्ति कहाँ से हुई? स्पष्ट करते हुए इसके विभिन्न भेदों पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

17.7 पठनीय पुस्तकें

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ० नगेन्द्र

2 हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

3 हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामसजन पाण्डे

4 आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ – नामवर सिंह

5. आधुनिक हिन्दी साहित्य – विकास के विविध आयाम – पुष्पपाल सिंह

6. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका – लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

7. हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी – नंद दुलारे बाजपेयी

8. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ० बच्चन सिंह

.....

हिन्दी कहानी : उद्‌भव और विकास

18.0 रूपरेखा

18.1 उद्देश्य

18.2 प्रस्तावना

18.3 हिन्दी कहानी : उद्‌भव और विकास

18.3.1 कहानी और उसके पर्याय

18.3.2 कहानी : परिभाषा

18.3.3 कहानी : तत्व

18.3.4 कहानी : भेद प्रकार

18.3.5 घटना का कथानक प्रधान

18.3.6 वातावरण प्रधान

18.3.7 हिन्दी कहानी : विकास यात्रा

18.4 सारांश

18.5 कठिन शब्द

18.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

18.7 पठनीय पुस्तकें

18.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप

– गद्य साहित्य की विद्या 'कहानी' की व्युत्पति एवं विकास को जानेंगे।

– कहानी के तत्वों को जानेंगे।

– कहानी के भेद एवं किसके आधार पर उनके भेद किए जा सकते है इसे समझेंगे।

– कहानी का विकास कैसे हुआ जानेंगे।

18.2 प्रस्तावना

माँ कह दे एक कहानी!
बेटा समझ लिया क्या तुमने,
मुझको अपनी नानी।
कहती है मुझसे यह चेटी,
तू मेरी नानी दी बेटी,
वह माँ लेटी ही लेटी
इक राजा था इक रानी,
माँ कह दे एक कहानी।।

मैथिलीशरण गुप्त जी की यह पंक्तियाँ कहानी की पुरातनता को स्पष्ट करती है। इस सन्दर्भ में दुर्गाशंकर मिश्र जी की मान्यता है कि "वस्तुतः कहानी कहने और सुनने की प्रवृत्ति मनुष्य में अत्यंत प्राचीन है।" सुरेश चन्द्र गुप्त भी मानते हैं कि "कथा के श्रवण और तदनन्तर अपने परिचित समाज में उसके प्रसार के प्रति मनुष्य प्रारम्भ से ही विशेष प्रयत्नशील रहा है।" इसका प्रारम्भ तब से माना जा सकता है जब सामाजिकता के प्रारम्भ में मनुष्य को किसी वस्तु या घटना का विवरण दूसरे को सुनाने की आवश्यकता प्रतीत हुई होगी। अपने मनोभावों, अनुभवों या मान्यताओं को दूसरे तक पहुँचा, अपने अनुभव से दूसरों को परिचित कराने के उद्देश्य से जिस विधा का जन्म हुआ उसे ही परवर्ती काल में 'कहानी' के नाम से जाना गया। वस्तुतः कहानी आत्माभिव्यक्ति के रूप में एक ऐसी साहित्यिक विधा है जो विभिन्न परिस्थितियों, भावों तथा विचारधाराओं का रोचक परिचय देने के साधन के रूप में मानव–समाज में न जाने कब से किसी न किसी रूप में प्रचलित है।

18.3.1 कहानी और उसके पर्याय– हिन्दी गद्य की अधिकांश विधाओं की भाँति प्रचलित रूप में कहानी भी हिन्दी साहित्येतिहास के आधुनिक युग की देन है। इसको कथा, आख्यायिका, गल्प, किस्सा प्रभृति अभिधानों से जाना गया। आख्यायिका का अर्थ अमरकोष के अनुसार 'आख्यायिकोयलब्धार्था' अर्थात् जिसका विषय ज्ञात या सत्य ही कहा गया है। यह ऐसी कहानी, वृतांत्त या किस्सा है जो पुरावृत्त कथन के रूप में मान्य है। सीमित अर्थ में जहां यह शब्द ऐतिहासिक पूर्व वृत्त कथा का द्योतक है वही व्यापक अर्थ में किसी भी प्रकार की कहानी को संकेतित करता है।

कथ् धातु से व्युत्पत्त 'कथा' शब्द 'जो कहा जाए' को संकेतित करता है। इस रूप में कहने वाले के साथ ही सुनने वाले की स्थिति भी सम्मिलित हो जाती है। जो कुछ भी कहा जाए कथा के अन्तर्गत नहीं आता। धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार "कथा का विशिष्ट अर्थ हो गया है किसी ऐसी कथित घटना का कहना, वर्णन करना जिसका निश्चित परिणाम हो।" कथा की उत्पत्ति उस समय हुई होगी जब किसी वस्तु या घटना का विवरण दूसरे को सुनाने अथवा दूसरे तक पहुँचाने की आवश्यकता मनुष्य को हुई होगी। एतदर्थ विवरणात्मक रूप में ही कथा का प्रारम्भ हुआ होगा। इस विवरण के वर्णन में कहने वाले की स्वानुभूति की संवेदना का योग भी होता है यह "बाह्य वस्तु न रहकर, कहने वाले की आत्माभिव्यक्ति के रूप में प्रकट होते है, अतः उनका समावेश साहित्य के अन्तर्गत हो जाता है।" ऐसी मान्यता पं. बुद्धिनाथ झा की है। अपने विचार को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं "कथा–साहित्य का अभिप्राय ऐसे वाङ्मय से है, जिसमें कल्पना या अनुभूति, रूप–प्राप्ति की भावना से अनुरंजित होकर, कृत्रिम या यथार्थ पात्रों को उपलब्ध करके, आप ही अभिव्यक्त होती है।"

'गल्प' शब्द बंगला साहित्य का है जो लघुकथा का द्योतन कराता है। लघु कथा का विकास दृष्टान्तों के रूप में हुआ है जिनमें नैतिक और धार्मिक सुर प्रमुख होते थे। इस प्रकार के दृष्टान्तों का प्रचुर प्रयोग वैदिक साहित्य तथा परवर्ती बौद्ध जातकों, पंचतंत्र हितोपदेश आदि में मिलता है। बंगला साहित्य के यह शब्द आंग्ल शार्ट स्टोरी (Short story) के पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुआ। इसी आंग्ल शब्द का हिन्दी पर्याय आधुनिक काल में कहानी के रूप में प्रचलित है। 'किस्सा' का अर्थ है कहानी। आज हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक प्रचलित शब्द है। यह एक ऐसी साहित्यिक विधा है, जो हिन्दी साहित्य कोश (भाग–1) के अनुसार "बंगला के माध्यम से पाश्चात्य साहित्य से आया है। अंग्रेज़ी में जिसे 'शार्ट स्टोरी'" कहते है, वही बंगला में 'गल्प' तथा हिन्दी में 'कहानी' नाम से प्रचलित है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी के अनुसार "कहानी कहने की प्रथा कोई नई चीज़ नहीं है पर कहानी नामक नया साहित्य आधुनिक युग की देन है। यह भी प्रेम और यातायात के नवीन साधनों की सहायता से विकसित हुआ है और लोकप्रिय बना है।"

18.3.2 कहानी : परिभाषा–आधुनिक हिन्दी गद्य की समर्थ व लोकप्रिय विधा के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए कई प्रकार से परखते हुए विद्वानों ने इसकी परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं। अपने गतिशील रूप के कारण पाश्चात्य व बंगला साहित्य से प्रभावित इस विधा को एडगर एलन पो ने पाठक पर प्रभाव डालने के लिए एक ही बैठक में पढ़ा जाने वाला वर्णन माना है "A short story is narrative short enough to be read in a single sitting, written to make an impression on the reader" पाश्चात्य मनीषी हडसन इसमें 'चरित्र की अभिव्यक्ति' को प्रमुखता देते हैं। सर ह्यूवाल पोल ने कहानी को घटना प्रधान मानते हुए इसमें आकस्मिकता का होना आवश्यक माना है।" उसमें घटनाओं का क्षिप्रगति के साथ अप्रत्याशित विकास होता है, जिसके मूल में कौतूहल, चरम बिन्दु और सन्तोषजनक अन्त की स्थिति रहती है। एलरी सिजविक महोदय की मान्यता है कि "A short story is just like a horse race. It is the start and finish which count most." हिन्दी मनीषियों ने भी इस विधा को समझते हुए परिभाषित किया है। बाबू श्यामसुन्दर दास ने "आख्यायिका के रूप में इसको "एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को लेकर लिखा गया नाटकीय आख्यान" माना है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की मान्यता है कि : "घटनात्मक इकहरे चित्रण का नाम कहानी है।" साथ ही उन्होंने 'रस' को इसका आवश्यक गुण माना है। बाबू गुलाब राय के अनुसार "छोटी कहानी एक स्वतः पूर्ण रचना है जिसमें एक तथ्य या प्रभाव को अग्रसर करने वाली व्यक्ति–केन्द्रित घटना या घटनाओं के आवश्यक, परन्तु कुछ–कुछ अप्रत्याशित ढंग से उत्थान–पतन और मोड़ के साथ पात्रों के चरित्र पर

प्रकाश डालने वाले कौतूहलपूर्ण वर्णन हो।" ललिता प्रसाद शुक्ल ने कहानी को "घटना या चरित्र विशेष का संक्षिप्त रस युक्त चित्रण है।"

हिन्दी कहानी विधा के पुरोधा मुंशी प्रेमचन्द्र ने कहानी विधा के सन्दर्भ में कहते हुए कहानी को एक "ऐसी रचना माना है जिसमें जीवन के किसी एक अंग या मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा–विकास सब उसी एक भाव की पुष्टि करते हैं।" उपन्यास भी कथा साहित्य का ही एक रूप है इस दृष्टि से कहानी एक गमला है, जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है"–कहते हुए उपन्यास को विस्तृत तथा कहानी को संक्षिप्त पर तीक्ष्ण प्रभाव वाली माना है।

हिन्दी कहानी के रचना–विधान पर विचार करते हुए जगन्नाथ प्रसाद शर्मा मानते हैं कि "कहानी गद्य–रचना का कथा–सम्पृक्त वह स्वरूप है जिसमे समाज लघु–विस्तार के साथ एक ही विषय अथवा तथ्य का उत्कृष्ट संवेदन इस प्रकार किया जाए कि वह अपने में सम्पूर्ण हो और उसके विभिन्न तत्व एकोन्मुख होकर प्रभावान्विति में पूर्ण योग दे सके।"

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि कहानी मानव की किसी एक विशेष परिस्थिति, अनुभूति अथवा मनः स्थिति को सौन्दर्य और रसमय भाव से स्पष्ट करने वाली गद्य–विधा है। यह छोटे आकार वाली ऐसी गद्य–रचना है जिसमें जीवन की स्थिति का प्रभावपूर्ण वर्णन होता है। इसका प्रभाव अपनी तीव्र गत्यात्मकता से सहृदय सामाजिक के भावों को उद्वेलित करने में समर्थ होता है।

18.3.3 कहानी : तत्त्व–कहानी में हिन्दी कथा के तत्त्वों के अनुरूप छः तत्व होते हैं। यद्यपि कथा–विधा के 'उपन्यास' भेद के भी छः तत्त्व ही होते है पर कहानी की सीमा छोटी होती है अतः उसमें तत्त्वों का समावेश भी तद्नुकूल किया जाता है। कहानी में घटित घटनाएं ही उसकी कथा वस्तु को स्पष्ट करती हैं। घटनाओं को अपने कार्य से गति देने वाले पात्र तथा उनकी परस्पर बातचीत संवाद कहलाती है। कहानी में प्रस्तुत वातावरण का मेल देशकाल तथा परिस्थिति द्वारा स्पष्ट होता है। कहानी प्रस्तुति का ढंग शैली है और लेखक की प्रत्यक्ष रूप में स्वदृष्टिकोण प्रस्तुति कहानी का उद्देश्य होता है।

कहानी का प्रमुख आधार कथानक या कथावस्तु कहलाता है। किसी व्यक्ति के अनुभवों, कार्यकलापों या जीवन–घटनाओं पर ही कहानी लिखी जाती है। कहानी की कथावस्तु में अनावश्यक बातों को स्थान नहीं दिया जाता। यह सादा, संक्षिप्त, सरल व रोचक होना चाहिए। कहानी में जो कुछ कथनीय होता है वही उसका मूल होता है, उसी के आलोक में कहानी की संवेदना जगती है। इसमें स्वाभाविकता और क्रमबद्धता का होना अनिवार्य है। कहानी के कथानक में जीवन की वास्तविकता का प्रभावी होना आवश्यक है क्योंकि "जीवन और समाज से हटकर कहानी का कोई अस्तित्व" वेद प्रकाश जुनेजा स्वीकार नहीं करते। विजय वेदालंकार की मान्यता है कि "कहानीकार संसार में व्याप्त सुख–दुखादि भाव या संवेदना पर दृष्टि रखते हुए उनमें से किसी भी भाव को ग्रहण करने में समर्थ है।" कहानीकार मात्र बाह्य–पक्ष का ही चितेरा नहीं होता वह मानव मन की अन्तःग्रन्थियों से भी भाव ग्रहण करता है। प्रसिद्ध कहानीकार सुदर्शन की मान्यता है "वर्तमान युग का कहानी–लेखक बाहर का कहानी–लेखक नहीं, अन्दर का कहानी–लेखक है। दुनिया को देखने वाले बहुत हो चुके हैं, अब दिल और घर को देखने वालों की आवश्यकता नहीं।"

कहानी की कथावस्तु में अनावश्यक विस्तार नहीं होना चाहिए। आल ब्राइट महोदय की मान्यता है : "The story should conclude unless there is a special reason, why it must not" कहानी की कथावस्तु या कथानक में संक्षिप्ता के साथ–साथ प्रवाह, संवेदना, स्वतः पूर्णता, मौलिकता, रोचकता आदि का प्रमुख रूप से होना आवश्यक है। इन गुणों के साथ ही संभवता का होना भी आवश्यक हो यह ऐसा गुण है जिससे कल्पित होते हुए भी कहानी की कथावस्तु सत्य–सी प्रतीत होती है, घटित न होते हुए भी घटने की संभावना से संयुक्त रहती है।

कहानी के कथा सूत्रों को प्रस्तुत करते समय एक निश्चित क्रम के निर्वाह की आवश्यकता होती है। इन्हें प्रारम्भ, आरोह–विकास, चरम सीमा तथा अवरोह–समाप्ति चार सोपानो के साथ कौतूहल के रूप में जाना जाता है।

कहानी के शीर्षक और प्रारिम्भक अनुच्छेदों में रोचकता/कौतूहल का होना अनिवार्य है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी ऐसा होने पर ही पाठक सहज ही कहानी को पढ़ने के लिए प्रस्तुत होता है। कहानी के पात्रों से परिचय प्राप्ति ही घटना क्रम से परिचय कराती है जिससे पाठक के समक्ष पात्रों के मनोविकास के रूप में कहानी के कथ्य का आरोह रूप स्पष्ट होता है। इसी विकास के साथ कथावस्तु आगे की ओर गतिमान होती है। कथानक के सौन्दर्य का चरम रूप कहानी कथ्य में उस समय उपस्थित होता है जहां पाठक कथा क्रम के प्रति उत्सुकता के भाव से उसमें लीन होता है और अंत क्या होगा ? इसकी आशा–आशंका के बीच अपनी मानसिकता को उलझता हुआ पाता है। चरम के अभाव में कथावस्तु निष्प्राण सी प्रतीत होती है, इस कारण इसका होना कथानक के लिए आवश्यक है। कथानक के सौन्दर्य का उद्‌घाटन होने के पश्चात् कहानी अवरोह की ओर उन्मुख हो जाती है। इस अवरोह समाप्ति में कहानीकार उस कहानी में प्रस्तुत अपने दृष्टिकोण का संकेत भी दे देता है। आधुनिक काल में चरम की स्थिति पर ही पाठक को चमत्कृत करते हुए कहानी की समाप्ति कर दी जाती है। कहानी की कथावस्तु में विशेष प्रकार के मोड़ों से शाखा–प्रशाखा लाने के लिए स्थान नहीं होता। इस कारण इसकी गति में एक तेज़ धारा की गति होती है।

मनोविज्ञान और यथार्थ चित्रण को साकार करने के लिए कहानी का दूसरा तत्व पात्र और उनका चरित्र–चित्रण विशेष स्थान का अधिकारी ही कहानी के छोटे आकार के कारण इसके पात्रों की संख्या भी सीमित होती है। पात्र के सर्वाधिक प्रभावपूर्ण पक्ष, और उसके व्यक्तित्व के सर्वाधिक पुष्ट तत्व की झलक ही कहानी में दिखाई जाती है। कहानी के पात्रों का सजीव होना आवश्यक है साथ ही कहानीकार उनके चरित्रों को संक्षिप्त, स्पष्ट और संकेतात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। कहानी के पात्रों का चरित्र–चित्रण कहानीकार वर्णनात्मक, संवाद, सूक्ष्म सांकेतिक व अवान्तर कथानक प्रणालियों द्वारा करता है।

वर्णानात्मक प्रणाली प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक प्रणाली है। इसमें लेखक स्वयं पात्रों के चरित्र पर वर्णन के माध्यम से प्रकाश डालता है। संवाद प्रणाली के अन्तर्गत पात्रों के पारस्परिक संवादों द्वारा कथा के विकास के साथ पात्र के चरित्र का स्पष्टीकरण किया जाता है। इस रूप में कथाक्रम में नाटकीयता का प्रभाव दिखाई देता है।

वर्णनात्मक प्रणाली से अल्प सूक्ष्म सांकेतिक प्रणाली में पात्रों की चारित्रिक कृतियों के उल्लेख से पात्रों के चारित्रिक गुणों का बोध होता है। इस रूप में लेखक व्यंजना के माध्यम से पात्र की मानसिकता का सूक्ष्म रूप से प्रस्तुतिकरण करता है।

अवान्तर–प्रणाली के अन्तर्गत लेखक मुख्य कथानक के साथ छोटी–छोटी घटनाओं को जोड़ते हुए पात्रों के चारित्रिक रूप को स्पष्ट करता है।

कहानी में कथावस्तु के साथ–साथ चरित्र–चित्रण को गति प्रदान करने के लिए कथोपकथन भी कहानी का अनिवार्य तत्व है। इसे पात्रों के मध्य पारस्परिक संवाद के रूप में माना जाता है। कथोपकथन या संवाद में रोचकता, सजीवता और स्वभाविकता की ओर विशेष ध्यान दिया जाना आवश्यक है। पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए ये कथा के विकास में भी सहायता देते हैं। कहानी के संवादों का संक्षिप्त, सजीव, चमत्कारपूर्ण एवं परीस्थिति के अनुकूल होना आवश्यक है। कथोपकथन का कलात्मक होना पाठक पर प्रभाव डालने में समर्थ होता है। कथोपकथन में संगति लाने के लिए यह आवश्यक है कि वे पात्र, वातावरण, स्थान और समय के अनुकूल हो।

देशकाल तथा वातावरण की कहानी में भी अपेक्षा रहती है। भले ही कथा साहित्य के उपन्यास रूप में इसके लिए पर्याप्त स्थान होता है पर कहानी के संक्षिप्त वस्तु प्रस्तुति–विधा होने के कारण इसको विस्तार से नहीं अपितु सांकेतिक व संक्षिप्त रूप में ही निभाती है। कहानी में देश, काल और वातावरण का निर्वाह पात्रों की मानसिक स्थिति के अनुरूप होना चाहिए। पात्रों के वार्तालाप, वेशभूषा और रीति रिवाज का वर्णन इसी तत्व के अन्तर्गत आते हैं।

कहानी की भाषा सरल और सुबोध होनी चाहिए। यदि भाषा सरल व सहज होती है तो सामान्य पाठक तक के ध्यान को भी अपनी ओर खींच सकने में समर्थ होती है। मुहावरों के प्रयोग से कहानी में सजीवता व स्वाभाविकता आ जाती है। भाषा चित्रमय और प्रवाहपूर्ण होने के साथ–साथ पात्रानुकूल प्रयुक्त होनी चाहिए। कहानी की कथन–शैली लेखक द्वारा अपनायी गई विशिष्ट प्रणाली होती है। शैली ही लेखक के कथ्य को सम्प्रेषित करने का प्रबल साधन है। शैली के अन्तर्गत भाषा की स्पष्टता, अलंकारिकता, वाक्य रचना, शब्द शक्ति विशेषकर लक्षणा तथा व्याख्या सभी का होना आवश्यक है।

कहानी की भाषा–शैली कहानी को प्रभावपूर्ण बनाने का साधन है। अतः इसका गागर में सागर भरने वाला गुण अपेक्षणीय है। विषय वस्तु और शैली का घनिष्ठ सम्बन्ध है, अतः लेखक अपने कथ्य के अनुरूप ही वर्णनात्मक या विवरणात्मक शैली का चयन करता है।

वर्णनात्मक में किसी प्राकृतिक दृश्य का वर्णन या स्थायी गुण का चित्रण होता है। विवरणात्मक में घटना चक्र और मानवीय अवस्थाओं का चित्रण किया जाता है। विवरण द्वारा लेखक अपने कथ्य के प्रति पाठक के मन में उत्सुकता बनाए रख कर कहानी के कथानक को गति देता है।

शैली की स्वाभाविकता कहानी का प्राणतत्व है। भगीरथ मिश्र जी की मान्यता है "संक्षिप्त और स्वाभाविक शैली कहानी–कला का आवश्यक अंग है। शैली पर लेखक की छाप होती है, जिससे उसके आदर्श, विचार और अध्ययन की झलक मिलती है। कहानी में वर्णानात्मक तथा विवरणात्मक शैली के अतिरिक्त संलाप, आत्म चरित्र, पत्र, डायरी शैली का प्रयोग भी मिलता है संवादशैली में कहानी की कथा अहं चरित्रों का विकास कथोपकथनों/संवादों के माध्यम से किया जाता है। इस शैली में कहानी के कथानक में नाटकीय सौन्दर्य का विकास होता है। आत्मचरित्त शैली में कहानी का कोई पात्र सारी कथा उत्तम पुरुष (मैं) में कहता है। इस शैली में कथा नायक के अतिरिक्त अन्य चरित्रों का चित्रण प्रायः स्वाभाविक रीति से नहीं हो पाता। पत्र शैली में सारी कहानी पत्रों द्वारा कही जाती है और डायरी शैली

में डायरी के पत्रों से ही सारी कथा योजना होती है। पत्र और डायरी शैली में कथानक को समझना ज़रा कठिन होता है।

साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति कहानी–लेखक के रचना–विषयक दृष्टिकोण का भी विशेष महत्व होता है। वैसे तो कहानी मनोरंजन के लिए कही–लिखी जाती है परन्तु उसमें कोई न कोई उद्देश्य निहित रहता है जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में कहानीकार के कथ्य में छुपा रहता है। कहानी का वैशिष्ट्य इस बात में है कि वह पाठक की अनुभूतियों को उद्‌बुद्ध करती हुई अन्त में उद्देश्य को प्रकट करे। कहानी में जीवन की मार्मिक अनुभूतियों की सहज व्याख्या रहती है। प्रेमचन्द जी की मान्यता है कि "सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी सत्य पर हो।" इससे स्पष्ट है कि कहानीकार का जीवन दर्शन उसके उद्देश्य में निहित रहता है जिसे वह अपनी कहानी के तथ्य, पात्रों के संवादों, चीजों आदि के माध्यम से प्रबुद्ध पाठक वर्ग के सम्मुख प्रस्तुत करता है। कहानीकार का दृष्टिकोण भले ही प्रगतिशील, सुधारवादी या मनोविश्लेषणात्मक या कोई अन्य चाहे जैसा हो पर यह आवश्यक है कि वह समाज के लिए स्वस्थ हो।

आज का युग जीवन की जटिलता का परिचायक है ऐसे रहस्यमय समय में जहां चारों ओर शंकित दृष्टिकोण का बोलबाला है, अविश्वास का भाव मानव–समाज को एक एसे चौराहे पर ले आया है जहाँ सामाजिक दिग्भ्रमित हो ठिठका खड़ा है लेखक वर्ग का दायित्व मानवीय उदात्त भावनाओं की जागृति के लिए और भी बढ़ जाता है। इस दृष्टि से कहानीकार भी मनोरंजन के साथ–साथ एक विशिष्ट उद्देश्य भी कहानी के माध्यम से पाठक–वर्ग के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। यही जीवन दर्शन मानवतावादी भावों का उत्प्रेरक होता है।

उपर्युक्त तत्त्वों के साथ ही कहानी का '**शीर्षक**' भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह कहानी के प्रतिपाद्य, मूलभाव या विचार और रचनाकार की व्यक्तिगत प्रवृत्तियों का परिचायक होता है। इस दृष्टि से प्रतिपाद्‌य बोधता, आकर्षण, विषयानुकूलता, निश्चय बोधता आदि कहानी शीर्षक के प्रमुख गुण माने जाते हैं। शीर्षक भावात्मक, तथ्योद्‌बोधक, इतिवृत्तात्मक और सम्बन्धवाचक होता है। कहानी के शीर्षक और कहानी के कथानक का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित होता है। शीर्षक, कथ्य–नायक, प्रधान घटना या पात्रों की मनोवृत्ति या भावना के आधार पर होता है। वेदप्रकाश जुनेजा के अनुसार "कहानी शीर्षक के आकार का कोई निश्चित नियम नहीं है। एक शब्द से लेकर पाँच–छह शब्दों के समूह या एक वाक्य के रूप में भी शीर्षक हो सकते हैं।"

18.3.4 कहानी : भेद/प्रकार : कहानी जीवन का चित्र प्रस्तुत करती है अतः उसके विषय भी जीवन के पक्षों की विविधता के अनुरूप कई हो सकते हैं। इसी दृष्टि से कहानी विधा के भेदों को विभिन्न विद्वानों ने प्रस्तुत किया है। कुछ लोग घटना, चरित्र, वातावरण तथा भाव प्रधान संज्ञा कहानी के चार भेद करते हैं। कुछ लोग सैद्धान्तिक, ऐतिहासिक, सुधारात्मक, अदभुतरम्य, हास्यपूर्ण, प्रेम, मनोवैज्ञानिक, आंचलिक और बाल जीवन से सम्बन्धित कहानी के भेद रखते हैं। आज तो लघुकथा के रूप में भी कहानी का नया रूप दिखाई देता है। कहानी के रचना लक्ष्य के आधार पर आदर्शवादी और यथार्थवादी भेद भी किए जाते हैं। इस प्रकार कहानी के भेद कहानीकला के तत्त्वों, विषय वस्तु व शिल्प की दृष्टि से किए जाते हैं।

18.3.5 घटना या कथानक प्रधान कहानी के अन्तर्गत घटना, चरित्र और कार्य प्रधान कहानियाँ आती हैं। इन तीनों रूपों में लेखक कहानी में अपनी संवेदनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति करता है। **घटना प्रधान** कहानियों में

घटनाएँ ही कथानक निर्माण में प्रमुख होती है। इस प्रकार की कहानियाँ हिन्दी कहानी के इतिहास की प्रारम्भिक कहानियाँ है क्योंकि इस प्रकार की कहानियों में दैव घटना या संयोग का सहारा लिया जाता है। इन कहानियों के विकास का अगला पड़ाव हिन्दी में कार्य प्रधान कहानी के रूप में दिखाई देता है। इस प्रकार की कहानियों में जासूसी, रहस्यपूर्ण तथा अद्‌भुत कहानियाँ आती हैं।

चरित्र प्रधान कहानियों का मुख्य उद्देश्य चरित्र–चित्रण तथा चरित्र–विश्लेषण होता है। इस दृष्टि से ऐसी कहानियों का मुख्य आधार मनोविज्ञान होता है। ऐसी कहानियां घटनाओं की स्थूलता से चारित्रिक सूक्ष्मता की ओर अधिक झुकी होती हैं। इनमें विशुद्ध व्यक्ति विश्लेषण तथा आत्म–विश्लेषण की प्रकृति दिखाई देती है। ऐसी कहानियाँ ही आगे मनोविश्लेषणात्मक रूप में प्रस्तुत होती हैं।

18.3.6 वातावरण प्रधान कहानी कल्पनालोक की वस्तु न होकर जीवन के वातावरण सापेक्ष्य रूप को प्रस्तुत करती है। सामाजिक दैनिक जीवन के कार्यव्यापार में किसी–न–किसी परिवेश या वातावरण से प्रेरणा ग्रहण करता है। इसी प्रेरणा को कहानी की संवेदना के साथ वातावरण प्रधान कहानी में प्रस्तुत किया जाता है। ऐसी कहानियों में प्रकृति तथा रूप–चित्रण का भाव प्रधान होता है। **सामाजिक कहानियों** में वातावरण–निर्माण उनमें ऐकान्तिक प्रभाव और स्वाभाविकता के साथ सौन्दर्य की अवतारणा होती है, इसी से पाठक के मन पर कहानीकार के उद्देश्य का प्रभाव परीलक्षित होता है। **ऐतिहासिक कहानियों** में इसे एक आवश्यक तत्त्व के रूप में मान्यता दी जाती है, क्योंकि वातावरण के अभाव में ऐतिहासिक कहानियों में स्पष्टता नहीं आ सकती। एक प्रकार से वातावरण ऐतिहासिक परिवेश का प्राण तत्त्व है। इसी से कहानीकार का उद्देश्य स्पष्ट होता है।

भाव–प्रधान कहानी में चरित्र, घटना या कार्य व्यापार पर अधिक बल नहीं होता। ऐसी कहानियों का मुख्य बिन्दु कहानी में निहित भाव होता है। इसी भाव के आधार पर समूची कहानी का ढांचा खड़ा किया जाता है। भाव प्रधान कहानियां प्रायः **प्रतीकवादी** कहानियों का रूप धारण कर लेती हैं। ऐसी कहानियाँ प्रायः सूक्ष्म तत्त्वों तथा भावनाओं को साकार रूप देने में सफल होती हैं। डॉ. लाल की मान्यता है कि "अमूर्त्त विषयों और मनुष्य के अन्तः सौन्दर्य तथा मानसिक संघर्षों के चित्र प्रस्तुत करने में ऐसी कहानियाँ अत्यंत शक्तिशाली सिद्ध होती हैं।"

ऐतिहासिक कहानियां जातीय गौरव, राष्ट्र प्रेम, आदर्श स्थापना और वीर पूजा की भावना को सामाजिक रूप तक पहुँचाने का कार्य करती हैं। इन कहानियों में साधारणतया कथावस्तु की स्पष्टता, बहुलता, चित्रण–वर्णन में भावुकता एवं कवित्वपूर्ण उद्‌भावना, नाटकीय स्थितियों की अवतारणा और संघर्ष का वेग विशेष रूप से सहेजी जाती है।

आधुनिक कहानी कथा का विकास सामाजिकता के प्रतिनिधित्व के कारण **सामाजिक कहानी** के रूप में दिखाई देता है। ऐसी कहानियों में सामाजिकता का प्रत्येक पक्ष इतने यथार्थ रूप में प्रस्तुत होता है जिसमें कहानी जीवन को परखने का सबल साधन बनकर पाठक–वर्ग में लोकप्रिय विधा बनी हुई है। इस वर्ष की कहानियों का उपजीव्य सारा समाज, हर व्यक्ति और इन दोनों की पूरी गतिविधि के भीतर समाया होता है। ऐसी कहानी का प्रत्येक पक्ष मानवीय जीवन से बहुत गहरे से जुड़ा होता है आज के समाज की प्रत्येक मानसिकता ऐसी कहानी में सजीव रूप धारण करती है। सामाजिक कहानियाँ व्यक्तिगत जीवन का पारिवारिक जीवन के साथ–साथ व्यापक सामाजिक जीवन से सम्बन्धित होती है। जहां व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित कहानियों में पात्रों के चरित्र, मनोभाव तथा विश्लेषण के चित्र मिलते है

वहीं पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित कहानियों में परिवार सम्बन्धी समस्याओं के परिवेश में सामयिक एवं परम्परा के संघर्ष–चित्र उभरते हैं। व्यापक समाज के सन्दर्भ में समस्त सामाजिक शक्तियों, संस्थाओं तथा संस्थानों से व्यक्ति की संघर्षमयी कहानियाँ आती हैं।

मनोवैज्ञानिक कहानियों में सर्वथा सजीव और स्वाभाविक पात्रों को कहानीकार आत्मानुभूति के धरातल पर इस रूप में प्रस्तुति करता है कि पाठक का चरित्र से सहज ही साधारणीकरण हो जाता है। ऐसी कहानियों में चेतन पात्रों की मानसिक स्थिति का चित्रण उसके कार्य व्यापारों और कर्म–प्रेरणाओं के अनुकूल किया जाता है। प्रेमचन्द की मान्यता "सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो" – इस प्रकार की कहानियों की महत्ता प्रतिपादित करने में समर्थ है। ऐसी कहानियों में व्यक्ति के स्वभाव का चित्रण प्रमुख होता है। इनके चरित्र साधारण न होकर विशिष्ट होते हैं।

मनोवैज्ञानिक कहानियों के विकास क्रम में **मनोविश्लेषणात्मक** कहानियों की गणना भी होती है। ऐसी कहानियाँ मनुष्य के अन्तर्जगत् की भावनाओं को प्रस्तुत करती हैं। मनोविश्लेषण यह मानता है कि मनुष्य के बाह्य जीवन के सभी कार्य व्यापार उसके अन्तर्जगत् से प्रेरित एवं निर्देशित होते हैं। इसी संश्लिष्ट गूढ़ अन्तर्जगत् को आधार बना कर लिखी गई कहानियाँ मनोविश्लेषणवादी कहानियाँ कहलाती हैं। इन कहानियों में आत्मविश्लेषण, मानसिक ऊहापोह, अवचेतन विज्ञप्ति तथा संकेतों व कार्यों द्वारा भाव पुष्टि का रूप दिखाई देता है।

साहसिक कहानियों में रोमांचकारी कार्यों की स्थापना का दर्शन होता है। जंगल तथा शिकार सम्बन्धी कहानियाँ इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। ऐसी कहानियों में अद्‌भुत यात्राओं का वर्णन अधिक होता है। रोमांस में आदर्श, उदात्त व आधारित प्रेम की स्थापना होती है। जिन कहानियों में इस प्रकार के वर्णन होते हैं उन्हें **रोमांचित** कहानी कहते हैं। इसी प्रकार कार्य प्रधान जहां से ऐय्यारी, हस्त लाघव तथा बुद्धि कौशल का प्रभाव दिखाई देता है उसे **जासूसी कहानी** कहा जाता है।

आजकल विशिष्ट अंचल या क्षेत्र को लेकर **आंचलिक कहानियां** भी लिखी जा रही है। आंचलिकता की सिद्धि के लिए स्थानीय दृश्यों प्रकृति, जलवायु, त्योहार, लोक जीवन में विविध पक्ष और स्थानीय बोली का प्रभाव भी ऐसी कहानियों में दिखाई देता है।

इस प्रकार कहानी के विविध रूप मानवीय भावानुरूप होते हैं। विभिन्न पक्षीय जीवन का चित्र उपस्थित करने वाली इस साहित्यिक विधा के रूप भी उतने ही हो सकते हैं जितने मानव जीवन के चित्र।

18.3.7 हिन्दी कहानी : विकास यात्रा आधुनिक हिन्दी गद्य की एक समर्थ एवं लोकप्रिय विधा 'कहानी' के जन्म और विकास के सम्बन्ध पद्मसिंह शर्मा कमलेश जी की मान्यता है कि इसमें "प्राचीन भारतीय कथा साहित्य, लोक कथाओं और पाश्चात्य कहानियों – तीनों का सम्मिलित योग रहा है।" यद्यपि आधुनिक कहानी प्रत्येक दृष्टि से प्राचीन परम्परा की भारतीय कहानियों से अलग है। जातक कथाएं, सिहांसन बत्तीसी आदि की परम्परा से आज की कहानी का किसी भी दृष्टि से मेल नहीं है। प्राचीन कहानियाँ–कथाएं या आख्यान रूप में धर्म, सम्प्रदाय या नैतिक दृष्टिकोण से युक्त थी जबकि आधुनिक कहानी "जीवन की गूढ़तम परिस्थितियों, अनेक घटनाओं के कार्यों, युग–मानव की बढ़ती हुई आवश्यकताओं, बदलते हुए सांस्कृतिक दृष्टिकोणों तथा युग के समुपस्थित संघर्षों को प्रस्तुत करके न केवल पाठक

को युग और उसकी उलझनों से ही अवगत कराती है, वरन् समष्टि और व्यष्टि के सम्बन्ध और मानसिक वृत्तियों–भूखों और पिपासाओं का भी उद्‌घाटन करके उनका समुचित रूप–चित्र प्रस्तुत करती है।" वेद प्रकाश जुनेजा ने इस प्रकार आधुनिक हिन्दी कहानी के उस स्वरूप को स्पष्ट कर दिया है जो इसे प्राचीन परम्परा से विलगाता है।

हिन्दी साहित्येतिहासों में आधुनिक युग यद्यपि भारतेन्दु युग (सन् 1857 ई. के लगभग) से मानते हैं। वैसे साहित्येतिहास ग्रन्थों में सन् 1857 से 1947 ई. तक के समय के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम से लेकर स्वतन्त्रता प्राप्ति तथा 1947 ई. से अब तक स्वातन्त्र्योत्तर युग दो भागों में भी बांटा जाता है। सन् 1950 ई. से प्रजातंत्रीय व्यवस्था का प्रारम्भ भारत के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना के रूप में मान्य है। स्वतन्त्रता पूर्व के हिन्दी साहित्य को भारतेन्दु, द्विवेदी, स्वच्छन्दतावादी (छायावादी) प्रगतिवादी, तथा प्रयोगवादी भागों में बांटा जाता है। इसमें भी हिन्दी साहित्य के रीतिकाल के अन्तिम चार शताब्दियों सन् 1800–1843 ई. को पूर्व भारतेन्दु या रीति और आधुनिक काल के सन्धि युग के रूप में देखा जाता है। इस काल (सन् 1800–1843 ई.) में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना तथा उसमें सर्वप्रथम श्री सदासुख लाल, सैयद इंशा अल्ला खा, लल्लू लाल तथा सदल मिश्र द्वारा हिन्दी गद्य का विकास हुआ। फोर्ट विलियम कालेज के अतिरिक्त समाज सुधारक आन्दोलनों–ब्रह्मसमाज, आर्य समाज आदि तथा ईसाई मिशनरी प्रचारकों ने भी गद्य के विभिन्न रूपों के विकास में योगदान दिया। सैयद इंशा अल्ला खा ने सन् 1803 के लगभग "रानी केतकी की कहानी" लिखी तो सही पर उसे आधुनिक कहानी का किसी भी प्रकार रूप नहीं कहा जाता। लल्लू लाल जी ने बैताल पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी आदि का हिन्दी में अनुवाद किया। सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' आख्यान लिखा। मुंशी सदासुख लाल जी ने भी प्राचीन श्रीमद्‌भागवत् का अनुवाद किया। सन् 1845 ई. के आसपास राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द ने 'राजाभोज का सपना', 'वीर सिंह का वृतान्त', 'आलसियों का कीड़ा' आदि कथात्मक रचनाएं दी पर उन्हें 'कहानी' नहीं कहा जा सकता। ईसाई प्रचारकों व आर्य समाज के प्रचारकों ने भी कथात्मक रचनाएं लिखी पर उनमें उपदेश व सम्प्रदाय प्रचार की भावना ही अधिक रही। इस प्रकार भारतेन्दु पूर्व युग में आधुनिक कहानी के बीज नहीं मिलते।

विविध हिन्दी गद्य विधाओं के विकास का प्रारम्भिक चरण भारतेन्दु युग (सन् 1857–1900 ई.) से माना जाता है। 19वी. सदी के उत्तरार्थ अंश में यूरोप के लेखकों व बंगला साहित्य के माध्यम से कहानी विधा ने हिन्दी में कदम तो रखे पर इन कदमों की आहट 20वीं सदी के प्रारम्भ में (सन् 1900 ई. के बाद) ही सुनाई देती है। इंशा अल्ला खाँ (रानी केतकी की कहानी) तथा शिव प्रसाद सितारे हिन्द (राजा भोज का सपना) के साथ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न) रोचकता से पूर्ण कृतियाँ थी, पर वे कथा थी कहानी नहीं। इनके साथ ही मुंशी नवल किशोर द्वारा 1880 ई. में सम्पादित 100 कहानियों का संग्रह 'मनोहर कहानी', 1888 ई. में अम्बिका दत्त व्यास की 'कथा कुसुम कलिका' तथा इससे पूर्व 1886 ई. में चण्डी प्रसाद सिंह की 'हास्य रतन' लोक प्रचलित शिक्षा, नीति, हास्य प्रधान कथाएं हैं, जो किसी भी प्रकार आधुनिक कहानी का प्रतिनिधित्व नहीं करती। भारतेन्दु युग में कथाएं या आत्मकथाएं तो थीं पर उन्हें कहानी नहीं कहा जा सकता। साथ ही इस युग में कहानी का महत्त्व भी नहीं दिया गया। भवदेव पाण्डेय का कहना है : "भारतेन्दु युग के एक अत्यन्त प्रतिष्ठित साहित्यकार तथा सम्पादक थे चौधरी बदरीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन'। अगर तद्‌युगीन हिन्दी साहित्य के इतिहास का पुनः सर्वेक्षण दिया जाये तो अस्पष्ट नहीं रहेगा कि 'प्रेमघन' ही भारतेन्दु स्कूल के हेडमास्टर थे। अपने युग की तरफ से जो निर्णय इन्होंने दे दिया, वह भारतेन्दु स्कूल के सभी सदस्यों के लिए मान्य था। हिन्दी–कहानी लेखन का विरोध करते हुए उन्होंने फैसला सुनाया – कुछ परिश्रम स्वीकार कर मस्तिष्क लड़ा विशुद्ध भाषा और भाव के संग विद्या और शिक्षा पाने से भाषा का उपकार सम्भव है, न कि केवल ऐसी कहानियाँ लिख

डालने से जैसा कि लोग प्रायः जबानी कहा करते हैं और जिनके पढ़ डालने के पीछे नेत्रों को कुछ कष्ट होने या समय व्यर्थ जाने के अतिरिक्त पाठकों को और कुछ लाभ न हो ? 'आनन्द कादम्बिनी' पत्रिका में प्रकाशित 'प्रेमघन' जी के विचारों से स्पष्ट हो जाता है कि भारतेन्दु युग में आज की कहानी जैसी विधा के लिए कोई स्थान न था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्वीकार किया है – "अंग्रेज़ी की मासिक पत्रिकाओं में जैसी छोटी–छोटी आख्यायिकाएँ या कहानियाँ निकला करती हैं, वैसी कहानियों की रचना 'गल्प' नाम से बंग भाषा में चल पड़ी थी।" ऐसी कहानियों का प्रारम्भ हिन्दी में सन् 1900 ई. में 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन के साथ प्रारंभ हुआ।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक रूप में जिस गद्य–विधा को 'कहानी' रूप में स्वीकार किया जाता है उसका प्रारम्भ सन् 1900 ई. में 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन के साथ हुआ। सन् 1900 से 1910 ई. तक के कहानी के पहले दशक में प्रयाग से प्रकाशित 'सरस्वती', काशी से प्रकाशित 'सुदर्शन' तथा विलासपुर से प्रकाशित 'छत्तीसगढ़ मित्र' पत्रिकाओं में क्रमशः श्यामसुन्दरदास व महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधव प्रसाद मिश्र तथा रामराव चिचोलकर व माधवराव सप्रे के सम्पादकत्व में विभिन्न कहानियाँ प्रकाशित हुई। कहानी के इस प्रकाशन को भवदेव पाण्डेय 'समय का दबाव' मानते हैं। इस समय में कहानी के प्रारम्भिक रूप 'आख्यायिका' से 'गल्प' होते हुए 'कहानी' बना। प्रारम्भ में जो कथा श्रोता प्रधान थी वही अब कहानी के रूप में पाठ–प्रधान बन गई।

पाठ प्रधान कहानी का पहला प्रमाण क्या था ? यह प्रश्न विभिन्न साहित्येतिहास्कारों ने उठाया है। कहानी विकास के प्रथम पांच वर्षों में (सन् 1900–1905 ई.) में कुछ कहानियाँ तो बंगला, अंग्रेज़ी, फारसी और संस्कृत से अनूदित की गई पर कुछ कहानियाँ मौलिक सी लगती है :

सन्	कहानी	लेखक	पत्रिका
1900	इन्दुमती	किशोरी लाल गोस्वामी	सरस्वती
	सब मिट्टी हो गया	माधव प्रसाद मिश्र	सुदर्शन
	चन्द्रलोक की यात्रा	केशव प्रसाद सिंह	सरस्वती
	अनूठा स्वप्न	वी वी वर्णमाला	सुदर्शन
	आपत्तियों का पहाड़	केशव प्रसाद सिंह	सरस्वती
1901	प्रेम का फुहारा	गिरिजा कुमार घोष	सरस्वती
	मन की चंचलता	माधव प्रसाद मिश्र	सुदर्शन
1902	प्लेग की चुड़ैल	लाला भगवान दास	सरस्वती
	विश्वास का फल	माधव प्रसाद मिश्र	सुदर्शन
	गुलबहार	किशोरी लाल गोस्वामी	सरस्वती
1903	ग्यारह वर्ष का समय	रामचन्द्र शुक्ल	सरस्वती
	पण्डित और पण्डितानी	गिरिजा दत्त वाजपेयी	सरस्वती
1905	तीक्ष्ण छुरी	लक्ष्मीदत वाजपेयी	सरस्वती
	एक शिकारी की सच्ची कहानी	निजाम शाह	

इनके अतिरिक्त कुछ और कहानियाँ चन्द्रदेव से मेरी बात, पति का प्रेम, आदि के नाम भी मिलते हैं। यह कहानियाँ आख्यायिका या गल्प रूप में अंग्रेज़ी या बंगला आख्यायिका या गल्प से प्रभावित अधिक थी। कई विद्वान पं. माधव प्रसाद मिश्र कृत मन की चंचलता, तो कुछ किशोरी लाल गोस्वामी की इन्दुमती को आधुनिक हिन्दी की प्रथम कहानी मानते हैं। कुछ लोग शुक्ल जी की 'ग्यारह वर्ष का समय' को यह गौरव देने की बात करते हैं पर इनमें से अधिकांश अंग्रेज़ी, बंगला या संस्कृत, फारसी में उपलब्ध कथ्य सूत्रों से प्रभावित हैं।

सन् 1906 ई. से 1910 ई. के मध्य हिन्दी कहानी का बदला रूप मिलता है। पं. वेंकटेश नारायण कृत 'एक अशरफी का आय कहानी', यशोदानन्दन अखौरी की 'इत्यादि की आत्म–कहानी', महेन्द्रलाल गर्व की 'पेट की आत्म–कहानी' पार्वती नन्दन कृत 'मेरा पुनर्जन्म' व 'एक के दो दो' तथा राजेन्द्र बाला घोष 'बंगमहिला' कृत 'दुलाईवाली' व 'कुम्भ में छोटी बहू' मधुमंगल कृत 'भुतही कोठरी' तथा वृन्दावन लाल वर्मा की 'राखी बन्द भाई' से वर्णनात्मक शैली की कहानियों का रूप प्राप्त होने लगता है। इनमें विशेष रूप से बंग महिला तथा पार्वती नन्दन की कहानियों में आधुनिक कहानी–विधा के गुण मिलते है। सन् 1909 ई. में जय शंकर प्रसाद जी ने काशी से 'इन्दु' पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया और उसमें उनकी कहानी 'ग्राम' छपी। सन् 1911 ई. में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी की 'सुखमय जीवन' कहानी प्रकाशित हुई और फिर कहानी विधा की धारा एक निश्चित गति से आगे बढ़ने लगी। आधुनिक कहानी का पूरा ढांचा 1907 ई. में प्रकाशित राजेन्द्र घोष, बंग महिला की दुलाई वाली से दिखाई देने लगता है, यद्यपि गोस्वामी, माधव राव सप्रे, रामचन्द्र शुक्ल की रचनाओं में उसके सूत्र अवश्य मिलते हैं पर उनका पूरा निरूपण दुलाईवाली में ही मिलता है।

हिन्दी कथा साहित्य (उपन्यास, कहानी) के ऐतिहासिक विकास रूप में 'प्रेमचन्द' एक ऐसा नाम है जिनके विषय में प्रसिद्ध है कि "हिन्दी कथा–साहित्य में प्रेमचन्द एक ऐसे टीले की तरह हैं जिसके दोनों ओर ढलान है।" इस दृष्टि से हिन्दी कहानी साहित्य के इतिहास को भी 'प्रेमचन्द' का आधार देते हुए, पूर्व प्रेमचन्द युग, प्रेमचन्द युग और प्रेमचन्द पश्चात् युग के रूप में ही माना जाता है। हिन्दी कहानी साहित्य के इतिहास में प्रेमचन्द का समय सन् 1916 ई. में उनकी कहानी 'पंच परमेश्वर' से लेकर 1936 ई. तक का है। इस प्रकार 1900–1916 ई. का काल हिन्दी कहानी का पूर्व प्रेमचन्द काल है और 1936 ई. के पश्चात् प्रेमचन्दोत्तर काल है।

सन् 1900 से 1916 ई. के मध्य हिन्दी कहानी साहित्य में किशोरी लाल गोस्वामी से लेकर चन्द्रधरशर्मा गुलेरी की कहानियाँ आती हैं। 1900 ई. में 'सरस्वती' के प्रकाशन के साथ जिस साहित्यिक विधा को नव गति प्राप्त हुई थी उससे पाठ प्रधान कहानी की ओर सामाजिकों का ध्यान आकर्षित हुआ। 1909 ई. में काशी से इन्दु पत्रिका के साथ जयशंकर प्रसाद जी की भावपूर्ण कहानियों ने इस विधा को एक नई दिशा दी। प्रसाद जी की 'ग्राम' तथा 'रसिया बालम' कहानियाँ भावुकता प्रधान है। इसी समय में 'राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह तथा पारसनाथ त्रिपाठी ने भाव पूर्ण कहानियों की परम्परा को आगे बढ़ाया।' कमलेश जी की मान्यता है कि "इन कहानियों में भावुकता और मनोविज्ञान का अपूर्व सम्मिश्रण था।" पं. विश्वम्भर नाथ जिज्जा की कहानी क्षेत्र में देन उल्लेखनीय है। इस समय में प्रेमचन्द, धनपत राय के नाम से उर्दू में कहानियाँ लिख रहे थे। उनकी कहानियाँ 'जमाना' पत्रिका में छपती थी। 'सरस्वती' में उनकी हिन्दी कहानी 'सौत' 1915 में प्रकाशित हुई। पूर्व प्रेमचन्द युग में भावात्मक रागात्मकता की प्रधानता हिन्दी कहानियों में दिखाई देती है। वातावरण की चित्रोपमता के साथ इस समय में कहानी लेखन में राय कृष्ण दास, विनोद शंकर व्यास, चण्डी प्रसाद हृदयेश, जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' उल्लेखनीय हैं।

पूर्व प्रेमचन्द हिन्दी कहानी में बंग महिला के अतिरिक्त श्रीमती यशोदा देवी की देन भी उल्लेखनीय है। उन्होंने बालोपयोगी तथा महिलोपयोगी साहित्य की रचना की, इसी सन्दर्भ में आपने कुछ ऐतिहासिक पौराणिक आख्यानों को कथा रूप में प्रस्तुत किया। मुक्ता, सुशीला आदि कहानियों में उन्होंने समकालीन सामाजिक वृत्तियों पर प्रकाश डाला है। श्रीमती प्रियम्वदा देवी ने भी इस काल में कहानियां लिखी पर वे आगे प्रेमचन्द युग में भी सक्रिय रही। श्रीमती शारदा कुमारी ने भी सन् 1914 ई. से कहानी क्षेत्र में 'बिहूला' नामक कहानी से कदम रखा।

पूर्व प्रेमचन्द में इस क्षेत्र में कदम रख कर प्रेमचन्द युग में भी चलने वाली लेखिकाओं में कुन्ती देवी, श्रीमती जमनी देवी, श्रीमती जमुना देवी, ठुकुरानी शिव मोहिनी, सुशीला देवी के नाम भी आते हैं। इन सभी की कहानियाँ पारिवारिक व नारी समस्या–बाल विवाह, बाल–विधवा आदि को लेकर लिखी गई हैं।

पूर्व प्रेमचन्द युग की हिन्दी कहानियों में अधिकांशतः घटनात्मकता व आकस्मिकता के तत्वों की प्रधानता है। यद्यपि प्रसाद, पारस नाथ त्रिपाठी, वृन्दावन लाल वर्मा, ज्वालादत शर्मा, राजाराधिकारमण प्रसाद सिंह आदि कहानी लेखक विभिन्न शैलियों का प्रयोग ही कर रहे थे, पर कोई निश्चित आदर्श उनके सामने न था। हां इतना तो निश्चित है कि "हिन्दी कहानी के विकास में महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के सम्पादकत्व में 'सरस्वती' पत्रिका ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी काल में 'जमाना' के धनपतराय मुंशी प्रेमचन्द बने जिन्होंने कहानी को मनोविज्ञान के आधार पर चरित्र प्रधान रचना बनाने का सराहनीय कार्य किया। सन् 1916 ई. में प्रेमचन्द की पंचपरमेश्वर कहानी से हिन्दी कहानी विधाधारा को एक नया मोड़ मिलता है और उसकी गति में एक नया रूप दिखाई देता है जिसे **प्रेमचन्द युग** कहा जाता है।

जून 1916 ई. को सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित प्रेमचन्द की 'पंच परमेश्वर' कहानी से हिन्दी साहित्य की धारा में एक नया मोड़ दिखाई देता है। प्रेमचन्द ने कहानी में घटनाओं से अधिक चरित्र को महत्व दिया। इस चारित्रिक महत्ता को तत्युगीन पाठक वर्ग ने जो अपनापन दिखाया उसमें कहानी विधा को एक नई दिशा मिली। प्रेमचन्द ने कहानी को मनोभावों के साथ जोड़ा। उनकी इस शैली ने उनके समसामयिक कहानी लेखकों को प्रभावित किया। ज्वालादत्त शर्मा, विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक, पदुमलाल पुन्ना लाल बख्शी आदि लेखकों ने चारित्रिक भाव प्रदान कहानियां लिखी। सन् 1918 ई. में काशी से 'हिन्दी गल्प माला' के प्रकाशन ने इस विधा को और भी गति प्रदान की।

प्रेमचन्द ने सौत, पंचपरमेश्वर से लेकर कफ़न तक लगभग 300 कहानियों में समाज के सभी वर्गों को चित्रित किया। प्रेमचन्द के साथ ही बदरीनाथ भट्ट, 'सुदर्शन, चतुर सेन शास्त्री, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र', कृष्णकान्त मालवीय और शिवरानी देवी की कहानियाँ मूल रूप से समाजवादी दृष्टिकोण से प्रभावित रही। वृन्दावन लाल वर्मा इस समय के एक सफल ऐतिहासिक कहानीकार हैं। प्रेमचन्द युग में चरित्र, वातावरण, कथानक तथा कार्य प्रधान कहानियाँ लिखी गई।

जी.पी. श्रीवास्तव, अन्नपूर्णानन्द, बेढब बनारसी, कान्ता नाथ पाण्डेय 'चोंच' ने इस युग में हास्य प्रधान व्यंग्यात्मक कहानियों द्वारा पाठकों को प्रभावित किया।

प्रेमचन्द की कहानियों के साथ–साथ इस युग में जयशंकर प्रसाद की कहानी कला भी अपना महत्त्व रखती है। मूलतः कवि होने के कारण प्रसाद की कहानियों में भाव पक्ष प्रबल है। भावुकता होते हुए भी उनकी कहानियों में

घटनाक्रम चरित्र–चित्रण को अधिमानता दी गई। प्रसाद ने 69 कहानियों की रचना की। अब पहली कहानी 'छाया' व अन्तिम 'सालवती' मानी जाती है। आपकी कहानियाँ भाव प्रधान आदर्शवादी कहानियाँ हैं। उनके पात्रों के अन्तर्भाव बड़ी सफलता से पाठकों का ध्यान खींच लेते हैं। प्रसाद की कहानी कला से प्रभावित उनके सामयिक रामकृष्णदास, चण्डीप्रसाद हृदयेश, विनोद शंकर व्यास, बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन', वाचस्पति पाठक, भगवती प्रसाद वाजपेयी, गोविन्द वल्लभ पंत प्रसिद्ध हैं।

प्रेमचन्द युग के उतरार्द्ध में सन् 1927 ई. के लगभग जैनेन्द्र एक ऐसे विचारक कहानीकार के रूप में हिन्दी जगत् में अवतीर्ण हुए जिन्होंने रूढ़ मान्यताओं पर प्रश्न चिह्न लगा कर पाठक वर्ग को चमत्कृत करते हुए प्रभावित किया। सात भागों में संकलित जैनेन्द्र की कहानियों में व्यक्ति को महत्त्व दिया गया। वेद प्रकाश जुनेजा के अनुसार "उन्होंने व्यक्ति को महत्त्व देकर उसी को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। इसके लिए वे बाह्य से अन्तस की ओर गए।" यहीं से हिन्दी कहानी मनोवैज्ञानिक कहानी के रूप में पाठक वर्ग के सम्मुख प्रस्तुत हुई। ऐसी कहानियों के पात्र अन्तर्मुखी, घात–प्रतिघात और अन्तर्द्वन्द्व से युक्त हैं। जैनेन्द्र की कहानियों का प्रभाव प्रेमचन्दोत्तर काल की हिन्दी कहानी में विशेष रूप से दिखाई देता है। अज्ञेय, इलाचन्द्रजोशी, राम प्रसाद पहाड़ी, भगवती चरण वर्मा, भुवनेश्वर प्रसाद, मोहन लाल महतो, वियोगी, कमला चौधरी व उषा देवी मिश्र ने भी मनोवैज्ञानिक कहानियों की मंजूषा को रख दिया है।

प्रेमचन्द युग के अन्तिम चरण में हिन्दी कहानियों की नई दिशा स्पष्ट होने लगी थी। सुधारवादी युग के होने के कारण प्रेमचन्द प्रायः आदर्शवादी रहे, पर उनका आदर्शवाद जब 'कफन' की यथार्थ भूमि पर खड़ा होता है तो एक परिवर्तन उस युग की आकांक्षा बन कर उभरता है। जैनेन्द्र, यशपाल, इलाचन्द्र जोशी, उपेन्द्र नाथ अश्क आदि कहानियों में इसका सुर सुनाई देना शुरू हो जाता है।

प्रेमचन्द युग में भी कई ऐसी महिलाओं की कहानियाँ मिलती हैं जिन्हें साहित्येतिहासकारों ने आँकने में कंजूसी दिखाई है। कमला बाई किवे ऐसी ही लेखिका हैं। 1935 में उनकी कहानी 'कृष्णा बाई' 'चांद' पत्रिका में प्रकाशित हुई। श्रीमती गोपाल देवी ने बाल मनोविज्ञान का ध्यान रखते हुए बाल कथाएं लिखीं। सुभद्रा कुमारी चौहान के कहानी संग्रह 'उन्मादिनी' तथा 'बिखरे मोती' इस समय में आते हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान की कहानियों में पारिवारिक चित्रों की अवधारणा मिलती है। आपने नारी–जीवन की समस्याओं को अधिमानता दी है।

सन् 1937 ई. से आगे हिन्दी कहानी का प्रेमचन्दोत्तर काल माना जाता है। सन् 1937 से आज के इस समय को 1947 ई. में भारत की स्वतन्त्रता के साथ जोड़ते हुए **स्वतन्त्रता** पूर्ण तथा **स्वातन्त्र्योत्तर** – इन दो भागो में बांटा जा सकता है। स्वातन्त्र्योत्तर काल को भी 1950 ई. से 1999 ई. के बीसवी सदी के उत्तरार्द्ध तथा तत्पश्चात् 2000 से आगे के काल को 21वीं सदी का प्रारम्भिक चरण या डेढ़ दशक के रूप में सम्बोधित किया जा सकता है। यह विभाजन इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि इस समय में समाज की स्थितियों में लगातार परिवर्तन आते गए। स्वतन्त्रता पूर्व के विभिन्न आन्दोलन, स्वतन्त्रता काल में भारत–विभाजन, तत्पश्चात् पलायन–विस्थापन के कारण आई समस्याएं, सन् 1950 के संविधान की स्वीकृति और फिर राजनीति के बदलते रंग, औद्योगीकरण, महानगर बोध, अलगाव आदि की विसंगति, विदेशी आक्रमण, पाश्चात्य संस्कृति का अधिक हावी होकर और अन्याय आर्थिक विसंगतियां, नव धनाढ्यों का दिखावा और सदी का बदलाव, पीढ़ियों का टकराव आदि कई ऐसे प्रसंग हैं जिन्होंने हिन्दी कहानी को प्रभावित किया। साथ ही साहित्य में 'विमर्श' (दलित, स्त्री, जनवादी) ने भी बड़े बदलाव इस विधा

में प्रस्तुत किए हैं। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब माना जाता है इस कारण साहित्य की अन्य विधाओं की भांति कहानी ने भी सामाजिक बदलावों के अक्स को अपने भीतर समेटा है, और उनका पूरा लेखा–जोखा प्रबुद्ध पाठक वर्ग के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

हिन्दी साहित्येतिहास में सन् 1936 ई. के बाद 1943 ई. तक का समय मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित प्रगतिवाद के नाम से जाना जाता है। इस काल में लेखक ठोस धरती पर आ कर भौतिकवादी सिद्धान्तों से प्रभावित होकर रचना करने लगे। इस काल में जन शोषण का विरोध, समसामयिक समस्याओं के प्रति जागरूकता तथा सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है। प्रेमचन्दोत्तर कहानी लेखकों ने वर्ग पात्रों के स्थान पर व्यक्ति पात्रों की स्थापना की। इस रूप में विचारधारा के बीच यद्यपि प्रेमचन्द युग के कई कहानीकारों में मिलने शुरू हो गए थे पर उनका अंकुरित रूप इस काल में दिखाई देता है। यशपाल का भौतिकवादी दृष्टिकोण उनकी कहानियों में झलकता है। यशपाल की मान्यता रही "हमारी कल्पना का आधार जीवन की ठोस वास्तविकताएँ ही होती हैं।" इसी आधार पर उन्होंने 1939 से लेकर 1943 तक तीन कहानी संग्रह दिए। यद्यपि उनकी कहानियों के संग्रह सोलह है और वे 1969 ई. तक लिखते रहे। यशपाल जी के साथ इस काल खंड में चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, कांतिचन्द्र सौनरिक्सा, उपेन्द्र नाथ अश्क, कृष्णचन्द्र, सत्यजीवन भारतीय, रांगेयराघव, प्रभाकर माचवे, सत्यवती मलिक, सद्गुरु शरण अवस्थी, चन्द्रकिरण सौनरिक्सा ऐसे ही कहानीकार हैं।

सन् 1939 ई. में द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका का भी इस काल में प्रभाव रहा। 1939 ई. से 1947 ई. तक का समय इस युद्ध को ही केन्द्र बिंदु बनाए रहा। हिन्दी साहित्येतिहास में 1943 ई. के बाद 1953 ई. तक का समय मशीन और गति प्रधान होने के कारण 'प्रयोग' का समय रहा। इस बीच भारत स्वतन्त्र तो हुआ पर विभाजन की विभीषिका भोगते हुए। 1942 ई. का भारत छोड़ो आन्दोलन और फिर स्वराज्य की चाहना के आन्दोलन सामाजिक चेतना को जागरूक किए थे, उसी प्रकार साहित्य में घोर अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद, अतिबौद्धिकता, यथार्थ की प्रतिष्ठा के साथ भाषा के उपमानों व प्रतीकों की नवीनता के प्रयोग इस काल में सामने आते हैं। इस समय की हिन्दी कहानी में मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण की प्रधानता दिखाई देती है। अज्ञेय इस प्रकार के प्रमुख कहानीकार हैं। आपकी कहानियों में मनोवैज्ञानिकता के साथ सामाजिक संघर्ष और विद्रोह का तीखापन दिखाई देता है। जैनेन्द्र जी की कहानियाँ भी इस काल में पूर्ववर्ती धारा को और प्रबल रूप में प्रस्तुत करती हैं। साथ ही विष्णु प्रभाकर, भगवती प्रसाद वाजपेयी, इलाचन्द्र जोशी, देवी दयाल चतुर्वेदी, जानकी वल्लभ शास्त्री, अक्षय कुमार जैन, कौशल्या अश्क, रामवृक्ष बेनीपुरी आदि कहानीकारों ने युगीन समस्याओं को कहानियों द्वारा प्रस्तुत किया। सुभद्रा कुमारी चौहान की कहानियाँ भी इस काल में राष्ट्रीय चेतना के साथ पारिवारिक समस्याओं को भी प्रस्तुत करती हैं। उषा देवी मित्रा की कहानियाँ भावुकता एवं कल्पना प्रधान हैं पर सामाजिक जीवन के यथार्थ का बोध कराती हैं।

इस काल में वृन्दावन लाल वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, भगवत शरण उपाध्याय ऐतिहासिक कहानियों के भंडार की श्री वृद्धि कर रहे थे। श्री राम शर्मा ने शिकार सम्बन्धी अनुभवों के आधार पर रोमांचक कहानियां लिखी। श्रीमती कमला त्रिवेणी शंकर पारिवारिक तथा सामाजिक क्षेत्रों से कथानक लेकर चरित्र–चित्रण प्रधान कहानियां लिखी। तेज रानी पाठक ने अपनी कहानियों में मानवीय व्यावहारों के विविध यथार्थवादी चित्र अंकित किए हैं तारा पाण्डे की कहानियों के जीवन की सामान्य घटनाएं मिलती हैं। श्रीमती स्वर्ण लता देवी, सुशीला आग्य, प्रेम भटनागर मालती शर्मा, चन्द्र कुमारी मिश्र आदि की कहानियों में नारी जीवन की यथार्थ समस्याओं को उठाया गया है।

स्वातन्त्र्योत्तर कहानीकारों ने आज के जीवन की विविधता एवं समस्याओं की जटिलता का खुल कर चित्रण किया है। स्वातन्त्र्योत्तर प्रारंभिक काल में देश के विभाजन की विभीषिका का चीत्कार भीष्म साहनी, मोहन राकेश, चन्द्र गुप्त विद्यालंकार की कहानियों में सुनाई देता है। 'अमृतसर आ गया है', 'मलबे का मालिक', 'मास्टर साहब', इनकी ऐसी कहानियाँ हैं जो कि विभाजन की विभीषिका को सूक्ष्म रूप में उपस्थित करती हैं। सन् 1952 ई. के आसपास इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'कहानी' से हिन्दी में 'नई कहानी' आन्दोलन शुरू होता है। इस समय के साहित्यकार ने विभाजन के बाद जिस यांत्रिकता, आर्थिक संकट और वैचारिक दवाब को झेला था उसमें उसका कई मान्यताओं के प्रति मोह भंग हो गया। कहानी को 'नई कहानी' के रूप में डॉ. नामवर सिंह ने मान्यता दी। इस कहानी में परिवेशगत जागरूकता, के साथ–साथ रचना प्रक्रिया के प्रति बदलता दृष्टिकोण दिखाई देता है। श्री कान्त वर्मा, रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह, ज्ञान रजंन, गंगा प्रसाद विमल आदि की कहानियों में 'नई कहानी' आन्दोलन की विशेषताएँ दिखाई देती है। इनकी कहानियों में जनमानस में प्रचलित रूढ़ियों के प्रति नयी चेतना का प्रसार दिखाई देता है। अछूतोद्धार साम्प्रदायिक सद्भाव, ग्रामविकास, नवयुवा वर्ग के रोज़गार की तलाश आदि के प्रति कहानीकारों ने आवाज़ उठाई है। अमर कांत, शैलेश मटियानी, उषा प्रियम्वदा, राजेन्द्र यादव, कृष्णा सोबती, शिव प्रसाद सिंह, धर्मवीर भारती, महीप सिंह, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, श्री कांत, मधुकर सिंह, लक्ष्मी नारायण लाल ने वैचारिकता की दृष्टि से नए जीवन मूल्यों को लेते हुए 'नई कहानी' की संवेदना को गति दी।

नई कहानी आन्दोलन स्वातन्त्र्योत्तर युग में आधुनिक हिन्दी कहानी के इतिहास का पहला आन्दोलन था। इसमें यथार्थ की निकटता को परिवेश के माध्यम से परख कर प्रस्तुत किया गया। स्वातन्त्र्योत्तर काल में हिन्दी कहानी के क्षेत्र में विस्तार हुआ। आम आदमी के निकट आती हुई कहानी अंचल विशेष व परिवेश को चित्रित करने में अपने कथ्य की सार्थकता अनुभव करने लगी। मूल सांस्कृतिक प्रकृति को ढूंढती हुई कहानी के जनमानस से लोक पक्ष को उजागर करने का प्रयत्न आंचलिक कहानी के रूप में दिया। फणीश्वर नाथ 'रेणु' की 'तीसरी कसम' उर्फ 'मारे गए गुल्फाम' तथा 'आदिम रात्रि की महक' ऐसी कहानियों का उदाहरण ही रेणु के अतिरिक्त मार्कण्डेय, राजेन्द्र अवस्थी, शैलेश मटियानी, शिव प्रसाद सिंह आदि ने भी ऐसे कहानियां लिखी। इन कहानियों में प्रकृति के गोद में बसे जनपद और वहां की समस्याओं का सम्पूर्ण परिवेश प्रस्तुत हुआ है।

सन् 1960 के बाद की हिन्दी कहानी को साठोत्तरी कहानी कहा गया। यह अकहानी या अकथा के रूप में भी जानी जाती है। 'अकहानी' पर पश्चिमी 'एण्टीस्टोरी' आन्दोलन का प्रभाव दिखाई देता है। इसमें केवल व्यक्तिगत अनुभव को ही महत्त्व दिया जाता है। महेन्द्र भल्ला, रवीन्द्र कालिया, ज्ञानरंजन इस धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं। मूल्यहीनता और विघटन का प्रमुख इन कहानियों में दिखाई देता है। कमलेश्वर अकहानी आन्दोलन को 'ऐयाश प्रेतो का विद्रोह' कहते हैं।

साठोत्तरी कहानीकारों में से कुछ ऐसे भी हैं जिन्होंने राजनीतिक खेमों से बाहर रहकर रामदरश मिश्र, जगदीशचन्द्र, मन्नू भंडारी आदि ऐसे ही कहानीकार हैं जिन्होंने जनमानस की आवाज को पहचाना। 1960 ई. के बाद 1962 में हिन्दी चीनी भाई–भाई नारे की निःसारता, 1965 में भारत पाक युद्ध ने भारतीय जनमानस में जो भारतीयता का भाव भरा उसने कहानी को पूरे जीवन के साथ जोड़ दिया। सत्तर के दशक की कहानी को रमेश कुन्तल मेघ 'तत्काल और फिलहाल के समय बोध के जरिए जीवन का साक्षात्कार करने वाली कहानी' मानते हैं। 1970 में महीप सिंह जी सचेतन और सहज कहानी का आन्दोलन चलाया। समस्त मर्यादाओं एवं जीवन मूल्यों में उपस्थित विघटन

से त्रस्त समाज कुण्ठाओं से ग्रस्त था। इस दृष्टि से 'जीवन से भागने वाले मानवों को जीवन की ओर प्रेरित करने का भाव' लेकर महीप सिंह ने अपने साथियों सहित सचेतन कहानी का रूप प्रस्तुत किया। यह आन्दोलन यथार्थपरक कहानियों का आन्दोलन है। महीप सिंह के साथ–साथ ममता कालिया, मन्नू भंडारी, मोहन राकेश, सुधा अरोड़ा, हिमांशु जोशी, धर्मेन्द्र गुप्त, मनहर चौहान आदि ने कहानी के इस रूप को स्वीकार किया।

सचेतन के साथ ही समान्तर कहानी की बात भी की जाती है। 'कथा' पत्रिका के प्रवेशांक के दूधनाथ सिंह की कहानियों में यह परम्परा चलती है। समान्तर कहानी में यान्त्रिकता और औद्योगीकरण से संप्रस्त मानवीय चेतना को कहानी का कथ्य बनाया गया है। मधुकर सिंह, कुसुम अंसल, रवीन्द्र कालिया, सुरेश सेठ, गुरबचन सिंह, आदि की कहानियों के अस्तित्व के प्रति जागरूकता, राजनैतिक असंगतियों का विरोध, व्यक्तित्व की स्वीकृति पाने की इच्छा का स्वर सुनाई देता है।

सन् 1968 में अमृतराय ने 'सहज कहानी' आन्दोलन का सूत्रपात किया। "सहज कहानी में हमारा अभिप्राय उस मूल कथा रस से है जो कहानी की अपनी खास चीज़ है" अमृतराय ने मन–भावनाओं को सहज ही प्रधानता देते हुए कहानी को प्रेरित किया। मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियम्वदा, निर्मल वर्मा, श्रीकांत वर्मा, काशीनाथ सिंह आदि ने बड़ी ईमानदारी से अपनी कहानियों में सहज मानवीय मनोवृत्तियों को नियंत्रित किया है।

1970 ई. के बाद साठोत्तरी कहानी में कमलेश्वर, कामतानाथ, रमेश उपाध्याय, नरेन्द्र कोहली, धर्मेन्द्र, मणिमधुकर, निरूपमा सोबती, मृदुला गर्ग आदि ने कमलेश्वर के सम्पादकत्व में 'सारिका' पत्रिका के एक समान्तर आन्दोलन के रूप में कहानियाँ लिखीं। इस आन्दोलन में आम आदमी और विशेषकर आर्थिक समस्याओं को केन्द्र में रख कर कहानियाँ लिखी गईं। इसी समय में 'विचार कहानी' आन्दोलन का रूप भी मधुमालती, धूमकेतु, इब्राहीम शरीक, प्रदीपदत्त, गिरिराज किशोर, आलमशाह एवं सुभाष पंत आदि की कहानियों में मिलता है।

सन् 1920–1980 ई. के मध्य के आपात काल की घोषणा और उस समय की क्रूरताओं के प्रति रोष प्रकट करते हुए भी गोविन्द मिश्र, सुरेश सेठ, ज्ञानरंजन, मृणाल पांडे, रमेश चन्द्र शाह, अब्दुल बिस्मिल्लाह आदि ने राजनीतिक चरित्र के दोगलेपन को लेकर कहानियाँ लिखीं।

सन् 1979 ई. में राकेश वत्स 'सक्रिय कहानी' का नारा दिया। राकेश वत्स ने आदमी की चेतनात्मक ऊर्जा और जीवंतता की कहानी को सक्रिय कहानी कहा। रमेश बतरा, चित्रा मुद्गल, धीरेन्द्र अस्थाना, जीतेन्द्र सूद, मंजुलभगत आदि ने इस आधार बिंदु पर कहानियाँ लिखी हैं। आठवें दशक की हिन्दी कहानी जन मानस को पीड़ित करने वाली समस्याओं से टकराती नज़र आती है। ये समस्याएँ कितनी भी भयप्रद, जटिल, तनावपूर्ण क्यों न हो उनमें मानव अपनी दृढ़ता से संभाल सकता है अमर कांत, भीष्म साहनी, ज्ञानरंजन आदि की कहानियों से यही संदेश मिलता है।

बीसवीं सदी के अन्तिम दो दशकों में कहानी के तेवर बदलते हुए दिखाई देते हैं। युग की आवाज़, मानवीय चेतना के स्वर को मुखरित करते हुए सामाजिक विशेषकर, राजनीतिक टकराहट की विभीषिका को आंकते हुए तथा नई शताब्दी के आगमन के साथ उठते कई विमर्श, प्रश्नों के साथ चलते हुए शरद जोशी, रोहितख, मानूखोलिया, मेहरूनिसा परवेज़, ओम गोस्वामी, रतन लाल शांत, काशीनाथ सिंह, मालती जोशी, मंजुल भगत, आर्यमान, कुसुम अंसल, गंगा प्रसाद विमल और भी न जाने कितने कहानीकार भारतीय जीवन की चेतना की भारतीयता के भाव को

आज की विडम्बना में मानवीय अस्तित्व के प्रति जनमानस को जागरूक करते हुए जिस प्रकार अपनी लेखनी से जुड़े है उससे इतना तो निश्चित है कि हिन्दी कहानी युग बोध से समझते हुए युगानुरूप अपने को टालते हुए जीवन की गति के साथ जैसे चल रही है उसमें इसके सम्मुख अनंत संभावनाओं के द्वारा खुलते दिखाई देते हैं।

18.5 कठिन शब्द

1. युगबोध 2. आगमन 3. निश्चित 4. सक्रिय 5. युगानुरूप 6. संभावना 7. अनंत 8. मुखरित 9. विमर्श।

18.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न – कहानी की परिभाषा देते हुए इसके तत्वों पर प्रकाश ड़ालिए।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – कहानी की विकास यात्रा पर लेख लिखिए।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – कहानी के भेदों पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – प्रेमचंद पूर्व कहानी की क्या स्थिति रही है ? प्रकाश डालिए।

_____

_____

18.6 पठनीय पुस्तकें

1.	नामवर सिंह	–	छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1990
2.	हजारी प्रसाद द्विवेदी	–	ग्रंथावली, भाग–3, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1981
3.	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	–	हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
4.	रामस्वरूप चतुर्वेदी	–	हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1993
5.	डॉ. नगेन्द्र (सं.)	–	हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली 1982
6.	डॉ. जयकिशन प्रसाद	–	हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
7.	डॉ. नामवर सिंह	–	आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, राजकमल प्रकाशन – नई दिल्ली,

.....

हिन्दी आलोचना : उदभव और विकास

19.0 रूपरेखा

19.1 उद्देश्य

19.2 प्रस्तावना

19.3 हिन्दी आलोचना : उदभव और विकास

19.3.1 आलोचना : शब्द और पर्याय

19.3.2 आलोचना : परिभाषा

19.3.3 आलोचना : उद्देश्य

19.3.4 आलोचना : प्रकार

19.3.5 हिन्दी आलोचना : विकास के चरण

19.4 सारांश

19.5 कठिन शब्द

19.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

19.7 पठनीय पुस्तकें

19.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप–

– आलोचना शव्द की व्युत्पति एवं इसके पर्याय को जानेंगे।

– आलोचना के उद्देश्य को जानेंगे।

– आलोचना के विभिन्न रूपों को जानेंगे।

– आलोचना के विकास के विविध चरणों को समझेगें।

19.2 प्रस्तावना

साहित्य मनुष्य के भावों और विचारों की समष्टि है । इस रूप में इसकी प्रत्येक विधा मानव जीवन का आख्यान है । इस पथ का पथिक साहित्यकार कहलाता है और – 'साहित्यकार जीवन की जटिलता, संकुलता एवं अगाध रूपों में सौंदर्य का दर्शन करता है तथा उसे समझकर आत्मसात् करता है फिर वह उसे अपनी रचना में अभिव्यक्ति देता है' इस प्रकार साहित्यकार के कर्म को प्रस्तुत करते हैं। विजय वेदालंकार जी की मान्यता है कि आलोचना में रचनाकार की इसी रचना का आख्यान होता है । 'बाबू श्याम सुन्दर राय जी ने भी इस सम्बन्ध में स्पष्ट कहा है' साहित्यक्षेत्र में, ग्रंथ को पढ़कर उसके गुणों और दोषों का विवेचन करना और उसके सम्बन्ध में अपना मन प्रकट करना आलोचना कहलाता है ।'

19.3 हिन्दी आलोचना : उदभव और विकास

19.3.1 आलोचना : शब्द और पर्याय : वस्तुतः लोचृ–आ + लोच् + अन + आ = आलोचना या आ+ लोच् + ल्युट (अन) = आलोचन – धातु से निस्रत आलोचना शब्द के लोचृ का अर्थ है देखना। इस व्युत्पति परक आलोचना के अर्थ से स्पष्ट होता है कि किसी वस्तु या कृति का सम्यक् मूल्यांकन करना ही आलोचना का धर्म है । परम्परा से संस्कृत काव्यशास्त्र में कविकर्म पर प्रकाश डालना ही आलोचना का मूल उद्देश्य माना गया है । अंग्रेज़ी में इसके समानार्थी क्रिटिक (Critic) शब्द का मूल भाव क्राइट (Krites) अर्थात् 'अलग करना' है । इससे स्पष्ट होता है कि 'पाश्चात्य देशों में भी साहित्यगत उत्तमोत्तम बातों को जानना और समाज को उसका ज्ञान कराना आलोचना का उद्देश्य माना गया है ।' लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय जी के उपर्युक्त शब्द आलोचना के स्वरूप को स्पष्ट करने मे सार्थक सिद्ध होते हैं । हिन्दी और उसके अग्रेज़ी पर्याय से आलोचना का उद्देश्य साहित्यकार के साहित्यिक कृतित्व के सम्यक् विवेचन के रूप में स्पष्ट होता है । पाश्चात्य समीक्षक डब्ल्यू. बी वर्स फोल्ड की मान्यता है कि 'आलोचना कला और साहित्य के क्षेत्र में निर्णय की स्थापना है । (Criticism is the exercise of judgement in the province of art and literature) हिन्दी में आलोचना के सन्दर्भ में समालोचना, समीक्षा, मीमांसा या विवेचना आदि का उल्लेख मिलता है पर आलोचना का ही रूप प्रायः किया जाता है ।

19.3.2 आलोचना : परिभाषा – आलोचना का मूलकार्य सर्जनात्मक साहित्य की विशेषताओं का उद्घाटन करना है। इस रूप में साहित्यकार जहां समाज के भीतर की भावनाओं का चित्रण करता है वहीं आलोचना साहित्य–पाठक को रचना की वास्तविकता से परिचित कराता है । इस रूप में साहित्य की पहचान

ही उसका दायित्व ठहरता है । इसी दृष्टि से विभिन्न विद्वानों ने इस साहित्यिक विद्या की परिभाषा देते हुए उसकी वास्तविकता को स्पष्ट करने का प्रयास किया है ।

परम्परा से संस्कृत काव्य के अनुशीलन के लिए जिस शास्त्र के ज्ञान को आवश्यक माना गया वहीं आलोचना का उद्‌य माना जा सकता है । आचार्य राजशेखर ने काव्य मीमांसा में कहा है 'शब्द और अर्थ के सहभाव को बताने वाली विद्या (शास्त्र) साहित्य विद्या है । इस विधा की चौंसठ उपविद्याएँ हैं, जिन्हें विद्वान कला कहते हैं । उपविद्याएँ या कलाएँ काव्य का जीवन है ।' आचार्य विश्वनाथ ने भी साहित्य शास्त्र के रूप में सैद्धान्तिक आलोचना का स्वरूप स्पष्ट किया है । इसके अन्तर्गत काव्य विधा के सभी अंगों–उपायों पर विस्तृत चर्चा मिलती है । इसी दृष्टि से प्राचीन काल से ही कवि–शिक्षा की परम्परा मिलती है । आचार्य भामह के अनुसार कवि कर्म में प्रेरित होने के लिए 'शब्दार्थ का ज्ञान प्राप्त कर शब्दार्थवेत्ताओं की सेवा कर तथा अन्य कवियों के निबन्धों (काव्य–कर्यो) को देखकर काव्य–क्रिया में प्रवृत्त होना चाहिए । आचार्य वामन ने भी कवि के लिए लोकव्यवहार, शब्द शास्त्र, अभिघान, कोश, छन्दशास्त्र, कला के साथ–साथ काव्य शास्त्र का उपदेश करने वाले गुरुओं की सेवा आवश्यक मानी है । इस प्रकार स्पष्ट होता है कि आलोचना जहां कवि का मार्ग दर्शन करती है वहीं पाठक को भी रचना कथ्य से परीचित कराती है ।

हिन्दी आलोचना का आधुनिक रूप पाश्चात्य मनीषियों के चित्तन से अधिक प्रभावित है । इस दृष्टि से ड्राइडन महोदय की परिभाषा उल्लेखनीय है । उन्होंने आलोचना को ऐसी कसौटी माना है 'जिसकी सहायता से किसी रचना का मूल्यांकन किया जाता है। वह उन विशेषताओं का लेखा प्रस्तुत करती है, जो साधारण तथा किसी सभ्रान्त पाठक को आनन्द प्रदान कर सके।'

कालोइल महोदय ने पुस्तक कथ्य की प्रतिक्रिया को आलोचना माना है जबकि मैथ्यू आर्नल्ड आलोचना मे आलोचक को तटस्थ रहकर कृति के गुण दोषों का परिचय देने वाला माना है । पाश्चात्य विद्वानों ने आलोचना को कृतिकार का उद्देश्य स्पष्ट करने का साधन माना हैं । एडीसन महोदय रचना के निहित सौन्दर्य के उद्‌घाटन को आलोचना का उद्देश्य मानते हैं । जानसन महोदय आलोचक को निर्देश देते है कि 'उसका कार्य तो विवेक के आलोक में जो दिखाई दे, उसका उद्‌घाटन करना और सत्य के निर्देश में जो निर्णय हो उसका आख्यान करना' ही उसका धर्म है ।

हिन्दी आलोचना का पूर्वरूप तो संस्कृत काव्यालोचन रहा । उत्तर मध्य काल तक जितने भी रीति–शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ मिलते हैं उनमे साहित्य कथ्य के 'कीरति भविति भूति मल सोई । सुरसरिसय कहे हित होई' के रूप में स्वीकार किया गया । रीतिकालीन रीतिशास्त्र तो संस्कृत काव्य शास्त्र को ही लेकर चला । साथ टीका पद्धति में काव्यांगों का लक्षण लेकर रचना की व्याख्या पद्धति में आलोचना का रूप दिखाई देता है । आधुनिक युग मे आकर आलोचना का जो रूप विकसित हुआ उसमें पाश्चात्य प्रभाव को लेकर सैद्धान्तिक पक्ष के साथ व्यावहारिक रूप को अधिक महत्त्व दिया गया । इस दृष्टि से आचार्य सीता राम चतुर्वेदी जी ने आलोचना की परिभाषा देते हुए कहा है 'दर्शनीय वस्तु, व्यक्ति या विषय को देखकर उसमें निहित दृष्टव्य तत्त्वों को अन्यों के लिए सुलभ करने की प्रक्रिया आलोचना है।' बाबू श्याम सुन्दर दास जी ने तो 'साहित्य को जीवन की व्याख्या मानते हुए 'आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या' माना है । भगवत स्वरूप मिश्र जी की

मान्यता है कि 'वस्तु के यथार्थ रूप की जिज्ञासा, और उसे जानने का प्रयत्न मानव का स्वभाव है । वह ज्ञानपूर्वक जीता है । जगत् के प्रति बौद्धिक और रागात्मक प्रतिक्रियाएँ ही उसका जीवन है। यही जगत् को समझना है और यही आलोचना है ।' लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय जी ने माना है कि 'आलोचना कला को जीवन में सर्वोच्च स्थान प्रदान करती है । वस्तुतः सच्ची आलोचना कला का ही एक प्रधान अंग है । उसका चरम लक्ष्य वही है, जो जीवन का अन्तिम लक्ष्य है ।' वस्तुतः आलोचना उस कला की सजगता है जिसे विद्वानों ने जीवन की सजगता के रूप में मान्यता दी हुई है । इस दृष्टि से आलोचना रचना में निहित उस कथ्य को सहृदय सामाजिक से परिचित कराने का माध्यम है जिससे रचना की गुणवत्ता से पाठक वर्ग परिचित होता है । इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में स्पष्ट कहा गया है 'आलोचना का अर्थ वस्तुओं के गुण–दोषों की परख करना है, चाहे वह परख साहित्य क्षेत्र में की गई हो, या ललितकला क्षेत्र में । इसका स्वरूप निर्णय में सन्निहित रहता है ।'

19.3.3 आलोचना उद्देश्य – उपर्युक्त परिभाषाओं से यह तो स्पष्ट है कि आलोचना जहां रचना के मर्म से पाठक को परिचित कराती है वही रचना का मूल्यांकन भी करती है । भगीरथ मिश्र जी की मान्यता है कि 'आलोचना का मूल उद्देश्य कवि या कलाकार की कृति की पूर्ण व्याख्या करते हुए उसके मूल्य एवं महत्त्व का निरूपण करना है ।' कुछ विद्वानों ने नैतिक मान्यताओं के आधार पर सत् और असत् साहित्य का विश्लेषण कर आलोचना का उद्देश्य कुरूचिपूर्ण साहित्य की अभिवृद्धि को रोचक भी मानते हैं, पर 'कला कला के लिए मानने वाले इसका विरोध करते है ।

आलोचना साहित्य में नैतिकता, के प्रत्यक्ष परोक्ष चित्रण की दृष्टि से उसका कलात्मक दृष्टि से मूल्यांकन करते हुए उसकी समाज के लिए उपादेयता पर विचार करने का प्रबल साधन है । यही उसका प्रमुख उद्देश्य भी है जिसकी पूर्ति के लिए इस पथ के अनुगामी के लिए कुछ आवश्यक गुण भी अपेक्षित है ।

आलोचक कौन ?

प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान विन्सले महोदय के अनुसार 'आलोचक में विस्तार पूर्ण दृष्टि, संतुलित मस्तिष्क, मानव मन का सूक्ष्म ज्ञान तथा सहानुभूति और जागरूक तटस्थता आवश्यक है ।' (To be a critic of literature is to possess or widevision, balanced mind, and inexhaustible in sight into the deepest secrets of human mind, it needs to be sympathetic and yet alort to watch the wisdom unfaultering.) इसके साथ ही विद्वानों ने यह माना है कि आलोचक को यह देखना चाहिए कि कोई भी कला या रचना समाज को किस प्रकार परिष्कृत कर सकती है साथ ही समाज में किस प्रकार चिरन्तन सत्य की प्रतिष्ठा करते हुए समाज में नई विचार धारा प्रवाहित कर सकती है । इस कार्य के लिए आलोचक का उत्तरदायित्व साहित्यकार व पाठक दोनों के प्रति दोहरी जिम्मेदारी निभाना होता है । आलोचना में आलोचक स्वस्थ मन से कला या साहित्य का अध्ययन कर उसके सौन्दर्य की परख करता है । इस कारण उसमें प्रतिभा, सहृदयता, निष्पक्षता, विद्वता, अन्तर्द्वष्टि का होना आवश्यक माना जाता है ।

प्रतिभा कारयित्री और भावयित्री दो प्रकार की होती है । वस्तुतः मनुष्य की नवोन्मेषशालिनी शक्ति ही प्रतिभा होती है । इसे काव्य हेतु में सर्वप्रथम गिना जाता है। इसी के सहारे आलोचक अपने कथन/निर्णय को सामर्थ्य पूर्ण बना सकता है ।

सहृदयता साहित्य को समझने के लिए आवश्यक तत्व है । इसके अभाव में रचना की परख नहीं हो सकती । सहृदय ही साहित्य का रसास्वादन करने में समर्थ होता है । इसीलिए आलोचक का सहृदय होना आवश्यक माना गया है ।

आलोचक कई बार न्यायाधीश की भूमिका भी निभाता है । इसलिए उसका निष्पक्ष होना आवश्यक है । तभी तो वह रचना के सही कथ्य को पाठक वर्ग के सम्मुख प्रस्तुत कर सकेगा । इसके साथ ही साहित्य की सम्पूर्ण समस्याओं के ज्ञान के साथ–साथ अन्यान्य सामाजिक सन्दर्भों से भी उसका परिचय अनिवार्य है । अन्यथा वह रचना मे प्रस्तुत सत् का उद्‌घाटन नहीं कर सकेगा । उसकी विद्वता ही उसे रचना को समझने में सहायक होती है। रचनाकार द्वारा रचना में प्रस्तुत जीवनाभिव्यक्ति की पहचान आलोचक अन्तर्दृष्टि द्वारा ही कर सकता है ।

इन उपर्युक्त गुणों के साथ ही आलोचक के गुण ग्राहकता का होना भी अनिवार्य है। इन्ही गुणों से युक्त आलोचक निष्पक्ष व सही आलोचना द्वारा सामाजिको को साहित्यिक रचना मे निहित कथ्य की वास्तविकता से परिचित करा सकता है ।

19.3.4 आलोचना : प्रकार – जिस प्रकार साहित्यिक क्षेत्र में अलग–अलग विचार धाराओं को लेकर विभिन्न वादों का प्रादुर्भाव होता रहा है उसी प्रकार दृष्टिकोण भेद से आलोचना में भी विभिन्न रूप मिलते हैं । मूलतः आलोचना के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दो प्रकार होते हैं। व्यावहारिक आलोचना मे विभिन्न पद्धतियों के कारण कई उपभेद हो जाते हैं । इन उपभेदों के विषय में लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय जी की मान्यता है कि 'एक साहित्यिक या कलात्मक कृति किस रूप में किसी व्यक्ति में प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है, उस पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है, इसी तथ्य पर आलोचना के प्रकार आधारित रहते हैं । आलोचना के वर्गीकरण की समस्या 'दृष्टिकोण' पर निर्भर है । दृष्टिकोण का आधार मनोवैज्ञानिक दार्शनिक, ऐतिहासिक, काल्पनिक, वैज्ञानिक, निर्णयात्मक, सामाजिक, वैयक्तिक आदि कोई भी हो सकता है, अथवा कभी रीति, कभी विषय को भी आधार बनाया जा सकता है ।'

हिन्दी आलोचना जिन विविध रूपों में आधुनिक काल में प्रचलित है मध्यकाल तक परम्परित संस्कृत काव्यशास्त्रीय परिपाटी पर ही आधारित होने के कारण सैद्धान्तिक आलोचना के रूप में ही प्रचलित रही । सैद्धान्तिक आलोचना के अन्तर्गत साहित्य के विविध रूपों–कविता, नाटक आदि – के रचना सिद्धान्तों का निर्धारण किया जाता है । सुरेशचन्द गुप्त जी के अनुसार 'सैद्धान्तिक आलोचना के लिए आलोचक एक ओर रचनात्मक साहित्य के गुण दोषादि के आधार पर सिद्धान्त निरूपण करता है, दूसरी ओर उपलब्ध साहित्यशास्त्र के लाभान्वित होता है और तीसरी ओर नवीन साहित्य धाराओं – छायावाद, नयी कविता, आंचलिक उपन्यास आदि – के विषय में लेखकों की धारणाओं से प्रेरणा ग्रहण करता है ।' इस प्रकार की आलोचना में आलोचक

स्वप्रतिभा व प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर सिद्धान्तों का निर्माण करता है । परम्परा से संस्कृत में कव्यशास्त्र या अलंकार शास्त्र इसी पद्धति की आलोचना के निर्धारक रूप हैं । संस्कृत मे आचार्य भरत से लेकर पंडित जगन्नाथ तक की काव्यशास्त्रीय रचनाएं इस पद्धति की उद्घोषक है । इनमें रस, अलंकार, वक्रोक्ति, रीति, ध्वनि और औचित्य के साथ काव्यगुण, काव्यदोष, शब्दशक्ति आदि की विवेचना की गई है जिनके आधार पर किसी भी कृति को परखा जा सकता है । संस्कृत की इस परम्परा में आचार्यों ने प्रयोगात्मक पक्ष पर अधिक बल नहीं दिया । हिन्दी आलोचना की प्रारंभिक अवस्था में यही आधार विद्यमान रहा । मध्यकालीन विशेष कर उत्तरमध्यकालीन आचार्य कवियों ने इसी परम्परा का पालन करते हुए अपनी सैद्धान्तिक पक्षीय रचनाएँ लिखी । आधुनिक काल में भी बाबू श्याम सुन्दर दास की, 'साहित्यलोचन', पं. रामदहिन मिश्र जी की 'काव्यदर्पण', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी की 'रसमीमांसा', सूर्यकान्त जी की 'साहित्य मीमांसा', महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का 'रसज्ञ रंजन', बाबू श्याम सुन्दर दास ' रूपक रहस्य', बाबू गुलाब राय 'काव्य के रूप' तथा सिद्धान्त और अध्ययन', भागीरथ मिश्र 'साहित्य निकष', रामअवध द्विवेदी 'साहित्य रूप', पदुमलाल पुन्ना लाल बख्शी 'हिन्दी साहित्य विमर्श' के साथ डॉ नगेन्द्र, तारक नाथ बाली, निर्मला जैन, शंकर देव अवतरे, सात्यदेव चौधरी, गोविन्द त्रिगुणायत, आनंद प्रकाश दीक्षित, राजेन्द्र द्विवेदी, कन्हैयालाल पौद्दार आदि विद्वानों ने भी भारतीय काव्य शास्त्र की संस्कृत परम्परा के साथ आधुनिक युग में पाश्चात्य समीक्षा सिद्धान्तों पर भी मनन–चिन्तन करते हुए हिन्दी की आधुनिक सैद्धान्तिक समीक्षा के स्वरूप विवेचन में उल्लेखनीय योगदान दिया है ।

हिन्दी की व्यवहारिक आलोचना पद्धति के अन्तर्गत आलोचना की अनेक पद्धतियों का समावेश हो जाता है । इस पद्धति में अलोचक का दृष्टिकोण प्रभावी होता है यह दृष्टिकोण साहित्य को परखने के विभिन्न ज्ञानानुशासनों के आधार पर आधृत होता है। वार्ष्णेय जी की मान्यता है कि 'जितने प्रकार के विषय होंगे उतने ही प्रकार की आलोचना भी जन्म लेगी । आधुनिक साहित्य में अनेक प्रकार की आलोचना प्रणालियों का प्रयोग हुआ है और हो रहा है । आलोचकों के वर्गों और उनके विभिन्न दृष्टिकोण के कारण आलोचना के अनेक वर्ग दृष्टिगोचर होते हैं ।' ऐसी आलोचना प्रणालियो में शास्त्रीय, प्रभावात्मक, निर्णयात्मक, मनोविश्लेषणात्मक, ऐतिहासिक, मार्क्सवादी, व्याख्यात्मक, तुलनात्मक, मनोवैज्ञानिक, अनुभवात्मक, वैज्ञानिक, अभिव्यंजनावादी, नैसर्गिक, जीवन वृतान्तीय, कार्यात्मक, क्रियात्मक, तात्विक, भौतिकवादी, आत्मगत आदि अनेक की गणना होती है । इनमें से निम्न प्रमुख है :

शास्त्रीय आलोचना में रचनागत भाव सौन्दर्य और कलापक्ष का विश्लेषण रहता है। इसके लिए आलोचक द्वारा भारतीय अथवा पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों का सुविधानुसार प्रयोग किया जाता है । हिन्दी में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का मिश्रबन्धुओं ने इसी प्रणाली मे साहित्यिक कृतियों का अध्ययन किया है। आचार्य द्विवेदी ने 'विक्रमा के देव चरित चर्चा' व 'नैषधचरित' तथा मिश्र बन्धुओं ने 'हझीर दृढ' काव्य पर और श्रीधर की भूषण के काव्य पर की गई आलोचना इसी कोटि की है ।

सैद्धान्तिक आलोचना में जब आलोचक कृति या कृतियों की आलोचना करते हुए निष्कर्ष देता है तो निर्णयात्मक आलोचना का रूप सामने आता है । इसमें आलोचक न्यायाधीश के समान कृति के विषय में अपना निर्णय देता है । इस पद्धति के अन्तर्गत आलोचक की दृष्टि इस बात पर भी रहती है कि आलोच्य कृति में युग–विशेष का चित्रण करते समय क्या लेखक ने उसके साहित्यिक मूल्य को सीमित कर दिया है या उसे

शाश्वत मूल्यों में जोड़ते हुए उसे कालजयी बना दिया है । सूर–सूर तुलसी ससि, उड़गन केशव दास । अबके कवि खद्योतसम जह तहँ कर प्रयास' । जैसी उक्तियाँ ऐसी ही पद्धति का उदाहरण है । इस आलोचना पद्धति को जहां सैद्धान्तिक मर्यादाओं के साथ जोड़ा जाता है वही रचनाजनित व्यक्तिगत प्रभावों का समावेश भी इसमें रहता है । आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने रचना सम्बन्धी अपने विचारों को निर्णयात्मक ढंग से ही प्रस्तुत किया है ।

जब आलोचक कृति की अन्तरात्मा में प्रवेश कर उसके उद्देश्य व विशेषताओं का उद्‌घाटन करता है तो उसकी आलोचना व्याख्यात्मक आलोचना कहलाती है। इस पद्धति में आलोचना साहित्यिक कृतियों की बन्धन रहित व्याख्या का प्रयास करती है । इस पद्धति का मूल सिद्धान्त निरपेक्ष मानदण्डों पर आधारित होता है । इसमें आलोचक कृति के सौन्दर्य का उद्‌घाटन करते हुए, उसका विवेचन और विश्लेषण करता है । उस विवेचन कृति में प्रस्तुत गूढ़ भावों को सरल बनाकर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है । कृति और कृतिकार के साथ इस आलोचना मे पूर्ण न्याय, सजीवता व रोचकता बनी रहती है । हिन्दी मे इस पद्धति का सूत्रपात आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने दिया जिन्होंने तुलसी, सूर और जायसी पर इतिहास, समाज, अर्थ, जीवन आदि को दृष्टि में रखते हुए आलोचना की । इनके अतिरिक्त बाबू श्याम सुन्दर दास, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र जी इस प्रणाली के समर्थक है।

जब आलोचना में आलोचक के हृदयोल्लास की भावपूर्ण अभिव्यक्ति होती है तो उसे प्रभाववादी आलोचना कहा जाता है । इसमें किसी विशिष्ट पद्धति को नहीं अपनाया जाता अपितु कृति के प्रभाव की प्रधानता रहती है । तार्किक दृष्टि से किसी कृति के प्रति व्यक्तिगत प्रतिक्रिया ही इस आलोचना का प्रथम सोपान है । इसे आत्यगत या प्रभावाभिव्यंजक भी कहा जाता है । इस आलोचना पद्धति में सहज, आंतरिक प्रतिक्रिया, कृति का स्वेच्छापूर्णज्ञान और मूल्यांकन रहता है । इस आलोचना में आलोचक में तीव्र संवेदनशीलता, चित्त की गतिशीलता, भावानुभूति, कल्पनाशक्ति आदि गुणों की अपेक्षा रहती है । लक्ष्मी सागर वर्ष्णेयजी के अनुसार 'वास्तव में प्रभावात्मक आलोचना पद्धति द्वारा हम साहित्य की शक्ति पहचानने में समर्थ हो सकते हैं, वह इसमें नवीन कलात्मक चेतन को जन्म दे सकती है ।' इस पद्धति मे हृदय अधिक प्रभावी रहता है । राधाचरण गोस्वामी जी की आलोचना में इस पद्धति के दर्शन अधिक होते हैं । जैनेन्द्र जी भी ऐसी पद्धति के समर्थक हैं ।

ऐतिहासिक आलोचना में कृति का मूल्यांकन उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में किया जाता है । लेखक के रचना सन्दर्भ में विशेष रूप से उसके सामयिक काल का अध्ययन करते हुए कृति का मूल्यांकन इस पद्धति की विशिष्टता है । इस पद्धति में आलोचक साहित्य को समाज का प्रतिबिम्ब मानते हुए परखता है । इस पद्धति में पाश्चात्य आलोचक तेन का नाम विशेष रूप से लिया जाता है । इस प्रकार की आलोचना में युग की आत्मा को समझना प्रमुख ध्येय रहता है । रचनाकार समाज से किस प्रकार प्रभावित होकर अपने भावों को किस प्रकार अभिव्यक्त कर रहा है उन्हें देखना इस पद्धति का मूल उद्देश्य है ।

जब आलोचक रचना के प्रभाव की अभिव्यक्ति को अधिक प्रभावी मानते हुए उसकी उपयोगिता आदि पर विचार नहीं करता तो वह पाश्चात्य समीक्षक बेने देत्तो क्रोचे से प्रभावित आलोचना सिद्धान्तों को अपनाते हुए

अभिव्यंजनावादी आलोचना करता है । इसी प्रकार जब आलोचक रचना के गुण दोषों पर ही केन्द्रित होती है तो गुणदोषात्मक आलोचना कहलाती है । यह पद्धति रूढ़ि पर अधिक दृष्टि रखते हुए कृति की परख करती है । इसमें लेखक की नवीन विशेषताओं और अन्तः प्रकृति के विश्लेषण पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता । जब कला के प्रति आलोचक की सहज, स्वाभाविक, निरपेक्ष प्रतिक्रिया प्रस्तुत होती है तो नैसर्गिक आलोचना का रूप स्पष्ट होता है । इसमें रचना की उत्कृष्टता को ही परखा जाता है इसे सहज, स्वाभाविक आलोचना भी कहा जाता है ।

आलोचना के क्षेत्र में जब एक ही रचनाकार की दो विभिन्न कृतियों या दो विभिन्न भाषायी रचनाकारों या दो विभिन्न समान भाषी रचनाकारों की रचनाओं की तुलना की जाती है तो ऐसे समय में तुलनात्मक आलोचना प्रभावी होती है । इस पद्धति में विचारों और प्रकारों की दृष्टि से तुलना की जाती है । इस पद्धति में आलोचक का बहुज्ञ होना आवश्यक है क्योंकि तुलनात्मक आलोचना में साहित्य अभिव्यंजना का साधन मात्र ही नहीं होता बल्कि सामाजिक चेतना का दर्पण होता है । इस रूप में आलोचक को कृतियों के साथ जुड़कर उनके परिवेश को देखते हुए तुलना करनी होती है । किसी के प्रति विशेष रूप से आकृष्ट आलोचक ऐसी आलोचना नहीं कर सकते । हिन्दी में पद्मसिंह शर्मा जी ने इस प्रकार की पद्धति को अपनाया है । यह आलोचना पद्धति तभी श्रेयस्कर सिद्ध हो सकती है जब आलोचक तटस्थ भाव से दोनों पक्षों की सहानुभूति में समीक्षा करे ।

रचनाकार के अन्तर्मन के भावों को रचना में परखने का प्रयास मनोवैज्ञानिक आलोचना के अन्तर्गत किया जाता है । यह पद्धति लेखक द्वारा प्रस्तुत रचनागत पात्रों की मानसिकता का उद्‌घाटन करती है । इस आलोचना में रचनाकार के आन्तरिक भावों की सूक्ष्म प्रस्तुति को परखा जाता है । मनोवैज्ञानिक प्रणाली से साहित्यिक कृति की रचना प्रक्रिया के समय लेखकीय मानसिकता को समझने में काफी सहायता मिलती है । मनोविश्लेषणात्मक पद्धति में कृति में कृतिकार के मन की व्याख्या की जाती है । मनोविज्ञान जहां लेखक की सहज–प्रक्रिया की खोज में सहायक सिद्ध होता है वहीं कृति विशेष पर लेखन की मनः स्थिति के प्रभावों को भी परखा जा सकता है ।

आधुनिक युग द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से अधिक प्रभावित हुआ है । इस दृष्टि से वर्ग संघर्ष के आधार पर कलाकार के जीवन और साहित्य की क्रियात्मकता और गतिशीलता को परखने का प्रयास मार्क्सवादी आलोचना में होता है । इस पद्धति के सिद्धान्त कार्लमार्क्स के सिद्धान्तों से अधिक प्रभावी है । इस पद्धति की भौतिकवादी, प्रगतिवादी, सोवियतसमीक्षा पद्धति या सामाजिक यथार्थवादी आलोचना भी कहा जाता है । इस पद्धति में पूंजीवादी व्यवस्था के विरूद्ध सर्वहारा वर्ग के भाव की अभिव्यक्ति को ही साहित्य सृजना का मूल स्वीकार करते हुए कृति की आलोचना की जाती है । इस पद्धति में आलोचक कला और साहित्य द्वारा जन क्रान्ति की अवतारणा देखना चाहते हैं । समाजवादी और पूंजीवादी समाज की मान्यताओं के स्थान पर श्रमिक वर्ग के अधिनायकत्व में निर्मित वर्गहीन समाज की मान्यताओं का ही साहित्यिक प्रस्तुति उसकी सफलता की परिचायक है । आलोचना पद्धति साहित्यिक रचना की आर्थिक उपयोगिता को अधिक महत्त्व देती है । उपयोगितावादी दृष्टिकोण के साथ यह प्रणाली सम्प्रेषण को अधिक महत्त्व देती है । भौतिक यथार्थवाद के साथ अनुभूति की गहराई और संवेदना को भी इस प्रणाली मे महत्त्व दिया जाता है ।

आलोचना प्रणालियो में रचनात्मक आलोचना को क्रियात्मक आलोचना भी कहा जाता है । इस प्रणाली के अन्तर्गत आलोचक के हृदय के कलाकार की कृति का पुनरुत्पादन ही मुख्य है । इसे साहित्यिक आलोचना के समय की माना जाता है । अनुभवात्मक आलोचना में कृति का निरीक्षण, विश्लेषण और वर्गीकरण आलोचक द्वारा किया जाता है। यह पद्धति व्यक्तिगत अनुभवों को व्यवस्थित और वैज्ञानिक रूप प्रदान कर साहित्यकार की मूलभावना को स्पष्ट करने का प्रयास करती है । हिन्दी साहित्य में चिन्तन प्रधान आलोचना का सूत्रपात आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा हुआ। इसमें वैज्ञानिक पद्धति पर लेखक के काल, जीवन, चरित्र, वातावरण, परिवेश, लोक समूह, आदि को दृष्टि में रखकर कृतियों को परखा जाता है। इस प्रकार आलोचक के विविध रूप दृष्टिगत होते हैं जिनमें आलोचक के व्यक्तिगत दृष्टिकोण को सामने रखकर उनके द्वारा कृति–विशेष की आलोचना कर उसकी उपादेयता को अलग–अलग दृष्टि कोणों से पाठक वर्ग के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है।

19.3.5 हिन्दी आलोचना : विकास के चरण

हिन्दी आलोचना का वास्तविक विकास आधुनिक युग में ही हुआ है । हिन्दी में भारतेन्दु युग से पूर्ण उत्तरमध्यकाल–रीतिकाल– तक साहित्य शास्त्र की पुष्ट परम्परा संस्कृत काव्य शास्त्र पर ही आधारित थी । भागीरथ मिश्र जी के अनुसार – 'आधुनिक युग से पूर्व भी हिन्दी आलोचना के कुछ रूप प्रचलित थे जिनका सम्बन्ध संस्कृत काव्यालोचन से था।' कहकर इस बात की पुष्टि की है । आधुनिक काल या पूर्व आदिकाल का काव्य तो संस्कृत की सैद्धान्तिक परम्परा को ही मान्यता देता है । मध्यकाल में भक्तिरस में तो वैष्णव मत कवि भी संस्कृत काव्य शास्त्रीय आधार को ही मान्यता देते हैं । मध्यकाल का उत्तरार्द्ध–रीतिकाल लक्षण–लक्ष्य ग्रन्थों की परिपाटी को ही मान्यता देता है ।

भारतेन्दु युग से पाश्चात्य प्रभाव के कारण जीवनमूल्यों में आए परिवर्तन के साथ हिन्दी साहित्य में भी परम्परित मान्यताओं में परिवर्तन परिलक्षित होने लगता है इसी के प्रभाव से शास्त्रीय सैद्धान्तिक लक्षण–लक्ष्य ग्रन्थों के स्थान पर प्रयोगात्मक/व्यावहारिक आलोचना का स्वरूप अधिक प्रभावी होने लगा । रामचन्द्र तिवारी जी की मान्यता है कि 'वैज्ञानिक अनुसंधान, औद्योगिक क्रान्ति, राष्ट्रीय एकता, जनतान्त्रिक जीवन व्यवस्था, विचार–स्वातन्त्रय, जीवन के प्रति बौद्धिक एवं उपयोगिता वादी दृष्टिकोण आदि नवीन मान्यताओं से हिन्दी का साहित्यकार परिचित, प्रेरित एवं प्रभावित हुआ । परिणामस्वरूप हमारे परम्परागत साहित्य संस्कार बदलने लगे । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इस जागरण–युग की साहित्य–चेतना के अरूणोदय बनकर आए । उन्होंने जीवन और साहित्य के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया । उन्हें परम्परागत संस्कृत समीक्षा – शास्त्र में युगानुकूल परिवर्तन कहने में संकोच न हुआ ।' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को भले ही 'रसवादी' आलोचक माना जाता है पर उन्होंने नाटक विधा को लेकर युग–प्रवृति के अनुकूल परिवर्तन को मान्यता देते हुए आधुनिक युग चेतना को अधिक महत्व दिया । इसमें उन्होंने माना कि मानवी वृत्तियाँ परिवर्तनशील है, इसी को ध्यान में रख कर साहित्य रचना प्रभावी हो सकती है।

आधुनिक युग में हिन्दी आलोचना के विकास में तत्युगीन पत्र–पत्रिकाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है । कवि वचन सुधा (1868), हरिश्चन्द्र चन्द्रिका (1873) में भारतेन्दु जी ने पुस्तक–समीक्षा के रूप में आलोचना को नया रूप दिया । इनके अतिरिक्त 'हिन्दी प्रदीप' (1877), 'भारतमित्र' (1877), 'ब्राह्मण' (1883), 'आनन्द

कादम्बिनी' (1881) आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित आलोचनाएं शुरू में परिचयात्मक रही और फिर क्रमशः उनका स्तर गम्भीर होता गया । पं. बाल कृष्ण भट्ट जी ने 'हिन्दी प्रदीप' तथा पं. बदरी नारायण चौधरी जी ने 'आनन्द कादम्बिनी' में पुस्तकों की आलोचना प्रकाशित की । पं. कुन्दन लाल की 'कवि और चित्रकार' में भी 'नवीन ग्रन्थों की आलोचना' शीर्षक के साथ सामयिक पुस्तकों की आलोचनाएं प्रकाशित होती थीं । इस प्रकार भारतेन्दु युग में हिन्दी आलोचना में सत् साहित्य के प्रोत्साहन का भाव अधिक दिखाई देता है ।

भारतेन्दु युग में पुस्तकीय आलोचना के साथ ही पूर्ववर्ती लक्षण ग्रन्थीय आलोचना का रूप भी दिखाई देता हैं। जगन्नाथ प्रसाद भानु तथा मुरारिदान आदि की रचनाएं इसी का प्रमाण है ।

हिन्दी आलोचना की अविच्छन्न परम्परा का सूत्रपात द्विवेदी युग से प्रारम्भ हेाता है। इस काल में 1897 ई. से नागरी प्रचारिणी पत्रिका के प्रकाशन के साथ हिन्दी आलोचना के इतिहास का नया अध्याय प्रारम्भ होता है । इस पत्रिका के प्रथम वर्ष में पं. गंगा प्रसाद अग्निहोत्री का 'समालोचना', बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकार का 'समालोचनादर्श' व पं अम्बिका दत्त व्यास का 'गद्य काव्य मीमांसा लेखों के प्रकाशन से आधुनिक आलोचना के सिद्धान्तों को एक स्पष्ट आकार मिलना शुरू हुआ । सन् 1900 ई. में सरस्वती तथा सुदर्शन व 1902 ई. में समालोचक पत्रिकाओं के प्रकाशन के साथ हिन्दी आलोचना के विकास को विशेष गति मिली । 'सरस्वती' पत्रिका का इस क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान रहा । इसके प्रकाशन के प्रथम वर्ष में कार्तिक प्रसाद खत्री, किशोरी लाल गोस्वामी, राधाकृष्ण दास, बाबू श्याम सुन्दर दास तथा रत्नाकर जी सम्पादक समिति के सदस्य थे । इन सभी ने 'आदिक ग्रन्थादिको की यशोचित' शीर्षक से आलोचना का स्थाई स्तंभ प्रारम्भ किया 1903 ई. में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी सम्पादकीय दायित्व संभालने के साथ ही आलोचनात्मक साहित्य लिखने के लिए अत्यधिक प्रोत्साहन मिलना प्ररम्भ हुआ । स्वयं द्विवेदी जी ने पुस्तकों की परिचयात्मक आलोचना द्वारा हिन्दी आलोचना को नई दिशा दी । द्विवेदी जी के साथ ही मिश्रबन्धु, लाला भगवान दीन, पद्म सिंह शर्मा, किशोरी लाल गोस्वामी, कृष्णबिहारी मिश्र, बदरीनाथ भट्ट, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, मोहन लाल विष्णु लाल पंड्या ने हिन्दी आलोचना के विकास को विशेष गति प्रदान की । मिश्र बन्धुओं द्वारा 'मिश्रबन्धु विनोद' तथा 'हिन्दी नवरत्न' ग्रन्थ हिन्दी आलोचना के विकास को आधार प्रदान करते है । मिश्र बन्धुओं ने यद्यपि तुलनात्मक आलोचना की शुरूआत की पर उसको व्यवस्थित रूप पं. पद्म सिंह शर्मा ने दिया इस युग मे रीतिकालीन कवि 'देव और विहारी' को लेकर पं कृष्ण बिहारी मिश्र और लाला भगवानदीन जी ने खूब तुलना कर अपने–अपने पक्ष को सबल बनाने का प्रयास किया ।

द्विवेदी युग में ही बाबू श्याम सुन्दर दास ने साहित्यालोचन ग्रन्थ की रचना की । इसके साथ ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के आलोचनात्मक लेख इसी युग में प्रारम्भ हुए सन् 1901 ई में उनके साहित्य सम्बन्धी विचार सरस्वती में प्रकाशित हुए । 'आनन्द कादम्बिनी' में 'अपनी भाषा पर विचार' लेख से भी उनकी प्रखर आलोचना शक्ति का आभास मिल जाता है । यद्यपि शुक्ल जी की आलोचना की पूर्ण प्रखरता 1920 ई के पश्चात् दिखाई देती है पर उसका आभास 1901 ई से ही मिल जाता है ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के आविर्भाव के साथ ही हिन्दी आलोचना में एक नये युग का प्रारम्भ माना जाता है । पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी के अनुवाद ''भारतीय पक्ष को अपने ढंग से प्रस्तुत करने वाले और

उसके मानदण्ड से देशी–विदेशी सभी प्रकार की विचार–सरणियों को माप लेने वाले सबसे पहले भारतीय समीक्षक शुक्ल जी ही है ।'' इससे निश्चित हो जाता है कि शुक्ल जी से ही हिन्दी आलोचना को निश्चित आदर्श का सिद्धान्त प्राप्त हुआ । उन्होंने सैद्धान्तिक, व्यावहारिक तथा ऐतिहासिक आलोचना के रूप में अपने कृतित्त्व में हिन्दी आलोचना का विकास किया चिन्तामणि (भाग 1,2) तथा 'रसमीमांसा' के साथ ही हिन्दी साहित्य का इतिहास, जायसी श्री ग्रन्थावली तथा भ्रमर गीतसार की भूमिका और गोस्वामी तुलसी दास में उनकी आलोचना के विविध रूप दिखाई देते है । शुक्ल जी ने 'रस' के पोषक तत्त्व के रूप मे रीति, अलंकार, गुण आदि से स्वीकार करते हुए काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था पर अधिक बल दिया । शुक्ल जी रस, नीति के साथ–साथ लोकमंगलवादी आलोचक माने जाते हैं ।

शुक्ल जी के समसामयिक हिन्दी आलोचक थे बाबू श्यामसुन्दर दास, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, कृष्ण शंकर शुक्ल, ब्रजरत्न दास, रामनरेश त्रिपाठी, पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, गिरिजा दत्त शुक्ल 'गिरीक्ष' बाबू गुलाब राय प्रभृति विद्वानों के नाम आते हैं । सेठ कन्हैयालाल पोद्दार तथा रमाशंकर शुक्ल जी ने बाबू श्यामसुन्दर दास जी के अनुसार ही हिन्दी आलोचना के सैद्धान्तिक पक्ष को महत्ता दी । बख्शी जी ने 'विश्व साहित्य' के माध्यम से सैद्धान्तिक आलोचना के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया । सेठ गोविन्द दत्त, रामकुमार वर्मा, पुरुषोतम लाल आदि ने भी परिचयात्मक आलोचना ग्रन्थों की रचना की ।

शुक्ल जी के समय में ही हिन्दी साहित्य में 'छायावादी' धारा का वर्ग दिखाई देता है । इस 'वाद' विशेष का सम्यक मूल्यांकन, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' व महादेवी वर्मा जी द्वारा अपनी कृतियों की भूमिकाओं या अलग से लिखकर भी छायावादी कविता के सौन्दर्य पक्ष का सम्यक् विश्लेषण किया गया ।

द्विवेदी युग के पश्चात् छायावादी/स्वच्छन्दतावादी काल में हिन्दी आलोचना का प्रतिनिधित्व पं. नन्द दुलारे वाजपेयी द्वारा होता है । आपने भारतीय रस सिद्धान्त को पाश्चात्य संवेदनीयता से जोड़कर हिन्दी आलोचना पथ को एक नई दिशा दी । छायावादी/ स्वच्छदतावादी आलोचना को पाश्चात्य रोमांटिक आलोचना के साथ जोड़ा जाता है । इस आलोचना को सौष्ठववादी आलोचना भी कहा जाता है । सौन्दर्य सृष्टि को काव्य का उद्देश्य मानते हुए जयशंकर प्रसाद जी ने 'काव्य कला तथा अन्य निबन्ध' सग्रंह में अपनी मान्यताएं स्पष्ट की इस काल में आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, शांति प्रिय द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र,, देवराज, डॉ. रामकुमार वर्मा, रामधारी सिंह 'दिनकर', जानकी वल्लभ शास्त्री, लक्ष्मी नारायण सुधांशु आदि विद्वानों के नाम भी आते हैं । जिन्होंने हिन्दी आलोचना के विविध रूपों का संज्ञप लिया । इसी समय में आलोचना का प्रभाववादी रूप भी दिखाई देता है। इस में सहृदय आलोचक कृति के प्रभाव को ग्रहण करता है । शान्ति प्रिय द्विवेदी, पं. भगवत शरण उपाध्याय आदि इस पद्धति के समर्थक हैं ।

छायावादी आलोचना के बाद प्रगतिवादी समाजशास्त्रीय आलोचना, मनोवैज्ञानिक–मनोविश्लेषणवादी–अन्तश्चेतना वादी आलोचना तथा ऐतिहासिक/सांस्कृतिक आलोचना पद्धतियों का विकास हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में दिखाई देता है। इनके साथ ही शास्त्रीय एवं सैद्धान्तिक आलोचना के साथ–साथ गवेषणात्मक/शोधपरक आलोचना का विकास भी उल्लेखनीय है ।

प्रगतिवादी, समाजशास्त्रीय आलोचना का मुख्य आधार रहा । मार्क्सवादी दर्शन में द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी सिद्धान्तों का प्राधान्य रहा । इसमें पूंजीवाद को मिटाने और साम्यवाद की स्थापना के लिए सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति का भाव अधिक गहरा है। इस दृष्टि से कृति की आलोचना करने वालों में शिवदान सिंह चौहान, डॉ रामविलास शर्मा, रांगेय राघव, नामवरसिंह का महत्वपूर्ण स्थान है । अमृतराय की आलोचना भी मार्क्सवादी चिन्तन का प्रयास दिखाई देता है । प्रकाश चन्द्रगुप्त की जनवादी चेतना मे भी मार्क्स की विचार ध ारा प्रभावी है ।

मनोवैज्ञानिक/मनोविश्लेषणात्मक –अन्तश्चेतनावादी आलोचना का उदय फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक विचारों से प्रभावित है। कला और साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त होने वाली अवचेतन मन की दमित वासनाएं अर्द्ध चेतन में प्रविष्ट होकर कृतित्त्व की प्रेरणा बनती है। रचनाकार की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति उन्ही मान्यताओं को कृति के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य की आलोचना करने वालों मे इलाचन्द्र जोशी, देवराज तथा 'अज्ञेय' आदि के नाम आते हैं। डॉ नगेन्द्र रसवादी होते हुए भी मनोविज्ञान को रसवाद का पूरक माना है।

हिन्दी के ऐतिहासिक/ सांस्कृतिक आलोचना में कृति का मूल्यांकन इतिहास एवं संस्कृति के विस्तृत फलक को दृष्टि में रख कर किया जाता है । आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पं. परशुराम चतुर्वेदी, पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र आदि ने इसी दृष्टि से हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में हिन्दी साहित्यिक कृतियों को परखा है । ऐतिहासिक आलोचना मानव–समुदाय की चिन्तन शीलता को देश काल के अनुसार परिवर्तित होते हुए भी परम्परा से बंधा हुआ देखा है । इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य में शोधात्मक विश्लेषण भी प्रस्तुत हुए हैं ।

द्विवेदी युगीन शास्त्रीय सैद्धान्तिक आलोचना की प्रवृत्ति हिन्दी साहित्यतिहास में परवर्ती काल में भी दिखाई देती है । इस क्षेत्र में आलोचकों ने रीतिकालीन लक्षण ग्रन्थों की परम्परा में नवीन विवेचना पूर्ण लक्षण ग्रन्थों की रचना की । साथ ही कुछ विद्वानों ने संस्कृत और पाश्चात्य काव्यशास्त्र का समन्वय कर नवीन सिद्धान्त ग्रन्थों का प्रणयन किया। इस पद्धति में लक्ष्मीनारायण सुधांशु, राम कुमार वर्मा, सीताराम चतुर्वेदी, एस. पी. खत्री, केसरी नारायण शुक्ला, धीरेन्द्रवर्मा, तारक नाथ बाली, रवीन्द्र सहाय वर्मा, भगीरथ मिश्र, आदि विद्वानों के नाम लिए जा सकते हैं ।

अनुसंधान परक आलोचना का विकास विभिन्न विश्व विद्यालयों के शोधपरक उपाधियों (पी एच. डी, डी. फिल., डी. लिट्) के लिए प्रस्तुत होने वाले शोध प्रबन्धों के रूप में हुआ । हिन्दी में भारतीय विश्वविद्यालयों मे शोध–उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबंध का प्रारम्भ 1934 ई में पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के शोध के कार्य से निरन्तर आज तक चल रहा है ।

19.4 सारांश

1947 ई में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी में विभिन्न प्रभावों के कारण यथार्थवाद, आधुनिकतावाद, अतिआधुनिकतावाद आदि विभिन्न वादों का प्रादुर्भाव हुआ है । इस नवीन चेतना के साहित्यिक कृतित्त्व की आलोचना के लिए भी नये प्रतिमानों की खोज को आवश्यक माना गया । इस दृष्टि से गिरिजा कुमार माथुर, रघुवंश, लक्ष्मीदत्त वर्मा आदि विद्वानों के कार्य को देखा जा सकता है । विजय देव नारायण साही, रंजीत साहा, जगदीश गुप्त राम स्वरूप चतुर्वेदी आदि ऐसे विद्वान हैं जिन्होंने काव्य आलोचना पद्धतियों को गति दी है । रमेश कुन्तल मेघ सौन्दर्य शास्त्र के आधार पर साहित्यिक रचनाओं की परख करते हैं । इन्द्रनारायण दास आधुनिक दृष्टि कोण के

परिधायक का रवीन्द्र श्रीवास्तव, पंडित शशि भूषन 'शीतांषु' शैली वैज्ञानिक पद्धति से कृति को परखने का प्रयास करते हैं। सन् 1960 ई के बाद हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में यह अनुभव किया गया कि सृजन कार्य की पहचान केवल कला के स्वायत्त संसार के नियमों में नहीं हो सकती और न केवल रचना को बाहरी सामाजिक मानदण्डों से परखा जा सकता है बल्कि रचना के भीतर–बाहरी तत्वों की समग्र परख के लिए दोनों में सन्तुलित मूल्यांकन दृष्टि का तालमेल रखती है। इस दृष्टि से मैनेजर पांडेय, सुधा जितेन्द्र, मनमोहन सहगल, ब्होरा, आनन्द प्रकाश दीक्षित, गजानन माधव मुक्तिबोध, चन्द्रभानु सोनवणे, अशोक वाजपेयी, लालचंद्र गुप्त मंगल, प्रभृति विद्वानों के कार्य को देखा जा सकता है। अब 21 वीं सदी से प्राचीन मान्यताओं के सन्दर्भ के नए परिवेश के साथ जोड़कर ही साहित्यिक आलोचना का विकास हो रहा है। इस सन्दर्भ में विभिन्न विश्वविद्यालयों के हिन्दी विषयों में विशेषकर तथा साथ ही मुक्त रूप से भी हिन्दी से वो कार्य कर रही हैं। विभिन्न पत्रिकाएं भी इस कार्य में सहायक हैं।

19.5 कठिन शब्द

1 सैद्धान्तिक 2 लक्षण 3 समन्वय 4 परिवर्तित 5 समुदाय 6 मानदंड़ 7 प्रवृत्ति 8 स्वायत्त 9 सौन्दर्य 10 अन्तर्मुखी

19.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न – आलोचना शब्द की व्युत्पति कहां से हुई है, स्पष्ट करते हुए इसके विभिन्न भेदों पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – हिंदी आलोचना के विकास के विविध चरण कौन से हैं ? विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – आलोचना के विविध रूपों पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – आलोचना के विविध रूपों पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – आलोचना का उद्देश्य क्या होता है स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – हिंदी आलोचना के उद्‌भव व विकास पर टिप्पणी करें।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न – हिंदी की सैद्धान्तिक आलोचना पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

19.7 पठनीय पुस्तकें

1. नामवर सिंह – छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1990
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी – ग्रंथावली, भाग–3, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1981
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं. 2050
4. रामस्वरूप चतुर्वेदी – हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1993
5. डॉ. नगेन्द्र (सं.) – हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली 1982
6. डॉ. जयकिशन प्रसाद – हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
7. डॉ. नामवर सिंह – आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, राजकमल प्रकाशन – नई दिल्ली,

.....

जीवनी : उद्‌भव और विकास

20.0. भूमिका

20.1. उद्देश्य

20.2. प्रस्तावना

20.3. जीवनी : परिभाषा एवं स्वरूप

20.4. जीवनी : परम्परा और विकास

20.5. जीवनी : तत्व

20.6. प्रश्नावली

20.7. सन्दर्भग्रन्थ

20.1. उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

- जीवनी साहित्य के बारे में जानेंगे।
- जीवनी के उद्‌भव और विकास से अवगत होंगे।
- जीवनी साहित्य की परंपरा से परिचित होंगे।
- जीवनी के विभिन्न तत्वों से अवगत होंगे।

20.2. प्रस्तावना

किसी व्यक्ति के जीवन की वास्तविक घटनाओं पर आधारित कलात्मक प्रस्तुति जीवन साहित्य कहलाता है। यह मनुष्य के आंतरिक एवं बाहरी रूप को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करती है। जीवनी में संपूर्ण जीवन का चित्रण होता

है। सत्यता, प्रासादात्मकता, रोचकता, वैज्ञानिकता, संक्षिप्तता, सुसंगठितता आदि का ध्यान जीवनी लिखते समय रखा जाता है।

जीवन की विभिन्न तात्कालिक परिस्थितियों एवं घटनाओं का विवेचन भी जीवनी के माध्यम ये किया जाता है।

20.3. परिभाषा एवं स्वरूप

साहित्य में जीवन का विस्तृत वर्णन होता है, जीवन का गूढ़तम समस्याओं एवं उलझनों का उसके सौन्दर्य और विभूतियों का साहित्य में स्पष्ट रूप से विवेचन होता है। इसीलिए जीवन और साहित्य का धन्ष्ठि सम्बन्ध है। साहित्य का मूल प्रेरणा स्त्रोत मनुष्य जीवन है और साहित्य जीवन को व्यक्त करने का साधन है।

वैसे तो साहित्य के सब रूपों में किसी न किसी रूप में मानव जीवन का उल्लेख होता है। अतः सारा ही साहित्य जीवनी है। यहाँ हमारा अभिप्राय 'जीवनी' के सामान्य अर्थ से नहीं है प्रत्युत व्यक्ति विशेष की जीवनी से है। इसके लिए सामान्य मानव समाज में से किसी विशिष्ट व्यक्ति को चुन लिया जाता है और अधिक गहराई तथा वास्तविकता से उसके जीवन की घटनाओं एवं परिस्थितियों का अध्ययन किया जाता है। जब लेखक इस अध्ययन के परिणामस्वरूप अपनी प्रतिक्रियाओं को इतिहास रूप में वर्णित करता है तब वह हर प्रकार के साहित्य का निर्माण करता है अपने अर्थ में जीवनी शब्द इसी साहित्यिक रूप का परिचायक है।

वास्तव में जीवनी घटनाओं का अंकन नहीं वरन् चित्रण है। वह साहित्य की विधा है और उसमें साहित्य और काव्य के सभी गुण हैं। वह एक मनुष्य के अन्तर और बाह्य स्वरूप का कलात्मक निरूपण है। ''जिस प्रकार चित्रकार अपने विषय का एक ऐसा पक्ष पहचान लेता है जो विभिन्न पक्षों में ओतप्रोत रहता है और जिसमें नायक की सभी कलाएँ और छटाएँ समन्वित हो जाती हैं उसी प्रकार जीवनीकार अपने नायक के आपे की कुन्जी समझकर उसके आलोक में सभी घटनाओं का चित्रण करता है।'' इस परिभाषा के अनुसार 'जीवनी' में लेखक के आन्तरिक और बाह्य स्वरूप का विवेचन कलात्मक रूप से होता है।

जीवन चरित्र जीवन की ऐतिहासिक घटनाओं का स्थूल साहित्यिक उल्लेख भी नहीं है, जीवनी साहित्य एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। ''मनुष्य की मुद्रा और भावना उसके मन की क्रिया–प्रतिक्रियाएँ और जीवन के क्रम में उसके मस्तिष्क के विकास का अध्ययन एक अत्यंत गूढ़ विषय है। मनुष्य का व्यक्तित्व मानसिक क्रियाओं का परिणाम है। इन मानसिक क्रियाओं का अध्ययन और उनका सफल चित्रण जीवनी साहित्य का अनिवार्य विषय है।

जीवनी शब्दों में संगृहित ज्ञात प्रमाण है। इसमें मानवीय स्वभाव एवं भावनाओं का ऐसा प्रवाहित रूप से दृढ़ वर्णन होता है जैसे किसी पारे जैसा तरल पदार्थ के बहाव का होता है।

इससे स्पष्ट है कि जीवनी में मनुष्य जीवन के उत्थान पतन, सभी पक्षों का धारावाहिक रूप से वर्णन होता है। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जीवनी में लेखक व्यक्ति के आन्तरिक और बाह्य व्यक्तित्व का स्पष्ट रूप से विवेचन करता है, उसके वर्णन में एक विशेष प्रकार की कलात्मकता होती है, जो उसे गद्य की अन्य विधाओं से पृथक करती है। इतिहास की अपेक्षा इसमें अधिक वैयक्तिकता होती है और साहित्य के अन्य रूपों की अपेक्षा इसमें वास्तविकता होती है। अतः जीवनी की परिभाषा इस प्रकार हो सकती है – जब कोई लेखक कुछ वास्तविक घटनाओं के आधार पर श्रद्धेय व्यक्ति की जीवनी कलात्मक रूप से प्रस्तुत करता है तो साहित्य का वह रूप 'जीवनी' कहलाता है।

20.4. परम्परा और विकास

भारतीय साहित्य में जीवनी लिखने की वैसी वस्तुपरक परम्परा नहीं रही है जैसी कि पाश्चात्य देशों में पायी जाती है। कहने मात्र के लिए तो स्वतंत्रता–प्राप्ति से पूर्व भी हिन्दी–साहित्य में जीवन चरित कहलायी जाने वाली कुछ

कृतियाँ मिल जाती हैं, किन्तु सही अर्थों में जीवनी में निरूपित चरित्र नायक के प्रति वस्तुपरक दृष्टिकोण तथा जीवनी लेखन का कलात्मक अभिव्यक्ति का उनमें नितान्त अभाव है। इसके विपरीत पश्चिमी देशों में ईसा की प्रथम–द्वितीय शताब्दी में ही ईसाई संतों, राजनीतिक व्यक्तियों, सुप्रसिद्ध साहित्यकारों तथा वरिष्ठ पत्रकारों की न केवल आधिकारिक जीवनियाँ ही लिखी गयी हैं, अपितु सर्जनात्मक कला की दृष्टि से भी वे साहित्य की अन्य किसी भी विधा से कम महत्वपूर्ण नहीं है। इस तथ्य की पुष्टि करते हुए अमृतराय ने लिखा है, ''यह एक अटल सच्चाई है कि हमारे यहाँ जीवनियों का एक सिरे से अकाल है, जबकि योरप की ज़बानों में यह चीज़ आसमान पर पहुँची हुई है। कोई बड़ा–साहित्यकार नहीं है, कलाकार नहीं है, वैज्ञानिक नहीं है, जननायक नहीं है, जिसकी कई–कई जीवनियाँ एक से एक अच्छी न हों।''

भारत में जीवनी साहित्य के उद्‌भव एवं विकास की कमी के प्रमुख कारण भारतीय जीवन–दृष्टि में खोजे जा सकते हैं। विश्वहित की भावना ही सदैव जीवन का आदर्श रहा है। आत्म प्रकाशन के स्थान पर आत्मगोपन को महत्व रहा है, जबकि जीवनी साहित्य गोपन के स्थान पर प्रकाशन में विश्वास रखता है। कृष्णानन्द गुप्त ने इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए लिखा है, ''हमारे देश के प्राचीन साहित्यकारों ने अपने विषय में कभी कुछ कहने की आवश्यकता नहीं समझी। यहाँ तक कि दूसरों के सम्बन्ध में भी वे सदैव चुप रहे हैं। इसी से हमारे यहाँ आधुनिक युग में जिसे इतिहास कहते हैं, वह नहीं है, जीवन चरित भी नहीं है और आत्मकथा नाम की तो चीज़ बिलकुल ही नहीं है।'' इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि भारतीय जीवन–दृष्टि व्यष्टिमूलक होने के स्थान पर समष्टिमूलक रही है। जीवनी के इस अनिवार्य तत्व 'व्यष्टिवाद' की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए विश्वनाथप्रसाद सिंह ने लिखा है, ''जीवनी और आत्मकथा के लिए लौकिक दृष्टिकोण के अतिरिक्त व्यष्टिमूलकता भी होनी चाहिए, जिसका अभाव लौकिक संस्कृत में भी रहा। भारतीय मनीषियों की चेतना इस काल में भी समष्टिमूलक ही रही। वे समष्टि में ही अपना व्यष्टि विलीन कर देने के पक्षपाती थे।'' इसी चिन्तन के फलस्वरूप संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य में जीवनी–साहित्य का अभाव रहा। हिन्दी–जीवनी के विकास को इस प्रकार अंकित किया जा सकता है –

(क) आरम्भिक काल

हिन्दी साहित्य के आरम्भिक काल में जीवनी का प्रारम्भिक रूप चरितकाव्यों के रूप में देखा जा सकता है। सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक दृष्टि से यह युग विरोधों तथा व्याघातों के युग रहा है। इस युग में समाज में अनेक अन्तः–विरोधी कुरीतियाँ एवं विसंगतियाँ पनप रही थी, धार्मिक क्षेत्र में रूढ़िवादी तत्त्वों और गतिशील तत्त्वों में द्वन्द चल रहा था, राजनितिक दृष्टि से भारत अनेक छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त था जिनमें प्रायः युद्ध–प्रिय और सुरा–सुन्दरी–सेवी शासकों का आधिपत्य था। वातावरण में तलवारों की खट–खट और पायलों की छम–छम का स्वर व्याप्त था। कवि लोग राजाओं के आश्रय में रहते थे और अपने आश्रय–दाताओं के शौर्यपूर्ण एवं विलासी व्यक्तित्व को अपनी काव्य साधना का इष्ट बनाकर, आजीविका कमाते थे। आदिकालीन कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के गुणों का उत्कर्ष दिखाने के लिए ऐतिहासिक सत्य की अवहेलना की है, उनके वंश का गौरव दिखाने के लिए मूल पुरूषों की अप्रमाणिक तालिका गिनाई है और अपने चरितनायक को विजयी प्रदर्शित करने के लिए झूठे युद्धों और दिग्विजयों की कल्पना ही नहीं की, अपितु ऐतिहासिक तथ्यों को भी तोड़ा–मरोड़ा है। इसी कारण आलोच्य युग को 'चारण–काल' भी कहा जाता है। इस युग के चारणों द्वारा रचित ऐतिहासिक ग्रन्थों को 'ऐतिहासिक चरित काव्य' कहा जाता है जिसमें से 'पृथ्वीराज रासो', 'हम्मीर रासो', 'जयचंद प्रकाश' इत्यादि प्रमुख हैं।

(क) मध्यकाल

हिन्दी–साहित्य के मध्यकाल में संत, महात्माओं एवं भक्तों के जीवन चरित लेखन की प्रवृति को बड़ा प्रोत्साहन मिला। आलोच्य युग के प्रारम्भ में ही मुस्लिम शासक अलाउद्दीन खिलजी द्वारा उत्तरी भारत पर आधिपत्य स्थापित कर

लेने के पश्चात पराजित हिन्दू राजाओं तथा हिन्दू जनता के लिए ईश्वर–भक्ति की शरण में जाने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रह गया था। अतः इस युग में भी अनेक महात्मा अवतरित हुए, जिन्होंने हिन्दुओं के भग्न हृदय को सम्भाला और उन्हें भक्ति–मार्ग की ओर अग्रसर होने के उपदेश दिए। इस युग में भक्ति की चार धाराएँ बह निकलीं– 1. संत काव्यधारा 2. सूफ़ी काव्यधारा 3. रामभक्ति काव्यधारा 4. कृष्णभक्ति काव्यधारा। आलोच्य युग में कबीर, तुलसी, सूर जैसे भक्त कवियों और मीरा जैसी भक्तिन कवयित्री की रचनाओं से हिन्दी–साहित्य धन्य और धनी हो उठा। इन महान् विभूतियों के चरित्रों ने न केवल देश, जाति तथा धर्म को प्रभावित किया, अपितु समस्त मानव जाति के लिए नवीन आदर्श मार्ग प्रशस्त किया। समय–समय पर हिन्दी–साहित्य में इन विभूतियों के प्रति श्रद्धा और सम्मान व्यक्त करने के लिए इनके जीवन चरित लिखे गये। संतों के जीवन चरित 'परचई' के नाम से विख्यात हुए, यथा 'कबीर जी की परचई', 'नामदेव जी की परचई', 'रैदास जी की परचई' तथा 'मूलकदास जी की परचई' इत्यादि। भक्तों के जीवनचरित–नाभादास कृत 'भक्तमाल' स्वामी गोकुलनाथ कृत 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' तथा 'अष्टसखान की वार्ता' इत्यादि में संकलित हैं।

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' महाप्रभु वल्लभाचार्य के पौत्र तथा विट्ठलदास के चतुर्थ पुत्र स्वामी गोकुलनाथ द्वारा रचित है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' की भाँति 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' भी पुष्टिमार्गीय ब्रज भाषा–साहित्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है। इसमें भी कवि ने दो सौ चौरासी वैष्णव भक्तों के सत्प्रसंगों को संकलित किया है जिसमें सम्बद्ध व्यक्तियों के प्रति गुरू–निष्ठा, भगवत्परायणता, अनन्यता, त्याग, सहिष्णुता तथा उदारता आदि पर प्रकाश पड़ता है। 'अष्टसखान की वार्ता' भी हिन्दी में वार्ता–लेखन में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस रचना में अष्टछाप के आठ कवियों के चरित्र की कुछ विशेषताओं को एक स्थान पर संग्रहित किया गया है।

उपर्युक्त सभी मध्यकालीन वार्ता–ग्रन्थों की रचना का उद्देश्य वैष्णव चर्चा के माध्यम से पुष्टिमार्गी सिद्धान्तों के प्रति लोगों की आस्था उत्पन्न करके वैष्णव धर्म की वृद्धि एवं पुष्टि करना रहा है। इसलिए इनमें तथ्यात्मकता का अभाव है। अतः इन्हें जीवनी की कोटी में नहीं रखा जा सकता।

वार्ता–ग्रन्थों के अतिरिक्त इस काल के उत्तर पक्ष में आचार्य केशवदास द्वारा रचित 'वीरसिंह देव चरित' (1607ई०), ' जहाँगीर–जस–चन्द्रिका' (सन् 1621), सूदन कृत 'सुजान चरित' तथा चन्द्रशेखर कृत 'हम्मीर हठ' (सन्1845) भी चरितकाव्य–परम्परा में ही आते हैं।

(ग) आधुनिक काल

आधुनिक काल में जीवनी–साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया है। इसलिए इस काल में रचित जीवनी–साहित्य का समुचित एवं व्यवस्थित रूप में अध्ययन करने के लिए दो भागों में विभाजित करना उचित होगा –

1. स्वतंत्रता पूर्व काल में हिन्दी–जीवनी का विकास
2. स्वतंत्रता–प्राप्ति के उपरान्त हिन्दी–जीवनी का विकास

1. स्वतंत्रता पूर्व काल में हिन्दी–जीवनी का विकास – हिन्दी जीवनी का उत्कर्ष भी साहित्य की अन्य विधाओं के समान आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिशचन्द्र के साहित्य सृजन से ही हुआ। इस युग में जीवनी–साहित्य ने अपनी पुरानी केंचुली को उतार फेंका और एक नव रूप में अपना परिचय दिया। जीवनी गद्य–साहित्य की एक विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी। राष्ट्रीय पृष्ठभूमि ने जीवनी–लेखन के लिए एक विशिष्ट भावभूमि तैयार की और भारतेन्दु युग से लेकर स्वतंत्रता–प्राप्ति के पूर्व तक विभिन्न व्यक्तियों द्वारा लिखित अनेक जीवनियाँ प्रकाश में आयीं। इन जीवनियों में मुख्यतः संत–महात्माओं, राजा–महाराजाओं, विदेशी शासकों, समकालीन राष्ट्रीय नेताओं, देशभक्त–क्रान्तिारी युवाओं तथा सुप्रसिद्ध साहित्यकारों के जीवनचरित का अंकन राष्ट्रीय पृष्ठभूमि के आलोक में हुआ है।

'जागरण–युग' के प्रणेता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्य की अन्य विधाओं के साथ जीवनी–लेखन में भी अपनी

कलम चलाई, उन्होने 'चरितावली' (रचनाकाल सन् 1871–1889) में विभिन्न क्षेत्रों के महत्वपूर्ण व्यक्तियों के संक्षिप्त जीवन चरित्र प्रस्तुत किये। तदुपरान्त 'पंच पवित्रात्मा' (सन्1884) में मुस्लिम धर्माचार्यों–महात्मा मुहम्मद, मुहम्मद अली, बीबी फातिमा, इमाम हसन और इमाम हुसैन – की संक्षिप्त जीवनियां लिखीं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जीवन चरित सम्बन्धी पाँच पुस्तकें लिखीं जिनमें से 'प्राचीन पंडित और कवि', 'सुकवि संकीर्तन' तथा 'चरित चर्चा' उल्लेखनीय हैं।

इस युग के धर्मिक और सामाजिक क्षेत्र के जन–नायकों में स्वामी सत्यानन्द कृत 'श्रीमद् दयानन्द प्रकाश' (सन्1918) एक महत्वपूर्ण जीवनचरित है। राजनीतिक पुरूषों की जीवनियों में शिवनारायण टण्डन द्वारा लिखित 'पंडित जवाहर लाल नेहरू' (1937) जगपति चतुर्वेदी द्वारा लिखित 'लाला लाजपत राय' (1933ई०), श्री ब्रजेन्द्र शंकर द्वारा लिखित 'श्री सुभाष बोस' (1938ई०), मन्मथनाथ गुप्त द्वारा लिखित 'चन्द्रशेखर आज़ाद' (1938ई०), रामनाथ लाल 'सुमन' द्वारा लिखित 'मोती लाल नेहरू (1939ई०)', तथा घनश्यामदास बिड़ला द्वारा प्रणित 'बापू' (1940ई०) उल्लेखनीय है। घनश्यामदास बिड़ला दीर्घकाल तक बापू जी के साथ रहे, इसलिए इनमें प्रामाणिकता के अधिक निष्ठा दिखाई पड़ती है। इसमें गाँधी जी विचारों एवं सिद्धान्तों पर ही अधिक बल दिया गया है।

साहित्यिक विभूतियों पर लिखी हुई जीवनियों में सर्वप्रथम जीवनी कार्तिकप्रसाद खत्री द्वारा लिखित 'मीराबाई का जीवन–चरित्र' (सन्1893) उपलब्ध होता है। हिन्दी साहित्य में सफल जीवनी–लेखक के रूप में श्री शिवनन्दन सहाय का पदार्पण एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। उनके द्वारा प्रणीत 'भारतेन्दु हरिशचन्द्र' विषय वस्तु की पूर्णता एवं भाषा–शैली की सरसता व रोचकता के कारण एक सफल जीवनी है। शिवनन्दन सहाय द्वारा लिखित है दूसरी जीवनी ' गोस्वामी तुलसीदास' सन् 1916 में प्रकाशित हुई। यह जीवनी दो खण्डों में विभक्त है। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा लिखित तथा सन् 1926 में प्रकाशित 'कविरत्न सत्यनारायण की जीवनी' एक उल्लेखनीय जीवनी है। इस जीवनी का महत्व इसलिए अधिक है कि इसमें साधारण व्यक्ति का जीवनचरित मानवीय रूप में मिलता है। श्रीमती शिवरानी देवी कृत 'प्रेमचन्द–धर मे' आलोच्यकाल की महत्त्वपूर्ण जीवनी है। यह जीवनी संस्मरणात्मक शैली में लिखी गयी है और इसका प्रकाशन सन् 1944 में हुआ है।

2. स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त हिन्दी–जीवनी का विकास – स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त के काल को हिन्दी–जीवनी का 'चरमोत्कर्ष काल' कहा जा सकता है। इस काल में हुए विश्व की वैज्ञानिक प्रगति तथा पाश्चात्य देशों में प्रचलित मानव विकास के विभिन्न आन्दोलनों – मार्क्सवाद, विकासवाद, फ्रायडवाद तथा अस्तित्ववाद इत्यादि ने व्यक्ति जीवन को दूर तक प्रभावित किया। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मान्यताएँ तीव्र गति से बदलने लगी। भौतिकता के प्रति आग्रह के कारण नैतिक मूल्यों में ह्रास प्रारम्भ हुआ। राष्ट्र के प्रति व्यक्ति के मोहभंग की यातनापूर्ण प्रक्रिया प्रारम्भ हुई और उसका परिचय जीवन की कठोर यथार्थता से होने लगा। फलतः मानव–जीवन का अध्ययन भी युगीन पृष्ठभूमि के आलोक में वस्तुपरक रूप में कलात्मक अभिव्यक्ति के साथ होने लगा। यही कारण है कि जीवनी लेखन कला की दृष्टि से इस काल की जीवनियाँ अद्वितीय बन पड़ी हैं।

इस काल में धार्मिक–सामाजिक महापुरूषों, राजनीतिक नेताओं, राष्ट्रीय क्रांतिकारियों तथा सुप्रसिद्ध साहित्यकारों की अनेक जीवनियाँ लिखी गयी हैं। धार्मिक–सामाजिक संत–महात्माओं की जीवनियों में पण्डित ललिताप्रसाद द्वारा लिखित 'श्री हरिबाबा' (सन् 1947), रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर द्वारा लिखित श्री अरविन्द की जीवनी 'महायोगी', ब्रह्मचारी शिवानन्द आंजनेय द्वारा लिखित तथा सन् 1970 में प्रकाशित अध्यात्म जगत के ज्योतिर्मान नक्षत्र उड़िया बाबा की जीवनी 'हमारे महाराज जी' तथा सुप्रसिद्ध साहित्यकार डा० शिवप्रसाद सिंह द्वारा लिखित तथा सन् 1972 में प्रकाशित श्री अरविन्द की जीवनी 'उत्तरयोगी' उल्लेखनीय हैं।

राजनीतिक महापुरूषों के जीवनी लेखकों में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का नाम सर्वोपरि है। उन्होंने साम्यवादी

विचाराधारा के दिशा पुरूषों को अपनी दृष्टि का केन्द्र बनाकर, सन् 1953 में 'स्तालिन' सन् 1954 में 'कार्लमार्क्स' तथा 'लेनिन' और सन् 1956 में 'माओत्से–तुंग' की जीवनियाँ लिखी। इन जीवनियों में उनके अन्तर्बाह्य जीवन का सूक्ष्म विवेचन–विश्लेषण प्रस्तुत न होकर उनके मार्क्सवादी विचारों को ही अधिक प्रतिष्ठता मिली है। लेखक की साम्यवादी विचारधारा में निष्ठा होने के कारण इन जीवनियों का उद्देश्य भी मार्क्सवादी नेताओं तथा मार्क्सवादी विचारधारा के प्रति लोगों की आस्था उत्पन्न करना रहा है। अन्य राजनीतिक महापुरूषों की जीवनियों में रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा लिखित 'कार्लमार्क्स' तथा जयप्रकाश नारायण की जीवनियाँ अपना विशिष्ट महत्त्व रखती हैं। बेनीपुरी जी ने हृदय रस से आप्लावित होकर असीम आस्था के साथ अपने चरित नायकों के जीवन को उद्घाटित किया है। ओंकार शरद कृत सुप्रसिद्ध समाजसेवी नेता डा० राम मनोहर लोहिया की जीवनी 'लोहिया' (सन् 1971) और स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी जी जीवनी 'इन्दिरा गाँधी' (सन् 1885), श्रीशरण द्वारा लिखित तथा सन् 1985 में प्रकाशित श्रीमती इन्दिरा गाँधी की जीवनी 'धरती की बेटी आकाश हो गई' और डा० चन्द्रशेखर द्वारा लिखित तथा सन् 1985 में प्रकाशित ज्ञानी जैल सिंह की 'जीवन–यात्रा' शीर्षक जीवनी स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त के प्रमुख जीवनियाँ हैं।

इस लिखित राजनीतिक व्यक्तियों की जीवनियों पर सामग्र रूप में विचार करने पर स्वतः यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वतंत्रता से पूर्व राजनीतिक व्यक्तियों की जीवनियों में जहां लेखक अपने चरितनायक के मानवीय पक्ष की उपेक्षा कर, उनके राजनीतिक कार्य–कलापों को ही जीवनी की समस्त उपलब्धि मानने की भूल कर रहे हैं, वहाँ स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात के काल में जीवनी–लेखकों ने अपने चरितनायकों के अन्तर्बाह्य स्वरूप को उद्घाटित करने का प्रशंसनीय प्रयास भी किया है।

इस युग में कुछ सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारियों की भी सफल जीवनियाँ लिखी गई हैं जिनमें से सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी विश्वनाथ वैषम्पायन द्वारा लिखित 'अमर शहीद चन्द्रशेखर आज़ाद' (1965ई०), प्रो० वीरेन्द्र सिन्धु द्वारा लिखित 'युग द्रष्टा भगत सिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे' (1968ई०), धर्मवीर द्वारा लिखित 'लाला हरदयाल' (1970ई०) तथा मन्मथनाथ गुप्त द्वारा लिखित 'क्रान्तिदूत भगत सिंह और उनका युग' (1972ई०) प्रमुख जीवनियाँ हैं।

स्वतंत्रता–प्राप्ति के उपरान्त के काल में लिखित साहित्यिक व्यक्तियों की जीवनियों में सुप्रसिद्ध पत्रकार ऋषि जैमिनी कौशिक 'बरूआ' द्वारा लिखित तथा सन् 1960 में प्रकाशित 'माखन लाल चतुर्वेदी', अमृतराय द्वारा लिखित तथा सन् 1962 में प्रकाशित 'प्रेमचन्द–कलम का सिपाही', डा० रामविलास शर्मा द्वारा प्रणीत तथा सन्1969 में प्रकाशित 'निराला की साहित्य साधना' (प्रथम खण्ड, जीवन–चरित) और श्री विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित तथा सन् 1974 में प्रकाशित शरत्चन्द्र की जीवनी 'आवारा मसीहा' प्रमुख हैं।

हिन्दी जीवनी के विकास–क्रम के उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि हिन्दी–जीवनी–लेखन का प्रारम्भ हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक काल में ही हो गया था। प्रस्तुत काल में ऐतिहासिक चरित–काव्यों के रूप में राजा–महाराजाओं की वीरता तथा शौर्य का अतिरंजनापूर्ण वर्णन मिलता है। 'मध्यकाल' में विभिन्न संतों तथा भक्तों के जीवनचरितों के माध्यम से उनके चरित्र के उज्जवल पक्षों का उद्घाटन करते हुए उनके प्रति श्रद्धाभिव्यक्ति हुई है। 'आधुनिक काल' को हिन्दी जीवनी का 'उत्कर्ष युग' कहा जा सकता है। इस युग में धार्मिक–सामाजिक तथा राजनीतिक पुनर्जागरण के परिणामस्वरूप आत्मदैन्य का स्थान स्वाभिमान ने और अन्ध गतानुगतिकता का स्थान विवेक ने ले लिया। सर्वत्र व्यक्ति–विशेष के व्यक्तित्व–विशलेषण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई जिसकी अभिव्यक्ति के लिए साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति जीवनी भी गद्य–विधा के रूप में लिखी जाने लगी। इस काल में अनेक राजा–महाराजाओं, विदेशी शासकों, राष्ट्रीय नेताओं, देशभक्त क्रांतिकारी युवाओं तथा सुप्रसिद्ध साहित्यकारों के जीवनचरितों का अंकन राष्ट्रीय आन्दोलन की पृष्ठभूमि के आलोक में होने लगा। स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात् भारतीय जीवन–दृष्टि को पाश्चात्य व्यक्तिवादी आन्दोलनों–फ्रायडवाद, अस्तित्ववाद, स्वच्छंदतावाद इत्यादि ने अत्यन्त प्रभावित किया। फलतः

भौतिकता के प्रति आग्रह के कारण नैतिक मूल्यों का ह्रास होने लगा। राष्ट्र के प्रति मोहभंग की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। अब व्यक्ति–विशेष के गुण–दोषों का अध्ययन भी वस्तुपरक रूप में कलात्मक ढंग से होने लगा। इस काल में जीवनी–लेखन के तत्वों तथा मानदण्डों की दृष्टि से अनेक श्रेष्ठ जीवनियाँ लिखी गई।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी का जीवनी–साहित्य, जीवनी–लेखन–कला की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध हो चुका है और परिणामात्मक तथा गुणात्मक दृष्टि से भी निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर है।

20.5. तत्व

1. वर्ण्य–विषय :

जीवनी साहित्य का यह महत्वपूर्ण तत्व है। इसमे नायक के सम्पूर्ण जीवन का विश्लेषण होता है। नायक के जीवन का यह विश्लेषण लेखक वास्तविक घटनाओं के आधार पर करता है। जहाँ तक नायक का प्रश्न है वह साहित्यिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक कोई भी हो सकता है परन्तु उसका जनता में यथेष्ट स्थान होना आवश्यक है जिसके चरित्र को पढ़कर पाठक कुछ प्रेरणा एवं विशिष्ट ज्ञान गृहण कर सकें।

वर्ण्य विषय को उत्कृष्ट एवं सफल बनाने के लिए उसमें कुछ गुणों का होना आवश्यक है। सर्वप्रथम वर्ण्य विषय में सत्यता का होना आवश्यक है। जॉनसन ने भी इसको स्वीकार किया है। जहाँ इन्होंने अपनी पुस्तक 'One Mighty Torrent' में एक उत्कृष्ट जीवनी के गुणों के विषय में वर्णन किया है वहाँ इस गुण को इन्होंने सर्वप्रथम स्वीकार किया है। ''सर्वप्रथम मेरे विचार में जिसको कि हम कहते हैं सच्चाई है– चित्रित मानव जीवन के चरित्र की सच्चाई। बिल्कुल निष्पक्ष – जोकि न तो उसके पतन का दमन करे न ही उपेक्षा करे जो भी स्पष्ट रूप से समझता हो उसका वर्णन करे। ऐसे उद्देश्य के लिए विश्लेषण एवं समीक्षा की आवश्यकता है। केवल सीधे तत्व ही आवश्यक नही अर्थात् वे ही कार्य को पूरा नहीं कर सकते। विश्लेषण कार्य को पूरा करने के लिए अवश्य किया जाता है। कभी कभी केवल एक चारित्रिक विशेषता की सच्चाई को व्यक्त करने के लिए सारी सामाजिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठ–भूमि देनी आवश्यक हो जाती है और इससे कभी–कभी आत्मा की अत्यन्त कपटी समस्याओं को भी खोजा जाता है। इससे स्पष्ट है कि जीवनी एक मनोवैज्ञानिक प्रमाण पुस्तक ही नहीं है प्रत्युत एक कला है।

इससे स्पष्ट है कि वर्ण्य विषय में सत्यता का होना नितान्त आवश्यक है। 'सत्यता' से यहाँ अभिप्राय घटनाओं की सच्चाई है। लेखक वास्तविक घटनाओं के आधार पर ही नायक के जीवन का चरित्र चित्रित कर सकता है। नायक के चरित्र सम्बन्धी गुण–दोषों का स्पष्ट एवं विस्तृत रूप से वर्णन करने से ही लेखक द्वारा लिखी हुई जीवनी सफल कही जा सकती है। 'जीवनीकार सत्यपथ से कभी विचलित नहीं होता। यह हो सकता है कि दोष–दर्शन में उसके हृदय में सहृदयता की भावना ऐसी हो कि वह यथार्थता की रक्षा करता हुआ चरित्र नायक की दुर्बलताओं का परिहास न करें। जीवनीकार सत्य का पल्ला कभी नहीं छोड़ता। वह इस मर्यादा की रक्षा के लिए सब कुछ त्याग करने को तैयार रहता है। इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट है कि वर्ण्य विषय में वास्तविकता एवं सत्यता का होना आवश्यक है। अन्य महत्वपूर्ण विशेषता जोकि वर्ण्य विषय को उत्कृष्ट बना सकती है वह है – प्रसादात्मकता व रोचकता। लेखक को नायक के सम्पूर्ण चरित्र का विश्लेषण इस ढंग से करना चाहिए जोकि पाठक को सरस एवं रोचक प्रतीत हो। नीरस जीवनी पढ़ने के लिए कोई भी पाठक नहीं तैयार होता है। इस प्रकार रोचकता के विषय में होना अत्यन्त आवश्यक है।

तीसरा महत्वपूर्ण गुण वर्ण्य विषय में वैज्ञानिकता का होना है। वही जीवनी सफल कही जा सकती है जिसमें नायक के सम्पूर्ण जीवन का मनोवैज्ञानिक रूप से विश्लेषण होता है। इस वैज्ञानिकता में त्रुटि आने से जीवन चरित्र भी दूषित हो जाता है। मनुष्य जीवन का क्रमिक विकास वैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत करना ही जीवनी में लेखक का उद्देश्य

होता है। यदि वैज्ञानिकता में कुछ कमी रह जाएगी तो वह जीवन चरित्र काल्पनिक हो जाएगा, इसलिए विषय–वर्णन में वैज्ञानिकता का होना आवश्यक है।

वर्ण्य विषय में संक्षिप्तता एवं सुसंगठितता का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। लेखक को समस्त जीवन की घटनाओं का क्रमानुसार वर्णन करना चाहिए। ऐसा न हो कि उनमें एकसूत्रता का अभाव हो। घटना का इस ढंग से वर्णन करना चाहिए कि वह सम्पूर्ण जीवन पर प्रकाश भी डाले और साथ में संक्षिप्त रूप से भी कही गई हो।

अतः वही जीवनी सफल कही जा सकती है जिसके वर्ण्य विषय में उपर्युक्त गुणों का समावेश हो।

2. चरित्र–चित्रण :

जीवनी साहित्य का यह विधायक तत्व है। इसमें लेखक अपने नायक का चरित्र चित्रित ही नहीं करता अपितु उसका संश्लेषण–विश्लेषण एवं विवेचन भी करता है। नायक के आन्तरिक एवं बाह्य व्यक्तित्व का विश्लेषण चरित्र–चित्रण में किया जाता है।

जहाँ तक नायक के आन्तरिक विश्लेषण का प्रश्न है उसमें गुण भी होते हैं और दोष भी। गुणों का वर्णन तो सभी कर सकते हैं। पर दोषों का वर्णन कोई ही व्यक्ति कलात्मक रूप से कर सकता है। चारित्रिक त्रुटियों का वर्णन लेखक को इस ढंग से करना चाहिए कि पाठक को यह भी अनुभव न हो कि स्पष्ट एवं कड़वे रूप से नायक की दुर्बलताओं को ही वर्णन करना लेखक का लक्ष्य है। इसमें लेखक को अपनी ही सहानुभूतिशीलता का प्रयोग करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति में गुण–दोष होते हैं, यह अन्य बात है कि किसी में गुण अधिक हो और दोष कम पर दोनों का अवश्य समावेश होता है। वही जीवनी उत्कृष्ट कही जाएगी जिसमें नायक के चारित्रिक गुण–दोषों का विवेचन हो। यदि लेखक केवल नायक के गुणों का उल्लेख ही अपनी जीवनी में कर पाएगा तो वह एक आदर्श जीवनी बन जाएगी जिसका अनुसरण पाठक भी नहीं कर सकेंगे। इस मत का समर्थन ब्रजरत्नदास ने भी किया है।

"मनुष्य तभी मनुष्य रहेगा जब उसके दोष आदि भी प्रकट कर दिए जाएँगे। मनुष्य देवता नहीं है उसमें दोष रहेंगे, किसी में एक है तो किसी में कुछ और हैं। यदि एक महात्मा की जीवनी में से हम दोषों को निकाल देते हैं तो हम एक ऐसा निर्दोष आदर्श उपस्थित कर देते हैं जिसको अनुमान करने का लोग साहस छोड़ बैठेंगे :–
तात्पर्य यह है कि जीवन चरित्र में गुणों का विवेंचन करते हुए दोषों का भी, यदि हो, तो विश्लेषण अवश्य कर देना चाहिए।"

जहाँ तक बाह्य व्यक्तित्व का प्रश्न है लेखक को नायक की बाह्य वेशभूषा का ज्ञान भी पाठक को करवा देना चाहिए। उसके शारीरिक अवयवों का लेखक को अवश्य वर्णन करना चाहिए। बाह्यवेशभूषा के वर्णन से सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि पाठक नायक के समस्त व्यक्तित्व का अनुमान उसकी वेशभूषा से ही लगा लेता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जीवनी में लेखक नायक के आन्तरिक और बाह्य व्यक्तित्व का विश्लेषण स्पष्ट रूप से करता है।

3. देशकाल :

जीवनी साहित्य का यह भी एक महत्वपूर्ण तत्व है। वर्ण्य चरित्र किसी देश या काल में ही अपना जीवन व्यतीत करता है। इसलिए उसके समस्त जीवन की घटनाएँ देश और काल से सम्बन्धित होती हैं। परन्तु अन्य प्रकथनात्मक साहित्य की भाँति जीवनी साहित्य के देशकाल का चित्रण मुख्य रूप से नहीं किया जाता । जीवन साहित्य में तो व्यंग्य रूप से ही इसका चित्रण किया जाता है। जो भी चित्रण किया जाता है अर्थात् जिन भी परिस्थितियों का वर्णन लेखक जीवनी में कर पाते हैं वह नायक के व्यक्तित्व के अनुसार ही होता है।

अतः स्पष्ट है कि नायक के व्यक्तित्व को उभारने के लिए ही लेखक तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन करता है। यदि नायक कोई साहित्यिक व्यक्ति हैं तो उसकी जीवनी में हमें तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियों का अवश्य

ही पाठक को ज्ञान होता। यदि नायक राजनैतिक व्यक्ति होगा तो हमें तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का ज्ञान हो जाएगा। इस प्रकार यहाँ देशकाल वातावरण से यही अभीप्राय है कि किन–किन परिस्थितियों का सामना करते हुए लेखक का नायक अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट करता है।

4. उद्देश्य :

जीवनी साहित्य का यह भी एक महत्वपूर्ण तत्व है। प्रत्येक लेखक का कुछ न कुछ उद्देश्य ज़रूर होता है। वह कोई भी रचना निरूद्देश्य नहीं लिखता। इस प्रकार जीवनीकार का उद्देश्य भी उसकी रचना में प्रकारान्तर से समाविष्ट हो जाता है।

जीवन चरित हमें चरित नायक के शरीर और आत्मा में प्रवेश कराकर एक ऐसे सुरक्षित स्थान पर बैठा देता है जहाँ से हम निष्पक्ष दृष्टि से अधिकार के साथ व्यक्ति के कार्य व्यापार, विचारधारा और इन दोनों के समन्वय को ध्यान से देखकर किसी निर्णय पर पहुँच सकते हैं। व्यक्ति का हृदय और मस्तिष्क एक व्यवच्छेद अथवा अंगच्छेद की भाँति स्फटिक की तरह स्पष्ट दिखाई देता है। किसी ने कविता ही क्यों लिखी ? अथवा उपन्यास ही क्यों लिखा ? कोई राजनैतिक नेता ही क्यों बना ? किसी ने दर्शन क्षेत्र में ही क्यों विजय प्राप्त की ? कोई भक्त ही क्यों बना ? आदि असंख्य प्रश्नों का उत्तर मिल जाएँगें। अत्एव मनुष्य को समझने के लिए उसके जीवन चरित्र का अध्ययन आवश्यक है।

इससे स्पष्ट है कि जीवनीकार नायक के बाह्य एवं आन्तरिक व्यक्तित्व का स्पष्ट रूप से वर्णन करता है। नायक के चरित्र का संश्लेषण विश्लेषण एवं विवेचन करना ही लेखक का उद्देश्य है।

जीवन की घटनाओं के विवरण का नाम ही जीवनी नहीं है। लेखक जहाँ नायक के जीवन में छुपे उसके विकास को, उसके व्यक्तित्व के रहस्य को, उसकी मुख्य जीवन धारा को खोलकर पाठकों के सामने रख देता है वहाँ जीवनी लेखक की कला सार्थक होती है। ऊपर से मनुष्य के दिखाई देने वाले रूप को दिखाकर ही जीवनी लेख कला संतुष्ट नहीं होती। वह उस आवरण को भेदकर अन्तःस्वरूप और आन्तरिक सत्य को प्रत्यक्ष करती है।

जीवनीकार एक चित्रकार के सदृश अपने नायक के व्यक्तित्व को कुन्जी समझकर उसके आलोक में सभी घटनाओं का चित्रण करता है।

इस प्रकार जीवन चरित्र लिखने का एक उद्देश्य तो यह हुआ कि हम मनुष्य के बाह्य व्यक्तित्व के साथ–साथ उसके आन्तरिक व्यक्तित्व को भी जान जाते हैं। दूसरी बात यह है कि दुनिया में विशाल स्मारक भवन एवं मन्दिर आदि तो नष्ट हो जाते हैं, केवल अमर ग्रन्थ ही रह जाते हैं। किसी भी श्रद्धेय व्यक्ति की जीवनी अमरत्व की भावना को लेकर ही लिखी जाती है।

5. भाषा शैली :

शैली अनुभूत विषय–वस्तु के सजाने के उन तरीकों का नाम है जो उस विषय–वस्तु की अभिव्यक्ति को सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनाता है। जीवनी लेखन एक अत्यन्त दुरूह कला है। सम्पूर्ण व्यक्ति को शब्दों में चित्रित करना असाधारण कौशल का कार्य है। जीवन चरित्र लिखने की कला इसलिए भी अत्यन्त दुष्कर है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक अलग शैली होती है वह प्रत्येक दूसरे व्यक्ति से भिन्न होती है और प्रत्येक व्यक्ति का चरित्र चित्रण एक गूढ़ विषय होता है। प्रत्येक व्यक्ति का जीवन चरित्र लिखना एक लम्बे समय के अध्ययन और मनन के पश्चात् ही सम्भव है। जीवन सम्बन्धी बातों की छानबीन विवेकपूर्ण परिश्रम का कार्य है। उत्कृष्ट जीवन चरित्र लम्बे और विवेकपूर्ण परिश्रम से ही तैयार हो सकता है। एक व्यक्ति के जीवन भर के वृतान्त को ऐसी रूप–रेखा में उपस्थित करना कि पाठक उस व्यक्ति को पहचान और समझ सके, सरल कार्य नही हैं। इसलिए जीवनी लेखन एक उत्कृष्ट और असाधारण कला है। इस प्रकार जीवनी शैली में कुछ विशेषताओं एवं गुणों का होना आवश्यक है जिससे वह

उत्कृष्ट शैली कहला सकती है।

जीवनी शैली में सर्वप्रथम सुसंगठितता का होना आवश्यक है। जीवनीकार को नायक के जीवन की समस्त घटनाओं का इस ढंग से वर्णन करना चाहिए जिससे उनमें एकसूत्रता रहे। ''चरित्र लेखक को नायक की घटनाओं के पुंज में से अपेक्षित तथ्य को ग्रहण करने और अनपेक्षित को त्यागने में ऐसी बुद्धिमत्ता से काम लेना पड़ता है कि सामंजस्य कहीं भी बिगड़ने न पाये और सर्वत्र एकसूत्रता भी बनी रहे।'' इस प्रकार सुसंगठित शैली का होना अत्यन्त आवश्यक है। अन्य महत्वपूर्ण विशेषता जिसका जीवनी शैली में होना अत्यन्त आवश्यक है वह है – निरपेक्षता। जीवन चरित लेखक को बड़े सतुंलन की आवश्यकता होती है। उसका प्रत्येक विवरण पाठक के मन में सत्यासत्य धारणा बनाता है। यदि यह धारणा सत्य पर अवलम्बित न रही तो असत्य के समर्थन से जो हानि समाज में हो सकती है उसका डर सदैव बना रहेगा। अतएव जीवनीकार को निष्पक्ष, अनुभवी, वर्गहीन, दृष्टिकोण धारक, स्पष्ट और सहनशील तथा सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए। इस प्रकार शैली में लेखक के मस्तिष्क की तटस्थता का होना अत्यन्त आवश्यक है।

अन्य महत्वपूर्ण विशेषता सहृदयता का होना है। केवल यही एक ऐसा गुण है जिसके द्वारा हम अन्य व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझ सकते हैं। कुछ भी हो हमें यह पूरी तरह से विश्वास है कि लेखक के वास्तविक चरित्र को हम तब तक नहीं समझ सकते जब तक कि लेखक में काफी मात्रा में सहानुभूतिशीलता नही है। ''जीवन में साहित्य को ऊँचा स्थान प्राप्त करवाने के लिए सहानुभूति सर्वप्रथम तत्व है। केवल सहानुभूति से ही हम दूसरी आत्मा को समझ सकते हैं।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है भाषा ही भावाभिव्यक्ति का साधन है। विषयानुकूल एवं भावानुकूल भाषा ही उत्कृष्ट होती है। भाषा में प्रसाद गुण का होना आवश्यक है। जीवनी को आकर्षक एवं रूचिकर बनाने के लिए उत्कृष्ट भाषा का प्रयोग आवश्यक है। भाषा ही एक ऐसा साधन है जिससे चरित्र के वास्तविक स्वरूप का पता चलता है। इस प्रकार जीवन चरित्र लिखने में सरल, सुबोध, आकर्षक और रूचिकर भाषा का प्रयोग आवश्यक है।

20.6. प्रश्नावली

1. जीवनी साहित्य की परिभाषा एवं स्वरूप पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

2. जीवनी साहित्य की परम्परा पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

3. जीवनी साहित्य के उद्‌भव एवं विकास पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

4. जीवनी के विभिन्न तत्वों का विवेचन कीजिए।

_____

_____

_____

_____

20.7. सन्दर्भ ग्रन्थ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहासः– रामसजन पाण्डे।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास :– हुकम चन्द राजपाल
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास :– रामचन्द्र शुक्ल
4. हिन्दी का गद्य साहित्य :– रामचन्द्र तिवारी
5. आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य :– डॉ॰ शान्ति खन्ना
6. गद्य की नई विधाओं का विकासः– माजदा असद

.....

आत्मकथा : उद्‌भव और विकास

21.0 भूमिका

21.1 उद्देश्य

21.2 प्रस्तावना

21.3 आत्मकथाः परिभाषा एवं स्वरूप

21.4 आत्मकथाः उद्‌भव एवं विकास

21.5 आत्मकथा : तत्व

21.6 प्रश्नावली

21.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

21.1 उद्देश्यः प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरांत आप

- आत्मकथा साहित्य के बारे में जानेंगे।
- 'आत्मकथा' के उद्‌भव एंव विकास से अवगत होंगे।
- आत्मकथा के विभिन्न तत्वों से अवगत होंगे।

21.2 प्रस्तावनाः–

किसी व्यक्ति द्वारा स्वयं लिखित अपने जीवन का इतिहास आत्मकथा कहलाता है। इसका आधार सच्चाई होती है। यह सच्चाई विज्ञान और इतिहास की सच्चाई से भिन्न है। अपने जीवन की घटनाओं को लेखक अपनी परिस्थितियों, परिवेश और दृष्टिकोण के अनुसार ही अभिव्यक्त करता है। आत्मकथाकार आत्मकथा के माध्यम से अपने जीवन की झांकी पेश करता है। इसलिए उसका युग और समय भी उसकी आत्मकथा में झाँकता हुआ नजर आता है।

21.3 आत्मकथा : परिभाषा एवं स्वरूप

आत्मकथा गद्य की नवीनतम विधाओं में आत्मकथा गद्य की नवीनतम विद्या है। आत्मचरित्र जीवनी साहित्य का उन्नतिशील अंग है जैसे इस शब्द से ही स्पष्ट है आत्मचरित्र वह चरित्र है जिसमें चरित्रनायक ने स्वयं अपनी जीवनी लिखी हो लेखक स्वयं अपना जीवन चरित्र लिखता है। ''विभिन्न देशों में जब से मनुष्य ने चेतना की अवस्था प्राप्त की है उसी समय से आत्मचरित्र जीवनी साहित्य का अंग हो गया। परन्तु कुछ लोग आत्मचरित्र की विशालता और महानता का क्षेत्र असीम कहने में संकोच नहीं करते। आत्मचरित्र में लेखक जीवन की घटनाओं की महत्ता और विशेषता को मनोभावों की क्रिया–प्रतिक्रिया को पहचानता है'' इससे स्पष्ट है कि आत्मकथा में लेखक अपने जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं को एवं अपनी मानसिक क्रिया–प्रतिक्रियाओं को स्वयं लिखता है।

आत्मकथा जीवन की या उसमें किसी एक भाग की वास्तविक घटनाओं को जिस समय में वह घटित हुई उन समस्त चेष्टाओं को पुनर्गठित करती है। इसका मुख्य सम्बन्ध आत्मविवेचन से होता है, बाह्य विश्व से नहीं यद्यपि व्यक्तित्व को अद्वितीय बनाने के लिए बाह्य विश्व को भी लिया जा सकता है और अनावश्यकतानुसार छोड़ा भी जा सकता है। जीवन को पुनर्गठित करना एक असम्भव कार्य है। एक ही दिन के आगे–पीछे का अनुभव असीम होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आत्मकथा बीती हुई घटनाओं से बनती है। यह वैयक्तिव जीवन की कुछ स्थितियाँ बना देती है। उनमें सम्बन्ध स्थापित करती है और उनकी व्याख्या करती है। इसके साथ ही वह निःसंदेह और स्पष्ट रूप से अपने और बाह्य विश्व के निश्चित दृढ़ सम्बन्ध को प्रदर्शित करती है।''

इससे स्पष्ट है कि गद्य के बहुत से प्रकारों में आत्मकथा ही केवल एक ऐसा ढंग है जिसमें लेखक अपने विषय में एवं अपने व्यक्तिगत अनुभवों के विषय में कहता है।

इस प्रकार आत्मकथा में लेखक अपने ही व्यक्तित्व का निरीक्षण करता है। इसमें लेखक अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्व दिखलाता है। इसमें लेखक का उद्देश्य आत्मनिरीक्षण, आत्मविश्लेषण एवं आत्मकथन ही है। अतः एक व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का इतिहास है, इतिहास ही नहीं बल्कि इसमें वर्णित घटनाओं की क्रिया–प्रतिक्रियाओं का भी उल्लेख है। इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट है कि आत्मकथा अपने ही ढंग का पुनर्कथित इतिहास है और इसके साथ ही व्यक्ति के बाह्य विश्व के साथ सम्बन्धित आत्मनिरीक्षण का प्रतिरूप है।

आत्मकथा गद्य का वह रूप है जिसमें लेखक व्यक्तिगत जीवन का विवेचन–विश्लेषण निःसंकोच रूप से प्रस्तुत करता है। इसके साथ ही वह बाह्य विश्व से सम्बन्धित मानसिक क्रियाओं–प्रतिक्रियाओं का विवेचन भी कलात्मक रूप से करता है।

आत्मकथा का लेखक सामान्य व्यक्ति नहीं होता। समाज में प्रतिष्ठा–प्राप्त व्यक्ति ही आत्मकथा लिखने में प्रवृत्त हो सकता है। सामान्यतः मानव अपने से उच्च एवं महान व्यक्ति के प्रति ही कुतूहल अनुभव करता है। जाति में, राष्ट्र में अथवा सम्प्रदाय विशेष में जो व्यक्ति अपने उदात्त चरित्र के कारण प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है, पार्श्ववर्ती जनसमुदाय इसके इतिवृत्त को जानने के लिए उत्सुक हो उठता है। ऐसी स्थिति में वह सम्मानित व्यक्ति अपने अनुयायिओं के सतत अनुरोध से प्रेरित होकर अपने जीवन के सम्बन्ध में उत्सुकता को शान्त करने के लिए 'आत्मकथा' लिखता है। जिस व्यक्ति का अपने धर्म में, समाज में, सम्प्रदाय में, जाति में, राष्ट्र में कोई विशेष स्थान नहीं वह व्यक्ति

अपने हृदय में आत्मकथा लिखने की प्रेरणा ही नहीं अनुभव करता। इससे स्पष्ट है कि 'आत्मकथा' का लेखक प्रतिष्ठित व्यक्ति ही होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आत्मकथा का लेखक सर्वमान्य एवं प्रतिष्ठित होना चाहिए। ऐसे व्यक्तियों द्वारा लिखा हुआ जीवन ही जनता को प्रेरणादायक एवं उत्साहवर्द्धक हो सकता है।

21.4 आत्मकथा : परम्परा और विकास

हिन्दी–साहित्य में आत्मचरित्र बहुत कम लिखे गये हैं। प्राचीनतम आत्मचरित्र बनारसीदास जैन लिखित 'अर्द्ध कथा' (1641 ई॰) है। इसके सम्बन्ध में सम्पादक का दावा है कि ''कदाचित् समस्त आधुनिक आर्यभाषा–साहित्य में इससे पूर्व की कोई आत्मकथा नहीं है।'' आत्मचरित्र लिखनेवालों में जिस निरपेक्ष और तटस्थ दृष्टि की आवश्यकता होती है, वह निश्चय ही बनारसीदास में थी। उसने अपने सारे गुण–दोषों को सच्चाई के साथ व्यक्त किया है। यह आत्मकथा पद्य में लिखी गयी है। इसके अतिरिक्त पूरे मध्यकाल में किसी अन्य आत्मकथा का उल्लेख नहीं मिलता। आत्मचरित्र लिखने की परम्परा का विकास आधुनिक युग में ही हुआ है। स्वामी दयानन्द लिखित 'जीवनचरित्र' (संवत् 1917 वि॰), सत्यानन्द अग्निहोत्री लिखित 'मुझ में देव–जीवन का विकास' (1910 ई॰), भाई परमानन्द लिखित 'आप बीती' (1921 ई॰), श्री रामविलास शुक्ल लिखित 'मैं क्रान्तिकारी कैसे बना' (1933 ई॰), भवानीदयाल संन्यासी कृत 'प्रवासी की कहानी' (1939 ई॰), डॉ॰ श्यामसुन्दरदास रचित 'मेरी आत्मकहानी' (1941 ई॰), राहुल सांकृत्यायन कृत 'मेरी जीवनयात्रा' (1946 ई॰), डॉ॰ राजेन्द्रप्रसाद रचित आत्मकथा (1947 ई॰), 'वियोगी हरि कृत मेरा जीवन–प्रवाह' (1948 ई॰), देवेन्द्र सत्यार्थी (1908–2003 ई॰) की तीन खण्डों में प्रकाशित आत्मकथाओं–'चाँद सूरज के बीरन' (1954 ई॰), 'नीलयाक्षिणी' (1985 ई॰) तथा 'नाच मेरी बुलबुल' (1999 ई॰) सेठ गोविन्ददास कृत 'आत्मनिरीक्षण' (तीन भाग, 1958 ई॰), पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' रचित अपनी खबर (1960 ई॰) तथा आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत मेरी आत्मकहानी (1963 ई॰) इस विषय की महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। इसी क्रम में 'जीवन के चार अध्याय' (1966 ई॰) श्री भुवनेश्वर मिश्र माधव तथा आत्मकथा और संस्मरण (1967 ई॰) महामहोपाध्याय पं॰ गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, की कृतियाँ भी स्मरणीय हैं। प्रेमचन्दजी ने 'हंस' के आत्मकथांक में कुछ साहित्यकारों की संक्षिप्त आत्मकथाएँ प्रकाशित की थीं। अब हिन्दी में आत्मचरित्र लिखने की कला विकसित हो गयी है। पिछले 30 वर्षों में कुछ महत्वपूर्ण आत्मकथाएँ प्रकाशित हुई हैं। इनमें 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' (1969 ई॰), नीड़ का निर्माण फिर (1970 ई॰), बसेरे से दूर (1978 ई॰) और दशद्वार से सोपान तक (1985 ई॰), (चार खण्डों में) हरिवंश राय बच्चन; 'यौवन के द्वार पर' (1970 ई॰), डॉ॰ देवराज उपाध्याय; अपनी कहानी (1970 ई॰), वृन्दावन लाल वर्मा; 'मेरी फिल्मी आत्मकथा' (1947 ई०) बलराज साहनी, 'घर की बात' (1983 ई०), डा० रामविलास शर्मा 'मेरा जीवन' (1985 ई॰), शिवपूजन सहाय; 'मेरे सात जनम' (तीन खण्डों में), हंसराज रहबर; 'मेरी जीवन धारा' (1987 ई॰), यशपाल जैन; 'तपती पगडंडियों पर पद यात्रा' (1989 ई॰), कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'; 'आत्म परिचय' (1988 ई॰), 'रेणु'; 'टुकडे, टुकड़े दास्तान' (1986 ई॰), अमृतलाल नागर; अर्धकथा (1988 ई॰), डॉ॰ नगेन्द्र 'तथा सहचर है समय' (1991 ई॰), रामदरश मिश्र की आत्मकथाएँ विशेष रूप से चर्चित हुई हैं। इस सन्दर्भ में कुछ नये प्रयोग भी हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। गर्दिश के दिन (1980 ई॰) शीर्षक से कमलेश्वर के संपादकत्व में हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के बारह रचनाकारों का 'आत्मकथ्य' एक साथ प्रकाशित हुआ है। अनेक रचनाकारों के आत्मकथ्यों का संकलन सम्पादन और प्रस्तुतीकरण एक प्रयोग ही है। इसमें इन रचनाकारों ने अपने जीवन की संघर्ष–कालीन मानसिकता का उद्घाटन किया है। ये आत्मकथ्य पूर्ण आत्मकथा नहीं हैं। इनमें रचनाकारों का अलग–अलग व्यक्तित्व और अलग–अलग मिजाज व्यक्त हुआ है। कुछ ने जीवन से अधिक अपने रचना–संघर्ष को व्यक्त करने की कोशिश

की है। किसी विशिष्ट रचनाकार की रचनाओं, उसके सम्पर्क में आने वाले मित्रों के संस्मरणों तथा उसके द्वारा लिखे गये पत्रों को आधार बनाकर किसी दूसरे आलोचक द्वारा उस विशिष्ट रचनाकार की आत्मकथा लिखने का प्रयत्न इस सन्दर्भ में किया जाने वाला दूसरे तरह का प्रयोग है। श्री विष्णुचन्द्र शर्मा द्वारा लिखी गयी मुक्तिबोध की आत्मकथा (1984 ई॰) इसी तरह का प्रयोग है। अपनी शैली के विषय में वे कहते हैं– ''स्व॰ पं॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यास बाणभट्ट की आत्मकथा ने मुझे 'मुक्तिबोध' के रचनाकार की भीतरी और बाहरी तथा चेतना के स्तर पर त्रिभुजाकार संश्लिष्ट प्रक्रियाओं के कौशल को पहचानने का गुण सिखाया है। प्रेमचन्द के उपन्यास रंगभूमि से एक व्यक्ति कैसे देशव्यापी चरित्र में रूपान्तरित होता है, यह मैंने सीखा है। फ्रांसीसी जीवनी लेखक हेनरी ट्रायट की जीवनी तोलस्तोय ने मुझे 'मुक्तिबोध' की लक्ष्य के प्रति एकाग्रता और जीवन को बदलने की रचना–प्रक्रिया का पाठ पढ़ाया है। इसका यह अर्थ नहीं कि मैंने मुक्तिबोध की आत्मकथा के रूप में उपन्यास लिखा है। मैंने परम्परा से हटकर मुक्तिबोध की विश्वसनीय जीवनी लिखने की ही कोशिश की है।' कुछ इसी तरह का प्रयोग निराला की आत्मकथा (1970 ई॰) लिखकर सूर्यप्रसाद दीक्षित ने किया है। श्री 'अज्ञेय' की रचनाओं के आधार पर उनके व्यक्तित्व की सर्जना का कुछ ऐसा ही कार्य रामकमल राय ने किया है। पारम्परिक आत्मकथाओं में यौवन के द्वार पर आंशिक आत्मकथा है। इसमें यौवन की मानसिकता और आचरण को ही उभारा गया है। अपनी कहानी में वर्माजी के जीवन–संघर्ष के साथ ही उनकी कृतियों के रचना–सन्दर्भ भी उद्घाटित हुए हैं। 'मेरी फिल्मी आत्मकथा' में बलराज साहनी के फिल्मी जीवन के संघर्षों की कहानी कही गयी है। 'घर की बात' डॉ॰ रामविलास शर्मा की विस्तृत आत्मकथा है। इसमें उनके परिवार का सौ वर्षों का इतिहास उजागर हुआ है। परिवार, समाज की इकाई है। समाज से जुड़कर ही वह अपना विशिष्ट आकार ग्रहण करता है। इसलिए इस आत्मकथा में बहुत कुछ ऐसा भी है, जिसे समाज का इतिहास कह सकते हैं। लेखक के ही शब्दों में – ''घर की बात में वैज्ञानिक विवेचन कम, मानवीय सम्बन्धों का चित्रण अधिक है। पत्र, संस्मरण, रेखाचित्र आदि अनेक विधाओं में प्रस्तुत की हुई सामग्री ललित गद्य लेखन की दिशा में एक प्रयोग है। इसमें कंई पीढ़ियों के लेखक और वार्ताकार सम्मिलित हैं।'' मेरा जीवन में शिवपूजन सहाय का निजी जीवन तो उजागर हुआ ही है, अनेक साहित्यकारों, साहित्यिक घटनाओं और प्रसंगों का प्रामाणिक दस्तावेज भी सामने आया है। इसमें श्री सहाय द्वारा समय–समय पर अलग–अलग उद्देश्यों और दृष्टियों से लिखे गये संस्मणों को संकलित और क्रमबद्ध करके एक पुस्तक का रूप दिया गया है। यह संकलन का कार्य उनके सुपुत्र बालेन्दुशेखर मंगलमूर्ति ने किया है। इस आत्मकथा में अनेक अल्पख्यात साहित्यकारों की भी चर्चा है। हिन्दी–साहित्य के आधुनिक युग के इतिहास–लेखन में यह सामग्री बहुमूल्य सिद्ध होगी। हंसराज रहबर के जीवन में अनेक उतार–चढ़ाव आये हैं। उन्होंने सन् 1985 से 1989 तक के अपने जीवन–सन्दर्भों को तीन खण्डों में मेरे सात जनम शीर्षक से लिपिबद्ध किया है। इसमें आधुनिक साहित्यिक गतिविधियों के सम्बन्ध में भी मूल्यवान सामग्री सुरक्षित है। इधर 1998 ई॰ में इसका चौथा खण्ड प्रकाशित हुआ है। श्री यशपाल जैन गाँधीवादी विचारक और पत्रकार हैं। उन्होंने देश–विदेश की यात्राएँ की हैं। उनके सामने स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व से लेकर आज तक पूरा इतिहास खुला हुआ है। उन्होंने मेरी जीवनधारा में अपने जीवन के सुख–दुःख के साथ ही आधुनिक मूल्यहीन समाज की विसंगतियों को भी उजागर किया है। उनके अनुभव को सार्थक अभिव्यक्ति देने वाली कुछ सूक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं। वे कहते हैं– ''वे दिन लद गये जब आदमी का काम बोलता था, अब शब्द बोलता है।'' इस आत्मकथा में बनारसीदास चतुर्वेदी, जैनेन्द्र, विनोबा भावे आदि से जुड़े प्रसंग भी हैं, जो इसे अतिरिक्त मूल्यवत्ता प्रदान करते हैं। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' एक प्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानी, पत्रकार और साहित्यकार हैं। उन्होंने सन् 1933 से 1947 तक विकास (स्वतन्त्रता–संग्राम के दिनों का तेजस्वी पत्र) के लिए जो

संघर्ष किया था उसे ही तपती पगडंडियों पर पदयात्रा शीर्षक से लिपिबद्ध कर दिया है। इसमें उनके तेजस्वी, सिद्धान्तवादी और कर्मठ व्यक्तित्व के अनेक पक्ष उजागर हुए हैं। इसमें हिन्दी, पत्रकारिता के विशिष्ट चरित्र और स्वतन्त्रता–संघर्ष में उसकी भूमिका पर भी अच्छा प्रकाश डाला गया है। आत्मपरिचय (1988 ई॰) में 'रेणु' के ऐसे संस्मरणों को संगृहीत किया गया है, जिनमें उनका जीवन और उनका रचना–संघर्ष साकार हो उठा है। 'टुकड़े–टुकड़े दास्तान' में नागर जी ने कहा है– ''मैं पत्थर पर उकेरी गई ऐसी मूर्ति हूँ, जो कहीं–कहीं छूट गयी हो, वस्तुतः जीवन की लम्बी अवधि में समय–समय पर अपने विषय में उन्होंने जो कुछ लिखा था उसे यहाँ संकलित कर दिया गया है। यह क्रम–बद्ध व्यवस्थित आत्मकथा नहीं है, किन्तु इसीलिए यह संवेदना के स्तर पर अधिक मार्मिक और सजीव बन सकी है। इसमें कथा–रस भरा हुआ है। नागर जी का फक्कड़ाना अन्दाज पूरी रचना में व्याप्त है। यह आत्मकथा आधुनिक सांस्कृतिक जागरण का जीवन्त इतिहास कही जा सकती है। चारखण्डों में प्रकाशित हरिवंश राय 'बच्चन' की आत्मकथा स्वयं उन्हीं के शब्दों में एक 'स्मृति–यात्रा–यज्ञ' है। इसमें उनका आरम्भिक जीवन–संघर्ष, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के उनके अनुभव, केम्ब्रिज से डाक्टरेट करके लौटने पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में उनकी उपेक्षा, उनकी अनुपस्थिति में उनके परिवार का असुरक्षित अनुभव करना, इलाहाबाद रेडियो स्टेशन पर हिन्दी प्रोड्यूसर का उनका अनुभव, विदेश मंत्रालय में आफिसर आन स्पेशल ड्यूटी (हिन्दी) के रूप में राजनयिक कार्यों में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिये किये गये उनके प्रयत्न, सचिवालय के सचिवों की मानसिकता तथा वहाँ से अवकाश लेने के बाद का उनका जीवन–अनुभव एक बृहद् उपन्यास की रोचक शैली में जीवन्त और साकार हो उठा है। इस 'स्मृति–यात्रा–यज्ञ' में प्रकारान्तर से स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद का हिन्दी–भाषा और साहित्य का पूरा संघर्ष ही मूर्त हो गया है। इस आत्मकथा में संस्मरण, यात्रावृत्त, कविता, साक्षात्कार, नैरेशन आदि अनेक विधाएँ और शैलियाँ गुंफित हैं। सबसे बड़ी बात है–लेखक के आत्म–स्वीकार का साहस। धर्मवीर भारती ने ठीक कहा है– ''हिन्दी में अपने बारे में सब कुछ इतनी बेबाकी, साहस और सद्भावना से कह देना–यह पहली बार हुआ है।'' डॉ॰ नगेन्द्र की 'अर्धकथा' में स्वयं उन्हीं के साक्ष्य पर कहा जा सकता है कि इसमें जीवन का 'अर्धसत्य' व्यक्त हुआ है। वे कहते हैं– ''यह मेरे जीवन का केवल अर्धसत्य है–अर्थात उपर्युक्त तीन खण्डों में मैंने केवल अपने बहिरंग जीवन का ही विवरण दिया है। जहाँ तक अंतरंग जीवन का प्रश्न है, वह नितान्त मेरा अपना है– आपको उसका समभागी बनाने की उदारता मुझमें नहीं है।'' 'जहाँ मैं खड़ा हूँ', 'रोशनी की पगडंडियाँ', 'टूटते–बनते दिन' और 'उत्तर पथ' इन चार खण्डों में लिखी गयी रामदरश मिश्र की आत्मकथा 'सहचर है समय' (1991 ई॰) के नाम से प्रकाशित हुई है। इसमें स्वतन्त्रता–प्राप्ति के बाद ग्रामीण परिवेश से निकलकर संघर्ष के रास्ते अपने जीवन का लक्ष्य तलाश करने वाले एक साहित्यकार का पूरा अनुभव–संसार, अपनी व्याप्ति में लगभग आधे भारत को समेटे हुए, साकार हो उठा है। इसमें रामदरश मिश्र ही नहीं आज की पूरी साहित्यिक पीढ़ी है; बनते बिगड़ते गाँव हैं, जिनका जीवन–रस सूख रहा है; उभरते हुए नगर हैं, जिनमें मनुष्यता मर रही है; और सैकड़ों सामान्य लोग हैं, जिनके रोजी–रोटी के लिये किए जाने वाले ऊपरी खुरदुरे संघर्ष के भीतर संवेदना और सहानुभूति की तरल धारा आज भी प्रवाहित हो रही है। सचमुच यह आत्मकथा आज के भारत के सामान्य आदमी के जीवन का दस्तावेज है। इसी परम्परा में इधर आपकी एक आत्मीय क्षणों को व्यक्त करने वाली रचना फुरसत के दिन (2000 ई॰) प्रकाशित हुई है। इसमें विश्वविद्यालय से अवकाश ग्रहण करने से लेकर सन् 1999 ई॰ तक के आपके निजी और पारिवारिक जीवन के दुःख–सुख का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया गया है। सुख इतना कि मन कविता की पंक्तियाँ गुन–गुनाने लगे और दुःख इतना की उसकी जमी हुई पर्तों को पिघलाने के लिए अंधेरे को सहायक और साथी बनाना पड़े।

पिछले कुछ वर्षों में आत्म कथा–लेखन की परम्परा में एक उल्लेखनीय बात यह हुई है कि अब महिला लेखिकायें भी मुक्त मन से अपनी आत्मकथाएँ लिखने लगी हैं। काल–क्रम से देखा जाय तो 'दस्तक जिन्दगी की' (1990 ई॰) 'और मोड़ जिन्दगी का' (1996 ई॰) इन दो खण्डों में प्रकाशित प्रतिभा अग्रवाल की आत्मकथा सबसे पहले आती है। इसी क्रम में क्रमशः 'जो कहा नहीं गया' (1996 ई॰) कुसुम अंसल, 'लगता नहीं है दिल मेरा' (1997 ई॰) कृष्णा अग्निहोत्री, 'बूँद बावड़ी' (1999 ई॰) पद्मा सचदेव, 'कुछ कही कुछ अनकही' (2000 ई॰) शीला झुनझुनवाला, 'कस्तूरी कुण्डल बसै' (2002 ई॰) मैत्रेयी पुष्पा, 'हादसे' (2005 ई॰) रमणिका गुप्त, 'एक कहानी यह भी' (2007 ई॰) मन्नू भण्डारी, 'अन्या से अनन्या' (2007 ई॰) प्रभा खेतान (1942–2008 ई॰), 'गुड़िया भीतर गुड़िया' (2008 ई॰) मैत्रेयी पुष्पा, 'पिंजरे की मैना' (2008 ई॰) 'चन्द्रकिरण सौनरेक्सा' (1919–2009 ई॰), 'और–और–औरत' (2010 ई॰) कृष्णा अग्निहोत्री, 'आरोह–अवरोह' (2015 ई॰) डॉ॰ सुषम बेदी, 'जमाने में हम' (2015 ई॰) डॉ॰ निर्मला जैन की आत्मकथाएँ प्रकाशित हुई हैं।

कुछ दलित लेखकों का ध्यान भी आत्मकथा लिखने की ओर गया है। अपने अपने पिंजरे भाग (1) (1995 ई॰), भाग (2) (2000 ई॰) मोहन नैमिशायराण, जूठन (1997 ई॰) जूठन भाग दो (2015 ई॰) ओमप्रकाश वाल्मीकि (1950–2013), तिरस्कृत 2002 ई० तथा संतप्त (2006 ई॰) डॉ० सूरजपाल चौहान, 'नागफनी' (2007 ई०) रूप नारायण सोनकर, 'मेरा बचपन मेरे कन्धों पर' 2009 ई० डॉ॰ श्यौराज सिंह बेचैन, 'मेरी पत्नी और भेड़िया' (2010 ई॰) डॉ॰ धर्मवीर, 'मुर्दहिया' (2010 ई॰), तथा 'मणिकर्णिका' (2014 ई॰) डॉ॰ तुलसीराम (1949–2015 ई॰), शिकंजे का दर्द (2012 ई॰) सुशीला टाकभौरे (1954 ई॰) की आत्मकथाओं ने हिन्दी–जगत् का ध्यान आकृष्ट किया है।

प्रसिद्ध साहित्यकारों में–'कहो व्यास कैसी कटी' (1994 ई॰) गोपाल प्रसाद व्यास (1915–2005 ई॰), 'अपनी धरती अपने लोग' (1996 ई॰) डॉ॰ रामविलास शर्मा (1912–2000 ई॰), 'जो मैंने जिया' (1992 ई॰), 'यादों का चिराग' (1997 ई॰), 'जलती हुई नदी' (1999 ई॰)–अलग–अलग शीर्षकों से तीन खण्ड–कमलेश्वर, 'गालिब छुटी शराब' (2000 ई॰) रवीन्द्र कालिया, 'कहि न जाय का कहिए' (2001 ई॰) भगवतीचरण वर्मा (1903–1981ई०), 'मुड़ मुड़ कर देखता हूँ' (2001 ई०) राजेन्द्र यादव (1929–2013 ई॰), 'वह जो यथार्थ था' (2001 ई॰), अखिलेश, 'आज के अतीत' (2003 ई॰) भीष्म साहनी, 'पावभर जीरे में ब्रह्मभोज' (2003 ई॰) अशोक वाजपेयी, 'मैंने मांडू नहीं देखा' (2003 ई॰) स्वदेश दीपक, 'वसन्त से पतझर तक' (2005 ई॰) रवीन्द्रनाथ त्यागी, 'देहरि भई विदेस' (2005 ई॰) सं॰ राजेन्द्र यादव, 'पंखहीन खण्ड–1', 'मुक्त गगन में खण्ड–2' और 'पंछी उड़ गया' (2004 ई॰) विष्णु प्रभाकर, 'एक अन्तहीन तलाश' (2007 ई॰) रामकमल राय (1934–2005 ई॰), 'भूली नहीं जो यादें' (2007 ई॰) दीनानाथ मल्होत्रा, 'सागर के इस पार से उस पार तक' (2008 ई॰) कृष्ण बिहारी, 'मेरी आत्मकथा : कालजयी संघर्षगाथा' (2007 ई॰) डॉ॰ द्वारिका प्रसाद सक्सेना, 'गुजरा कहाँ कहाँ से' (2007 ई॰), 'कहना जरूरी था' (2009 ई॰), 'मैं था और मेरा आकाश' (2011 ई॰) कन्हैयालाल नंदन, 'यों ही जिया' (2007 ई॰) डॉ॰ देवश ठाकुर, 'जोखिम' (2009 ई॰) हृदयेश, 'मेरे दिन मेरे वर्ष' (2009 ई॰) एकान्त श्रीवास्तव, 'पानी बिच मीन प्यासी' (2010 ई॰), 'और कहाँ तक कहें युगों की बात' (2012 ई॰) मिथिलेश्वर, 'माटी पंख और आकाश' (2012 ई॰) ज्ञानेश्वर मूले, 'आलोचक का आकाश' (2012 ई॰) मधुरेश, 'कमबख्त निन्दर' (2013 ई॰), डॉ॰ नरेन्द्र मोहन, 'कितनी धूप में कितनी बार' (2013 ई॰), डॉ॰ महीप सिंह, 'मेरा मुझमें कुछ नहीं' (2013 ई॰), रमेश उपाध्याय, 'आत्म स्वीकृति' (2014 ई॰) नरेन्द्र कोहली, 'डगर डगर पर मगर' (2014 ई॰) हरदर्शन सहगल, 'अस्ति और भवति' (2014 ई॰) डॉ॰ विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, 'जाग चेत कुछ करौ उपाई' (2015 ई॰) मिथिलेश्वर, 'जीवन प्रवाह में बहते हुए' (2015 ई॰) डॉ॰ लालबहादुर वर्मा, 'क्या हाल सुनावा' (2015 ई॰) डॉ॰ नरेन्द्र मोहन की आत्मकथायें विशेष रूप से चर्चित हुई हैं।

21.5 आत्मकथा : तत्व

वर्ण्य विषयः आत्मकथा साहित्य का यह महत्वपूर्ण तत्व है। जैसा कि आत्मकथा शब्द से ही स्पष्ट है इसमें लेखक अपने सम्पूर्ण जीवन का वर्णन नहीं करता अपितु विश्लेषण भी करता है। इस प्रकार आत्मकथा का विषय, आत्मविवेचन, आत्मविश्लेषण के साथ–साथ विश्व की बाह्य घटनाओं की क्रिया–प्रतिक्रियाओं का वर्णन है। उसी व्यक्ति द्वारा लिखी हुई आत्मकथा प्रभावित करती है अर्थात् पाठक उससे प्रेरणा ग्रहण कर सकता है जिसका लेखक प्रतिष्ठित व्यक्ति हो। इस प्रकार लेखक का जनता में प्रसिद्ध होना आवश्यक है।

वर्ण्य–विषय को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए उसमें कुछ गुणों का होना आवश्यक है। सर्वप्रथम विषय में सत्यता एवं यथार्थता का होना आवश्यक है। सत्यता से अभिप्राय है लेखक अपने जीवन का विवेचन इस ढंग से करे कि उसमें किसी भी प्रकार कृत्रिमता न आने पाए। वैसे तो आत्मकथा का विषय ही अनुभूत्यात्मक होता है काल्पनिक नहीं, इसलिए इसमें यथार्थता होती है। ''आत्मकथा में सत्य से अभिप्राय विषयगत सत्य से नहीं कुछ सीमित विषय तक का सत्य है जिससे लेखक का जीवन बढ़ता है एवं जिसके विशेष गुण एवं घटनाओं के परिपक्व होने की दृढ़ता एवं व्यावहारिक गुण एवं आकृति स्पष्ट होती है।''

आत्मकथा लेखक को पूर्ण ईमानदारी और सच्चाई के साथ अपने जीवन का वर्णन करना चाहिए। उसको यह भी नहीं करना चाहिए कि वह केवल गुणों का ही वर्णन करे। ऐसा करने से विषय दोषपूर्ण हो जाता है। आत्मकथा लेखक की यही विशेषता है कि वह अपने विषय को जितना वास्तविक बना सकता है उतना अन्य लेखक नहीं। आत्मकथा लेखक जितना अपने बारे में जान सकता है उतना लाख प्रयत्न करने पर भी कोई दूसरा नहीं जान सकता। इसमें कहीं तो स्वाभाविक आत्मश्लाघा की प्रवृत्ति बाधक होती है और किसी के साथ शीलसंकोच आत्मप्रकाश में रुकावट डालता है। यद्यपि सत्य के आदेश से दोनों ही प्रवृतियाँ निन्द्य हैं। तथापि अनावश्यक आत्म–विस्तार कुछ अधिक अवांछनीय है। शीलसंकोच के कारण पाठक को सत्य और उसके अनुकरण के लाभ से वंचित रखना भी वांछनीय नहीं कहा जा सकता। ''साधारण जीवनी लेखक की अपेक्षा आत्मकथा लेखक को ऊब से बचाने और अनुपात का अधिक ध्यान रखना पड़ता है। उसे अपने गुणों के उद्घाटन में आत्मश्लाघा या अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने की दूषित प्रवृत्ति से भी बचना चाहिए। इससे स्पष्ट है कि विषय तभी उत्कृष्ट एवं परिपक्व बन सकता है यदि लेखक पूर्ण सच्चाई एवं ईमानदारी से अपने विषय में वर्णन करता है।

अन्य महत्त्वपूर्ण गुण जोकि विषय वर्णन को रोचक बनाता है वह है संक्षिप्तता। आवश्यकता से अधिक विस्तार विषय को नीरस बना देता है। इससे स्पष्ट है कि ''आत्मकथा लेखक को इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि वह अनावश्यक घटनाओं का विस्तार न करे, केवल उन्हीं घटनाओं का उल्लेख करे जिनसे उसके व्यक्तित्व के विश्लेषण में सहायता मिले तथा पाठकों के सम्मुख मानव जीवन के यथार्थ सत्य को उद्घाटित करने में उनकी उपयोगिता हो।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विषय वर्णन में सत्यता, यथार्थता स्पष्टवादिता, रोचकता के साथ–साथ स्वाभाविकता आदि गुणों का होना आवश्यक है।

चरित्र–चित्रण

आत्मकथा में लेखक का उद्देश्य अपने ही व्यक्तित्व का विश्लेषण करना होता है। आत्मचरित्र आत्मपरिचय

का साधन है। लेखक आत्मचरित्र में अपने मस्तिष्क के विकास का क्रम लिखता है। वह स्वयं अपने मस्तिष्क का अध्ययन करता है, आत्म–निरीक्षण और आत्मविवेचन करता है। इससे स्पष्ट है कि आत्मकथा में लेखक अपने ही चरित्र का चित्रण करता है। चरित्र के सभी पक्षों का विवेचन ही नहीं अपितु विश्लेषण भी आत्मकथा में होता है।

प्रत्येक व्यक्ति के चरित्र में गुण भी होते हैं और दोष भी। इसलिए यदि किसी आत्मकथा के लेखक ने अपनी प्रशंसा करवाने के लिए केवल गुणों का वर्णन अपनी आत्मकथा में किया तो वह दोषपूर्ण माना जाएगा। उसको मानवीय चरित्र न कहकर एक काल्पनिक एवं आदर्श चरित्र कहा जाएगा। यह ठीक है कि आत्मचरित्र में अहंकार और आत्मश्लाघा के दोष से बच सकना कठिन है लेकिन फिर भी आत्मचरित्र 'स्व' के उद्‌गारों, अहंकार, छिछोरी प्रवृत्तियों, व्यक्तिगत ख्याति और क्षमायाचना या उसके सम्बन्ध में सफाई देने की भावना का उल्लेख मात्र नहीं है, यह इससे भिन्न ऊँचा साहित्य है।''

चरित्र चित्रण में जहाँ लेखक अपने चरित्र की सभी न्यूनताओं का वर्णन करता है वहाँ वह अपनी सद्‌भावनाओं से पाठक को अच्छी प्रकार से परिचित करवाता है। अपने समस्त जीवन के विकास का वह बड़ी ईमानदारी से वर्णन करता है। ऐसे व्यक्तियों के चरित्र जिनमें उनके जीवन के उत्थान–पतन का वर्णन स्पष्ट रूप से होता है पाठक के लिए अधिक प्रेरणादायक हो सकते हैं।

जहाँ आत्मकथा में हमें लेखक के व्यक्तित्व का परिचय मिलता है वहाँ उसमें वर्णित कुछ अन्य व्यक्तियों के विषय में भी पाठक को अनुमान हो जाता है। आत्मकथा में लेखक अपने से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों का वर्णन करता है। इसके दो लाभ होते हैं– एक तो पाठक को लेखक का व्यक्तित्व और भी स्पष्ट हो जाता है दूसरे उस व्यक्ति के विषय में भी पता चल जाता है। लेकिन यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है कि उन सभी व्यक्तियों का वर्णन लेखक अपने व्यक्तित्व को उभारने के लिए करता है।

देशकाल

वातावरण उन समस्त परिस्थितियों का नाम है जिनसे पात्रों को संघर्ष करना पड़ता है। देशकाल वातावरण का बाह्य स्वरूप है। वातावरण आन्तरिक भी हो सकता है। ''आदमी जिस प्रकार के समाज में रहता है वैसा तो कार्य करता ही है परन्तु उसके भाव–भावना और विचार भी उसकी अनुकूलता में सहायक होते है।''

देश और काल परिस्थितियों का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर पड़ता है, इसी प्रकार वर्ण्य चरित्र पर भी पड़ना आवश्यक है। जिस भी प्रकार का चरित्र होगा उस पर वैसा ही प्रभाव पड़ेगा। यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि यदि लेखक साहित्यिक है तो उस पर तत्कालीन परिस्थितियों का विशेषतया साहित्यिक परिस्थितियों का अवश्य प्रभाव पड़ेगा। तब हमें उसकी आत्मकथा मे अवश्य ही तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियों का परिचय मिलेगा। इन परिस्थितियों के वर्णन के बिना उनका व्यक्तित्व उभर नहीं सकता। इस प्रकार गौण रूप से हमें तत्कालीन परिस्थितियों का ज्ञान हो जाता है।

यदि किसी राजनैतिक व्यक्ति की आत्मकथा दृष्टिपात करें तो उनमें विशेषतया राजनैतिक तत्कालीन परिस्थितियों का अवश्य वर्णन होगा। सामाजिक व्यक्ति की आत्मकथा में तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का अवश्यमेव वर्णन होगा। इसके अतिक्ति कई ऐसे व्यक्ति होते हैं जिन्होंने अपने जीवन में बहुत यात्रा की होती है तो उनकी आत्मकथा में हमें किसी विशेष स्थान एवं देश का वर्णन अवश्य प्राप्त होगा।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आत्मकथा साहित्य में देशकाल का चित्रण व्यंग्य रूप से होता है। इसमें तो लेखक ही मुख्य होता है। वह अंगी होता है और देशकाल अंगभूत होकर रहता है।

उद्देश्य

प्रत्येक लेखक अपनी कृति की रचना किसी न किसी उद्देश्य से करता है निरुद्देश्य रचना कोई भी लेखक नहीं करता। यदि वह अपने उद्देश्य को स्पष्ट रूप से पाठक के सम्मुख नहीं रख सकता तो वह परोक्ष रूप से अवश्य ही संकेत कर देता है आत्मकथा लेखक के उद्देश्य का जहाँ प्रश्न है उसका उद्देश्य अन्य कृतियों से भिन्न होता है। आत्मकथा लेखक का उद्देश्य आत्मविवेचन–आत्मविश्लेषण तो होता ही है परन्तु इसके साथ–साथ वह ख्याति एवं आत्मप्रचार भी चाहता है। इसी उद्देश्य से वह आत्मकथा को लिखता है। इस विषय में चन्द्रावती सिंह ने भी अपने मत का समर्थन किया है। आत्मचरित्र लिखने में अपनी ख्याति, आत्मप्रशंसा और आत्मप्रचार की भावना भी निहित है। यद्यपि अत्यन्त प्राचीन काल से मनुष्य ने अपने को व्यक्त करने के अनेक मार्ग अपनाये है और इस प्रकार अपने जीवन के विशेष अंगों के विज्ञापन के सर्वदा अनेक प्रयत्न किए हैं किन्तु आधुनिक युग में आत्मचरित्र लिखने की प्रथा सभ्य संसार का आविष्कार है। इसमें संदेह नहीं कि ''आत्मचरित्र लिखने की इच्छा प्राकृतिक है। अपने को व्यक्त करने और अपने प्रति दूसरों की सहृदय सद्भावना प्राप्त करने का आनन्द अत्यन्त स्वाभाविक है। यही आत्मचरित्र लिखने का प्राकृतिक मूल–कारण है।''

इसके अतिरिक्त आत्मकथा साहित्य का उद्देश्य होता है। आत्मनिर्माण, आत्म–परीक्षण या आत्मसमर्थन, अतीत की स्मृतियों को पुनर्जीवित करने का मोह या जटिल विश्व की उलझनों में अपने आपको अन्वेषित करने का सात्विक प्रयास। इस प्रकार के आत्मकथात्मक साहित्य के पाठकों में सर्वप्रमुख स्वतः लेखक होता है जो आत्मांकन द्वारा आत्मपरिष्कार एवं आत्मोन्नति चाहता है।

आत्म सम्बन्धी साहित्य लिखने का एक दूसरा उद्देश्य यह भी है कि लेखक के अनुभवों का लाभ अन्य लोग उठा सकें। इन दोनों स्वतःसिद्ध उपयोगों के अतिरिक्त आत्मकथा लेखक के मूल में कलात्मक अभिव्यक्ति की प्रेरणा भी हो सकती है। और अपनी मर्यादा अथवा ख्याति से लाभ उठाने की शुद्ध व्यावसायिक इच्छा भी।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आत्मकथा लेखक का उद्देश्य आत्मविश्लेषण एवं आत्मविवेचन के साथ–साथ बाह्य विश्व के साथ अपने सम्बन्ध का वर्णन करना है।

शैली

भावाभिव्यक्ति की कला को शैली कहते हैं। इसमें अनुभूत विषयवस्तु को सजाने के ढंग होते हैं जिनसे विषयवस्तु की अभिव्यक्ति सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनती है। इसलिए लेखक का शैली पर पूर्ण अधिकार होना आवश्यक है। आत्मकथा लेखक को भी शैली सम्बन्धी सभी विशेषताओं से सतर्क होना पड़ता है। आत्मकथा शैली की कुछ अपनी ही विशेषताएँ होती हैं।

सर्वप्रथम इस शैली में प्रभावोत्पादकता का होना आवश्यक है। प्रभावोत्पादकता तभी हो सकती है यदि लेखक अपने जीवन का वर्णन निःसंकोच रूप से करता है। अमानवीय चरित्रों का कभी भी प्रभाव पाठकों पर नहीं पड़ सकता। वे ही चरित्र प्रभावशाली हो सकते हैं जिनमें मानवीयता है अर्थात् जिनमें जीवन के उत्थान–पतन एवं गुण–दोषों का विवेचन हो। लेखक को यह विवेचन इस ढंग से करना चाहिए कि वह पाठक को रुचिकर प्रतीत हों,

तभी वह शैली प्रभावोत्पादक बन सकती है। इस प्रकार निःसंकोच आत्मविश्लेषण शैली को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए आवश्यक है।

अन्य महत्वपूर्ण विशेषता सुसंगठितता एवं लाघवता है। लेखक को अपने समस्त जीवन का वर्णन इस ढंग से करना चाहिए जिससे अनावश्यक विस्तार भी न हो और साथ में गठित भी हो। क्रमानुसार वर्णन अधिक रोचक होता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रभावोत्पादकता, लाघवता, निःसंकोच आत्मविश्लेषण, सुसंगठितता आदि गुणों से युक्त ही आत्मकथात्मक शैली श्रेष्ठ एवं परिपक्व हो सकती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक लेखक कई ढंग से अपनी आत्मकथा लिख सकता है। अपनी इच्छानुसार वह निबन्धात्मक शैली को भी अपना सकता है और संस्मरणात्मक शैली को भी। जो भी उसे उपयुक्त लगे उसी को वह ग्रहण कर सकता है।

जहाँ प्रश्न भाषा का है वह तो है ही भावाभिव्यक्ति का साधन। भाषा का भावानुकूल एवं विषयानुकूल होना आवश्यक है। माधुर्य और प्रसाद गुण का भाषा में होना आवश्यक है। शुद्ध एवं परिपक्व भाषा द्वारा ही लेखक अपने विचारों का प्रभाव पाठकों पर डाल सकता है। भाषा को श्रेष्ठ बनाने के लिए शब्दचयन का भी विषय एवं भावानुकूल होना आवश्यक है।

21.6 प्रश्नावली

1. आत्मकथा की परिभाषा देते हुए इसके स्वरूप पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

2. आत्मकथा के विकास पर चर्चा करें।

_____

_____

_____

_____

3. आत्मकथा के विभिन्न तत्वों पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

4. आत्मकथा के उद्‌भव एवं विकास पर लेख लिखें।

_____

_____

_____

_____

21.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहासः– रामसजन पाण्डे।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास :– हुकम चन्द राजपाल
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास :– रामचन्द्र शुक्ल
4. हिन्दी का गद्य साहित्य :– रामचन्द्र तिवारी
5. आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य :– डॉ॰ शान्ति खन्ना
6. गद्य की नई विधाओं का विकासः– माजदा असद

.....

रेखाचित्र : उद्‌भव और विकास

22.0 भूमिका

22.1 उद्देश्य

22.2 प्रस्तावना

22.3 रेखाचित्र : परिभाषा एवं स्वरूप

22.4 रेखाचित्र : उदभव एवं विकास

22.5 रेखाचित्र : विभिन्न तत्व

22.6 प्रश्नावली

22.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

22.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरांत आप

- रेखाचित्र के स्वरूप को समझेंगे
- रेखाचित्र साहित्य के बारे में जान पायेंगे।
- रेखाचित्र का उद्‌भव कब हुआ इससे अवगत होंगे।
- रेखाचित्र में विभिन्न तत्वों का समावेश रहता है, जानेंगे।

22.2 प्रस्तावनाः–

रेखाचित्र साहित्य गद्य की नवीनतम विद्या है। गद्य की इस विद्या का विकास अधिकतर पत्र –पत्रिकाओं द्वारा ही हुआ है। सन् 1924 से पहले हमें रेखाचित्र प्राप्त नहीं होते इसलिए इसके पश्चात् ही इनका अविर्भाव हुआ। या साहित्य की एक ऐसी विद्या है जिसमें एकात्मक विषय विशेष का शब्द रेखाओं से संवेदनशील चित्र प्रस्तुत किया जाता है।

22.3 रेखाचित्र : परिभाषा एवं स्वरूप

हिन्दी साहित्य में गद्य की अनेक नूतन विधाओं का विकास हुआ है जिनमें रेखाचित्र भी एक नया कला रूप है। रेखा चित्र कहानी से मिलता–जुलता साहित्य रूप है। यह नाम अंग्रेजी के स्केच शब्द की नाम–तौल पर गढ़ा

गया है। स्केच चित्रकला का अंग है। इसमें चित्रकार कुछ इनी–गिनी रेखाओं द्वारा किसी वस्तु, व्यक्ति या दृश्य को अंकित कर देता है–स्केच रेखाओं की बहुलता और रंगों की विविधता में अंकित कोई चित्र नहीं है, न वह एक फोटो ही जिसमें नन्हीं से नन्हीं और साधारण से साधारण वस्तु भी खिंच जाती है। साहित्य में जिसे रेखाचित्र कहते हैं उसमें भी कम से कम शब्दों में कलात्मक ढंग से किसी वस्तु व्यक्ति या दृश्य का अंकन किया जाता है। इसमें साधन शब्द हैं रेखाएँ नहीं। इसीलिये इसे शब्द–चित्र भी कहते हैं। ''रेखाचित्र किसी वस्तु, व्यक्ति, घटना या भाव का कम से कम शब्दों में मर्मस्पर्शी, भावपूर्ण एवं सजीव अंकन है।'' इससे स्पष्ट है कि रेखाचित्र में किसी भी व्यक्ति का, घटना का एवं भाव का चित्रण कम से कम शब्दों में कलात्मक ढंग से किया जाता है जिससे वह सजीव, भावपूर्ण एवं मर्मस्पर्शी हो। रेखाचित्र के अंकन में संक्षिप्तता एवं लाघवता का होना आवश्यक है।

रेखाचित्र चित्रकला और साहित्य के सुन्दर सुहाग से उद्‌भूत एक अभिनव कला रूप है। ''रेखाचित्रकार साहित्यकार के साथ ही साथ चित्रकार भी होता है। जिस प्रकार चित्रकार अपनी तूलिका के कलामय स्पर्श से चित्रपटल पर अंकित विशृंखला रेखाओं में से कुछ अधिक उभरी हुई रेखाओं को सँवार एक सजीव रूप प्रदान कर देता है, उसी प्रकार रेखाचित्रकार मनःपटल पर विशृंखला रूप में बिखरी हुई शतशत स्मृति रेखाओं में से उभरी हुई रमणीय रेखाओं को अपनी कला की तूलिका से स्वानुभूति के रंग में रंजित कर जीते–जागते शब्द–चित्र में परिणत कर देता है। यही शब्द–चित्र रेखाचित्र कहलाता है।'' इस परिभाषा से स्पष्ट है कि रेखाचित्रकार चित्रकार की भाँति असंख्य घटनाओं में से कुछ प्रभावशाली घटनाओं का वर्णन ही ऐसे ढंग से करता है जिससे वे सजीव एवं प्रभावोत्पादक हों ओर उनके वर्णन से भावों एवं विचारों का स्पष्ट चित्रण हो।

साहित्य में रेखाचित्रकार को अत्यन्त कठोर साधना का पथ अपनाने की आवश्यकता है। वह ही एक मात्र ऐसा कलाकार है जो अपने चारों ओर फैले हुए विस्तृत समाज के किसी भी अंग तथा पक्ष का चित्रण अपनी लेखनी तूलिका से ऐसा सजीव करता है कि पाठक यह अनुभव करने लगता है कि मैं वर्ण्यवस्तु के अत्यन्त सान्निध्य में हूँ। इससे स्पष्ट है कि रेखाचित्रकार का विषय कुछ भी हो सकता है। वह किसी भी व्यक्ति, घटना एवं स्थान का चित्रण कर सकता है, पर वह चित्रण ऐसा होता है जिससे पाठक प्रभावित होता है।

बनारसीदास चतुर्वेदी के अनुसार ''रेखाचित्रकार वही हो सकता है जिससे जीवन का अधिक से अधिक अनुभव हो, इसके साथ ही जिस व्यक्ति ने जीवन के अनेक उतराव–चढ़ाव देखे हों, विद्वान एवं अनुभवी व्यक्ति ही रेखाचित्रकार बन सकता है क्योंकि ऐसा योग्य व्यक्ति ही विचारों एवं भावों का स्पष्ट चित्रण कर सकता है।

''जिस प्रकार रेखाचित्र की दृष्टि जितनी पैनी होगी तथा उसकी अनुभूति जितनी चित्रित सत्य के निकट होगी उतना ही उसके द्वारा अंकित किया गया रेखाचित्र सजीव और प्रभावोत्पादक होगा।''

अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रेखाचित्र न कहानी है और न गद्यगीत, न निबन्ध है और न संस्मरण; रेखाओं में जीवन के विविध रूपों के आकार देने की प्रणाली की विशेषता को अपनाकर ही शब्द द्वारा जीवन के विविध रूपों को साकार करने वाले शब्द चित्रों को रेखाचित्र की संज्ञा प्रदान की गई है। इस प्रकार 'रेखाचित्र साहित्य का वह गद्यात्मक रूप है जिसमें एकात्मक विषय का शब्द–रेखाओं से संवेदनशील चित्र प्रस्तुत किया जाता है।

22.4 रेखाचित्र : परम्परा और विकास

रेखाचित्र गद्य साहित्य की एक नवीनतम विधा है। हिन्दी गद्य साहित्य के विकास के साथ–साथ रेखाचित्र साहित्य का भी विकास आधुनिक काल में हुआ है। भावात्मक प्रतिपाद्य को संक्षेप में मार्मिक रेखाओं द्वारा चित्रित कर देना रेखाचित्र है। रेखाचित्र इस विधा का विकास हिन्दी में अधिकतर हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं द्वारा ही हुआ है। 'विशाल भारत', 'माधुरी', 'हंस' एवं 'सरस्वती' जैसी प्रसिद्ध साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं ने इसके विकास में विशेष रूप से सहयोग दिया है। हिन्दी रेखाचित्र का प्रारंभिक काल (सन 1900 से 1930 तक) और विकास काल (सन 1937 से आज तक) के अन्तर्गत देख सकते हैं।

रेखाचित्र साहित्य : प्रारंभिक काल (1900–1936)

रेखाचित्र विधा यह एक नवीनतम विधा है। इस विधा का विकास भारतेन्दु युग से माना जाता है। लेकिन रेखाचित्र विधा के सभी तत्व भारतेन्दु युग के पश्चात ही हिन्दी साहित्य में दिखाई देते हैं। इसी बात को डॉ. शांन्ति खन्ना लिखती है– ''सन 1924 से पहले हमें रेखाचित्र प्राप्त नहीं होते इसलिए इसके पश्चात ही इनका अविर्भाव हुआ है।'' आधुनिक रेखाचित्र का प्रारंभ हमें 1924 के पश्चात ही दिखाई देता है। लेकिन इसके पहले भी रेखाचित्र के कुछ तत्व हमें हिन्दी साहित्य में दिखाई देते है। हिन्दी के आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक अनेक कवियों के कविताओं में चित्रात्मकता दिखाई देती है। इसी चित्रात्मकता का प्रभाव आधुनिक काल के साहित्यकारों पर पड़ा होगा। यह प्राचीन काल का रेखाचित्र का इतिहास हिन्दी गद्य के साथ जुड़ा हुआ है। आधुनिक काल में भारतेन्दु के चरित्र–प्रधान निबंधों में रेखाचित्र का प्रारंभिक रूप दिखाई देता है। किन्तु इन निबंधों में रेखाचित्र की सभी विशेषताएँ नहीं मिल पाती। इन निबंधों में रेखाचित्र के कुछ अंश देखे जा सकते है। इसी प्रकार की रचनाएँ भारतेन्दु, बालकृष्ण भट्ट बालमुकुंद गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र तथा रूद्रदत्त शर्मा आदि गद्य लेखकों द्वारा लिखे गये है।

रेखाचित्र साहित्य की वास्तविक शुरूआत पं. पद्मसिंह शर्मा से मानी जाती है। बनारसीदास चतुर्वेदी शर्मा जी के महाकवि अकबर पर लिखे रेखाचित्र को हिन्दी का पहला रेखाचित्र मानते हैं। जो 1924 में प्रकाशित हुआ। पद्मसिंह शर्मा के महाकवि अकबर पर लिखे रेखाचित्र 'पद्मराग' में संग्रहित है। इस रचना में शर्माजी ने नौ रेखाचित्र लिखे हैं। लेकिन इस सभी में 'महाकवि अकबर' पर लिखा रेखाचित्र प्रमुख है। यह रेखाचित्र महाकवि अकबर विषयक चरित्र–चित्रण का सर्वोत्तम दृष्टान्त माना जा सकता है। इनके रेखाचित्रों में यद्यपि रेखाचित्र के वह सभी गुण नहीं हैं, जो वर्तमान रेखाचित्र में मिलने हैं, किन्तु यह रेखाचित्र का प्रथम मौलिक प्रयास अवश्य है। हिन्दी का रेखाचित्र का भवन उन्हीं की बुनियाद पर खड़ा है।

शर्माजी के पश्चात अनेक रेखाचित्र लिखे गये लेकिन वह केवल पत्र–पत्रिकाओं तक सीमित रहे। इन रेखाचित्रों में नगरों का चित्रण प्रमुख रूप से उभरा है। इसमें प्रमुख रूप से संतराम की 'लाहौर', श्री रामाज्ञा द्विवेदी समीर के 'हिन्दी विश्वविद्यालय' एवं 'कानपुर' रेखाचित्र प्राप्त होते हैं। इनमें लेखकों ने शहरों का सचित्र वर्णन किया है। सन 1929 में शीतल सहाय का 'द्वारिकापुरी' रेखाचित्र प्राप्त होता है। इसमें लेखक ने द्वारिकापुरी की महत्त और दर्शनीय स्थानों का वर्णन किया है। सन 1931 में श्री रामनाथ द्वारा लिखा 'कश्मीर में एक मास' एवं मोहनलाल महतो वियोगी द्वारा लिखा 'मैथिलीशरण गुप्त' एवं श्री रामनाथ सुमन द्वारा लिखा सरोजनी नायडू रेखाचित्र प्राप्त होते हैं। इन रेखाचित्र में लेखकों ने इनके जीवन की एक झाँकी सी प्रस्तुत की है। यह सभी रेखाचित्र पत्र–पत्रिकाओं में छपते

रहे हैं, लेकिन उनका कोई स्वतंत्र संकलन सामने नहीं आया। सन 1957 में हिन्दी का सर्व प्रथम रेखाचित्र–संग्रह पंत्र श्रीराम शर्मा का 'बोलती प्रतिमा' प्रकाशित हुआ। यही से हिन्दी रेखाचित्र का विकास काल माना गया है।

रेखाचित्रः विकास काल (1837 से आज तक)

हिन्दी में रेखाचित्र विधा की शुरूआत पद्मसिंह शर्मा से मानी जाती है, किंतु रेखाचित्र विधा को सुव्यवस्थित रूप देने का प्रयास सबसे पहले श्रीराम शर्मा के द्वारा हुआ है। हिन्दी के वह प्रमुख रेखाचित्रकार है। जब हिंदी के अधिकांश लेखक इस विधा के नाम से भी अनजान थे। श्रीराम शर्मा ने सन 1934 में 'एक सड़क का दृश्य' और 'थर्डक्लास' शीर्षक से रेखाचित्र का सृजन किया। सन 1937 में इनका 'बोलती प्रतिमा' रेखाचित्र संकलन प्रकाशित हुआ। यह हिन्दी साहित्य का पहला रेखाचित्र संग्रह है। इस संकलन में बारह रेखाचित्र संकलित हैं। 'बोलती प्रतिमा', 'ठाकुर की आन', 'हरनामदास', 'वरदान', 'पीताम्बर', 'वसीयत', 'फिरोजाबाद की काल कोठरी', 'अपराधी', 'चंदा', 'रतना की अम्मा', 'इकाई का सौदा', आदि रेखाचित्र इस संकलन में संकलित हैं। इस संकलन में ग्रामीण जीवन की रेखाओं को अंकित करने का प्रयास किया है। ग्रामीण परिवेश की सामान्य जनता की पीड़ा तथा दशा का यथार्थ चित्र रेखांकित करने का प्रयास श्रीराम शर्मा ने किया है। श्रीराम शर्मा द्वारा रचित 'वे जीते कैसे हैं?'' 1957 में प्रकाशित दूसरा रेखाचित्र संकलन है। इसके सभी रेखाचित्र भावपूर्ण हैं।

श्रीराम शर्मा के समय अन्य अनेक लेखकों ने रेखाचित्र के विकास में अपना योगदान दिया है। 1935 में बाबूराम सक्सेना का 'वर्धा में तीन दिन' रेखाचित्र 'सुधा' में प्रकाशित हुआ। इसमें वर्धा के मुख्य स्थलों का वर्णन किया गया है। सन 1938 में 'हंस' पत्रिका ने रेखाचित्र पर विशेष अंक निकालकर रेखाचित्र साहित्य के विकास में विशेष सहयोग दिया है। इसी समय लोचनप्रसाद पांडेय कृत 'श्रीपुर के दर्शन' और भुवनेश्वर प्रसाद कृत रेखाचित्र प्रकाशित हुए।

हिन्दी के प्रसिद्ध रेखाचित्रकारों में प्रकाशचन्द गुप्त प्रमुख रेखाचित्र लेखक हैं। आपने 'रेखाचित्र' (1940) एवं 'पुरानी स्मृतियाँ' (1947) शीर्षक से रेखाचित्र लिखे हैं। इन रेखाचित्रों में दिल्ली और आगरे के अनेक महत्त्वपूर्ण स्थानों का चित्रण किया गया है। इनके रेखाचित्र मानवता से प्रेरित होकर लिखे गये है। 'अलमोड़ा का बाजार', 'रानीखेत की रात', 'चीड़ का वन' आदि प्रकृति चित्रण से संबंधित रेखाचित्र है। इसी समय सद्गुरू शरण अवस्थी ने 'पल्हडः एक स्केच' (1940) रेखाचित्र लिखा। रामवृक्ष बेनीपुरी एक सफल रेखाचित्रकार माने जाते हैं। आपने प्रतीकात्मक एवं रूपकात्मक रेखाचित्र कृतियाँ देखने को मिलती है। इनके रेखाचित्रों से ग्रामीण जीवन का समस्त चित्रण देखने को मिलता है। सन 1949 में कौशल्या अश्क और उपेद्रनाथ अश्क द्वारा 'दो धारा' नाम रेखाचित्र रचना लिखी गई है। रेखाचित्र के विकास में इन कृतियों का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

देवेन्द्र सत्यार्थी एक प्रमुख रेखाचित्रकार है। आपके 'एक युग एक प्रतीक' (1944) 'रेखाएँ बोल उठी' (1949), 'कला के हस्ताक्षर' आदि रेखाचित्र संग्रह रेखाचित्र के विकास को बढ़ाते हैं। आपने साहित्यकार के जीवन को रेखाकिंत करने का प्रयास किया है। 'प्रेमचन्द एक चित्र', 'अज्ञेय से मिलिए', 'होमवती' आदि रेखाचित्र देवेन्द्र सत्यार्थी को एक उच्चकोटि का रेखाचित्रकार साबित करते हैं। प्रेमचन्द पर लिखे रेखाचित्र में वह कहते हैं – ''मूंछे घनी और बड़ी–बड़ी सिर पर गांधी टोपी–सी दोनों तरफ और गर्दन पर निकले हुए बेतरतीब से बाल आँखों में अनुभव की चमक–इन तीनों चीजों का विशेष प्रभाव पड़ा, जब अक्तूबर 1931 में लखनऊ में प्रेमचन्द से भेंट हुई।'' इनके रेखाचित्र के संबंध में डॉ.

शांति खन्ना कहती हैं ''इसके (सत्यर्थी के) रेखाचित्रों के विषय में स्पष्टता देना, स्वाभाविकता, चित्रात्मकता एवं आत्मीयता आदि विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती है।'' देवेद्र सत्यार्थी की तरह ही राजेन्द्रलाल हांडा ने 'वाह कैलाशजी' (1950) नामक रेखाचित्र लिखा है।

हिन्दी साहित्य के गद्य लेखिकाओं में महादेवी वर्मा का स्थान अत्यंन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है। वह रेखाचित्र लिखने के कारण ही हिन्दी गद्य साहित्य में पहचानी जाती है। इनके समस्त रेखाचित्रों का संग्रह 'स्मृति की रेखाएँ' अतीत के चलचित्र और 'श्रृंखला की कडियाँ' शीर्षक से प्रकाशित हैं। उनके रेखाचित्र के नायक ऊँचे वर्ग के न होकर वह सर्वसामान्य समाज के प्रतिनिधी व्यक्ति हैं। इन रेखाचित्रों के माध्यम से महादेवी वर्मा सर्वसामान्य वर्ग के दुःख, पीडा तथा उनके जीवन के अनेक पहलुओं को पकडना चाहती है। वर्माजी इन रेखाचित्रों के माध्यम से सर्वसामान्य जनता के असामान्य गुणों को पकड़ना चाहती है। 'अतीत के चलचित्र' में 'अपनी बात' स्पष्ट करते हुए वर्माजी कहती है– ''उनसे पाठकों का सस्ता मनोरंजन हो सके ऐसी कामना करके इन क्षतविक्षत जीवनों को खिलौनों की हाट में नहीं रखना चाहती है। यदि इन अधूरी रेखाओं और धुँधे रंगों की समष्टि में किसी को अपनी छाया की एक रेखा भी मिल सके तो यह सफल है अन्यथा अपनी स्मृति की सुरक्षित सीमा से इसे बाहर लाकर मैंने अन्याय ही किया है।'' यहाँ महादेवी का रेखाचित्रकार सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला हैं। इन्हीं के समकालीन रामकुमार 'एक परिवार' तथा गंगाप्रसाद पांडेय का 'मैथिलीशरण' रेखाचित्र प्राप्त होते हैं।

सन 1958 में हर्षनाथ द्वारा 'मन्दिर का माली' एवं रोटी और धरम' रेखाचित्र लिखे गये। इसी समय अयोध्याप्रसाद गोयलीय का 'गहरे पानी पैठ' नामक रेखाचित्र संग्रह प्रकाशित हुआ। यह हिन्दी रेखाचित्र के एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं। आपने अपने रेखाचित्रों में मानवता के अनेक सजीव चित्र अंकित किए हैं। इसी समय सत्यवती मल्लिक का 'अमिट रेखाएँ' नामक रेखाचित्र संग्रह प्रकाशित हुआ जिसमें अतिरंजकता और भावुकता दिखाई देती है। चन्द्रप्रकाश वर्मा के राजपथ यह रेखाचित्र 1952 में प्रकाश में आया जिसमें राजपथ का सुन्दर चित्र खींचा गया है।

बनारसीदास चतुर्वेदीजी की गणना हिन्दी के प्रमुख रेखाचित्रकारों में की जाती है। चतुर्वेदीजी ने अपने रेखाचित्र यों तो 1912 से ही लिखे हैं, लेकिन उनका प्रकाशन 1982 में हुआ है। इनके रेखाचित्रों का संकलन 'रेखाचित्र नाम' से प्रकाशित हुआ हैं। इसमें 40 रेखाचित्र संग्रहित हैं। आपने अपने जीवन संपर्क में आनेवाले व्यक्तिओं को लेकर भी अपने मौलिक रेखाचित्रों का सृजन किया। इनके रेखाचित्र के संबंध में डॉ. शान्ति खन्नाजी लिखती है– ''बनारसीदासजी ने जीवन को निकट से देखा है। इसलिए उनके रेखाचित्र सजीव है, वे चलते–फिरते दिखाई देते है और बोलने से सुनाई पडते हैं। रेखाचित्र के क्षेत्र में इनका महत्त्वपूर्ण कार्य है।'' श्रीराम शर्मा का परिचय रेखाचित्र के माध्यम से करते हुए चतुर्वेदी जी लिखते हैं ''आईये आपका परिचय अपने एक भाई और हिन्दी के सुलेखक से करवा दूँ। उन्हें आप जानते हैं? प्रताप सम्पादक स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी ने एक टोपधारी और बंदूक लिए हुए सज्जन की ओर इशारा करते हुए पूछा। उस वक्त उनकी बातचीत मगर के शिकार के बारे में चल रही थी। गणेश जी ने उनका नाम बतलाया श्रीराम शर्मा।'' आपके व्यक्तियों के संबंध में लिखे रेखाचित्र आकर्षक बन पड़े हैं। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' की रचना 'अरे यायावर रहेगा याद' रेखाचित्र में अनेक स्थानों का वर्णन रेखाकिंत किया गया है।

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकरजी रेखाचित्रकारों में से एक प्रमुख है। इनके रेखाचित्रों का संग्रह 'जिदंगी मुसकराई', 'भूले हुए चेहरे' शीर्षक से प्रकाशित हुए। इन रेखाचित्रों के संबंध में स्वयं मिश्रजी लिखते हैं– ''इन रचनाओं

के संबंध में क्या कहूँ सिवाय इसके कि यह मेरा संचित रक्त है, जो आज पाठकों को भेट कर रहा हूँ। अपने भक्कड़ जीवन में इसके सिवाय मैंने और कुछ भी तो संचय नहीं किया'' इन रेखाचित्रों में मिश्रजी ने अनेक व्यक्तियों के माध्यम से अपना जीवन भी रेखाकिंत करने का प्रयास किया है। प्रेमनारायण टण्डन भी रेखाचित्र कारों में प्रमुख है। आपका 'रेखाचित्र' (1959) संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमें सात रेखाचित्र संकलित हैं। इसी समय भगवनशरण उपाध्याय का 'ढूँढा आम', रामकुमार वर्मा का 'मील का पत्थर', उदयनारायण तिवारी का 'श्री राहुल सांकृत्यायन', शरद देवडा का 'पत्थर का लैम्प पोस्ट' आदि प्रमुख रेखाचित्र कृतियाँ है। डॉ. विनयमोहन शर्मा की कृति 'रेखा और रंग' यह 14 रेखाचित्रों का एक सफल संग्रह है। इस संकलन के विषय बिल्ली, डिब्बा, वृक्ष, चिड़िया आदि हैं। लेखक पात्रों के बहिरंग पर ऐसी दृष्टि डालता है, जिसमें वे मूर्तिमान होकर पाठक के समक्ष साकार हो उठते हैं। इस दृष्टि से डॉ. नगेन्द्र की कृति 'चेतना के बिम्ब' भी उल्लेखनीय रेखाचित्र रचना है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी रेखाचित्र मात्रा की दृष्टि से अल्प है लेकिन उसकी मौलिकता असामान्य है। हिन्दी का रेखाचित्र साहित्य प्रगति की ओर अग्रसर ही माना जा सकता है। आज भी अनेक रेखाचित्र पत्र–पत्रिकाओं में ही अधिक प्रकाशित हुए हैं। आज भी उसकी यही स्थिति हैं। लेकिन यह कहा जा सकता है कि हिन्दी रेखाचित्र विधा का भविष्य उज्जवल है।

22.5 रेखाचित्र : तत्व

वर्ण्य विषय– यह रेखाचित्र साहित्य का प्रमुख तत्व है। रेखाचित्र वस्तु व्यक्ति अथवा घटना का शब्दों द्वारा विनिर्मित वह मर्मस्पर्शी और भावमय रूप–विधान है ''जिसमें कलाकार का संवेदनशील हृदय और उसकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि अपना निजीपन उँडेलकर प्राण–प्रतिष्ठा कर देती है।'' इससे स्पष्ट होता है कि रेखाचित्र– कार का विषय कोई भी व्यक्ति घटना अथावा वस्तु जिसका कि उससे जीवन भर अधिक प्रभाव हो जाता है। जहाँ तक व्यक्ति का प्रश्न है इसमें यह कोई आवश्यक नहीं कि वह किसी महान् पुरुष की रेखा ही चित्रित करता है वह तो साधारण से साधारण व्यक्ति के विषय में भी लिख सकता है। यह तभी हो सकता है यदि उस व्यक्ति में कुछ ऐसे गुण हों जिनसे लेखक विशेष रूप से प्रभावित हुआ हो। ऐसे ही घटना के विषय में है। वह किसी भी ऐसी घटना का चित्रण करता है जिससे कि वह अधिक प्रभावित हों वह किसी विशेष स्थल का चित्रण भी कर सकता है। इस प्रकार रेखाचित्रकार का विषय जड़ भी हो सकता है और चेतन भी।

विषय चुनाव के पश्चात् वर्ण्य विषय में कुछ ऐसे गुणों का होना आवश्यक है जो कि रेखाचित्र को सफल बनाते हैं। वर्ण्य विषय में सर्वप्रथम सत्यता एवं यथार्थता का होना आवश्यक है। प्रत्येक रेखाचित्र का विषय अनुभूत्यात्मक होता है काल्पनिक नहीं। इसलिए इसमें वास्तविकता होती है। रेखाचित्र में जितनी वास्तविकता होगी उतना ही वह सफल माना जायेगा। पाठकगण पर जितना प्रभाव वास्तविक घटनाओं का पड़ता है उतना काल्पनिक घटनाओं का नहीं। रेखाचित्र जितना सत्य के निकट हो उतना अच्छा हे। इसमें थोड़ी अतिरंजना विनोद की सामग्री अवश्य उपस्थित कर देती है किन्तु विनोद चुटीला न होना चाहिए। ''रेखाचित्र में भी 'सत्यं शिवं सुन्दरम' का आदर्श पालन करना पड़ता है।''

अन्य महत्वपूर्ण गुण जिसका विषय में होना आवश्यक है वह है रोचकता। लेखक को अपने जीवन की अनुभूतियों का इस ढंग से वर्णन करना चाहिए जिससे वह पाठक को रुचिकर प्रतीत हों। न तो स्केच इतना काल्पनिक

ही होना चाहिए कि हमारी कल्पना तक ही सीमित रहे, और न इतना वास्तविक ही कि केवल हमारी दृष्टि तक ही सीमित रहे।

अन्य महत्वपूर्ण गुण जिसका विषय वर्णन में होना आवश्यक है वह है संक्षिप्तता। रेखाचित्रकार की सीमाएँ निश्चित हैं। ''उसे कम से कम शब्दों में सजीव से सजीव रूप विधान और छोटे से छोटे वाक्य से अधिक तीव्र और मर्मस्पर्शी भाव व्यंजना करनी पड़ती है। रेखाचित्र की विशेषता विस्तार में नहीं तीव्रता में होती है।'' इससे स्पष्ट है कि वर्ण्य में संक्षिप्तता का होना आवश्यक है। आवश्यक विस्तार विषय को नीरस बना देता है।

इस प्रकार वही विषय उत्कृष्ट कोटि का माना जाएगा जिसमें वास्तविकता, स्पष्टता, रोचकता एवं संक्षिप्तता आदि गुणों का समावेश हो।

चरित्रोद्घाटन

रेखाचित्र साहित्य का यह अन्य महत्वपूर्ण तत्व है। रेखाचित्रकार का उद्देश्य किसी भी व्यक्ति के चरित्र का विश्लेषण करना नहीं है वरन् चरित्रोद्घाटन करना है। रेखाचित्रकार का कार्य तो प्रभावित व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित प्रमुख घटनाओं का वर्णन करना ही है उसी से पाठक को उसके व्यक्तित्व का अनुमान हो जाता है। पाठक को प्रभावित करने के लिए वह नायक के व्यक्तित्व से सम्बन्धित घटनाओं का ऐसा चित्रण करता है कि वह उसके चरित्र को स्वयं स्पष्ट कर देती हैं। उसका कारण यह है कि रेखाचित्र में प्रधानता संकेतों की होती है इसमें खुलकर बात बहुत कम की जाती है। इस प्रकार थोड़ी सी रेखाओं द्वारा एक सजीव चित्र बना देना किसी कुशल कलाकार का ही काम हो सकता है... थोड़े से शब्दों में किसी घटनाओं को चित्रित कर देना अथवा किसी व्यक्ति का सजीव चित्र उपस्थित कर देना अत्यन्त कठिन कार्य है। इसके लिए लेखक को कठोर साधनों की जरूरत है। ''जहाँ रंग के थोड़े गहरे या किंचित हलके होने से ही तस्वीर बिगड़ सकती है, वहाँ तूलिका को कितनी सफाई कितने चातुर्य के साथ चलाना चाहिए, इसका अन्दाज किसी विशेषज्ञ चित्रकार को ही हो सकता है। इसके लिए सरस्वती मंदिर की आराधना तो अनिवार्य है ही पर साथ ही साथ अपने व्यक्तित्व को सजीव तथा उन्मुक्त बनाये रखना भी अत्यन्त आवश्यक है।'' इस प्रकार उत्कृष्ट चरित्रोद्घाटन के लिए लेखक के व्यक्तित्व का भी उत्कृष्ट होना आवश्यक है। अनुभवी लेखक ही चरित्र सम्बन्धी उत्कृष्ट रेखाएँ प्रस्तुत कर सकता है।

देश–काल वातावरण

रेखाचित्र का सम्बन्ध अधिकतर देश से होता है काल से नहीं। क्योंकि वर्ण्य विषय किसी स्थान विशेष में विद्यमान रहता है उसके आस–पास की कुछ परिस्थितियाँ होती हैं। ''ये पार्श्ववर्ती भाग गतिशील नहीं होते हैं और वर्ण्य विषय के साथ नित्य संपृक्त रहते हैं। उनके बिना पात्र या वस्तु का अस्तित्व गोचर नहीं हो सकता। रेखाचित्रकार उन स्थायी सम्बन्ध रखने वाले अंगों का वर्णन करता है।'' इस प्रकार देश व किसी विशेष स्थल का चित्रण करना रेखाचित्रकार के लिए आवश्यक हैं

प्रत्येक घटना के घटित होने का कोई न कोई विशेष स्थल होता है। जब लेखक उस घटना का वर्णन करता है तो उसके लिए उस स्थान विशेष का वर्णन करना भी आवश्यक हो जाता है जहाँ वह घटित हुई हो। इसलिए देश का चित्रण रेखाचित्र में होता है। कई यात्रा सम्बन्धी रेखाचित्रों में इसका प्रमुख रूप से वर्णन होता है।

जहाँ तक वातावरण का प्रश्न है लेखक सांकेतिक रूप से पाठक को तत्कालीन परिस्थितियों का ज्ञान करवा देता है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रेखाचित्र साहित्य में प्रमुखता देश–चित्रण की ही होती है वातावरण का वर्णन तो गौण रूप से होता है।

उद्देश्य

यह रेखाचित्र साहित्य का प्रमुख तत्व है। इसमें लेखक का जीवन दर्शन अथवा उसकी जीवन दृष्टि, जीवन की व्याख्या या जीवन की आलोचना होती है। कोई भी लेखक निरुद्देश्य रचना नहीं करता बिना उद्देश्य के साहित्यिक कृति प्रयोजनहीन एवं व्यर्थ होती है। ''रेखाचित्रकार का प्रमुख उद्देश्य होता है चरित्र विशेष के बाह्य ओर आभ्यान्तर दोनों ही के मार्मिक एवं संवेदनशील तत्वों को उभारकर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर देना। इससे स्पष्ट है कि रेखाचित्रकार का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति के बाह्य और आन्तरिक दोनों स्वरूपों का चित्रण करना है। बाह्यरूप का चित्रण तो किसी भी साहित्यकार को करना कठिन है परन्तु आन्तरिक मस्तिष्क का विश्लेषण रेखाचित्रकार स्पष्ट रूप से न करके अपनी रेखाओं से सांकेतिक रूप से करता है। यहाँ लेखक का उद्देश्य नायक के चरित्र का उद्‌घाटन करना है विश्लेषण नहीं, विश्लेषण तो स्वयं हो जाता है। यहाँ पर लेखक उस व्यक्ति के चित्रण में ही अपनी मानसिक प्रतिक्रियायों, मान्यताओं एवं आदर्शों की अभिव्यक्ति करता है। मानवेतर रेखाचित्र भी किसी न किसी सत्प्रेरणा को लेकर लिखे जाते हैं।

अतः स्पष्ट है कि रेखाचित्रों में लेखक का दृष्टिकोण, उसका जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से समाविष्ट हो जाता है।

भाषा शैली

शैली अनुभूत विषयवस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है जो उस विषय वस्तु की अभिव्यक्ति को सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं। रेखाचित्र शैली की कुछ अपनी ही विशेषताएँ हैं जिसका होना इसमें आवश्यक है।

सर्वप्रथम रेखाचित्र शैली में चित्रात्मकता का होना आवश्यक है। स्केच चित्रकला का अंग है। जिस प्रकार चित्रकार कुछ इनी–गिनी रेखाओं द्वारा किसी वस्तु, व्यक्ति के दृश्य को अंकित कर देता है इसी प्रकार रेखाचित्रकार भी शब्दों से चित्र को बनाता है। इस तरह चित्रात्मकता का इस शैली में होना आवश्यक है। चित्रात्मकता का गुण तो इस शैली में ऐसा है कि वह अर्थात् लेखक नायक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का चित्रण शब्दों द्वारा ऐसे ढंग से करता है कि उसका स्पष्ट अनुमान पाठक को हो जाता है।

शैली वही उत्कृष्ट मानी जाती है जिसका प्रभाव पाठकों पर स्थायी रूप से रहे। इसलिए शैली में प्रभावोत्पादकता का होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रभावपूर्ण शैली तभी हो सकती है यदि लेखक नायक का वर्णन रोचकपूर्ण ढंग से करे। इस प्रकार शैली में प्रभावोत्पाकदता उत्पन्न करने के लिए रोचकता का होना भी आवश्यक है।

संक्षिप्तता का गुण भी इस शैली में आवश्यक है। लेखक को सीमित परिधि में शब्दों में रेखाओं का काम लेकर कोण को सम्पूर्ण बनाना होता है जो विशेषलाघव संक्षिप्तता स्फूर्ति का काम है। इस प्रकार लाघवता का होना इस शैली में अत्यन्त आवश्यक है। इसके साथ ही शैली में आत्मीयता का होना भी आवश्यक है। इससे वर्ण्य विषय पर लेखक के व्यक्तित्व की छाप पड़ती है। इस विशेषता से शैली अधिक प्रभावपूर्ण बन जाती है और इसे गद्य की अन्य विधाओं से पृथक् करती है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रेखाचित्र शैली में चित्रात्मकता, प्रभावोत्पादकता, रोचकता, लाघवता, एवं आत्मीयता आदि गुणों का होना आवश्यक है। इन्हीं से युक्त शैली परिपक्व शैली बनती है।

भाषा का जहाँ तक प्रश्न है, भाषा ही भावाभिव्यक्ति का साधन है। भावानुकूल एवं विषयानुकूल भाषा का प्रयोग कृति को अधिक प्रभावपूर्ण बना देता है। रेखाचित्र में शब्द–विन्यास तथा वाक्य–विन्यास की विशिष्टता होती है। एक शब्द का एक वाक्य तथा अपने में चित्र हो सकता हे। रेखाचित्र में यथार्थ के लिए ध्वन्यात्मक शब्दों से ध्वनि चित्र रंगों का उल्लेख कर वर्ण चित्र अंकित किए जाते हैं। मिलते–जुलते शब्दों में से प्रभाववर्द्धन किया जाता है। चुभते चित्रोपम विशेषण, साम्यमूलक अलंकार, लक्षणाव्यंजना आदि कवित्वपूर्ण प्रसाधनों से चित्र को सजीव किया जाता है। इस प्रकार भावानुकूल एवं विषयानुकूल भाषा का प्रयोग ही इस शैली में अत्यन्त आवश्यक है।

22.6 प्रश्नावाली

1. रेखाचित्र की परिभाषा देते हुए इसके स्वरूप पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

2. रेखाचित्र साहित्य की परम्परा पर लेख लिखें।

_____

_____

_____

_____

3. रेखाचित्र साहित्य उद्‌भव एवं विकास पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

4. रेखाचित्र के विभिन्न तत्वों पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

22.7 सन्दर्भ ग्रन्थः

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास :– रामसजन पाण्डे।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास :– हुकम चन्द राजपाल
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास :– रामचन्द्र शुक्ल
4. हिन्दी का गद्य साहित्य :– रामचन्द्र तिवारी
5. आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य :– डॉ॰ शान्ति खन्ना
6. गद्य की नई विधाओं का विकासः– माजदा असद

.....

संस्मरण : उद्‌भव और विकास

23.0 भूमिका

23.1 उद्देश्य

23.2 प्रस्तावना

23.3 संस्मरण साहित्यः परिभाषा और स्वरूप

23.4 संस्मरण : परम्परा और विकास

23.5 संस्मरण : तत्व

23.6 प्रश्नावली

23.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

23.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप

- कथेतर साहित्य की महत्वपूर्ण विधा 'संस्मरण' के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगें।
- 'संस्मरण' साहित्य के स्वरूप को जानेंगे।
- 'संस्मरण' के तत्वों को जानेंगे।

23.2 प्रस्तावना

सम्यक समृति की वह अमिट छाप जिसे शब्दों द्वारा साहित्यिक ढंग से अभिव्यक्त किया जाए। संस्मरण कहलाती है। किसी वस्तु घटना, दृश्य और परिवेश को जब आत्मीयतापूर्ण रूप से याद किया जाए और उसका विवेचन कलात्मकता के साथ हो तो वह संस्मरण बन जाता है। संस्मरण एक वर्णनात्मक विधा है इसमें विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

23.3 संस्मरण : परिभाषा एवं स्वरूप

हिन्दी साहित्य में गद्य की अन्य नवीनतम विधाओं में संस्मरण साहित्य का भी विशेष स्थान है। संस्मरण कुछ असम्बद्ध घटनाओं का नोट हो सकता है जो लेखक के जीवन से सम्बन्ध रखता है और जिसे या तो चरित्रनायक स्वयं लिखे अथवा उसे अन्य व्यक्ति लिखे। जीवन की बहुत–सी बातों में संसार की हलचलों में दफ्तर की किसी कार्यवाही में या किसी सभा में जो समय–समय पर बातें घटी हैं उनका अलग–अलग वर्णन संस्मरण कहा जा सकता है। इसमें आत्मचरित्र की एकता नहीं हो सकती है और न व्यक्तित्व का कोई चित्र उपस्थित हो सकता है। उनमें मनुष्य की आत्मा, उसका मस्तिष्क नहीं पहचाना जा सकता है। किसी का संस्मरण उसका जीवन–चरित्र लिखने वाले लेखक के लिए सामग्री का काम दे सकता है, और निस्सन्देह जीवनी लेखक को इससे बड़ी सहायता मिल सकती है। संस्मरण जीवन सम्बन्धी घटनाओं का केवल ऐतिहासिक उल्लेख कहा जा सकता है। इससे स्पष्ट है कि संस्मरण साहित्य जीवनी साहित्य का एक अंग है इसमें मनुष्य की कुछ प्रमुख घटनाओं का जिनसे लेखक प्रभावित होता है उल्लेख होता है, व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का वर्णन नहीं होता।

'स्मरण और संस्मरण' शब्द विषय और प्रकृति की अव्यवस्था को सूचित करते हैं, लेखक लिखते समय जो भी याद कर सकता है, उन्हीं का इनमें वर्णन होता है।

इस परिभाषा में संस्मरण की अव्यवस्थता पर अधिक लिखा है। इसमें संस्मरण का अर्थ लेखक की स्मरण शक्ति को लक्षित करता है। याद की हुई घटनाओं का जिसमें वर्णन हो उन्हीं को संस्मरण में लिया है।

संस्मरण में सम्पूर्ण जीवन के कुछ विशिष्ट अंगों का प्रकाशन किया जाता है। संस्मरण में केवल उन्हीं घटनाओं का उल्लेख रहता है जिनसे लेखक के जीवन में घटित होने वाले परिवर्तनों का संकेत मिलता है और जो अन्य जनों के कौतूहल को शान्त करने में सहायक हो सकती है। –''संस्मरण सामान्यः प्रसिद्ध व्यक्ति ही लिख सकता है। अपने कार्य क्षेत्र में सामान्य प्रसिद्धि प्राप्त करके लेखक अपने जीवन के कुछ खंड जिनमें अन्य जनों की सहज रूचि हो सकती है संस्मरण के रूप में प्रस्तुत करता है। इस स्थिति में वह लेखक आकर्षण का कारण नहीं होता अपितु उसके संस्मरण में वर्णित वृत्त में आकर्षण रहता है।''

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संस्मरण प्रसिद्ध व्यक्ति ही लिख सकता है। इसके साथ ही वह अपने जीवन से सम्बन्धित संस्मरण भी लिख सकता है और अन्य व्यक्तियों के सम्बन्ध में भी। कुछ भी हो चाहे वह अपने जीवन के विषय में लिखे चाहे अन्य व्यक्ति के विषय में ये सभी संस्मरण उसके व्यक्तित्व से अवश्य प्रभावित होंगे वर्णन शैली में लेखक अपनी कोमल कल्पना की सहायता ले सकता है तभी वह अपने संस्मरणों को प्रभावशाली बना सकता है इन सभी विशेषताओं को एकत्रित रूप से यदि वर्णित किया जाय तो संस्मरण की परिभाषा यह हो सकती है– जब लेखक अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से विशिष्ट कर रमणीय एवं प्रभावशाली रूप से वर्णन करता है तब उसे संस्मरण कहते हैं।

23.4 संस्मरण साहित्यः परम्परा और विकास

लेखक जब अपनी अनेक स्मृतियों से कुछ विशिष्ट स्मृतियों को अपनी कोमल कल्पना से कलात्मक और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है तो उसे 'संस्मरण' कहा जाता है। साहित्य की यह विधा हिंदी साहित्य में आधुनिक

युग में शुरू हुई है। हिन्दी साहित्य में संस्मरण लिखने की शुरुआत भारतेन्दु युग और उसके पश्चात शुरू हुई है। वास्तविकता तो यह है कि संस्मरण लिखने की प्रथा हिंदी में पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से ही करती है। संस्मरण साहित्य भी इसका अपवाद नहीं हैं।'' हिन्दी संस्मरण विधा की परम्परा और विकास को निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं।

हिन्दी संस्मरण साहित्य : उद्‌भव (1900–1920)

स्वतंत्र साहित्यरूप की दृष्टि से संस्मरण साहित्य का विकास अत्यंत आधुनिक माना जाता है, लेकिन संस्मरण का अस्तित्व प्राचीन है। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक अनेक संस्मरणात्मक ग्रंथ मिले हैं। 'पृथ्वीराज रासो, 'विनयपत्रिका', 'हनुमानबाहुक', 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', आदि रचनाएँ संस्मरण साहित्य के अत्यधिक निकट हैं। लेकिन आधुनिक संस्मरण के तत्वों का प्रायः इसमें अभाव है। आधुनिक संस्मरण विधा की दृष्टि से बालमुकुन्द गुप्ता जी की रचना 'प्रतापनारायण मिश्र' हिन्दी संस्मरण विधा की प्रथम रचना मानी जाती है। इस युग में स्वयं भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' शीर्षक से एक सुंदर संस्मरण लिखा था। इस युग में अनेक संस्मरण पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाशित होते रहे। इसमें पं. अंबिकादत्त व्यास का 'निज वृत्तांत' उल्लेखनीय है। वास्तविक रूप से संस्मरण की शुरूआत 1900 के पश्चात ही संस्मरण विधा का उद्‌भव मानते हैं – ''सरस्वती इस युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पत्रिका थी और संस्मरण–साहित्य ने इसके माध्यम से ही अपने अस्तित्व की सूचना दी। इसके विभिन्न अंकों में समय–समय पर अनेक रोचक संस्मरण प्रकाशित होते रहे।'' यही से संस्मरण विधा की वास्तविक परम्परा शुरू होती हैं। सरस्वती के माध्यम से स्वयं महावीरप्रसाद द्विवेदीजी ने 'अनुमोदन का अन्त' 'क्षमा की सभ्यता' 'विज्ञानाचार्य वसुका विज्ञान मंदिर' आदि संस्मरणात्मक रचनाएँ लिखी। संस्मरण की श्रीवृद्धि में 'सरस्वती' पत्रिका का योगदान महत्वपूर्ण है। इसी पत्रिका के विभिन्न अंकों में अनेक संस्मरण लिखे गये। इसमें उल्लेखनीय है– रामकुमार खेमका का 'इधर–उधर की बातें', जगदूबिहारी सेठा का 'मेरी बड़ी छुट्टियों का प्रथम सप्ताह' पान्डुरंग खानखोजे का 'वाशिंगटन महाविद्यालय का संस्थापन दिनोत्सव', प्यारेलाल मिश्र का 'लंदन का फाग या कुहरा', काशीप्रसाद जायस्वाला का 'इंग्लैंड के देहात में महाराज बनारस का कुआँ', जगन्नाथ खन्ना का 'अमेरिका आनेवाले विद्यार्थियों को सूचना', भोलादत्त पांडे का 'मेरी नयी दुनिया संबंधित रामकहानी आदि' उल्लेखनीय हैं। इस युग के अधिकांश संस्मरण प्रवासी भारतीयों द्वारा लिखे गये हैं। इस युग में पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित बालमुकुंद गुप्ता की रचना 'हरिऔध जी के संस्मरण' यही एकमात्र उल्लेखनीय संस्मरण रचना है। यह रचना संस्मरण विधा की प्राथमिक अवस्था ही मानी जानी चाहिए। इस युग में बहुत ही कम मात्रा में संस्मरण लिखे गये। संस्मरण विधा केवल पत्र–पत्रिकाओं तक ही सीमित रही है। संस्मरण विधा को पुस्तकाकार रूप देने का प्रयास छायावाद में ही होता दिखाई देता है। यह संस्मरण विधा का विकास–युग माना जा सकता है।

संस्मरण विकास युग : (1920 से आज तक)

द्विवेदी युग की तरह ही इस युग में भी अधिकांश संस्मरण पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से लिखने का प्रयास हुआ है। 'सरस्वती' पत्रिका में रामकुमार खेमका, कृपानाथ मिश्र, रामनारायण मिश्र, भगवानदीन दुबे, रामेश्वरी नेहरु आदि के अनेक संस्मरण देखने को मिलते हैं। देश–विदेश के जीवन के विविध पक्षों, प्रकृति के सौंदर्य, दर्शनीय स्थानों आदि के वर्णन को इस संस्मरणों में अधिक चित्रित किया गया है।

'सरस्वती पत्रिका के पश्चात संस्मरण विधा को अधिक प्राथमिकता देने का कार्य 'विशाल भारत', 'सुधा', और

माधुरी आदि पत्रिकाओं ने किया हैं। इन पत्रिकाओं में आचार्य रामदेव ने स्वामी श्रद्धानंद पर, अमृतलाल चक्रवर्ती ने बालमुकुन्द गुप्त पर, बनारसीदास चतुर्वेदी ने श्रीधर पाठक पर, मंगलदेव शर्मा ने पद्मसिंह शर्मा पर संस्मरण लिखे हैं। यहाँ कथा नायकों के जीवन को लेकर संस्मरण लिखे गये हैं। 'सुधा' पत्रिका में 'मेरे प्राथमिक जीवन की स्मृतियाँ (इलाचन्द्र जोशी)', कुछ संस्मरण (वृन्दावनलाल वर्मा) से प्रकाशित संस्मरण भी विशेष उल्लेखनीय रहे है। इसी समय में डॉ. श्यामसुन्दरदास ने 'लाला भगवानदीन' नामक एक महत्त्वपूर्ण संस्मरण लिखा है। इस संस्मरण में भगवानदीन जी के जीवन की यथार्थ झाँकी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। श्री रामदास गौड द्वारा लिखित 'पं. श्रीधर पाठक', 'रायदेवी प्रसाद पूर्ण' संबंधी संस्मरण भी विशेष उल्लेखनीय रहे है। यह सभी संस्मरण पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से लिखे गये।

संस्मरण शुरू में पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से लिखे गये। लेकिन जैसे–जैसे संस्मरण विधा अपना विकास करती गई वैसे–वैसे कुछ संस्मरण संकलन भी सामने आते रहे। द्विवेदी युग के पश्चात अनेक लेखकों ने अपने संस्मरण संकलन भी प्रकाशित किए हैं। शिवराम पान्डेय की रचना मदन मोहन के संबंध की 'कुछ पुरानी स्मृतियाँ' सन 1932 में प्रकाशित एक महत्त्पूर्ण संस्मरण संकलन है। इसके पश्चात श्रीराम शर्मा कृत 'शिकार', मन्मथनाथ गुप्त कृत 'क्रान्ति युग के संस्मरण' तथा शिवनारायण टन्डन कृत 'झलक' यह उल्लेखनीय संस्मरण ग्रंथ है। इसी समय 'हंस' पत्रिका का बाबूराव विष्णुराव पराडकर द्वारा संम्पादित 'प्रेमचन्द स्मृति अंक' संस्मरण परम्परा का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। जो तिलक भार्गव द्वारा सम्पादित 'साहित्यकों के संस्मरण' भी इस युग की उल्लेखनीय रचना हैं। इसमें मंगलदेव शर्मा द्वारा प्रेमचन्द के जीवन पर लिखा गया 'मुंशी प्रेमचन्द' महत्त्वपूर्ण संस्मरण है। 1935 तक लिखे गये संस्मरणों में समाजसेवी नेताओं और साहित्यकारों पर अधिक संस्मरण लिखे गये हैं। इसके साथ ही प्रवासी भारतीयों के स्मृति–प्रसंगों को रोचक और प्रवाहपूर्ण शैली में प्रस्तुत किया गया है।

सन 1940 के समय में हिन्दी संस्मरण लिखनेवाले राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह एक प्रमुख संस्मरण लेखक हैं। उनके संस्मरण हिन्दी साहित्य की अमूल्यनिधि के रुप में प्राप्त होते हैं। उनके संस्मरण चरनाओं में 'सावनीसमा', 'टूटा तारा' और 'सूरदास', 'देवी बाबा' प्रमुख है। 'सावनीसमा' (सावन के दृश्य या नजारे) में सावन के दृश्यों को सजीवता से अंकित करने का प्रयास किया हैं। स्वयं इसके संदर्भ में सिंहजी लिखते हैं– ''आज भी मेरी मानस दृष्टि पर यह सावनी चकल्लस की पार्टी चक्कर काटती है। उस विलुप्त गौरव की धुँधली स्मृति गोधूलि की क्लान आभा की तरह स्निग्ध भी है।'' इससे स्पष्ट है कि इसमें सावन और समाज का स्निग्ध और करूण चित्रण हुआ है। 'टूटा तारा' राजासाहब के कलात्मक संस्मरणों की दूसरी पुस्तक है। इसमें मौलवी मुरादबख्श और देवी बाबू के संस्मरण लिखे गये हैं। सूरदास में राजा साहब के पंखा कुली का सजीव अंकन किया गया है। राजा राधिकारमण सिंह के संस्मरण संबंधी उपर्युक्त रचनाओं के संबंध में नगेंद्रजी लिखते है– ''सार्थक विशेषणों , विशिष्ट उपमाओं एवं ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग उनकी शैलीगत विशेषताएँ है।''

महादेवी वर्मा एक सफल संस्मरण लेखिका है। 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' एवं 'श्रृंखला की कडियाँ' उनके संस्मरणात्मक गद्य संग्रह हैं। इन संग्रहों में सामाजिक वैषम्य, नारी हृदय की करूणा, वेदना, व्यथा का मर्मस्पर्शी बौद्धिक विश्लेषण हुआ है। इनके संस्मरण के संबंध में डॉ. शान्ति खन्ना लिखती हैं – ''काव्य जगत की भावुक प्रणयिनी कवयित्री अपने संस्मरणें में धरती की बेटी बनकर माँ बहन के रूप में अवतरित हुई है। आत्मनिवेदिता कवयित्री ने स्वात्मपंडित से उन्मुख होकर युग सापेक्ष गतिमान रूप स्वीकार किया है और उनका आत्मरूद्ध कलाकार

अपने संस्मरण साहित्य में युगों–युगों से पीडित तिरस्कृत मानवता की वकालत के लिए तनकर खड़ा हो गया है''। महादेवी वर्मा की दृष्टि समाज की पीडा पर अधिक टिकी है। शान्तिप्रिय द्विवेदी हिन्दी के प्रसिद्ध संस्मरण लेखक है। इनकी 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' नामक संस्मरण रचना है। यह उनका व्यक्तिगत जीवन से संबंधित संस्मरण संग्रह है। इसके साथ–साथ शिवपूजन सहाय की 'वे दिन वे लोग' प्रकाशचन्द्र गुप्त की 'पुरानी स्मृतियाँ', देवेद्र सत्यार्थी की 'रेखाएँ बोल उठी' आदि उल्लेखनीय संस्मरण रचनाएँ हैं।

सन 1952 मे बनारसीदास चतुर्वेदी के 'संस्मरण' प्रकाशित हुए। इस संस्मरण में 21 व्यक्तियों के संस्मरण 251 पृष्ठों में लिखे है। इनके संस्मरण कलात्मक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। इनके संस्मरणों की भाषा सजीव और आकर्षक है। विष्णु प्रभाकर ने 'कुछ शब्द कुछ रेखाएँ' शीर्षक संस्मरण में सामाजिक स्थितियों तथा अनेक मूल में छिपी विसंगतियों का सटीक विश्लेषण किया है। राहुल सांकृत्यायन का संस्मरण साहित्य 'बचपन की स्मृतियाँ', 'जिसका मैं कृतज्ञ' तथा 'मेरे असहयोग के साथी' में संकलित है। अपने जीवन मे आनेवाले विशिष्ट व्यक्तियों की अनेक स्मृतियों को राहुलजी ने शब्दशुद्ध करने का प्रयास किया हैं। इनके संस्मरणों के संदर्भ डॉ. नगेंद्रजी लिखते हैं – ''बोलचाल की प्रावहपूर्ण भाषा के द्वारा अपने हृदय की भावुकता को व्यक्त करते हुए तथा अपने सम्पर्क में आनेवाले छोटे–बडे तथा मामूली महान सभी व्यक्तियों को समान रूप से महत्त्व देते हुए मर्मस्पर्शी रचनाओं का प्रणयन इनके लेखन की विशेषता है।'' उनकी 'यात्रा के पन्ने' डायरी शैली में लिखी गई प्रथम संस्मरणात्मक कृति है। इस रचना में लेखक तिब्बत यात्रा का वर्णन करता है।

किशोरदास वाजपेयी हिन्दी संस्मरण साहित्य के एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं। उनकी संस्मरण रचना 'साहित्यिक जीवन के अनुभव और संस्मरण' सन 1953 में प्रकाशित हुई। यह रचना चार भागों में विभाजित हैं। अपने जीवन में आये महत्त्वपूर्ण अनुभव का लेखा–जोखा प्रस्तुत करने वाली यह रचना है। इस रचना के संबंध में डॉ. शान्ति खन्ना लिखती हैं– ''जीवन में जो भी अनुभव उन्हें हुए, उन सभी का वर्णन इसमें है। जीवन में असफलता के कारण और सफलता की कुँजी दोनों ही इस पुस्तक में है।'' हिन्दी संस्मरण साहित्य में जैनेन्द्र का नाम भी उल्लेखनीय है। इनके बारह संस्मरणों का संग्रह 'ये और वे' सन 1954 में प्रकाशित हुआ। आपके द्वारा लिखित प्रेमचन्द, मैथिलीशरण गुप्त के जीवन पर लिखे संस्मरण कलापूर्ण बन गये है। सन 1955 में घनश्याम बिडला की संस्मरणात्मक रचना 'गांधीजी की छत्रछाया में' प्रकाशित हुई। यह व्यक्तिगत रचना है। इसमें तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का यथार्थ और सजीव चित्रण किया गया है। बिडला जी ने म. गांधीजी के छत्रछाया में रहते हुए अपने व्यक्तिगत जीवन की वास्तविकता को इस रचना में व्यक्त किया है। यशपाल इस समय के प्रमुख संस्मरण लेखक हैं। उसकी रचना 'सिंहावलोकन' अपने समय के क्रान्तिकारी जीवन का यथार्थ सिंहावलोकन करती है। यहाँ स्वतंत्रता संग्राम की झाँकी भी देखने को मिलती हैं।

उपेद्रनाथ अश्क ने भी संस्मरण के विकास में अपना योगदान दिया। उनकी रचनाएँ 'रेखाएँ और चित्र', मंटो मेरा दुश्मन में उनके अश्क जी द्वारा बिताए गए दिनों की दर्दभरी और दिलचस्प कहानी है। यथा – ''मंटो जब गाली देने पर माफी माँग लेना या इतना मादा उसे था, तब फिर क्या कारण है कि हम में बराबर खिंचाव रहा और हम लडते रहें? मैंने स्वयं इस बात पर गौर किया है और मैं हमेशा इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ, कि जिंदगी की बिसात पर हमें एक–दूसरे के सामने रख दिया गया और हम लड़ने पर मजबूर रहे।'' इस प्रकार सभी संस्मरणों में अश्कजी की कला कुशलता निखर उठी हैं। 1956 में प्रकाशित शिवरानी देवी द्वारा 'प्रेमचन्दः घर में' एक प्रमुख संस्मरण रचना है। इस

समय 'हंस' द्वारा 'प्रेमचंद स्मृतिग्रंथ' तथा राजकमल प्रकाशन द्वारा 'श्री सुमित्रानन्दन पंत स्मृति चित्र', तथा लखनऊ से 'पाण्डेय स्मृति ग्रंथ' प्रकाशित हुए। संस्मरण विधा के विकास में इन ग्रंथों का भी महत्त्व अनन्यसाधारण हैं। यह स्मृतिग्रंथ संस्मरण विधा को पुष्ट विकास के प्रमाण कहे जा सकते हैं। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर हिन्दी संस्मरण साहित्य के एक प्रमुख हस्ताक्षर है। आपके संस्मरणों का संग्रह 'दीप जल शंख बजे' सन 1950 में प्रकाशित हुआ। इसमें पच्चीस संस्मरण ऐसे हैं, जो सामान्य व्यक्ति से महान व्यक्ति के जीवन को स्मृतिपटल के सामने ताजा करते हैं। इस संकलन के संदर्भ में डॉ. शान्ति खन्ना लिखती हैं – ''ये संस्मरण लिखते समय मिश्रजी ने यह नहीं सोचा कि अमुक व्यक्ति जनता में प्रसिद्ध हैं कि नहीं, उनके सम्पर्क में जो व्यक्ति आए और जिनमें उन्होंने मानवीय गुणों का समावेश पाया उन्हीं का वर्णन किया है।'' इन्द्र विद्यावाचास्पति की रचना 'मैं इनका ऋणी हूँ' महान राष्ट्रपुरूषों के जीवन में संबंधित महत्त्वपूर्ण संस्मरण रचना हैं। सेठ गोविन्ददास की 'स्मृति कण' में स्मृति के विशेष क्षणों को रेखांकित किया हैं। रामधारीसिंह दिनकर द्वारा लिखित 'संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ' उल्लेखनीय हैं। जिनमें सरल एवं भावपूर्ण भाषा के माध्यम से अपने युग के प्रमुख साहित्यकारों, राजनीतिक नेताओं आदि के निजी संबंधों का अन्तरंग परिचय दिया गया है। स्वाधीनता के पश्चात भी अनेक संस्मरणात्मक रचनाओं का सृजन हुआ हैं। इसमें महत्त्वपूर्ण है, सत्यजीवन वर्मा भारतीय की 'एलबम', ओंकार शरद की 'लंका महाराजिन', कैलाशनाथ काटजू की 'मै भूल नहीं सकता', विनोदशंकर व्यास की 'प्रसाद और उनके समकालीन', सम्पूर्णानन्द की 'कुछ स्मृतियाँ और स्फुट विचार', हरिभाऊ उपाध्याय की 'मेरे हृदय देव', रायकृष्ण दास की जवाहर भाई 'आत्मीयता और सहृदयता', लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु', की 'व्यक्तित्व की झांकियाँ, अमृतलाल नागर की 'जिनके साथ जिया', भगतसिंह की 'मेरी क्रांतिकारी साथी', कृष्णा सोबती की 'हम हशमत', भारतभूषण अग्रवाल की 'लोक–अलोक', डॉ. रामकुमार वर्मा की 'संस्मरणों के सुमन', फणीश्वरनाथ रेणु की 'वन तुलसी की गंध' आदि संस्मरणपरक रचनाएँ हैं। आदि रचनाओं ने हिन्दी संस्मरण विधा को समृद्ध बनाने का प्रयास किया है। अनेक पत्र–पत्रिकाओं ने भी संस्मरण को समृद्ध बनाने का सफल प्रयास किया है। जीवन में विविध क्षेत्रों से जुड़े व्यक्तियों को संस्मरण पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से लिखे जा रहे हैं। अनेक रचनाओं का अनुवाद भी हिन्दी में हुआ है।

समग्रतः संस्मरण विधा की परम्परा और विकास के संबंध में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी संस्मरण ने अपनी छोटी–छोटी भी विकास यात्रा में जिस बहुरंगी एवं विविध आयामी समृद्ध परम्परा का निर्माण किया है, वह उल्लेखनीय और प्रशंसनीय कहा जा सकता है। आज भी यह विकास निरंतर जारी है।

पिछले कुछ वर्षों के भीतर संस्मरण–लेखन की प्रवृत्ति बढ़ी है। चर्चित संस्मरणों में –सृजन के सेतु (1990 ई॰) विष्णु प्रभाकर, याद हो कि न याद हो (1992 ई॰) काशीनाथ सिंह, निकट मन में (1992 ई॰) अजित कुमार, जिनकी याद हमेशा रहेगी (1992 ई॰) अमृत राय, सुधियाँ उस चन्दन के वन की (1992 ई॰) श्री विष्णुकांत शास्त्री, लाहौर में लखनऊ तक (1994 ई॰) प्रकाशवती पाल, सप्तपर्णी (1994 ई॰) गिरिराज किशोर, लौट आ ओ धार (1995 ई॰) दूधनाथ सिंह, स्मृतियों के छंद (1995 ई॰) और अपने–अपने रास्ते (2001 ई॰) रामदरश मिश्र, अतीतजीवी (1995 ई॰) प्रफुल्लचन्द्र ओझा, सृजन के सहयात्री (1996 ई॰) रवीन्द्र कालिया, अभिन्न (1996 ई॰) विष्णुचन्द्र शर्मा, यादें और बातें (1998 ई॰) बिन्दु अग्रवाल, हम हशमत, (भाग–दो) कृष्णा सोबती, अमराई (1999 ई॰) पद्म सच्चदेव, वे देवता नहीं है (2000 ई॰) राजेन्द्र यादव, याद आते हैं (2000 ई॰) रामनाथ अवस्थी, नेपथ्य नायक लक्ष्मीचन्द्र जैन (2000 ई॰) सं॰ मोहनकिशोर दीवान, यादों के काफिले (2000 ई॰) देवन्द्र सत्यार्थी, अंतरंग संस्मरणों में प्रसाद (2001 ई॰) सं॰ पुरुषोत्तमदास मोदी,

एक नाव के यात्री (2001 ई॰) विश्वनाथप्रसाद तिवारी, प्रदक्षिणा अपने समय की (2001 ई॰) नरेश मेहता, चिड़िया रैन बसेरा (2002 ई॰) विद्यानिवास मिश्र, लखनऊ मेरा लखनऊ (2002 ई॰) मनोहर श्याम जोशी, लौटकर आना नहीं होगा (2002 ई॰) कान्ति कुमार जैन, नेह के नाते अनेक (2002 ई॰) कृष्णाबिहारी मिश्र, लखनऊ मेरा लखनऊ (2002 ई॰) डॉ॰ रामकमल राय, साहित्य के स्वप्न पुरुष (2002 ई॰) विष्णु प्रभाकर, रघुवीर सहायः रचनाओं के बहाने एक संस्मरण (2003 ई॰) मनोहरश्याम जोशी, आँगन के वन्दनवार (2003 ई॰) और मेरे सुहृदय श्रद्धेय (2005 ई॰) डॉ॰ विवेकी राय, ये जो आइना है (2006 ई॰) मधुरेश, काशी का अस्सी (2002 ई॰), आछे दिन पाछे भये (2004 ई॰) डॉ॰ काशीनाथ सिंह, लाई हयात आए (2004 ई॰) डॉ॰ लक्ष्मीधर मालवीय, तुम्हारा परसाई (2004 ई॰), जो कहूँगा सच कहूँगा (2006 ई॰), अब तो बात फैल गई (2007 ई॰), और बैकुण्ठपुर में बचपन (2010 ई॰) डॉ॰ कान्तिकुमार जैन, पर साथ–साथ चल रही याद (2004 ई॰) श्री विष्णुकान्त शास्त्री, नंगा तलाई का गाँव (2004 ई॰) डॉ॰ विश्वनाथ त्रिपाठी, सुमिरन के बहाने (2005 ई॰) केशवचन्द वर्मा, घर का जोगी जोगड़ा (2006 ई॰) डॉ॰ काशीनाथ सिंह, एक दुनिया अपनी (2007 ई॰) डॉ॰ रामदरश मिश्र, कुछ यादें कुछ बातें (2008 ई॰) अमरकान्त, दिल्ली शहर दर शहर (2009 ई॰) डॉ॰ निर्मला जैन, कालातीत (2009 ई॰) मुद्रा राक्षस, कितनी शहरों में कितनी बार (2010 ई॰) ममता कालिया, हाशिये की इबारतें (2009 ई॰), मेरे भोजपत्र (2009 ई॰) चन्द्रकान्ता, कविवर बच्चन के साथ (2009 ई॰) एवं जिनके संग जिया (2015 ई॰) अतीत कुमार, अमृत लाल भागर की बाबूजी बेटाजी एण्ड कम्पनी (2009 ई॰) अचला नागर, जे एनयू में नामवर सिंह (2010 ई॰) सम्पादक डॉ॰ सुमन केशरी, अँधेरे में जुगनू (2010 ई॰) अजीत कुमार यादों के गलियारे (2010 ई॰) नासिरा शर्मा, कल परसों के बरसों (2011 ई॰) ममता कालिया, स्मृति में रहेंगे वे (2011 ई॰) शेखर जोशी, टिगरिया का लोकदेवता भवानी प्रसाद मिश्र (2011 ई॰) डॉ॰ प्रेमशंकर रघुवंशी, अतीत राग (2011 ई॰) नन्द चतुर्वेदी (1923–2014 ई॰), मेरे हिस्से का शहर (2011 ई॰) सुधीर विद्यार्थी, स्मृतियों के गलियारे से (2012 ई॰) नरेन्द्र कोहली, गंगा स्नान करने चलोगे (2012 ई॰) डॉ॰ विश्वनाथ त्रिपाठी, माफ करना यार (2012 ई॰) बलराम, अपने–अपने अज्ञेय, दो खण्ड (2012 ई॰) सम्पादकः ओम थानवी, यादों का सफर (2012 ई॰) प्रकाश मनु, हम हशमत भाग–3 (2012 ई॰) कृष्ण सोबती, नेह के नाते (2012 ई॰) डॉ॰ कमलाप्रसाद, लता मंगेशकर : ऐसा कहा से लाऊँ (2012 ई॰) पद्मा सचदेव, ज्ञानरंजन के बहाने (2012 ई॰) नीलाभ, जहाँ से उजास (2013 ई॰) राजी सेठ, कृति और कृतिकार (2013 ई॰) मृदुला गर्ग, एक पेड़ की याद (2013 ई॰) शेखर जोशी, कथाशिल्पी कमलेश्वर (2013 ई॰) सं॰ महावीर अग्रवाल, फिर मुझे रहगुजर याद आया (2013 ई॰) शैलेन्द्र सागर स्मृतियों का साक्ष्य (2014 ई॰) हृदयेश, धीमी–धीमी आँच (2013 ई॰) बलराम, ई इलाहाबाद है भइया (2013 ई॰) विमलचन्द पाण्डेय महागुरु मुक्तिबोधः जुम्मा टैंक की सीढ़ियों पर (2014 ई॰) कान्तिकुमार जैन, बोरुंदा डायरी (2015 ई॰) मालचन्द तिवाड़ी, गुरुजी की खेती–बाड़ी (2015 ई॰) डॉ॰ विश्वनाथ त्रिपाठी, मेरे हमकलम (2015 ई॰) रवीन्द्र कालिया, एक था राजा (2015 ई॰) डॉ॰ कान्तिकुमार जैन, यादें–यादें...ओर यादें (2016 ई॰ पुष्पा भारती, मैं और वे (2016 ई॰) मधुरेश, आवा हयामि (2016 ई॰) रमेश चन्द्र शाह आदि।

23.5 संस्मरण : तत्व

वर्ण्य विषय – संस्मरण साहित्य का यह प्रमुख तत्व है। इसमें लेखक अपने या अन्य व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित विशिष्ट या रमणीय घटनाओं का वर्णन करता है। घटनाओं में उन्हीं का वर्णन होता है जिनसे लेखक स्वयं प्रभावित होता है और यह अनुभव करता है कि अन्य व्यक्ति भी प्रभावित होंगे। संस्मरण किसी विशेष व्यक्ति के ही लिखे जाते हैं। जिस भी व्यक्ति के संस्मरण लेखक लिखे उसे जनता में अवश्य प्रतिष्ठित होना चाहिए। ऐसे प्रतिष्ठित

व्यक्तियों के संस्मरण ही जनता के लिए प्रेरणादायक सिद्ध हो सकते हैं। प्रतिष्ठित व्यक्ति राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक कोई भी हो सकता है।

वर्ण्य विषय की कुछ विशेषताएँ होती हैं जोकि उसे उत्कृष्ट बनाती हैं। उनमें सर्वप्रथम रोचकता है। लेखक को अपने विषय का वर्णन इस ढंग से करना चाहिए जिससे कि वह पाठक को सरस प्रतीत हो। नीरस विषय को पढ़ने के लिए कोई भी व्यक्ति तैयार नहीं होता। इस प्रकार रोचकता का विषयवर्णन में होना अत्यन्त आवश्यक है।

अन्य महत्वपूर्ण गुण जिसका वर्ण्य विषय में होना आवश्यक है वह है स्पष्टता। यदि लेखक अपने या किसी अन्य व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन पूर्ण ईमानदारी से करता है तभी वह सफल संस्मरण लेखक हो सकता है। किसी भी व्यक्ति का संस्मरण तभी सच्चा उतर सकता है जबकि लेखक का संस्मरण–नायक से निकट सम्पर्क रहा हो और उसको उसने हर पहलुओं से देखा और समझा हो। ऐसा न होने से परिणाम यह होता है कि मनुष्य कुछ है और उसका चित्रण उसके बिल्कुल विपरीत होता है।

इसके पश्चात वर्ण्य विषय में सुसंगठितता का होना भी आवश्यक है। लेखक जिस भी घटना का वर्णन करना चाहे उसमें भावों और विचारों का तारतम्य होना आवश्यक है। जीवन की समस्त अनुभूतियों का वर्णन क्रमबद्ध रूप से करना आवश्यक है। ये सभी विशेषताएँ वर्ण्य विषय को रोचक एवं प्रभावशाली बनाती हैं। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ''वर्ण्य विषय को दो प्रकार से वर्णन किया जा सकता है यदि संस्मरण लेखक अपने सम्बन्ध में लिखे तो उसकी रचना आत्मकथा के निकट होगी यदि अन्य व्यक्ति के विषय में लिखे तो जीवनी के निकट।''

चरित्र–चित्रण

यदि लेखक अपने जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन संस्मरणात्मक शैली में करता है तो वह उसकी संस्मरणों में लिखी आत्मकथा बन जाती हे। यदि वह अन्य व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन करता है तो वह जीवनी संस्मरणों में लिखी हुई मानी जाती है इन दोनों में लेखक केवल उन्हीं घटनाओं का उल्लेख करता है जिनका प्रभाव जनता पर स्पष्ट रूप से पड़ सकता है। वे सभी घटनाएँ केवल उसके चरित्र के गुणों को ही स्पष्ट करने के लिए नहीं लिखी जातीं उनमें कुछ ऐसी घटनाओं का वर्णन भी होता है जोकि उसकी चारित्रिक दुर्बलताओं की ओर संकेत करती हैं। इस प्रकार संस्मरणों में चरित्र सम्बन्धी गुण–दोषों का वर्णन स्पष्ट रूप से किया जाता है।

लेखक द्वारा लिखा हुआ प्रत्येक पृष्ठ उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होता है। लेखक के व्यक्तित्व का प्रभाव उसकी प्रत्येक कृति में स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। यदि लेखक मनोविज्ञानकार है तो वह अपने नायक का चरित्र मनोवैज्ञानिक ढंग से लिखेगा उसके चरित्र का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करेगा। ऐसे लेखक अपने नायक के चरित्र का चित्रण तो करते ही हैं इसके साथ उसके मस्तिष्क में छिपी हुई उनकी भावनाओं एवं उलझनों का भी स्पष्ट रूप से विश्लेषण करते हैं। कुछ ऐसे संस्मरण भी लिखे जा सकते हैं जोकि नायक के जीवन की कुछ घटनाओं को ही व्यक्त करते हैं। ऐसे संस्मरण यद्यपि नायक के सम्पूर्ण जीवन को नहीं स्पष्ट करते प्रत्युत फिर भी उन कुछ वर्णित पृष्ठों का वर्णन ही ऐसे ढंग से लेखक करता है कि नायक के सम्पूर्ण चरित्र का अनायास ज्ञान हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि संस्मरण साहित्य में भी लेखक नायक के चारित्रिक गुण–दोषों का वर्णन स्पष्ट रूप से करता है जिससे कि उसका चरित्र स्पष्ट हो जाता है।

देशकाल वातावरण

वातावरण उन समस्त परिस्थितियों का संकुल नाम है जिनसे पात्रों को संघर्ष करना पड़ता है। संस्मरण साहित्य को वास्तविकता का भान देने की कसौटियों में वातावरण मुख्य उपकरण है। संस्मरण लेखक भी देश और काल की जंजीर में जकड़े हुए होते हैं। नायक के व्यक्तित्व को स्पष्ट करने के लिए देशकाल का चित्रण आवश्यक है। नायक के व्यक्तित्व के अनुसार ही वातावरण एवं परिस्थितियों का चित्रण लेखक करता है। यदि लेखक का नायक साहित्यिक है तो उसके संस्मरणों में लेखक जहाँ उसके साहित्यिक व्यक्तित्व को स्पष्ट करेगा वहाँ उसका स्थान निर्धारित करने के लिए उसे तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियों का अवश्य वर्णन करना पड़ेगा।

यदि नायक राजनैतिक व्यक्ति है तो उसमें पाठक को तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का ज्ञान होगा। क्योंकि उनके नायक का व्यक्तित्व इन्हीं परिस्थितियों में निखरता है इसलिए ये सभी वर्णन उसके लिए आवश्यक हो जाते हैं। यही नहीं कुछ राजनैतिक व्यक्ति अच्छे लेखक भी होते हैं। इसलिए उनके जीवन में दोनों ही प्रकार की परिस्थितियों का वर्णन होता है। धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का ज्ञान हमें ऐसे पुरुषों के जीवन से मिलता है जिनका सम्पूर्ण जीवन इन्हीं में व्यतीत हुआ हो। इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट है कि परिस्थितियों का वर्णन केवल नायक के व्यक्तित्व को उभारने के लिए ही किया जाता है प्रमुख रूप से नहीं।

देश और काल में वास्तविकता लाने के लिए स्थानीय ज्ञान आवश्यक है। इसलिए चरित्र को और उज्जवल एवं प्रभावशाली बनाने के लिए जहाँ लेखक तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन करते हैं वहाँ विशेष स्थान का वर्णन भी करते हैं जहाँ से सभी घटनाएँ घटित होती हैं। कई संस्मरण तो लिखे ही इसी दृष्टिकोण से जाते हैं। यात्रा सम्बन्धी संस्मरणों में नगरों एवं विशेष स्थलों का चित्रण होता है। इस प्रकार संस्मरणों में वास्तविकता एवं प्रभावोत्पादकता लाने के लिए देशकाल वातावरण का चित्रण आवश्यक है।

उद्देश्य

यह संस्मरण साहित्य का प्रमुख तत्व है। इसमें लेखक की जीवन दृष्टि का विवेचन होता है। इसे लेखक का जीवन–दर्शन अथवा उसकी जीवन दृष्टि या जीवन की व्याख्या कह सकते हैं। निरुद्देश्य रचना प्रयोजनहीन एवं व्यर्थ होती है। संस्मरण साहित्य का उद्देश्य अन्य विधाओं से पृथक है। इसमें लेखक अपने समय के इतिहास को लिखना चाहता है परन्तु इतिहासकार के वस्तुपरक रूप से वह बिल्कुल अलग है। संस्मरण लेखक जो स्वयं देखता है जिसका वह स्वयं अनुभव करता है उसी का वर्णन करता है। उसके वर्णन में उसकी अपनी अनुभूतियाँ, संवेदनाएँ भी रहती है। इस दृष्टि से शैली में वह निबन्धकार के समीप है। वह वास्तव में अपने चतुर्दिक के जीवन का सर्जन करता है, सम्पूर्ण भावना और जीवन के साथ, इतिहासकार के समान वह विवरण प्रस्तुत करने वाला नहीं। इससे स्पष्ट है कि संस्मरणों में लेखक केवल उन्हीं घटनाओं का चित्रण करता है जिनसे वह प्रभावित होता है और उसके सम्मुख घटित हुई होती हैं। लेखक केवल उन घटनाओं का वर्णन ही नहीं करता अपितु उनके विषय में अपनी विचारधाराओं का भी वर्णन करता है जिससे हमें लेखक के विचारों का भी आभास हो जाता है।

संस्मरणों में लेखक केवल उन्हीं घटनाओं का चित्रण करता है जिनसे वह स्वयं प्रभावित होता है। अपने अतीत की स्मृतियों को साकार रूप देने का उसका अवश्य कोई न कोई उद्देश्य होता है। एक तो लेखक इस उद्देश्य

से इनका वर्णन करता है कि ये वर्णित घटनाएँ समय–समय पर उसे प्रेरणा देती रहें। जब भी जीवन में प्रेरणा की आवश्यकता पड़े पाठक इनको पढ़ सके। अन्य बात यह है कि कुछ संस्मरण इस उद्देश्य से लिखे जाते हैं कि उनको लिखकर लेखक को मानसिक संतोष प्राप्त होता है।

लेखक अपने जीवन के अनुभवों का वर्णन इसी दृष्टिकोण से करता है। कि शायद इनके पढ़ने से कुछ लोग प्रेरणा ग्रहण कर सकें क्योंकि संस्मरण में तो लेखक केवल उन्हीं घटनाओं का उल्लेख करता है जिनसे लेखक के जीवन में घटित होने वाले परिवर्तनों का संकेत मिलता है और जो अन्य जनों के कौतूहल को शान्त करने में सहायक हो सकते हैं। इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट है कि संस्मरण लेखक का उद्देश्य जहाँ स्वान्तः सुखाय रचना करना है वहाँ प्रभावशाली अतीत की स्मृतियों का चित्रण करना भी है जिससे उसे एवं पाठकगण को प्रेरणा मिलती रहे।

भाषा शैली

शैली अनुभूत विषयवस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है जो उस विषयवस्तु की अभिव्यक्ति को सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं। संस्मरण शैली की कुछ अपनी ही विशेषताएँ है जो इसका सम्पन्न एवं प्रभावोत्पादक बनाती है। सर्वप्रथम इस शैली में प्रभावोत्पादकता का होना आवश्यक है। संस्मरण इस ढंग से लिखने चाहिए जिससे वे पाठक पर अपना प्रभाव स्थायी रूप से डाल सकें। यह प्रभाव तभी डाल सकते हैं जबकि इनका रोचकता से वर्णन हो। उत्तम ढंग से कही हुई बात ही अधिक प्रभाव डाल सकती है इस प्रकार रोचक शैली का होना भी आवश्यक है। जब तक प्रत्येक भाव एवं विचार का वर्णन सुसंगठित रूप से न किया गया हो तब वह पाठक को रुचिकर न प्रतीत होगी ओर प्रभावित करने के लिए असमर्थ प्रतीत होगी। इसलिए शैली में रोचकता, सुसंगठितता एवं प्रभावोत्पादकता आदि गुणों का होना आवश्यक है।

संस्मरण लिखने के कई ढंग हो सकते हैं। ये निबन्धात्मक शैली में लिखे जा सकते हैं। जब लेखक अपने जीवन से सम्बन्धित संस्मरणों का वर्णन करता है तब वे आत्मकथा शैली में लिखे जाते हैं। कई बार लेखक अपने संस्मरणों का विवेचन पत्रात्मक एवं डायरी शैली में भी करता है। इस प्रकार संस्मरण लिखने की कई शैलियाँ है।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है भाषा ही भावाभिव्यक्ति का साधन है। यदि भाषा शुद्ध परिमार्जित एवं भावानुकूल होगी तभी वह पाठक को प्रभावित कर सकती है। स्वाभाविक एवं प्रसाद गुण का भाषा में होना अत्यन्त आवश्यक है। शब्दचयन भी विषयानुकूल होना चाहिए।

23.6 प्रश्नावलीः–

1. संस्मरण साहित्य की परिभाषा देते हुए इसके स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

2. संस्मरण साहित्य के उद्‌भव और विकास पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

3. संस्मरण के तत्वों का विवेचन कीजिए।

_____

_____

_____

_____

23.7 सन्दर्भ ग्रन्थः

1. हिन्दी साहित्य का इतिहासः– रामसजन पाण्डे।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास :– हुकम चन्द राजपाल
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास :– रामचन्द्र शुक्ल
4. हिन्दी का गद्य साहित्य :– रामचन्द्र तिवारी
5. आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य :– डॉ॰ शान्ति खन्ना
6. गद्य की नई विधाओं का विकासः– माजदा असद

.....

यात्रा साहित्य : उद्‌भव और विकास

24.0 रूपरेखा

24.1 उद्देश्य

24.2 प्रस्तावना

24.3 भारतेन्दु युग

24.4 द्विवेदी युग

24.5 छायावाद युग

24.6 छायावादोत्तर युग

24.7 निष्कर्ष

24.8 कठिन शब्द

24.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

24.10 पठनीय पुस्तकें

24.1 उद्देश्य : इस अध्याय के पाठ से विद्यार्थी निम्नलिखित तथ्यों से अवगत होंगें–

– यात्रा साहित्य का अर्थ व्यापकता से समझना।

– हिन्दी साहित्य के इतिहास में यात्रा साहित्य की भूमिका को समझना।

– यात्रा साहित्य के उद्‌भव और विकास को समझना।

24.2 प्रस्तावना

हिन्दी गद्य साहित्य की अनेक विधाओं में यात्रा–वृत्तान्त अपनी अनुभूतिमयता, प्रकृति–पर्यवेक्षण, स्थान वैशिष्ट्य और हृदय की रागात्मक चेतना से ओत–प्रोत होने के कारण लोकप्रिय और पठनीय हैं। रामचन्द्र तिवारी के

शब्दों में– "ये सामान्य वर्णनात्मक शैली के अतिरिक्त पत्र और रिपोर्ताज शैली में लिखे जाते हैं इसलिए इनमें निबन्ध तथा संस्मरण आदि कई ग्रन्थ–रूपों का आनन्द एक साथ मिलता है।' अतएव यात्रा–वृत्तान्त पाठक को अद्यतन रमाये रखने के कारण आज एक लोकप्रिय विधा बन चुकी हैं।

24.3 भारतेन्दु युग (1868 ई0–1900 ई0)

"हिन्दी साहित्य में यात्रा – वृत्तान्त लिखने की परम्परा का सूत्रपात् भारतेन्दु से माना जा सकता है। भारतेन्दु ने सरयूपार की यात्रा, मेहदावल की यात्रा, लखनऊ की यात्रा आदि शीर्षकों से इन वृत्तान्तों का बड़ा रोचक और सजीव वर्णन किया है।"

'इस युग में यात्रा – वृत्त पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे थे। उस समय (1850 ई0) पूर्व तक के यात्रा–वृत्तों में तीर्थ भावना ही अधिक मिलती थी किन्तु इससे किंचित भिन्न थी एक पैदल यात्रा। आगरा से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक समाचार पत्र बुद्धि प्रकाश के 31 अगस्त 1853 ई0 के अंक में एक पैदल यात्रा प्रकाशित हुई थी। शिमला से आगे हिमालय (कश्मीर तक पर्वत क्षेत्र की मात्र तीर्थ स्थलों की ही नहीं) यह यात्रा है जिसके प्राकृतिक सौन्दर्य में, पर्वत शिखरों की ऊँचाई में उस अनाम यायावर को ईश्वर की ऊँचाई के दर्शन होते हैं। इसके बाद शैली तथा दृष्टि में बदलाव आता है। भारतेन्दु के यात्रा–वृत्तों के साथ।'

इस युग में यदि देखा जाय तो पुस्तकाकार रूप में श्रीमती हर देवी की मेरी लंदन यात्रा (बकौल सुरेन्द्र माथुर) यात्रा–साहित्य का प्रथम मुद्रित ग्रन्थ माना जा सकता है। यद्यपि इससे पूर्व भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित कुल यात्रा–वृत्त विषयक् रचनाएं 'कविवचन सुधा' पत्रिका (1871 ई0–1879 ई0) के अंकों में समय–समय पर प्रकाशित होती रही थीं। भारतेन्दु ने दैनिक जीवन की छोटी–छोटी बातों, प्रकृति–सौन्दर्य, रीति–रिवाज, खान–पान का वर्णन रोचकता के साथ किया और उनके पाँच यात्रा वृत्त, 1 सरयूपार की यात्रा, 2. मेहदावल की यात्रा, 3. लखनऊ की यात्रा, 4. हरिद्वार की यात्रा तथा 5. वैद्यनाथ की यात्रा, कविवचन सुधा पत्रिका में प्रकाशित हुए।

यात्रा–वृत्त लेखन की दिशा में भारतेन्दु के अतिरिक्त अन्य लेखकों ने भी योगदान दिया। बाल कृष्ण भट्ट तथा प्रताप नारायण मिश्र ने भी क्रमशः गया यात्रा और विलायत यात्रा नामक रचनाएं लिखी जो क्रमशः 'हिन्दी प्रदीप' के मार्च 1894 ई0 तथा नवम्बर 1897 ई0 के अंकों में प्रकाशित हुई। इस युग में यात्रा–वृत्त सम्बन्धी जो कृतियां पुस्तकाकार प्रकाशित हुई उनमें श्रीमती हर देवी, भगवान दास वर्मा दामोदर शास्त्री, तोताराम वर्मा, कल्याण चन्द्र और बिगु मिश्र द्वारा रचित क्रमशः लन्दन यात्रा (1883), लन्दन का यात्री (1884), मेरी पूर्व दिग्यात्रा (1885) और मेरी दक्षिण दिग्यात्रा (1886), ब्रज विनोद (1888), बदरी केदार यात्रा (1890) तथा ब्रज यात्रा (1894) विशेषरूपेण उल्लेखनीय हैं।

अन्य यात्रा–वृत्तों में, अज्ञात लेखक की विलायत की यात्रा (1893), राजा शिव प्रसाद सितारा–ए–हिन्द की सवानेह उमरी (1893), देवी प्रसाद खत्री का रामेश्वर यात्रा (1893) और साधू चरण प्रसाद का भारत भ्रमण (1892–96) के नाम लिए जाते हैं।

भारतेन्दु युग में लिखी गई यात्रा–वृत्त सम्बन्धी रचनाओं के – अनुशीलन के अनन्तर यह कहना उचित होगा कि विदेश यात्रा अध्ययन– सम्बन्धी में लन्दन को प्रमुखता मिली तो स्वदेश यात्रा सम्बन्धी वर्णनों में तीर्थ स्थानों को। भगवान दास वर्मा ने तुलनात्मक शैली द्वारा लन्दन तथा भारतीय परिवेश का वर्णन किया है। इस युग के यात्रा साहित्य में वर्णनात्मकता होते हुए भी यत्र–तत्र प्राकृतिक वातावरण के चित्रण में लेखकों की भावुकता देखी जा सकती है। इस युग का यात्रा साहित्य सामाजिक परिवेश, प्रकृति–चित्रण तथा लेखक के व्यक्तित्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इस युग में यात्रा साहित्य की स्वतन्त्र विधा के रूप में पहचान न होकर यह निबन्ध, डायरी तथा पत्र शैलियों में प्रकट

हो रही थी। इस युग की ज़्यादातर रचनाएं खड़ी बोली गद्य रूप में है लेकिन कल्याण चन्द तथा बिगू मिश्र की यात्राओं का वर्णन पद्य शैली में है।

24.4 द्विवेदी युग (1900–1920)

हिन्दी यात्रा–साहित्य के स्वरूप को निखारने में द्विवेदी युगीन साहित्यकारों का विशेष योगदान रहा है। द्विवेदी युग का प्रारम्भ ही 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन से हुआ था और सरस्वती के प्रथम अंक में ही कश्मीर यात्रा के नाम से यात्रा साहित्य का प्रतिनिधित्व करने वाली रचना का प्रकाशन किया गया। इस सन्दर्भ में पं. लक्ष्मी शंकर व्यास कहते हैं–'सन् 1900 ई0 में काशी नागरी प्रचारिणी के अनुमोदन से सचित्र हिन्दी मासिक पत्रिका 'सरस्वती' का प्रकाशन हिन्दी पत्रकारिता क्षेत्र में युगान्तर उपस्थित करने वाला था। इसका सिद्धान्त वाक्य था 'सरस्वती श्रुति महती महीयताम्।' पं. किशोरी लाल गोस्वामी का यात्रा संस्मरण इसमें छपा।'

इसके बाद तो पत्र–पत्रिकाओं में यात्रा – साहित्य के प्रकाशन की धूम मच गई। जिन हिन्दी पत्रिकाओं ने यात्रा सम्बन्धी साहित्य का प्रकाशन किया, उनमें प्रमुख थी– सरस्वती, मर्यादा, इन्दु, चित्रमय जगत और गृहलक्ष्मी। इन पत्रिकाओं में जहां देशीय यात्राओं के वर्णन प्रकाशित किए गए वहीं विदेशों की यात्राएं भी प्रकाश में आईं यथा– मॉरिशस यात्रा और विलायत की सैर।

द्विवेदी युग में पुस्तकों के रूप में भी पर्याप्त मात्रा में यात्रा – साहित्य प्रकाश में आया। इस युग के प्रमुख यात्रा – ग्रन्थों की सूची निम्न प्रकार है–

दुनिया की सैर	1901	अज्ञात
बदरिकाश्रम यात्रा	1902	बाबू देवी प्रसाद ख़त्री
हमारी एडवर्ड तिलक विलायत यात्रा	1903	ठाकुर गदाधर सिंह
भारत भ्रमण (पांच भागों में)	1903	साधु चरण प्रसाद
पंजाब यात्रा	1907	पं. राम शंकर प्रसाद
अमेरिका दिग्दर्शन	1911	स्वामी सत्यदेव परिव्राजक
द्वारिकानाथ यात्रा	1912	धनपत लाल
पृथ्वी प्रदक्षिणा	1914	शिव प्रसाद गुप्त
मेरी कैलाश यात्रा	1915	स्वामी सत्यदेव परिव्राजक
अमेरिका भ्रमण	1916	स्वामी सत्यदेव परिव्राजक
लंका यात्रा का विवरण	1916	गोपालराम गहमरी

द्विवेदी युग में भी यात्रा साहित्य का विकास निबन्ध–शैली में हुआ।

द्विवेदी युग में भी यात्रा–साहित्य का विकास निबन्ध–शैली में हुआ। द्विवेदी युगीन यात्रा–साहित्यकारों ने यात्रा–निबन्धों में अपने व्यक्तित्व की भी छाप छोड़ी है। इस तथ्य की पुष्टि डॉ. सुरेन्द्र माथुर के इस कथन से होती है– "इस युग के निबन्धों में एक विशेष रोचकता है। अधिकांश निबन्ध आत्मानुभव की अभिव्यक्ति के रूप में हैं, उसमें वस्तु या वर्ण्य विषय के प्रति लेखक का अपना निजी दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है। जिन विषयों पर अधिक लिखा गया, उनमें यात्रा भ्रमण भी है। द्विवेदी युग में द्विवेदी युग में देशीय यात्राओं के साथ–साथ विदेशों की विशेषतः

अमेरिका, श्रीलंका, इंग्लैण्ड आदि यात्राओं के वर्णन मिलते हैं। इस युग के प्रमुख यात्रा – साहित्यकारों में बाबू देवी प्रसाद खत्री, ठाकुर गदाधर सिंह, साधुचरण प्रसाद, शिव प्रसाद गुप्त एवं स्वामी सत्यदेव परिब्राजक के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

द्विवेदी युग के यात्रा – साहित्यकारों में राष्ट्रीयता का गुण विशेष रूप से देखा जा सकता है। यह युगानुकूल भावना लेखकों में मुख्यरूप से देश की परतन्त्रता जन्य पीड़ा तथा चारों ओर उठ रहे हाहाकार के कारण उत्पन्न हुई। राष्ट्रीय चेतना का एक पक्ष यह भी था कि संसारों से उत्पन्न मातृ–भूमि के प्रति असीम अनुराग और भारत – वसुन्धरा की प्राकृतिक छवियां लेखकों को आन्दोलित करती रहीं। पं. माधव प्रसाद मिश्र अपनी होशियार पुर यात्रा में जालंधर और होशियार पुर का श्री सम्पन्नता का वर्णन करते हुए लिखते हैं– "भूमि यहां ऐसी उपजाऊ है कि यहां भाग्यवान किसान अकाल का नाम या तो पुस्तकों में पढ़ते हैं, या दूसरों से सुनते हैं। कभी उसका मुंह नहीं देखते। यहां ऐसा सजल और समृद्ध देश हमारे देखने में पहले कभी नहीं आया था।'

द्विवेदी युग में उपलब्ध यात्रा – साहित्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस युग में यात्रा – साहित्य भारतेन्दु युग की अपेक्षा अधिक विस्तृत पृष्ठभूमि में लिखा गया। इस युग में विदेश–यात्राएं पूर्वापेक्षया अधिक लिखी गयीं। राष्ट्रीय चेतना का प्रस्फुरण, भाषासौष्ठव, वर्णन में साहित्यिकता का समावेश आदि कतिपय उल्लेखनीय विशेषताएं द्विवेदी युगीन यात्रा – साहित्य में देखी जा सकती हैं। 'समग्रतः यह कहा जा सकता है कि द्विवेदी युग में लिखी गयी यात्रा–वृत्त सम्बन्धी रचनाओं में न केवल पीछे से चली आती हुई परम्परा को जीवित बनाए रखा अपितु भावी विकास की दिशा में भी मूल्यवान योग दिया।'

24.5 छायावाद युग

हिन्दी में यात्रा–साहित्य का उद्‌भव और विकास यद्यपि भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग से प्रारम्भ हो गया था, तथापि साहित्य की एक विधा विशेष के रूप में इस साहित्य रूप की प्रतिष्ठा और लोकप्रियता इसी युग की देन है। यात्रा – साहित्य को दिशा और विशिष्ट पहचान देने वाले साहित्यकार राहुल सांकृत्यायन इसी युग से सृजन कार्य प्रारम्भ किए तथा हिन्दी के एक और प्रमुख यात्रा–वृत्तकार सत्यदेव परिव्राजक का अधिकांश साहित्य भी इसी युग में रचा गया। यात्रा – साहित्य की श्री वृद्धि में पत्रिकाओं का योगदान इस युग में भी उल्लेखनीय रहा। सरस्वती, माधुरी, चाँद, सुधा, विशाल भारत, कौमुदी आदि पत्रिकाओं में देश–देशान्तर के यात्रा – अनुभवों पर आधारित शताधिक रचनाएं समय–समय पर प्रकाशित होती रहीं । पुस्तक के रूप में छपने से पूर्व अनेक रचनाकारों के यात्रा–वृत्त पहले इन्हीं पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाशित हुए बाद में उनका संकलन पुस्तक के रूप में किया गया।

हिन्दी यात्रा – साहित्य के प्रमुख लेखकों में एक स्वामी सत्यदेव परिव्राजक इस युग के प्रमुख यात्रा–वृत्तकार कहे जा सकते हैं। यों उनका रचना काल द्विवेदी युग से प्रारम्भ होकर छायावादोत्तर काल तक फैला हुआ है, पर उनका पर उनका सर्वाधिक यात्रा – साहित्य इसी युग में प्रकाशित हुआ। परिव्राजक के तीन यात्रा–वृत्तान्त, 'अमरीका भ्रमण', 'मेरी कैलाश यात्रा' तथा 'अमरीका दिग्दर्शन' द्विवेदी युग में प्रकाशित हो चुके थे। आलोच्यकाल में प्रकाशित उनकी प्रमुख रचनाएं हैं– मेरी जर्मन यात्रा (1926), यात्री मित्र (1936), यूरोप की सुखद स्मृतियां (1937), ज्ञान के उद्यान में (1937), नयी दुनिया के मेरे अद्‌भुत संस्मरण (1937) तथा अमेरिका प्रवास की मेरी अद्‌भुत कहानी (1937)।

राहुल सांकृत्यायन का सृजन हिन्दी यात्रा–साहित्य को बहुआयामी स्वरूप प्रदान करता है। वस्तुतः कथा–साहित्य के क्षेत्र में जो स्थान प्रेमचन्द्र का है वही स्थान यात्रा – साहित्य के इतिहास में राहुल को दिया जा सकता है। वैसे साहित्य तथा दर्शन के क्षेत्र में राहुल की प्रतिभा बहुमुखी रही है, पर स्वयं उन्होंने भ्रमण को अपने जीवन

का साध्य माना है और उसे ही लेखन का प्रेरणास्रोत स्वीकार किया है– 'यात्रा ने ही मेरे हाथ में जबरदस्ती क़लम पकड़ा दिया और स्वयं ही लेखन शैली बनती गई। क़लम के दरवाजे को खोलने का काम मेरे लिए यात्राओं ने ही किया इसलिए मैं इनका बहुत ही कृतज्ञ हूँ।' बाल्यावस्था से ही उन्होंने घुमक्कड़ी प्रारम्भ कर दी थी और भारत–दर्शन के अतिरिक्त नेपाल, लंका, तिब्बत, यूरोप, जापान, कोरिया, सोवियत संघ ईरान तथा चीन इत्यादि देशों की अनेक बार यात्राएं कीं। इन यात्राओं के माध्यम से उन्होंने जहां एक ओर प्राचीन संस्कृति के अवशेषों, लप्ताय ग्रन्थों की खोज और उनका अध्ययन किया वहीं दूसरी ओर इन देशों की वर्तमान स्थिति को, वहां के भौगोलिक और सांस्कृतिक परिवेश को जानने–समझने का प्रयत्न किया। 'राहुल जी की प्रारम्भिक यात्राओं ने दो दिशाएं दीं, एक तो प्राचीन तथा अर्वाचीन विषयों का अध्ययन दूसरे देश–देशान्तरों की अधिक से अधिक प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करना।'

आलोच्य युग में प्रकाशित राहुल जी की शीर्षक कृतियां हैं– तिब्बत में सवा वर्ष (1933), मेरी यूरोप यात्रा (1934), मेरी तिब्बत यात्रा (1937)। तिब्बत में सवा वर्ष में न केवल तिब्बत के जन–जीवन की सशक्त झांकी उकेरी गई है बल्कि वहां रहकर खोजे गये ग्रन्थों का भी विस्तृत वर्णन किया गया है। मेरी यूरोप यात्रा में यूरोप के दर्शनीय स्थलों के अतिरिक्त कैम्ब्रिज तथा ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयों के रोचक वृत्त भी प्रस्तुत किए गए हैं। अनेक चित्रों से अलंकृत डायरी शैली में लिखी गई मेरी तिब्बत यात्रा में तिब्बत के प्राकृतिक सौन्दर्य का मनमोहक वर्णन किया गया है। उनकी अन्य रचनाओं में मेरी लद्दाख यात्रा (1926), किन्नर देश में, राहुल यात्रावली, यात्रा के पन्ने, रूस में पच्चीस मास, एशिया के दुर्गम खण्डों में आदि प्रमुख हैं। इन सभी रचनाओं से ऊपर इनका घुमक्कड़ शास्त्र है जिसमें इन्होंने घुमक्कड़ों के रचनाओं से ऊपर इनका घुमक्कड़ शास्त्र है जिसमे इन्होंने घुमक्कड़ों के मार्ग–दर्शन के लिए अपने यायावरी जीवन का पूरा निचोड़ ही सामने रख दिया है।

छायावादी युग में प्रकाशित अन्य यात्रा–वृत्तों में केदार रूप राय की 'हमारी विलायत यात्रा' (1926), देणी शुक्ल की 'लंदन', 'पेरिस की सैर' (1926) मंगलानन्द पुरी की 'अफ्रीका यात्रा' (1928), जवाहरलाल नेहरू की 'रूस की सैर' (1929), कन्हैयालाल मिश्र आर्योपदेशक की 'हमारी जापान यात्रा' (1931) तथा 'मेरी अबीसीनिया यात्रा' (1935), राम नारायण मिश्र की 'यूरोप में छः मास' (1932), कृपानाथ मिश्र की 'विदेश की बात' (1932), गणेश नारायण सोमानी की 'मेरी यूरोप यात्रा' (1932), हरिकृष्ण झांझड़िया की 'मेरी दक्षिण भारत यात्रा' (1934), शिव प्रसाद गुप्त की 'पृथ्वी प्रदक्षिणा' (1934), प्रो. मनोरंजन की 'उत्तराखण्ड के पथ पर' (1936), गोविन्द दास की 'हमारा प्रधान उपनिवेश' (1938), राम शरण विद्यार्थी की 'कैलाश पथ पर' (1937), तथा सत्य नारायण की 'यूरोप के झरोखे में' (1938) प्रसिद्ध हैं।

24.6 छायावादोत्तर युग

विषय–वैविध्य, रचना–शिल्प तथा परिमाण तीनों दृष्टियों से छायावादोत्तर युग के यात्रा–वृत्त अपने सभी पूर्ववर्ती युगों से अधिक सम्पन्न हैं। यही वह युग है जिसमें हमारा देश स्वतन्त्र हुआ। स्वतन्त्रता प्राप्ति के फलस्वरूप भारत के विश्व भर के देशों के साथ राजनयिक व सांस्कृतिक सम्बन्ध जुड़े। केवल पर्यटकों को ही नहीं अपितु राजनयिकों व साहित्यकारों को भी विदेश यात्रा के पर्याप्त अवसर मिले। छात्रों को विदेशों में पढ़ाई का अवसर मिला। आजीविका हेतु भी तमाम लोगों का विदेशों में जाना हुआ। प्रगतिवादी आन्दोलनों के फलस्परूप बहुत से लोगों का ध्यान साम्यवादी देशों की यात्रा की और भी गया। इन सबके परिणाम स्वरूप ही यह युग यात्रा साहित्य की समृद्धि का युग बना। छायावादोत्तर काल के यात्रा – साहित्य जिन लोगों का मुख्य योगदान रहा उनमें से कुछ ने छायावाद युग में भी यात्रा–वृत्त लिखे थे। इस दृष्टि में स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, कन्हैयालाल मिश्र आर्योपदेशक, सन्तराम, राहुल सांकृत्यायन, सेठ गोविन्द दास, पं0 जवाहरलाल नेहरू आदि उल्लेखनीय हैं।

आलोच्य युग में यूँ तो सभी देशों से सम्बद्ध यात्रा–वृत्त प्रकाशित हुए हैं किन्तु इस बीच रूस से हमारे देश का सम्बन्ध अधिक सुदृढ़ होने के कारण रूस से सम्बन्धित यात्रा– वृत्तों की संख्या कुछ अधिक ही रही है। रूस से सम्बन्धित जिन रचनाओं ने पाठकों को अपनी ओर आकर्षित किया उनमें सत्यनारायण, महेश प्रसाद श्रीवास्तव, राहुल सांकृत्यायन, पं0 जवाहरलाल नेहरू, यशपाल, रामकृष्ण रघुनाथ खाडिलकर, बनारसीदास चतुर्वेदी, अक्षय कुमार जैन, डॉ. जगदीश चन्द्र जैन, डॉ. नगेन्द्र, यशपाल जैन, लक्ष्मीदेवी चूड़ावत, डॉ. दुर्गावती सिंह द्वारा क्रमशः लिखी गयी रोमांचक रूस, दिल्ली से मास्को (1951), रूस में पच्चीस मास (1952), आँखों देखा रूस (1953), लोहे की दीवार के दोनों ओर (1953), बदलते रूस में (1958), रूस की साहित्यिक यात्रा (1962), दूसरी दुनिया (1965), सोवियत रूस पिता के पन्नों में (1966), तन्त्रालोक से यन्त्रालोक तक (1968) रूस में छियालीस दिन (1960), हिन्दुकुश के उसपार (1966) तथा सीधी–सादी यादें (1976) रचनाएं विशेष रूपेण उल्लेखनीय हैं।

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी कृत 'पैरों में पंख बाँधकर' (1952 ई०) और 'उड़ते चलो उड़ते चलो' (1954 ई०) यशपाल कृत 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' (1953 ई०) अज्ञेय कृत ' अरे यायावर रहेगा याद' (1953 ई०) और एक बूँद सहसा उछली' (1960 ई०) डॉ० भगवतशरण उपाध्याय कृत 'कलकत्ता से पेकिंग' (1955 ई०) और 'सागर की लहरों पर' (1959 ई०) रामधारी सिंह 'दिनकर' कृत 'देश–विदेश' (1957 ई०), प्रभाकर माचवे कृत 'गोरी नजरों में हम' (1964 ई०) यात्रा–साहित्य की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। परवर्ती लेखकों में मोहन राकेश कृत 'आखिरी चट्टान तक' (1953 ई०), ब्रजकिशोर नारायण कृत 'नन्दन से लन्दन' (1957 ई०), प्रभाकर द्विवेदी कृत 'पार उतरि कहँ जहाँ ' (1958 ई०), डॉ. रघुवंश कृत 'हरी घाटी' (1963 ई०) तथा धर्मवीर भारती लिखित 'यादें योरप की' आदि रचनाओं की अधिक चर्चा हुई है। इसी क्रम में निर्मल वर्मा कृत 'चीड़ों पर चाँदनी' (1964 ई०) अपने में एक अनुभव है। इसमें वस्तुओं और स्थितियों के अतिरिक्त अनेक यूरोपीय देशों की कलात्मक उपलब्धियों का जो आकलन किया गया है, वह विस्मयकारी है।

पिछले 34 वर्षों में हिन्दी का यात्रा साहित्य और समृद्ध हुआ है। विदेशों से हमारा सम्पर्क बढ़ा है। हमारे साहित्यकार रूस, चीन, जापान, अफ्रीका तथा यूरोपीय देशों के साहित्यकारों तथा साहित्य और कला के क्षेत्र में उनकी उपलब्धियों में अधिक दिलचस्प लेने लगे हैं। सांस्कृतिक यात्राएँ भी अब अधिक होने लगी हैं। इन कारणों से साहित्यकारों को विदेश भ्रमण की सुविधाएँ मिलने लगी हैं। फलस्वरूप यात्रावृत्त भी अधिक लिखे जाने लगे है। सन् 1968 ई० से लेकर 2011 ई० तक अनेक उल्लेखनीय यात्रावृत्त प्रकाशित हुए हैं। 'मेरी यात्रायें (1970 ई०) दिनकर, 'रूसी सफरनामा' (1971 ई०) बलराज साहनी, 'अप्रवासी की ' (1972 ई०) डॉ० नगेन्द्र, 'गाँधी के देश से लेनिन के देश में' (1973 ई0) शंकरदयाल सिंह. 'अपोलो का रथ' (1975 ई०) श्रीकान्त वर्मा, 'खण्डित यात्राएँ' (1975 ई) और 'कश्मीर रात के बाद' (1997 ई०) कमलेश्वर, 'धुंध भरी सुर्खी' (1979 ई०), 'दलों के पार शाम' (1980 ई०), 'झूलती जड़े' (1990 ई०). और 'परतों के बीच' (1997 गोविन्द मिश्र, 'धरती लाल गुलाबी चेहरे' (1982 ई०), कन्हैया लाल नन्दन, 'ज्योति पुंज हिमालय' (1982 ई०) और 'हमसफर मिलते रहे' (1996 ई०) विष्णु प्रभाकर, ''स्फोतियों में बारिश' (1982 ई०), 'किन्नर धर्म लोक' (1983 ई०) और 'लद्दाख में राग विराग' (1983 ई०), कृष्णनाथ, 'सफरी झोले में' (1985 ई०) और 'यहाँ से कहीं भी ' (1997 ई०) अजित कुमार, 'हवा में तैरते हुए' (1986 ई०) राजेन्द्र अवस्थी, 'पत्रों की तरह सुप' (1987 ई०) इन्दु जैन, 'सौन्दर्य की नदी नर्मदा' (1992 ई०) अमृतलाल बेगड़, 'तना हुआ इन्द्रधनुष' (1990 ई०), 'भोर का सपना' (1993 ई०) और 'पड़ोस की खुशबू' (1999 ई०) राम दरश मिश्र, 'यात्राचक्र' (1995 ई०) धर्मवीर भारती, 'साब्जा पत्र कथा कहे' (1996 ई०) शिवप्रसाद सिंह, 'यूरोप में अंतर्यात्रायें' (1996 ई०) कर्णसिंह चौहान, 'एक बार आयोगा' (1996 ई०) मंगलेश डबराल, नये चीन में दस दिन' (1996 ई०) गिरधर राठी, 'लिबर्टी के देश में (1997 ई०) सीतेश आलोक, 'आधीरात का सफर' (1998 ई०) वल्लभ डोभाल, 'यातना शिविर में (1998 ई०) हिमांशु जोशी, 'आत्म की धरती' (1999 ई०)

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, 'एक लम्बी छाँह' (2000 ई०) रमेशचन्द्र शाह, 'अमृतस्य नर्मदा' (2000 ई०) अमृतलाल वेगड़, 'जापान में कुछ दिन (2003 ई०) डॉ० कृष्णदत्त पालीवाल, कितना अकेला आकाश' (2003 ई०) नरेश मेहता, 'जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं' (2003 ई०) नासिरा शर्मा, 'अन्तहीन आकाश' (2005 ई०) डॉ० विश्वनाथप्रसाद तिवारी, 'और यात्राएँ' (2005 ई०) गोविन्द मिश्र, 'आँखों देखा पाकिस्तान' (2006 ई०) कमलेश्वर, 'क्या हाल हैं चीन के' (2006 ई०), 'पश्चिमी जर्मनी पर उड़ती नजर' (2006 ई०) मनोहरश्याम जोशी, 'घर से घर तक' (2008 ई०) डॉ० रामदरश मिश्र, 'यादों से रची– 'यात्रा' (2009 ई०) डॉ० पूरन चन्द जोशी, 'पुश्किन के देश में (2010 ई०) महेश दर्पण, 'मुअनजोदड़ो' (2011 ई०) ओम धानवी, 'सफरी झोले में कुछ और' (2011 ई०) अजीत कुमार, 'नील नदी की सावित्री' (2011 ई०) ललित सुरजन आदि कृतियाँ इस विधा की उपलब्धियाँ मानी जा सकती हैं। इनके अतिरिक्त पत्र–पत्रिकाओं में जाने कितने यात्रावृत्त बराबर प्रकाशित हो रहे हैं। यात्रा–वृत्तों में हम दृश्यों, स्थितियों, व्यक्तियों, और आधुनिक तकनीकी ज्ञान के बल पर निर्मित विविध विस्मयकारी परिदृश्यों तथा इनके प्रति लेखक की अनुकूल–प्रतिकूल प्रतिक्रियाओं से साथ–साथ परिचित होते चलते हैं। लेखक की रुचि, संस्कार, मानसिकता और संवेदनशीलता के अनुसार यात्रा–वृत्तों के बदलते रूपाकार हमारी राग–चेतना को निरन्तर उद्वेलित करते चलते हैं। यात्रा–वृत्त लेखक के साथ सह–यात्रा का सुख अनुभव कहते हुए हम अपनी जिज्ञासा तुष्टि तो करते ही हैं, उसकी आत्मा का साक्षात्कार भी करते हैं। कोई भी रचनाकार सीधी सपाट रेखा में सृजन नहीं करता। यात्रा वृत्तान्त में भी वह अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कविता, कथा, संस्मरण, रेखाचित्र, पत्र, डायरी आदि के रंग कभी अलग–अलग और कभी एकसाथ संश्लिष्ट रूप में भरता चलता है। पाठक के रूप में उसके साथ चलते हुए हम इन विधाओं का स्वाद भी लेते चलते हैं। उपर्युक्त लेखकों में श्रीकान्त वर्मा, अजितकुमार, इन्दु जैन आदि के वृत्तान्तों में दृश्य– दर्शन के साथ ही हमें कविता पढ़ने का सुख भी मिलता है। 'दिनकर' और 'नगेन्द्र' के यात्रा– वृत्तों में देश–प्रेम की मानसिकता से प्रेरित आलोचनात्मक प्रतिक्रियायें हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं। बलराज साहनी के यात्रा–वृत्त में रूस की धरती की गंध के साथ ही उसकी उपलब्धियों के प्रति सम्मान का भाव भी लक्षित होता है। शंकरदयाल सिंह और कन्हैयालाल नन्दन के यात्रावृतों में शब्द प्रवाह के साथ बहते हुए दृश्यों की लय हमें मुग्ध करती है। कमलेश्वर के वृतांतों में कश्मीर की जनता के दुःख–दर्द और उसकी मानसिकता को दर्ज करने की ईमानदार कोशिश हमें प्रभावित करती है। यहाँ हम उन्हें एक सच्चे पत्रकार के रूप में देखते हैं। गोविन्द मिश्र के लिए प्रकृति के मुक्त सौन्दर्य का आकर्षण प्रमुख है। प्रकृति की गोद में उन्हें वही अनुभूति होती है, जो सिद्धार्थ की गोद में आहत पक्षी को हुई थी। उनके यात्रावृत्त इस अनुभूति को शब्द देने के प्रयास में लिखे गए हैं। विष्णु प्रभाकर को वह सब– कुछ आकृष्ट करता है, जो सहज मुक्त और निरावृत्त है। इसलिए एक ओर उन्हें हिमालय का मुक्त नैसर्गिक सौन्दर्य अपनी ओर खींचता है, दूसरी ओर हमसफरों का मूक निश्छल और अटपटा प्रेम कृष्णनाथ के यात्रा–वृत्त हमारे संस्कृति–बोध को विस्तार देकर हमें भीतर से समृद्ध करते हैं। राजेन्द्र अवस्थी के यात्रावृत्तों में हमारी जिज्ञासा की तुष्टि तो होती ही है, हमें कथा–रस का आनन्द भी मिलता है। रामदरश मिश्र एक अत्यन्त संवेदनशील और मूल्यचेता रचनाकार हैं। उनके यात्रावृत्तों में हम उनके सजग कथाकार और स्वाभिमानी कवि–व्यक्तित्व दोनों का साक्षात्कार एक साथ करते हैं। डॉ० धर्मवीर भारती जितने सजग पत्रकार थे उतने ही सहृदय कवि भी मानव मूल्यों के प्रति अडिग आस्था रखने वाले उनके कवि ने कहीं भी उनका साथ नहीं छोड़ा, चाहे वे मारिशस के नैसर्गिक सौन्दर्य का वर्णन कर रहे हों, चाहे 1971 के बाँग्ला मुक्तिसंग्राम की विभीषिका का अंकन कवि और पत्रकार का सह–अस्तित्व उनके यात्रा वृतांतों की सबसे प्रमुख विशेषता है। श्री कर्णसिंह चौहान और सीतेश आलोक की योरप यात्रायें ज्ञानवर्धन के साथ हमारी संवेदना को विस्तार देने के कारण उल्लेखनीय हैं। शिवप्रसाद सिंह उच्चतर मानवीय मूल्यों के प्रति समर्पित एक सजग श्रमशील रचनाकार थे। उनकी सजग मूल्य चेतना और संस्कृति चिन्ता उनके यात्रा वृत्तों को औरों से अलग करती हैं। कवि मंगलेश डबराल को सन् 1991 ई० में अन्तराष्ट्रीय राइटिंग प्रोग्राम के सिलसिले में अमेरिका स्थित

आयोवा विश्वविद्यालय में जाने का अवसर मिला था। अपनी इस अमेरिका– यात्रा का आपने रोचक वर्णन किया है। अमेरिका की आधुनिक जीवन शैली और साहित्य–चेतना के सम्बन्ध में आपकी बेबाक समीक्षात्मक टिप्पणियाँ इस यात्रा–वृत्त की प्रमुख विशेषताएँ हैं। वल्लभ डोभाल का 'आधीरात का सफर एक स्मरणीय यात्रा वृतांत है। अत्यन्त साहसिक घटना–वर्णन, गावों के प्रति गहरा लगाव, शहर की यांत्रिक जीवन–शैली के प्रति वितृष्णा और आद्योपान्त कुतूहल को जगाए रखने वाली व्यंग्य गर्भित शैली इसकी उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। हिमांशु जोशी ने 'यातना शिविर' शीर्षक से अंडमान निकोबार के उस सेल्युलर जेल की कथा लिखी है, जिसमें अदम्य भारतीय क्रांति वीरों को रखकर उन्हें अनेक प्रकार की पाशविक यातनाएँ दी जाती थीं। वीर सावरकर, शचीन्द्रनाथ सान्याल, सरदार भानसिंह आदि वीरों को दी गई यातनाओं को पढ़कर आज भी हमें रोमांच हो जाता है। 'आत्म की धरती', 'दस्तावेज' के सम्पादक कवि पत्रकार श्री विश्वनाथप्रसाद तिवारी के संस्मरणात्मक यात्रावृत्तों का संग्रह है। पत्र शैली में लिखे गए इन यात्रा–वृत्तों के माध्यम से लेखक ने अपने देश को समग्रता में देखने–परखने और पहचानने का प्रयत्न किया है।

डॉ० कृष्णदत्त पालीवाल का 'जापान में कुछ दिन' यात्रावृत्त 2003 ई० में प्रकाशित हुआ है। अक्टूबर 2000 में श्री पालीवाल 'ताक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फारेन स्टडीज', जापान में विजिटिंग प्रोफेसर होकर गए थे। वहाँ के एकाकी जीवन में अपने मन की उथल–पुथल शान्त करने के लिए डायरी लिखना शुरू किया।

नरेश मेहता का 'कितना अकेला आकाश' (2003 ई०) यात्रावृत्त है। श्री नरेश मेहता प्रख्यात कवि एवं कथाकार थे। अगस्त 1989 में श्री मेहता ने यूगोस्लाविया के एक छोटे से नगर स्त्रगा में आयोजित काव्य समारोह में एकमात्र भारतीय प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया था। मेहताजी 17 अगस्त को इलाहाबाद से दिल्ली के लिए रवाना हुए थे। 23 अगस्त को दिल्ली से चलकर रोम होते हुए 25 अगस्त को स्त्रगा पहुँचे । स्त्रगा में कुल चार दिन रहे। काव्य– समारोह में भाग लेने के बाद 28 अगस्त को वहाँ से रवाना होकर दुबई पहुँचे। इस वृतान्त में 15 दिनों की यात्रा का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। इस यात्रावृत्त में मेहताजी ने युगोस्लाविया और अन्य यूरोपीय लोगों की मानसिक बुनावट का जो रूप प्रस्तुत किया है वह बड़ा ही हृदयस्पर्शी और प्रभावी है।

'अंतहीन आकाश' (2005 ई०) 'दस्तावेज' के यशस्वी सम्पादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के इस यात्रावृत्त में 'लन्दन', 'मारीशस', और 'रूस' के भौगोलिक दृश्य–चित्रों से अधिक इन देशों के इतिहास, समाज, साहित्य, रहन–सहन और संस्कृति विकृति को गहराई से देखा–परखा गया है। इसमें 'रूस' के लोगों के स्वभाव और उनकी जीवन–स्थितियों के चित्रण को प्रमुखता दी गई है। इस वृत्त चित्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लेखक ने चीजों को भारतीय दृष्टि से देखा–परखा है।

'आँखों देखा पाकिस्तान' (2005 ई०) प्रख्यात लेखक श्री कमलेश्वर की इस कृति में उनकी पड़ोसी देश पाकिस्तान' की यात्रा का वृत्तचित्र अंकित है। पूरी पुस्तक 'बाघा बार्डर के उस पार', 'खुली खिड़की', 'कुछ सांस्कृतिक सवाल' और 'पाकिस्तानी कैदियों का मसला' इन चार शीर्षकों में विभक्त है। स्थानों, दृश्यों और स्थितियों के वर्णन के अतिरिक्त इस महत्त्वपूर्ण कृति में लेखक ने जो निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं वे हमें कहीं बहुत गहरे प्रभावित करते हैं। लेखक का मानना है कि दोनों ही देशों में गरीबों का जीवन एक जैसा है। वहाँ के लेखकों में किसी तरह की कट्टरता या साम्प्रदायिकता नहीं है। वे अपने जीवन और लेखन दोनों में ही मानवीय मूल्यों को तरजीह देते हैं। वहाँ के मूल निवासी मुसलमानों की अपेक्षा भारत से गए मुसलमान अधिक कट्टर हैं और सब कुछ के बावजूद हम सांस्कृतिक विरासत का बँटवारा नहीं कर सके हैं।

'क्या हाल हैं चीन के' (2006 ई०) 'माओ' के बाद वाले दौर में श्री जोशी ने तत्कालीन विदेशमंत्री माननीय अटलबिहारी वाजपेयी के साथ एक पत्रकार की हैसियत से चीन का दौरा किया था। अपने इस यात्रावृत्त में उन्होंने

चीन के दो मुँहें कूटनीतिक चरित्र की असलियत का पर्दाफाश किया है। पुस्तक अत्यन्त रोचके और पठनीय है। 'पश्चिमी जर्मनी पर उड़ती नजर' (2006 ई०) द्वितीय महायुद्ध के बाद जर्मनी पूर्वी और पश्चिमी दो हिस्सों में बँट गया था। इसी समय श्री जोशी ने पश्चिमी जर्मनी का एक पत्रकार की हैसियत से दौरा किया था। प्रस्तुत पुस्तक मैं उनके इस दौरे के अनुभव का दस्तावेज है। इसमें उन्होंने पश्चिमी जर्मनी के प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ ही वहाँ के लोगों के रहन–सहन, उनकी सोच और जीवन शैली का भी यथार्थ चित्र अंकित किया है। पुस्तक अत्यन्त रोचक और पठनीय है।

24.7 निष्कर्ष :

भारतेन्दु काल के यात्रा–वृत्त यात्रा क्रम में लिखे गए स्थूल ''वृत्त मात्र होते थे। अधिक से अधिक उनमें लेखक के स्वभाव और रुचि का निदर्शन मात्र हो जाता था, किन्तु आज तो यात्रावृत्तों में वस्तुओं, व्यक्तियों और स्थितियों के वाह्य संश्लिष्ट बिम्ब–विधान के साथ ही लेखक के अन्तर्जगत् का पूरा साक्षात्कार कर सकते हैं। यात्रा वृतांतों में देश–विदेश के प्राकृतिक दृश्यों की रमणीयता, नर–नारियों के विविध जीवन–सन्दर्भ, प्राचीन एवं नवीन सौन्दर्य चेतना की प्रतीक कलाकृतियों की भव्यता तथा मानवीय सभ्यता के विकास के प्रतीक अनेक वस्तुचित्र यायावर लेखक के मानस में रूपायित होकर उसकी वैयक्तिक रागात्मक ऊष्मा से दीप्त हो जाते हैं। लेखक अपनी विम्बविधायिनी कल्पना शक्ति के बल पर उन्हें पुनः मूर्त करके पाठकों की जिज्ञासा–वृत्ति को तुष्ट कर देता है। यात्रा काल में यायावर का साहस, संघर्ष–शीलता, स्वच्छन्दता, आकस्मिक रूप से आनेवाली प्रतिकूल परिस्थितियों को अनूकूल बना लेने की क्षमता आदि चारित्रिक विशेषताएँ उसे नायक की गरिमा प्रदान कर देती हैं। पाठक उसे प्यार करने लगता है। यायावरों की साहसिक यात्राएँ मानव की जिजीविषा का उद्घाटन करती हैं। जिजीविषा हर जीवधारी की मूलभूत वृत्ति है। यात्रा–वृत्तान्तों के पढ़ने से इस वृत्ति की तुष्टि होती है। इसीलिए यात्रा साहित्य के प्रति आकर्षण बढ़ता जा रहा है। यात्रा– वृत्तान्त सामान्य वर्णनात्मक शैली के अतिरिक्त डायरी, पत्र और रिपोर्ताज शैली में भी लिखे जाते हैं। इसलिए इनमें निबन्ध, कथा, संस्मरण आदि कई गद्य रूपों का आनन्द एक साथ मिलता है।

24.8 कठिन शब्द

प्रस्फुरण, भाषा–सौष्ठव, जिजीविषा, विम्बविधायिनी, रमणीयता, संश्लिष्ट, बिम्ब, विधान, यथार्थ।

24.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 यात्रा साहित्य का अर्थ स्पष्ट कर अपने विचार व्यक्त करें।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न 2 यात्रा साहित्य की विकास परम्परा पर सविस्तार प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न 3 यात्रा साहित्य के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

24.10 पठनीय पुस्तकें

1. यात्रा साहित्य उद्‌भव और विकास – डॉ. सुरेन्द्र माथुर।
2. हिन्दी साहित्य का उद्‌भव बौर विकास – हजारी प्रसाद द्विवेदी।
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
4. गद्य साहित्य – रामचन्द्र तिवारी।

.....